श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ ।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ ।

(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावो की नामावली —

१ श्रीमान् सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया
२ वर्णीसघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय, कानपुर
३ „ कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
४ „ सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया
५ „ श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
६ „ मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
७ „ प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
८ „ सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
९ „ दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
१० „ बारूमल प्रेमचन्द जी जैन, मसूरी
११ „ बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
१२ „ केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
१३ „ सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन, सनावद
१४ „ मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी, मुजफ्फरनगर
१५ „ श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
१६ „ जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ
१७ „ मत्री जैन समाज, खण्डवा
१८ „ बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
१९ „ विशालचन्द जी जैन, रईस सहारनपुर
२० „ बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसादजी जैन, ओवरसियर, इटावा
२१ „ सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलालजी जैन, सघी, जयपुर
२२ „ मत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज, गया
२३ „ सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
२४ „ बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी जैन गिरिडीह
२५ „ बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी, गिरिडीह
२६ „ सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
२७ „ सुखवीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बड़ौत

२८	श्रीमान् गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा,	[illegible]ला
२९	,, दीपचंद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इंजीनियर,	[illegible]नपुर
३०	,, मंत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,, संचालिका, दि० जैन महिलामंडल, नमककी मंडी,	आगरा
३२	,, नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,, मक्खनलाल शिवप्रसादजी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,, रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,, मोलहडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,, बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर	मेरठ
३८	,, दिगम्बर जैनसमाज,	गोटे गाँव
३९	,, माता जी धनवंतीदेवी जैन राजागंज	इटावा
४०	,, ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१	,, लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२	,, लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	चिलकाना
४३	,, हुकमचंद मोतीचंद जैन,	सुलतानपुर
४४	श्रीमती कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी	सुलतानपुर
४५	,, ❀ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४६	,, ❀ बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा,	झूमरीतिलैया
४७	,, ❀ इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४८	,, ❀ सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या,	जयपुर
४९	,, ❀ बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ. सदर,	मेरठ
५१	,, ❀ ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर	मेरठ
५२	,, × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५३	,, × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामों के पहले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिस नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

आत्म-कीर्तन

[अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति
पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित]

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।। टेक ।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वय जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।।५।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरों पर निम्नाकित पद्धतियो मे भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमें छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला, पुरुषों द्वारा ।
५—किसी विपत्तिके भी समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ, स्वरुचि के अनुसार किसी अर्ध, चौथाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

अध्यात्मसहस्री प्रवचन प्रथम भाग

संसारी प्राणियोंकी अभिलाषा—संसारमे हम आप सब जितने भी जीव है सबकी एक ही अभिलाषा है कि दु ख दूर हो और सुख शान्ति-प्राप्त हो। जितने भी प्रयत्न करते है प्रत्येक जीव, उनका प्रयोजन यही है कि दु.ख न रहे और सुख शान्ति हो। चाहे इस प्रयत्नमे वे अपनी ही बरबादीका काम करले अथवा अपनी आबादीका काम करले, पर प्रयोजन एक ही है कि दु ख दूर हो और सुख शान्ति प्राप्त हो। यह अभिलापा क्यो हुई ? उसका कारण ही एक यही है कि ये सब जीव दु खमे पडे हुए हैं। यदि ये दु खमे न होते तो ऐसी अभिलाषा क्यो की जाती कि मेरे दु ख दूर हो और सुख-शान्ति प्राप्त हो। दु ख है और उन दु खोको सभी कोई अनुभव-कर रहे है, पर क्या दु.ख है ? इस ही जीवनमे बालक लोग अपने वचपनका दु ख अनुभव किया करते है। माँ ने डाँट दिया, बापने डाँट दिया, कोई सत्कारसूचक वचन नही बोलता। ये बच्चे लोग अपने को बडा दु खी अनुभव करते। वैसे दूसरी दृष्टिसे देखो तो ऐसा लगता है कि बच्चोको क्या क्लेश है ? खेलते है, मौज करते है, खाना खाते है, कमाना नही पडता है, लेकिन दु.खका सम्बन्ध बाहरी सुविधाओसे नही, किन्तु मनकी कल्पनासे है। प्रत्येक जीवमे घटाते जाइये। बच्चे लोग अपनी तरहकी कल्पनाये करके दु खी हो रहे है। बच्चेसे बडे हुए तो उनकी कल्पनाका ढंग बदल गया, मगर दु ख नही मिटा। बच्चे लोग यह सोचा करते है कि यदि हम भी इन बडोकी तरहसे वडे होते तो हम भी हुकुम चलाते, इन्हीके ढगसे रहते, लेकिन जहां कुछ बड़े होते है तहाँ उनकी कल्पनाका ढग बदल जाता-है पर दु ख नही मिटता। यो जवानीमे देखो तो अनेक दु ख, बुढापामे देखो तो अनेक दु ख। यह बात तो इस जरासे जीवनभर की है। मगर हम आपका जो आत्मा है, जिसमे मैं मैं का अनुभव किया करते है, जिसमे अपने अस्तित्त्वका अनुभव किया करते है, वह करता क्या है ? मैंने कभी सुख शान्ति नही प्राप्त की। मै हूँ। अगर मैं न होता तो बडा ही अच्छा था। फिर तो झगडा ही क्या ? मेरा अस्तित्त्व है। मैं हूँ और मुझे शान्ति चाहिए। एक आत्माके ही नाते मैं अमुक जाति, कुल, मजहबका हूँ, ऐसी इज्जत पोजीशनका हूँ आदि सब बाते भूल भालकर बस यही विचारना है कि मुझे तो अपने समस्त दु ख दूर करना है।

आत्मदया करके सदाके लिये संसारसंकटोंसे मुक्ति पानेका आशय बनानेका अनुरोध—मै इस भवके इन समस्त दु खोसे परिचित तो हू लेकिन जो पशु पक्षी कीड़ा मकोडा

आदिकके दु ख दिख रहे है उनकी तो बात सोचिये । आखिर वे भी तो हम आपकी जातिके ही जीव हैं। उनके भी तो चेतना है। जो बात हमारी है वही बात उन समस्त जीवोकी की है। जो बात इन समस्त जीवोके हो रही है वही बात हम आपको भी हो सकती है। जरा इस बातपर तो कुछ ध्यान दीजिए।

इतना तो निश्चित है ना कि कोई दिन ऐसा आयगा कि यह शरीर छूट जायगा, लोग इसे जला देंगे। उस शरीरको लोग घरमे थोडी देरको भी न रखेगे। और जो जीव इस शरीरको छोडकर चला जायगा जरा उस अपने आपपर भी तो कुछ दया करनी चाहिए। उस मेरेका क्या हाल होगा ? कहाँ होगा, किस अवस्थामे होगा ? आज तो ज्ञान पाया, बुद्धि पायी, कुछ भेदविज्ञान कर सकते, संतोष कर सकने। और इतना ही नही, ससारके समस्त दु खोसे छूटनेका उपाय बना सकते है। आज इतनी उत्तम स्थिति पायी है। और, इस देहके छूटनेके बाद ये कीडा, मकोडा, पशु पक्षी वगैरह जो दिख रहे है वैसे हो गए तो फिर कुछ न बनेगा। फिर तो दु खोकी परम्परा ही बनी रहेगी। तो कुछ अपने आपपर दया करके सोचना है, व्याख्यान नही सुनना है और न कुछ व्याख्यान देना है, न कही और कोई दुनियामे काम करना है। केवल अपने आपका एक ही मात्र काम पडा है कि वह कौनसी विधि बने कि ससारके मेरे दु ख खतम हो। केवल एक ही जीवनके दु खोसे छूटनेका मेरा प्रयोजन नही है, न उद्देश्य है। एक ही जीवनके दु खोसे छूटनेका कुछ साधन बना ले, कुछ राष्ट्रीय सम्बध बना लें अथवा कुछ ऐसी और सुविधायें बना लें उसमे हमारी दृष्टि नही है। दुनियामे जो होता हो सो हो, जो संकट बीतने हो बीतें, उनसे हमारे आत्माकी कोई बुराई नहीं है। आत्माकी बुराई तो इस बातमे है कि ऐसा भीतरमे भाव रहता है, कषाय रहती है, अश्रद्धा रहती है कि जिसके कारण जन्ममरणकी परम्परा बढती रहती है, चलती रहती है। हमे ससारके इन समस्त सकटोसे दूर होना है और यही बात इन सब जीवोके लिए है। जो करेगा वह सुखी हो जायगा, जो न करेगा वह ससारमे रुलता रहेगा।

संसरणसंकटसे मुक्तिके लिये मुक्त किये जाने वाले निज तत्त्वकी आराधना—ससरण सकटसे छूटनेके लिये सर्वप्रथम यह सकल्प चाहिए कि मैं अभी तक जो कुछ समझा हू वह मैं नही हू। मैं एक गुप्त चेतन हू। जाति, कुल, मजहब आदिकी बाहरी बातोको छोडना होगा और अन्दरमे एक आत्माके नातेसे ही बात करना है। यह बात सभीके लिए है बल्कि यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति जो मजहबमे रगा हुआ अपनेको समझ रहा हो उसे तो धर्म-पालनमे बाधा आयगी, वह कर्तव्यसे विजीय बने, वह अपनी करतूतसे रागद्वेषोको जीतने वाला बने, उसमे तो यह हित पायगा, किन्तु एक अपने आत्मतत्त्वकी दृष्टि छोडकर देहको यह मैं आत्मा हू, ऐसा मान कर, फिर इस पद्धतिसे यदि यह भी मान जाय कि मैं जैन हूँ,

मैं इस कुलका हू, मेरे यह भगवान है, बस ये सब बाते उल्टी ही उल्टी बनती चली जायेगी। जैसे नीचे कोई बटलोही औंधी करके रख दिया तो फिर ऊपरकी सारी बटलोही उल्टी उल्टी ही रखनी होगी इसी प्रकार यदि इस देहको 'यह ही मैं हू' ऐसा मान लिया तो फिर अपनेको चाहे जैन माने चाहे वैष्णव माने चाहे अन्य किसी भी रूप माने, वे सभी बातें उल्टी होती चली जायेंगी, क्योकि भीतरसे उसके देहका लगाव लगा हुआ है। शरीरमे आपाबुद्धि करके फिर आगेकी कल्पनायें जब चला रहा है तो उसे शान्ति न प्राप्त होगी। यदि यह इच्छा हुई हो कि मुझे तो संसारके संकटोसे सदाके लिए छूटना है तो उसका उपाय बनाना चाहिए। मुझे न नाम चाहिए, न कुलका बडप्पन चाहिए, न अपने नामका प्रचार चाहिए, न किसी पार्टीका प्रचार चाहिए। मैं तो एक आत्मा हू, चेतन हू, जन्ममरणके दु खोसे दबा हुआ हू। मेरे जन्ममरणकी यह परम्परा छूटे और जिसके छूटनेसे भूख, प्यास इष्टवियोग आदिकके क्लेश दूर हो जाते हैं, हमे तो वह उपाय बनाना है। यदि ऐसी वाञ्छा हुई हो तो ऐसा दिल साफ करके बैठें कि मेरा तो यह देह भी नहीं है। मैं तो एक समझने वाला ज्ञानवान पदार्थ हू। मेरा कोई वैभव नही। मेरा तो धेलामात्र भी कही कुछ नही। मैं तो देहसे निराला एक चेतन पदार्थ हू, मुझे तो मेरी दया चाहिए। उसे संकटोसे बचाना है। यदि भीतरमे यह भाव बने तो समझो कि मनुष्य जीवन सफल है। अन्यथा पशुपक्षियो के जीवन आयेगे, उनकी ही तरह यह भी बनेगा।

संसारके क्लेश व उनसे छूटनेकी जीवोंकी अभिलाषा—भैया! यह अभिलाषा सब जीवोमे है कि मुझे दु खोसे छूटना है और सुख प्राप्त करना है। दु खमय यह संसार है। मुझे तो इस दु खमयी ससारसे छूटना है। यह जीव अनादिकालसे ही दु ख भोगता आया, किसी निश्चित दिनसे नही। भला क्या कभी कोई ऐसा भी दिन था कि जिसके पहिले दिन न हुआ हो? भला क्या कभी कोई ऐसा भी समय हुआ कि जिसके पीछे कोई समय न रहा हो? नही। तो यह समय अनादि कालसे है। और मेरी सत्ता अनादि कालसे है। क्या मैं अपने बारेमे जान सकता हू कि मैं किस दिनसे बना हूँ? मेरी सत्ता कुछ न थी और मैं बन गया। कुछ न था से बन गया है। नथिंगसे बनता क्या है? मेरी सत्ता अनादिकाल से है। जब मैं अनादि कालसे हू तो इस भवसे पहिले भी मैं कुछ था। क्या था? देख लो जगतके जीव। इनमे से कुछ था। तो प्रयोजन यह है कि जगतके विभिन्न जीवोके जितने संकट है वे सब हम आपने भोगे। पृथ्वी भी जीव है। हम आप भी कभी पृथ्वी बने और खोदे तोडे गए। वहाँ भी दु ख भोगा। पानी भी जीव है, वहाँ भी गर्म किया गया और अनेक दु ख भोगा। आग भी जीव है। लोग उसे बुझा देते हैं, हवा भी जीव है। पेड़ पौधे भी जीव है। फूल पक्षियोको लोग तोड डालते है। वहाँ भी इस जीवने दु ख भोगा।

लट्, च्यूटी, भवरा आदिक हुआ तो वहांके दुख भोगे। पशुओके दुखकी तो कहानी ही क्या कहे ? आंखे रोज रोज देखते हैं। लोग भोटो पर ५०-६० मन बोझ लाद देते हैं। उसके कधे गूझे हुए हैं फिर भी हुडे मार मारकर चलाते है। उनके कधोसे खून भी चूता रहता है फिर भी चलनेमे जरा भी कमी की तो पीटे जाते है। जब वे ही भोटे किसी काम लायक नही रहते तो लोग उन्हे कषायियोके हाथ बेच डालते है, उनकी हत्या कर दी जाती है। ये सब दुख हम आपने भी सहे। आज हम आप मनुष्यभवमे आये हैं। कुछ पुण्यके उदयसे सुखसाधन मिले है तो यहांके इस वैभवमे लालसा किए हुए है। यह मेरा धन, ये मेरे परिजन, यह मेरी इज्जत ऐसा लोग मानते हैं, पर यहाके ये लोग भी है क्या ? ये सब भी हमारी ही तरह दुखी और जन्म मरणके प्रेरे है। ये सब भी स्वतत्र सत् हैं। इनसे मुझे मिलता क्या है, इनका मैं कर भी क्या सकता हू, लेकिन इन परपदार्थोंके पीछे कल्पनाये करके लोग अपने दुख बढा रहे है।

श्रेष्ठ नररत्नको पाकर हम लोगोंका कर्तव्य--अहो श्रेष्ठ मानवजीवनको पाकर भी इस जीवने मोह, कषाय, पापमय महानीच, अधर्मका काम किया। कहा तो करनेका काम यह था कि अपने ज्ञानानन्द स्वरूपको निरखते हुए तृप्त रहते। सबका अपना-अपना उदय है, सबकी अपनी अपनी बात है। किसीसे रचमात्र भी तो सम्बन्ध नही, ऐसा विचार करते। कहा तो यह काम था जिस कामसे जो स्थिति बनती है उससे किसी दुनियाका उपकार हो। भगवान सकल परमात्मा याने ऐसे भगवान जिनके अभी शरीर भी लगा हुआ है। तो सशरीर परमात्माके निमित्तसे कितने ही जीवोका उपकार होता है। बडे-बडे चक्री नारायण प्रतिनारायण आदिक हुए, उन्होने अपना अपना लाभ लिया। इतना ऊँचा यह मनुष्य जीवन है। अगर अपने पर सच्चा दयाका भाव आये तो समझिये कि मैं भी वह चेतन हू जैसे कि जगतके सभी जीव है। जो मेरा स्वरूप है वही सभी जीवोका स्वरूप है, केवल इस नातेसे चलना होगा और अपने आपके स्वरूपका परिचय करना होगा तब सुख शान्तिका मार्ग मिलेगा। यदि यह विचार कर बैठे हो और कृत सकल्प हुए हो कि हमारे दुख कैसे दूर हो और वास्तविक सुख शान्ति कैसे मिले ? इसके लिए इतनी बातोका निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। पहिली बात यह कि मैं कौन हू ? मुझे अपने आपका ही पता न हो तो क्या करूँगा ? दूसरी बात यह जाननी होगी कि मुझे छोडकर बाकी जो दुनिया है यह है क्या, क्योकि जगतमे हमारा फँसाव लगा है, हम सबके बीच रहते, बोलते चालते है। तो यह सब है क्या ? तीसरी बात हमें यह जाननी होगी कि मेरा इस जगतसे सम्बन्ध है क्या ? इसके बाद फिर यह सोचिये कि कौन किसको कैसे क्या करता है ? यह सत्य बात क्या है, ये सुख दुख क्या हैं, ये कहासे आते हैं, इतनी बातोका

निर्णय करना होगा । अब जरा संकल्प करके चले । जो श्रद्धासे भरे है, जो सकल्पसे भरपूर है, अब कुछ इन बातोपर विचार करना है कि जिससे हम आप दुःखोसे छूटे और सुख शान्ति प्राप्त करे ।

संसारकी दुःखमयता, सारहीनता व अज्ञानोद्भवताके विचारसे शान्तिमार्गका लाभ--आज यह निर्णय करके जावे कि यह संसार दुःखमय है, यह मनुष्यभव बहुत ही श्रेष्ठभव है, इसमे हम ऐसा उपाय बना सकते कि संसारके दुःख सदाके लिए मिट जाये । हमको यही उपाय करना है कि हमे सुख मिले और दुःख दूर हो, सच्चा मार्ग मिले । और, सच्चा मार्ग पानेके लिए ऐसा उपाय बनाये कि मुझे किसी भी प्रकारका आग्रह नही । मेरा यह आग्रह नही कि यह देह मैं हू । फिर कुलका, सम्प्रदायका, मजहबका, रिस्तेदारी, व्यवहार अथवा सम्बन्धका, नामका, इज्जतका पोजीशनका, ये जितने भी सम्बन्ध है ये सब एक अज्ञानकी जडपर टिके हुए है । अज्ञानकी जड़ हटाये, और एक अपने आपको मैं एक चेतन हू, जीव हू, मुझे अपनेको सुख शान्तिमे ले जाना है, इन सब बातोका विचार करके सुख शान्तिको लिया जायेगा तो एक सुख शान्तिका मार्ग मिलेगा, और इस जीवनका सच्चा लाभ पा लेगा । यह बात करली तो समझो कि आपने सब कुछ करली, और एक यही न कर सके तो आप लोकके नातेसे कुछ भी कर डाले, पर समझिये कि कुछ नही किया । एक धर्मके नामपर ऐसा लगता है कि मैं दुनियाका उपकार करता हू, राष्ट्रका हित करता हू, देशको यो उठाऊँगा, लेकिन ये सब करना उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवनके लिए भोजन आवश्यक है । इसके आगे और आवश्यकता नही है । कही राष्ट्र देश आदि आपका नही है, राष्ट्र और देशकी तो बात क्या, यह देह भी तो आपका नही है । यह मानव जीवन मिलना बडा दुर्लभ है । हा देशमे राष्ट्रमे एक जीनेके नातेसे ये सभी बाते चाहिएँ । ये सब जीनेके साधन हैं, न कि परिग्रह । तो सभी प्रकारके आग्रहो को छोड़कर एक आत्मा के नातेसे बात सुनो और उसके ही नातेसे चिन्तन कीजिए । उसका करना ही एक अच्छा कार्य होगा ।

सांसारिक सुखोंकी आकुलता व्याप्ति होनेसे हेयता--इस जीवने अपने आपमे यह निर्णय किया है कि मुझपर बडे दुखोकी विडम्बनायें हैं और यह ससार भी विडम्बनाओंसे भरपूर है । लोग दुखोसे भय करके वे अन्तरमे यह जिज्ञासा करते है कि आखिर सुखी होने का उपाय क्या है ? दुःख न चाहिए सुख चाहिए । तब सुख पानेका उपाय क्या है ? ऐसा यह जिज्ञासु कई जगह पूछताछ करता है । आखिर एक ज्ञानी पुरुषके पास भी यह पूछ बैठा कि सुख पानेका उपाय क्या है ? वहाँसे यह उत्तर मिला कि भाई सुख पानेका उपाय मत पूछ । इतनी बात सुनकर वह यह सोचता है कुछ समय कि सुख पानेका उपाय न पूछूं तो

फिर क्या पूछूं ? क्या दुख पानेका उपाय पूछूं ? समाधान मिलता है कि न सुख पानेका उपाय पूछ और न दु ख पानेका । ये सुख दु ख दोनो ही आकुलतासे भरे हुए है । संसारके सुख और दु ख दोनो ही आकुलतासे भरे हुए है, इस रहस्यको जाने अब और निर्णय करें । कलके दिन उन दु खोके सम्बन्धमे कहा गया था कि संसारमे दु.ख भरे पडे हुए है और उन दुखोसे यह जीव घबडाकर उनसे छूटना चाहता है, तथा सुखकी अभिलाषा करता है । आज कह रहे है कि यहाँ सुख भी हेय है ।

सांसारिक सुखके वर्णनके प्रसंगमें स्पर्शनज सुखकी आलोचना—सुख क्या चीज है ? पांच इन्द्रिय और मन ये छहो जहाँ राजी हो उसे सुख कहते हैं । इन्द्रिय और मन किसी विषयमे राजी हो उसे सुख कहते है । जैसे एक स्पर्शन इन्द्रियका विषय है । ठडके दिनोमे गर्म स्पर्श चाहिए, गर्मीके दिनोमे शीत स्पर्श चाहिए । जैसे प्यास बुझानेका साधन पानी है । पानी अगर गर्म पीवे तो भी प्यास बुझती है, टडा पीवे तो भी प्यास बुझती है । गर्म पानी पीना लोगोको रुचिकर नही है इस कारण गर्म पानी न पीकर ठडा पानी पीते है । यो ठड गर्म, रूखा, चिकना आदिक स्पर्श सुहाता है और उस स्पर्शमे यह जीव मौज मानता है । स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा यह जीव सुखकी अभिलाषा करता है लेकिन इन सभी सुखोमे आकुलता भरी पडी है । उसका प्रमाण यह है कि आकुलता न होती तो यह इन सुखोकी तो चाह क्यो करता ? जैसे फोडा फुसीके लिए मलहम पट्टी । जिसके फोडा फुसी निकली हो उसके मलहम पट्टी की जाती है । जिसके न निकली हो वह मलहम पट्टी क्यो करेगा ? इसी तरह समझिये कि जिसको आकुलता नही उत्पन्न होती वह इन सुखोकी चाह ही क्यो करेगा ? ये सुख नही है, ये तो आकुलताकी उत्पत्तिका एक साधन है, और काल्पनिक साधन है ।

सांसारिक सुखोंमें रसना, घ्राण, चक्षु व कर्णइन्द्रियके विषयसुखोंकी आलोचना—रसना इन्द्रियकी चाहमे यह नाना प्रकारके रसोको चाहता है । भोजनका सुख यह भी एक क्षणिक सुख है । रोज रोज भोजन करते है और अनेक लोग तो दिनमे ५–७ बार भी भोजन करते है लेकिन भोजन कर करके कोई शान्त नही होता । रोज रोज वही भूख । जैसा भोजन कल किया था वैसा ही भोजन यह आज भी करेगा और उसीमे सुख मानेगा पर आकुलता जैसी कल थी वैसी ही आज करेगा और उसमे व्यर्थका सुख मानता है । ये सब सुख दुखसे ही भरे है । इन सुखोको भूखके सम्बन्धमे भी भोगने वालेकी विधि देखिये कि आकुलता भरी पडी है । खाने वाला शान्तिसे नही खाता, उसके कल्पनायें दौडती हैं । वह मौज लूटना चाहता है । आकुलता भरी पडी है । घ्राणेन्द्रियका सुख देखिये–अ छी सुगंधित बत्ती सूँघ लिया, इसकी क्या आवश्यकता ? आवश्यकता है, इच्छा जगी है । आकुलता दूर करनेका उपाय उसने यह सोचा है, पर आकुलता दूर करने का उपाय इन सासारिक सुखो

मे लगना नही है किन्तु भेदविज्ञान करके यह जानना कि मैं जो आत्मा हू सो जीव हू । मैं खुद ज्ञान और आनन्दसे भरपूर हूँ । मुझमे ज्ञान और आनन्दस्वभाव भरा है । ज्ञान और आनन्दस्वभावसे मैं रचा हुआ हू । ज्ञान और आनन्दके सिवाय मेरा स्वरूप ही नही है । ऐसा जानकर बाह्य समागमोकी इच्छा दूर हो और अपने आपके स्वरूपमे उसका लगाव हो तो इसे शान्ति मिल सकेगी । बाहरी पदार्थोमे लग करके कभी शान्ति किसीको न मिली, न मिल सकेगी । तो ये इन्द्रियजन्य सुख कोई सुख नही है जिनकी ये संसारी जीव इच्छा किया करते हैं । जैसे आँखोसे देखनेका सुख । जिस किसी भी चीजको समझ लिया कि यह सुखमयी है उस रूपको देखनेकी चाह करता है और देखता रहता है, मगर रूपके देखनेसे यदि सुख हो तो यह रूप निरन्तर देखता ही रहे, फिर यह आँखें बन्द क्यो करता ? उस रूपको देख करके और मैं क्यो लगता ? तो इन इन्द्रियके सुखोमे शान्ति नही है । कर्णेन्द्रिय का विषय देखिये—कुछ राग भरी बात सुन ली, उसमे भी क्या आनन्द भरा पडा है ? उसमे कोई तथ्यकी वात नही है, लेकिन राग भरी बाते लोग सुनना चाहते है ।

सांसारिक सुखोंमें मनोविषयभोग सम्बन्धी सुखोंकी आलोचना——मनका विषय तो बडा ही अटपट है । इन इन्द्रियके विषयोकी तो सीमा है । ये एक दूसरेके विषयमे न छिडेंगे । आँख नाकका काम नही करना चाहती, लेकिन इस मनकी तो कोई सीमा नही । न जाने क्या क्या सोचता है, क्या क्या इच्छाये करता है ? यह मन प्रत्येक इन्द्रियके साथ भी जुटा हुआ है । प्रत्येक इन्द्रियके साथ सुख चाहता है । और ऐसी दृष्टिसे देखो तो यह मन शब्द सस्कृतमे नपुसक लिङ्ग है । जिसका अर्थ यही है कि यह मन खुद नही भोगता । ये इन्द्रियाँ भोगती है, ऐसा यह मन है कि जिसके विषयकी कोई सीमा नही है । अब बतलाओ जिन्दगीसे जी रहे, गरीब लोग भी जीते है और आखिरका है जीवन । धनी भी जीता है । हजार हो तो उसमे भी गुजारा होता है । हजार हो तो लाखकी और लाख हो तो करोडकी, करोड हो तो और आगेकी चाह करता है । प्रतिष्ठा और इज्जतमे जो आज मिली है वह उससे आगेकी चाहता है । उससे कम हो तो उसमे दु.खी रहता है । उससे आगेकी इच्छा करके दु खी रहता है । तो मनके विषयकी भी कोई सीमा नही है । यह भी एक अटपट चीज है । तो इन सुखोमे देखिये कि आकुलता भरी पडी हुई है । इसमे शान्ति का नाम नहीं है ।

सांसारिक क्लेशोंका कारण व अपना करतव——ससारके ये क्लेश क्यो है, इसके ही सब उदाहरण है कि यह सुखकी आशा किया करता है । सुखकी आशा छोड दे तो आज क्लेश मिट जाये । सुखकी आशा छोड दे, दु ख तो यह चाहता ही नही है और यह जाने कि मैं देहसे भी निराला हू, परिजनसे भी न्यारा हू, मैं जो विचार करता हू उन विचारो

भी न्यारा हू । देहको छोडकर जाऊँगा तो अकेला ही जाऊँगा । मेरा इन समागमोसे क्या सम्बन्ध है ? एक हिम्मत ब ाये और इन समागमोसे अपना चित्त मोडें तो वह सुखी हो सकता है । पर इन समागमोमे जितना लगे उतना ही दु खके स्थान आयेंगे, दु ख उठाना पडेगा । यह ससार संकटोसे भरा है । कितने ही सकट ऐसे है जो दिखनेमे अच्छे लगते है मगर भीतरमे संकट पडा है । किसी कविने तो यह स्पष्ट बताया है कि सुखसे दु ख अच्छा है । यह शान्ति की अपेक्षा बात कह रहे है । आत्मकल्याण चाहने वाले लोग तो दु खका स्वागत करते है सुखका नही । दु खमे प्रभुका स्मरण रहता है । दु खमे अपने आत्माकी सुध रहती है । दु खमे आत्मकल्याण की वाञ्छा रहती है, पर सासारिक सुखोको भोगते समय एक ऐसा मदिरापान जैसा नशा रहता है कि आत्महितकी बात चित्तमे नही आती । प्रभु की भक्ति चित्तमे नही जगती । वह तो सोचता है कि मुझे सुख मिले । कभी कोई कह दे कि भाई धर्म करो तो वह कहता है कि धर्म क्या करे, धर्मका फल तो मिल चुका । खूब मौज है । मगर ससारके इन दिखावटी साधनोका क्या करे ? ये पर है और मिट जाने वाले है, इनमे आत्माका आनन्द नही है ।

धर्मवात्सल्य बिना संसारविडम्बना--एक कथानक है कि एक राजा रानी थे । तो रानी तो धर्ममे चित्त रखती थी और राजा धर्मसे विमुख था । तब रानी ने बहुत-बहुत समझाया कि हे राजन् ! धर्ममे चित्त दो । जीवका धर्म ही एक शरण है । धर्मके सिवाय जीवका और कोई साथी नही । जगतके ये सब समागम बिछुडेगे, कोई साथ न देगा । तो राजाका यही उत्तर था कि धर्मका फल तो हमे मिल चुका । अब हमको धर्म करनेकी क्या जरूरत है ? बहुत-बहुत समझाया । एक अच्छे दिन किसी प्रसगमे आकर रानी बोली कि राजन् ! यदि धर्म न करोगे तो तुम मरकर ऊँट बनोगे । कुछ दिन बाद हुआ भी ऐसा ही । वह राजा मरकर एक बादशाहके घर ऊँट बना । और ऐसा हुआ कि वह रानी भी मरकर उसी बादशाहके घर लडकी बनी । जब लडकी विवाह योग्य हो गयी तो उसकी शादी हुई । बहुत कुछ दहेज दिया गया । उस लडकीकी माँ ने यह सोचकर कि ऊँट बहुत सुन्दर है सो उसे भी दहेजमे दे दिया । बराती लोग सोचने लगे कि ऊँट तो बडा सुन्दर है, इसपर क्या लादना चाहिए ? तो यह निर्णय किया कि जो इस लडकीके कपडे है, सामान है, वह लदे । सो लडकीका सारा सामान लाद दिया । रास्तेमे ऊँटको जातिस्मरण हुआ कि हमारे ऊपर तो हमारी ही पूर्वभवकी स्त्रीके कपडे लदे हैं । अब इस दु खके मारे वह चले नही । तो हाकने वाला डडे मारे । आखिर वह ऊँट बैठ गया और डडे सहता गया । इतनेमे ही उस लडकीको भी जातिस्मरण हो गया । वह जान गयी कि यह ऊँट पूर्वभवमे मेरा पति था । तब उस लडकी ने उस हाँकने वालेसे कहा कि इसे तुम मारो मत । हम इसको

समझा देगे तब चलेगा। तो वह लडकी ऊँटके कानमे कहती है कि देखो पूर्वभवमे हमने तुम्हे बहुत समझाया था कि धर्म करो, धर्म न करोगे तो मरकर ऊँट बनोगे। सो देखो तुम्हे ऊँट बनना पडा। अब इस समय हम तो यह नही कह सकते कि यह पूर्वभवके हमारे पति है, इन्हे मत मारो, नही तो लोग हमारी हँसी करेगे। अब तो भलाई इसीमे है कि तुम चले चलो, नही तो तुम्हारी पिटाई मिट नही सकती। और देखो--तुमने व्यर्थमे अपना दुर्लभ मानवजीवन खो दिया था। अब वह मानवजीवन का फल मिल नही सकता। बस उस लडकी की बातोको ऊँट समझ गया और ठीक ठीक चलने लगा। तो प्रयोजन यह है कि धर्मका शरण लिये बिना आत्माका भला हो ही नही सकता।

आत्माके एकत्वका अनुभव—भैया! खूब अच्छी तरह विचार करलो कि मेरे आत्माका कोई दूसरा साथी है क्या? कोई साथी नही है। मरणके बाद तो कोई साथी होते ही नही, पर इस जीवनमे भी कोई साथी नही है। भला बतलावो कि कभी कोई रोग हो गया, ज्वर पीडा हो गयी, अथवा शिरदर्द हो गया या कोई चिन्ता है तो उसको भोगने वाला कोई दूसरा हो सकेगा क्या? भले ही कुछ कारणवश प्रेम भरे वचन बोल दिया, किन्तु जो जिसकी परिणति होती है उसको वह ही अनुभवता है। कोई किसीके सुख अथवा दुःख अथवा धर्ममे साथी नही होता। एक कथानक प्रसिद्ध है कि कोई एक नवयुवक राजा साधु हो गए थे। वह जगलमे तपश्चरण कर रहे थे। उस जगलमे से एक राजा गुजारा और देखा कि इस भयानक जगलमे देखो कैसा कोई सुन्दर नवयुवक बैठा हुआ दुःख सह रहा है? उसे दया आयी और पासमे बैठ गया। जब उस साधुने आँखे खोली तो राजा कहता है कि आप यहाँ अकेले बैठे है, खानेका भी प्रबंध नही है, आपके पास कोई दूसरा साथी भी नही है, फिर आप यहाँ अकेले क्यो पडे हैं? आपका नाम क्या है? तो वह साधु कहता है कि मेरा नाम अनाथी मुनि है। राजाका चित्त भर आया और बोला— महाराज अब आप आजसे अनाथी नही रहे। मैं आपका नाथ बनता हू। आप मेरे घर चलिए। तो राजाने सोचा कि शायद यह सोचते होगे कि हमे बहका तो नही रहे तो राजा बोला कि आप जरा भी संकोच न करे। मैं ५०० गाँवोका राजा हू, मेरे पास बडा मौज है, बडा वैभव है, बडा आराम है। आप मेरे यहाँ आरामसे रहेगे, आप रचमात्र भी चिन्ता न करे। तो वह मुनि बोलता है—राजन्, ऐसा तो पहिले मैं भी था। तुम्हारे यहाँ जाकर मैं क्या करूँगा? राजा बोला— क्या आप भी पहिले हमारी ही तरह राजा थे? · हाँ मैं भी ५०० गांवोका राजा था। ···फिर आप अपने को अनाथी क्यो कहते है? तो मुनि बोले कि सुनो! जब मै राजा था तब एक बार मेरे शिरमे बडा भयानक दर्द हुआ। उस दर्दको मिटानेके लिए बहुतसे डाक्टर वैद्य हकीम आदि आये। सभी ने खूब इलाज किया।

परिजनोने भी बडे प्रेमकी टीवा करी, पर मेरे उस शिरदर्दको कोई रचमात्र भी न वांट सका। तबसे मुझे यह ज्ञान जगा कि ओह मैं तो अनाथ हूँ। यहा मेरा कोई रक्षक नही, मेरे दु.खका रचमात्र भी कोई भोगने वाला नही। वस सव राजपाट छोडकर यहा जंगलमे बैठा हू और सवसे निराला जो एक ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व है उसकी सुधि मैने ली। राजा चरणोमे गिरकर बोला—धन्य है आपको, और आपका यही मार्ग अच्छा है। तो इस कथानकमे बतानेकी बात केवल इतनी है कि कोई हमारे सुख दु खमे साथी नही है।

आत्माके एकत्वके उपयोगपर शान्तिविकासकी निर्भरता—सारी वातें हमे अकेले ही भोगनी पडती है। जन्म हो तो, मरण हो तो, सुख हो तो, दु ख हो तो, सभी वातें खुदको ही भोगनी पड़ती है। कदाचित दो वच्चे एक साथ ही पैदा हो तो भी एक साथ जन्मे न कहलायेगे। एक अपनी आयुसे जन्मा, दूसरा अपनी आयुसे जन्मा। न किसीके साथ जन्म है, न मरण, न सुख, न दु ख। सभी अपने अपने जन्म मरण सुख दु ख आदिकको भोगते है। यह ससार जिसका स्थान इतना विशाल है जिसका वर्णन करनेमे समझो कि अनन्त है, जिसकी कोई आखिरी नही है। इतनी बडी दुनियामे जैसे आज यहा उत्पन्न हुए हैं, तो इतने बडे इस ससारमे दु ख कोई नही चाहता। सभी सुख चाहते है। मगर सुख भी चाह करनेकी चीज नही है। सुख और दु खसे परे जो आनन्दभाव है वह केवल आत्मा मे ही मिलता है दूसरी चीजके सम्बन्धमे नही मिलता, दूसरे रागद्वेषसे नही मिलता। केवल अपने आपका अकेलापन जितना वढता जायगा, अपने उपयोगमे अपने आपका जैसा अकेलापन समाता जायेगा वैसा आनन्द उत्पन्न हो जायेगा। कुछ इससे भी अदाज कर लीजिए। जब कभी कोई वडा दु खी होता है तो वहुत दिनो तक दु खी होनेके बाद आखिर उसे शान्ति कब मिलती है? जब ही चित्तमे यह निर्णय करने लगता है कि मै तो अकेला हू। जितना-जितना अपने अकेलेपन का भाव बढता है उतना ही आनन्द बढता है और जितना समागमोकी ओर लगाव बढता है उतना ही क्लेश बढता है। संसारमे न सुख पाने की चीज है, न दु ख। तो न सुख पानेके उपायोमे लगना है, न दु ख पानेके उपायोमे लगना है। लगना है आनन्द पानेके उपायोमे। तो आजकी बातमे यह ध्यानमे रखना है कि न तो ससारमे दु ख चाहनेकी चीज है न सुख, किन्तु आत्माका अ[illegible] जब [illegible] समझमे आयगा तो वह आनन्द पानेकी चीज है। अब वह आनन्द व[illegible] है [illegible] सम्बधमे कल बताया जायगा।

विपयपारतन्त्र्य विना शान्तिमार्गके प्र[illegible] सहज [illegible]
कुछ विशेष कहना है कि एक भाई साहबने ऐ[illegible] रखी कि किस विषयपर प्रवचन होगा? तो भाई मैं य[illegible] न बता

विषयपर बोलूंगा। बोलनेकी बात तो मै कह सकूंगा, पर यह न कह सकूंगा कि कल मै किस विषयपर बोलूंगा, क्योकि यह पुस्तक पासमे है, थोडा परिचय दिया जा सकता है लेकिन यह बात नही बतायी जा सकती। विषय कुछ भी बतानेके बाद हमारा बोलना प्राकृतिक न हो पायगा। उसमे हमे बनावट करनी पडेगी, उसका हमे ख्याल रखना होगा और बनावटके बोल निकलेंगे, वह हमारी प्रकृतिके अनुकूल नही है। विषय केवल एक ही है, सदाके लिए है कि हमारी आकुलता कैसे मिटे, अशान्ति कैसे दूर हो ? अब कोई अन्य विषय बताकर बोलनेमे हम अपने भावोमे प्रसन्न नही हो सकते और उसमे हम संतोषजनक बात नही सकते। इसलिए विषय एक है केवल कि हमे शान्ति चाहिए। हमारे संसारके ये दु ख मिटें, मुक्ति कैसे प्राप्त हो ? भाई हमारा विषय सदाके लिए यही है। अब वह विषय कभी किसी अन्य पद्धतिसे आयगा, कभी अन्य पद्धतिसे। तो विषय बता करके बोलना हमसे अच्छा न बन सकेगा और न हम अपने मनोभाव ही अच्छी प्रकार व्यक्त कर सकेगे।

सत्य सहज आनन्दके लाभकी प्रतीक्षा—सुख शान्तिके अभिलाषी पुरुषने अब तक यह निर्णय किया है कि जगनमे जो सुख और दु ख होते है वे दोनो ही बेकार है। जैसे दु.खमे आकुलता भरी है वैसे ही सुखमे भी आकुलता भरी है। सुख सदा नही रहता, दु ख भी सदा नही रहता। बल्कि दु ख सदा न रहे यह तो इष्ट है, पर सुख सदा न रहे यह अनिष्ट है। दु खमे प्रभुकी सुध रहती है और सांसारिक सुखमे प्रभुकी सुध भी नही रहती। निश्कर्ष यह है कि सुख और दु ख दोनो ही अहित है। इस कारण जैसे कोई दु खका उपाय नही चाहता इसी तरह सुखका भी उपाय न चाहना चाहिए। इतनी बात सुनकर किसी जिज्ञासुके चित्तमे यह शंका हो सकती है कि सुख भी यदि बुरा है तो फिर शास्त्रोमे जो भगवानके अनन्त सुखकी महिमा बतायी है वह फिर क्यो बताया ? तो उत्तरमे संक्षेपमे इतना समझना चाहिए कि जिन ऋषी आचार्योने भगवानके गुणोका वर्णन करते समय सुख शब्दसे भी कहा हो, भगवानके अनन्त सुख है, तो यह उन आचार्योने इन मोही जनो पर दया करके लिखा है। शब्दका जो अर्थ है उसकी दृष्टिसे यह बात ठीक नही बैठती कि भगवानको कहा जाय कि वे सुखी हैं। भगवान सुखी नही है किन्तु आनन्दमय हैं। सुख शब्दका अर्थ है—जो इन्द्रियको सुहावना लगे। भगवानके जब तक शरीर भी रहता है तब तक इन्द्रियका कोई उपयोग नही। भगवानके इन्द्रियसुख नही है, वहाँ पर भी अतीन्द्रिय सुख है, आत्मासे उत्पन्न हुआ आनन्द है। और जब शरीरसे मुक्त हो जाते हैं फिर उनको कभी शरीर न मिलेगा। वे निकल परमात्मा हो जाते है। भगवानके इन्द्रियसुखका साधन नही है। भगवानको अनन्तसुखी कहना यह यद्यपि आचार्योंको भीतरसे इष्ट न था। वे जानते थे कि सुख शब्दका अर्थ है वास्तविक और आनन्दका अर्थ है आत्मीय विशुद्ध आनन्द,

लेकिन इन मोही जीवोको सुख शब्दसे बडा संस्कार लगा हुआ है। वे सुखको बडा महत्त्व देते है। उनको समझानेकी आवश्यकता है तो उनकी ही भाषामे आचार्योंने बोल दिया कि भगवान अनन्त सुखी है। यदि शुद्ध परिभाषासे बोला जाय तो यह बोला जायगा कि भगवानके अनन्त आनन्द है। और फिर शास्त्रोमे आनन्द शब्दका भी बहुल वर्णन है। भगवान शाश्वत आनन्दमय है, सच्चिदानन्दमय है, ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, उनके अविचल आनन्द है। आनन्द शब्दका ही बहुत-बहुत प्रयोग किया गया है और उसके लिए शब्द दिया है परमानन्द, सहजानन्द, निजानन्द, चिदानन्द, आत्मीयानन्द आदिक। अनेक बार इनका वर्णनमे प्रयोग भी हुआ है। तो भगवानके सुख नही है किन्तु आनन्द है।

सुख, दुःख और आनन्दकी स्थितिकी प्रज्ञताका लाभ—आनन्द, सुख और दुख इन तीनोमे जो अन्तर समझ लेगा वह अपने पर दया करके अपना बडा भारी काम कर लेगा। सुख और दुख इनमे व्यग्र रहता है यह मनुष्य। सुखमे भी आकुलता भोगता है और दुखमे भी आकुलता भोगता है। एक आत्माकी दृष्टि छोडकर बाह्य पदार्थोमे दृष्टि रखकर जो भी मनुष्य हो, चाहे कोई महा गरीब हो, चाहे कोई राजा महाराजा चक्रवर्ती हो, यहाँ तक कि चाहे कोई गृहस्थावस्थाका तीर्थंकर ही क्यो न हो, यदि उसकी बाह्यमे दृष्टि है तो समझिये कि उस बाहरी लगावसे वह क्लेश मान रहा है। तो अपने बारेमे यह निश्चय रखना चाहिए कि मेरा हित इस सासारिक सुखसे नही है। सुखकी सुविधायें, सुखके साधन, सुखके लिए इस देहसे भी प्रीति रखना आदिक ये सब बेकार हैं। आत्मीय आनन्द पानेके उपायमे लगना चाहिए। सर्वप्रथम इन तीन बातोका अन्तर समझ लेना-बहुत जरूरी है। सुख और दुख दोनो अहित रूप हैं। और इतनी ही बात नही, सुख अहित है और सुखका साधन जो बाहरी चीजें है वे भी अहितरूप हैं, और सुखका निमित्त जो पुण्यकर्मका उदय है वह भी अहितरूप है और पुण्यकर्मका जिस शुभभावसे बनता है (परोपकार, करुणा आदिकसे) वह शुभभाव भी जीवके हितरूप नहीं है, अहितरूप है। जीवका हित तो केवल ज्ञाता दृष्टा रहनेमे है, यही आनन्दकी स्थिति है।

अपने आपमें अपने सर्वस्वका निरीक्षण—भैया! बहुत सावधानीपूर्वक अपने आप मे अपना सर्वस्व निरखिये। प्रथम तो यहा मेरा कोई पहिचानने वाला ही नही। यह सब भ्रम है कि मुझे ये लोग पहिचानते हैं, इनको मैं जानता हू। मैं जो एक स्वतत्र सत् हू, ज्ञानानन्दस्वरूप हू उसके पहिचानने वाला यहाँ कोई नही है। और यदि कोई पहिचानने वाला हो तो वह तो अपने ज्ञानमे आ गया, उसका क्या व्यक्तित्व रहा उसकी दृष्टिमे, क्योकि मै जो आत्मा हू तो सहज ज्ञानस्वरूप हू, और ऐसा सहज ज्ञानस्वरूप किसी की पहिचानमे आ गया तो उसके लिए तो सब समान है, सब एक हैं। यह ज्ञान ही स्वरूप है।

मैं अलगसे क्या रहा ? कोई व्यक्ति अलगसे क्या रहा ? ज्ञातासे ज्ञानसे मैं कुछ अलग रहता नही। जो ज्ञानी नही है वह मुझे पहिचानता नही है। जब मेरा कोई यहाँ पहिचानने वाला तक भी नही है तो फिर किस लिए इतने विकल्प ? किसलिए इतना परिग्रहके सचय की लालसा ? किसलिए इतनी नामवरीकी चाह ? ये सब बाते बेकार है। ये सब माया-स्वरूप हैं, पर्यायरूप है, विनाशीक हैं, कर्मोंके प्रेरे हुए है। आज यहाँ उत्पन्न हो गए हैं तो इतने मात्रसे मेरा क्या सम्बन्ध बना ? बहुत बड़े भवितव्यकी बात है उनकी जिनको अपने आत्माके स्वरूपका परिचय हो गया। जिनके कारण घर रहने वाले बच्चे स्त्री आदिक सबको इस निगाहसे तक रहा है कि जैसे जगत्के अन्य सब जीव है वैसे ही ये घरके भी जीव है। जैसे जगतके अन्य नगरोके देशोके पडोसियोके जीव कर्मोसे बद्ध है वैसे ही ये हमारे घरके चार जीव भी कर्मोसे बद्ध है। जैसे जगतके अन्य सभी जीव अपने अपने कर्मोदयसे ही सुखी अथवा दुखी होते है वैसे ही ये मेरे घरमे रहने वाले चार जीव भी अपने ही कर्मोदयसे सुखी अथवा दुखी होते रहते है। जैसे जगतके अन्य जीव अकेले ही जन्मते व मरण करते है ऐसे ही ये मेरे घरके जीव भी अकेले ही जन्मे है व अकेले ही मरण करके चले जायेगे। जैसे जगतके अन्य जीवोसे मेरा कुछ हित नही हो रहा वैसे ही मेरे घरके इन चार जीवोसे भी मेरा कुछ हित न होगा।

मेरा हितू एवं शरण--मेरा हित करने मे समर्थ केवल मैं ही हू, जब मैं ज्ञान ज्योतिमे आऊँगा। दूसरा अन्य कोई मेरा शरण नही है और जो ज्ञानज्योतिर्मय है ऐसे सशरीर भगवान अथवा अशरीर भगवान, इनका ध्यान हमारा शरण है। जैसे हम आप चित्तमे धन वैभव कुटुम्ब परिजन आदिको बसाये रहते है। तो उनको चित्तमे बसाये रहने से कुछ भी अपना हित नही होता। इसके बजाय यदि भगवानके स्वरूपको चित्तमे बसाये होते तो उससे एक शान्तिका मार्ग प्राप्त होता, अपना उद्धार होता। तो आप सोच लीजिए कि चित्तमे बसाये रखने योग्य ये परिजन, मित्रजन कुटुम्बीजन आदि है या भगवान का स्वरूप ? जिन्दगीके दिन तो व्यतीत हो जायेगे। जीवन हुआ, किसी दिन जन्म लिया, युवक हुए अथवा बूढे हो गए। पर कुछ ही दिनोंमे वह भी समय निकट आने वाला है जब कि यह जीवन भी न रहेगा। यह देह भी छूट जायगा। यह देह जला दिया जायेगा। तो इस देहको छोडकर जाने वाले इस आत्माका कोई यहाँ साथी रह सकेगा क्या ? अब भी साथी नही है, आगे क्या साथी होगा ? यह सब जान कर चित्तमे यह बात जरूर लाना चाहिए कि जिस प्रकार बन सके अपना कल्याण करे। आत्मकल्याणसे बढकर अन्य कोई भी महत्त्वशाली बात नही है। मैं हू, जीव हू ना कुछ। जो भी पदार्थ होता है वह किसी न किसी रूपमे व्यक्त रहा ही करता है। तो मेरी व्यक्ति कषायके रूपमे रहे, इससे लाभ

नही, मोह रागद्वेषादिवरूप रहे इससे भी लाभ नही, किन्तु मेरी व्यक्ति मेरे स्वरूपके प्रकाश मे रहे तो इससे लाभ है, ऐसा जानकर हमे इस आत्मीय आनंद पानेके उपायके परिचयमे चलना चाहिए।

आनन्द पानेके उपायका परिचय—यहाँ तक इस साधकने यह निर्णय किया है कि सासारिक सुख न तो हितरूप है और न दु ख ही हितरूप है, किन्तु आत्मीय आनन्द ही हितरूप है। इस निर्णयके बाद यह प्रबल जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है कि तब फिर इस आनन्दको पानेका उपाय क्या है ? देखिये—शुद्ध सहज शाश्वत निर्वाध पवित्र स्वाभाविक आनन्द पानेके लिए दो बातोका परिज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। पहिली बात तो यह है कि जिसको आनन्द चाहिए वह है क्या ? किसको आनन्द चाहिए ? मुझको चाहिए ? ऐसा उत्तर तो झट आ जाता है, पर जिस मुझको चाहिए वह मैं हू क्या, इसका समाधान नही कर पाता। जिसको आनन्द चाहिए वह प्रथम तो यह निर्णय करे कि वह मैं हू क्या जिसे आनन्द चाहिए। किसी भिखारीको भी यदि आप कुछ देना चाहते है तो उसका परिचय तो पहिले कर ही लेते है कि किसको भीख देना है ? मुझे अपने आपको आनन्द देना है तो मैं पहिले उसका परिचय तो करूँ जिसको आनन्द देना है। अन्यथा तो केवल बात-बात ही बन जायगी, उसका आधार न विदित हो पायगा कि हमे करना क्या है। जैसे एक कभी सहारनपुरमे यह घटना घटी कि किसी पुरुषके पास कोई खोटी चवन्नी थी, वह चलती न थी। उसको उसे चलाना था। सो किसी हलवाईकी दूकानमे गया। वहाँ वह चवन्नी चल गई। उससे उसे सामान भी मिला और कुछ पैसे भी वापिस मिले। तो जब वह वापिस लौटा तो मारे खुशीके वह चिल्लाने लगा कि चल गई, चल गई। उसका मतलब तो यही था कि मेरी चवन्नी चल गई, पर वह समय था साम्प्रदायिक झगडोका। सो सुनने वाले लोगोने सोचा कि लडाई चल गई, सो सभी दूकानदार अपनी अपनी दूकानोमे ताला लगाकर घर भाग गए। देखिये बात तो क्या थी कि चवन्नी चल गई पर लोगोने क्या समझ लिया कि लडाई चल गई। तो जैसे मूलका पता न रहे तो बात बहुत बढ जाय, यो ही समझिये कि यहाँ बात बहुत बढ गई और आधारका कुछ पता नही। लोग कह उठते कि मुझे सुख चाहिए, पर उन्हे यही पता नही कि वस्तुत किसको सुख चाहिए, सुख किसे चाहिए, आनन्द किसे चाहिए ? इसका पता ही नही।

जब तक मैं अपना पता न कर लूँ तब तक सुखका कोई मार्ग नही मिल सकता। इसलिए आनन्द पानेके उपायकी अगर खोजमे हैं तो प्रथम यह आवश्यक होगा कि मैं उसे जान जाऊँ जिसे कि आनन्द पाना है। दूसरी बात यह जाननी होगी कि जो चाहिए वह भी क्या है ? कोई ऐसा बेवकूफ न होगा कि जिसे जो चीज चाहिए उसीका पता न हो। जो चीज चाहिए उसका पता सभीको रहता है। हमको अगर आनन्द चाहिए तो उस

आनन्दका भी तो पता होना चाहिए कि वह आनन्द है क्या ? जिसे आनन्द चाहिए वह है क्या और जो आनन्द चाहिये वह है क्या ? इन दो बातोका ज्ञान करना आवश्यक है। इसी आधारपर आनन्द पानेके उपायकी बात चल सकती है।

आत्मस्वरूपके परिचयका उपक्रम—जब हमे आनन्द पानेके लिये आनन्द व आत्मा स्वरूपकी समझके लिये चलना है तो प्रथम समझिये कि आत्माका स्वरूप क्या है, मैं क्या हू ? इसका सीधा उत्तर तो यही है कि मै वह हू जो सदा रहता है। मेरा वह स्वरूप है जो मुझसे कभी छूटता नही है। जो मेरा है वह मुझसे कभी अलग होता नही। जो मेरा नही है वह मुझसे अलग हो जाता है। मै वह हू जो सदा रहता हूँ। यदि अपने बारेमे मै यह सोचने लगूं कि मै तो लुट जाने वाला हू, मर जाने वाला हू, तो ऐसा मै कोई पसंद करेगा क्या ? कोई न पसंद करेगा। जो पदार्थ सत् है, है। किसी भी रूपमे हो, जो है उसका कभी नाश नही होता। मै हू, सदा रहने वाला हू और हू चैतन्यस्वरूप। मेरा स्वरूप जो मुझसे कभी अलग न हो वही स्वरूप है। देह अलग हो जाय, कषाय अलग हो जाय, विचार वितर्क अलग हो जावे। धन वैभवकी तो बात क्या कहे वे तो प्रकट अलग है, ये मेरे स्वरूप नही, किन्तु मेरा स्वरूप है एक चैतन्य जानन देखन। सो गया कोई पुरुष उसको लोग कहते है कि यह कुछ समझ नही पा रहा, पर ऐसी बात नही है। वह अपने अंतरगमे कुछ समझता चला जा रहा है। ५-६ घटेको किसीको तेज नींद आ गयी। तो उस सोती हुई अवस्थामे लोग तो समझते है कि अब यह सो रहा है, इसे कुछ भी ज्ञान नही है, पर ऐसी बात नही है। उसमे ज्ञान निरन्तर चल रहा है। सोने वाला चाहे पूछे कि मै इस समय तो कुछ जान ही नही रहा था, सोता रहा, पर ऐसी बात नही है। सोनेमे भी वह निरन्तर जानता ही रहता है। कमसे कम इतना तो जानता ही है कि ६ घंटा सोया। तो आनन्दपूर्वक सोनेका उसने अनुभव तो किया। वह जानता ही रहता है। कभी कभी स्वप्न के रूपमे जो दिखता है वह और है क्या ? वह ज्ञानका ही तो एक व्यक्तरूप है। स्वप्नमे देखा कि मै अमुक काम कर रहा हू, मैने बडा ही गुणभरा काम किया। किया तो कुछ भी न था मगर स्वप्न ऐसा दीख गया तो वहाँ बात थी क्या कि ज्ञान उस समय चल रहा था। तो यह ज्ञान इस चैतन्यस्वरूपसे कभी अलग नही होता। वह ज्ञान मेरा स्वरूप है जिसके कारण यह आत्मा देखता और जानता है। अब आप समझ लीजिए कि जो अपने स्वरूपके चिन्तनमे लगता है, जो केवल अपने कामसे ही मतलब रखता है उसे कभी आकुलता नही होती।

मात्र जानन देखनकी वृत्तिमें लाभ—लोकमे जो चतुर पुरुष होते हैं वे यही निर्णय किए हुए है कि मुझे दूसरेसे क्या करना है ? मुझे तो एक अपने कामसे ही मतलब है।

जरा परमार्थसे सोचो कि मुझे क्या करना है और मे ? एक अपने कामसे ही काम रहे। मेरा काम है जानन देखन। बस देख लिया जान लिया, इतने तक ही कोई रहेगा तो वहाँ किसी प्रकारका दु ख नही। जो इतनेसे अधिक बढा बस वहाँ ही विपत्तियाँ हैं। एक साधुके पास कोई सेठ आया तो साधुने सेठसे कहा कि तुम भगवानके दर्शनका नियम कर लो। तो सेठ बोला कि महाराज यह बात हमसे तो न बन पायेगी क्यो कि मदिर हमारे घरसे बडी दूर पडता है। तो साधु बोला–अच्छा यह बताओ कि तुम्हारे घरके ठीक सामने क्या है ? · एक कुम्हारका मकान। वहाँ घरसे निकलने पर तुम्हे सबसे पहिले क्या दीखता है ? · एक झोटा। बस उस झोटा का चाँद ही प्रतिदिन देखकर तुम भोजन किया करना। अच्छी बात है। तो घरके सामने झोटाके चाँदको देखकर वह सेठ रोज भोजन करे। साधु ने यह बात यो इसलिए कहा था कि जरा इसकी आदत तो बने, फिर आगे और बात करेंगे। एक दिन कुम्हार उस झोंटेको बहुत ही सवेरे खानपर मिट्टी लानेके लिए खेद ले गया। काफी दिन चढ आया। तो वह सेठ उस कुम्हारके घर गया और पूछा कि झोटा आज कहाँ गया, तो पता लगा कि अमुक जगह खानमे है। वह उस खानके पास गया। जब वह सेठ उस खानके निकट पहुचा तो उसी समय क्या घटना घटी कि उस कुम्हारको खानमे कोई अशर्फियोसे भरा हडा मिला। खडे होकर यह देखने लगा कि किसीने देख तो नही लिया। तो ज्यो ही वह कुम्हार खडा हुआ त्यो ही सेठको उस झोंटेका चाद भी दिख गया और यह कह लौट पडा कि बस बस देख लिया। उस सेठका मतलब तो था कि मुझे जो कुछ देखना था सो देख लिया, पर कुम्हारने समझा कि सेठने मुझे अशर्फियोका हडा पाते देख लिया। सो कुम्हार बोला—अरे सेठ जी सुनो तो। तो सेठ बोला—बस बस देख लिया। कुम्हार उस अशर्फियोके हडेको सेठके घर लाया और बोला कि इन अशर्फियोमे से कुछ हमे दे दो और कुछ आप ले लो। राजासे न बताना, नही तो ये सभी अशर्फिया छिन जायेंगी। तो वह सेठ अब सोचने लगा कि देखो–केवल एक झोटाके चादके दर्शनका नियम ले लेने पर तो इतना धन मिला, यदि प्रभुके दर्शनका नियम ले लिया होता तो न जाने कितना धन मिलता ? तो वास्तविक बात यह है कि प्रभुके सत्यस्वरूपका दर्शन हो जाय तो उससे हमे लाभ है। ससारके सर्व सकट छूट जायें तो इससे बढकर लाभकी बात और हमारे लिए क्या हो सकती है ? यदि आत्माके सत्यस्वरूपका निर्णय कर लिया जाय तो विदित होगा कि आनन्द क्या है, आनन्दका सत्यस्वरूप क्या है ?

आत्मस्वरूप और उसके परिचयका पौरुष—आत्माका स्वरूप समयसारमे कहा है कि जो रूप, रस, गध, स्पर्शरहित है, किन्तु एक चैतन्यमात्र है, ज्ञायकस्वरूप है, जिसका कोई आकार निर्दिष्ट नही है वह है आत्मा। आत्माको समझनेके लिए केवल एक ज्ञानस्वरूप

का ही विचार करे कि जो ज्ञान ज्ञान है सो आत्मा है। यो ज्ञानमात्र तत्त्वका ध्यान करे तो अन्य विकल्प छूटकर ज्ञानमे केवल ज्ञानस्वरूप रह जानेके कारण जो सहज ही आनन्द का अनुभव होता है उस अनुभवमे आत्माको समझ लेनेपर यह भाव बनता है कि अन्य सब बातें बेकार हैं। जीवका हित केवल इस अनुभूतिमे ही है। सम्यक्त्व होनेपर जो बताया गया है कि सहज वैराग्य जगता है जीवका। ससार शरीर भोगोसे विरक्तिहो जाती है जीव की। उसका कारण तो यही है कि एक सम्यक्त्वका ऐसा अनुभव जगा है कि जिस अनुभव मे उसे अन्य सब बातें नीरस जंचने लगती है। तो यो ज्ञानमे ज्ञानमात्र निज स्वरूपका अनुभव करनेपर जीवको आत्माके स्वरूपका स्पष्ट भान होता है तो आनन्दका उपाय समझनेके लिए दो बाते जो कही गई थी——एक तो आत्माका यथार्थस्वरूप समझ लेना और दूसरा आनन्दका भी स्वरूप समझ लेना, ये दो बातें अत्यन्त आवश्यक है। तो आत्माका स्वरूप समझनेकी बात शब्दो द्वारा संक्षेपमे यहाँ कहा है लेकिन आत्मा शब्दोसे नही समझा जाता है। यह खुदको ही अपनेसे ज्ञानरूप पुरुषार्थ करना होगा और उस ज्ञानरूप पुरुषार्थसे स्व आचरणसे अपना आत्मा विदित होगा। यह सब अपने आपके पुरुषार्थपर निर्भर है। अन्यथा शब्दो द्वारा जो बताया गया है वह सब सकेत है, सक्षेप है। करना होगा खुदके ही स्वरूपका ज्ञान, ज्ञानमे ज्ञानस्वरूपका ही ज्ञान। तो उसे अनुभव हो जायेगा कि मैं आत्मा क्या हू ? शब्दो द्वारा जो ऊपरी ज्ञान करके संतोष कर लेते है और भीतरमे वास्तविक ज्ञान पुरुषार्थ नही जगता उनको आत्माका भान नही हो सकता। कोईसा भी कार्य हो, जो एक प्रयोगात्मक है उस कार्यको तो करना ही होगा। जो कार्य प्रयोग द्वारा ही साध्य है उसके लाभके लिये तो कार्य ही करना होगा, सीखना होगा। वह कार्य मात्र शाब्दिक ज्ञान द्वारा साध्य नही है।

प्रयोग विना मात्र शाब्दबोधसे कार्यसिद्धिके लाभका अभाव——शाब्दिक ज्ञानसे ही सतोष मानने वालोकी ऐसी श्रद्धा होती है जैसे कि एक उदाहरण है कि एक स्कूलमे छात्रो को तैरनेकी कला सिखाई जा रही थी। तो मास्टर साहब जो खुद भी तैरना नही जानते थे, वे पुस्तकोके आधारसे सिखा रहे थे——देखो पानीमे इस तरह गिरा जाता है, हाथ यो खींचे जाते हैं, पैर यो फटफटाये जाते हैं, यों अनेक बातें तैरनेके सम्बधमे सिखा दी गई। कुल ५-६ माहका कोर्स था। सिखानेके बाद जब उनकी परीक्षा लेनेके लिए नदीपर लाये तो सभी लडकोको एक लाइनसे खडा कर दिया। कहा देखो—हम १, २, ३ कहेगे। जब ३. कहे तो तुम सभी विद्यार्थी इस नदीमे तैरकर अपनी तैरनेकी कलाका प्रदर्शन करना। जब मास्टरने १, २ कहकर ३ कहा तो सभी विद्यार्थी नदीमे कूद पड़े। मगर वे तैर न

सके। नदीमे डूबने लगे। अरे तैर भी क्यो सकें ? तैरनेकी कला सीखना यह तो एक प्रयोग द्वारा साध्य बात थी, शब्दो द्वारा तैरना कैसे सीख सकते थे। सो जब वे बालक डूबने लगे तो वहाँके सभी नाविको ने उन्हे बाहर निकाला और नाविकोने मास्टरको बहुत डाटा कि तुमने बडी बेवकूफी की। लडकोको बिना तैरना सिखाये ही नदीमे कुदा दिया। तो मास्टर बोला—अजी हमने ६ माह तक इनको तैरनेकी कलाका सारा कोर्स पढा दिया। ये लोग तैरनेकी कलाके विषयमे इतना जानते हैं जितना कि तुम लोग भी नहीं जानते। नाविक लोग मास्टरकी बेवकूफी पर हँसने लगे। तो जो प्रयोगसाध्य बात है वह शब्दो द्वारा नही सिखाई जा सकती। अभी हम आप सभी रोज-रोज घरमे रोटियाँ बनते हुए देखते है। कैसे आटा गूदा जाता है, वैसे वेला जाता है, कैसे सेका जाता है। रोज रोज देखते है, और पूछा जाय तो रोटी बनानेकी विधि भी अच्छी प्रकार बतला देंगे, पर कह दिया जाय कि जरा रोटिया बनाओ तो कोई न बना पायेंगे। तो जो बात प्रयोगसाध्य है वह बात शाब्दिक ज्ञान द्वारा साध्य नही हैं। इसी प्रकार आत्माका अनुभव भी शाब्दिक ज्ञान द्वारा साध्य नही किन्तु खुद ही अपने हृदयको साफ करके, जगतके पदार्थोंको असार जानकर, उनसे उपेक्षा भाव करके अपने ज्ञानस्वरूपको ले तो अनुभव हो सकता है। तो आत्माके स्वरूपको जाननेकी बात यो है।

आनन्दके स्वरूपकी झांकीके लिये उत्सुकता—अब दूसरी बात पर विचार करो कि मुझे चाहिए आनन्द। तो उस आनन्दका स्वरूप क्या है ? आनन्दका स्वरूप है सहज अनाकुलता। जहाँ रंच मात्र भी आकुलता नही और ऐसी ही निराकुलता की श्रद्धा स्वय होती है। इसमे परकी आधीनता नही है। केवल एक स्वके आलम्बनसे यह एक सहज अनाकुलताका अनुभव होगा। उस सहज अनुभवका ही नाम आनन्द है। अनाकुलता होगी कब ? जब अनाकुल सहज स्वभावका ज्ञान हो। यह स्वरूपका आचरण प्रतीति कब बनेगी ? जब हमको यह ज्ञान हो कि मै अविकार ज्ञानस्वभाव हू। जगतके जीवोने अभी तक सुखकी आशासे बहुतोको शरण बनाकर बहुतोसे आशा रखी कि मुझे इनसे सुख शान्ति मिले, लेकिन सबका आश्रय, सबका आलम्बन ये सब धोखा देनेके ही कारण बने, इनसे बरबादी हुई, जन्म मरणकी परम्परा बढी, पर शान्ति न मिली। इसने सबका शरण ग्रहण किया पर एक निजका शरण नही ग्रहण किया। इसकी दृष्टिमे अन्य अनेक जन सुखदाता विदित रहे। ये भाई, मित्रजन, रिस्तेदार लोग मुझे सुख देंगे ऐसी दृष्टि तो रही, पर यह ध्यान कभी नही किया कि मै स्वय आनन्दस्वभाव हूँ। और उस स्वयका आनन्द ग्रहण करें तो आनन्द प्राप्त होगा। अर्थात् अपने अविकार स्वभावका ज्ञान नही किया। अविकार स्वभाव यही हुआ कारण सहज परमात्म तत्त्व। इसका शरण नही लिया। इस ही कारण

यह अब तक परदृष्टि रख करके संसारमें रुलता रहा।

आनन्दकी उपादेयता व सुख दुःख दोनोंकी हेयरूपता—अभी कुछ दिन पहिले यह प्रकरण था कि संसारमे सुख और दु.ख दोनों ही हेय तत्त्व है। और इसके कारणभूत, साधनभूत, बाह्य उपायभूत जो इष्ट समागम हैं वे भी हेय है। इष्टका समागम हो तो उसको जरूर दु ख होगा। योगभूमिमे क्यो सुख बताया गया है लौकिक दृष्टिसे ? वहाँ इष्टवियोग नही है। जुगलिया उत्पन्न होते है, वही दोनो स्त्री पुरुष बनते है ऐसी वहाँकी पद्धति है और उनके बच्चे जब उत्पन्न हो गए तब उनकी आयुका अन्त होने लगता है। वहाँ बच्चे गर्भसे बाहर निकले कि पिताको तो आयी झीक और माताको आयी जिवाई। तो दोनो गुजर जाते है। माता पिताने बच्चोको नही देखा, बच्चोने माता पिताको नही देखा। इसका मतलब यही है कि इष्ट समागम नही हुआ। इष्ट समागम नहीं हुआ तो बस उन्हे किस बात का दु ख हो ? जिनको इष्ट समागम होता है उनको अवश्य ही कष्ट भोगना होता है। जो बाहरी पदार्थोंके समागमको इष्ट समझते है उनको नियमसे वियोग होगा। चाहे कोई कितना ही धनिक हो, कैसा ही बुद्धिमान हो पर जो इन बाहरी समागमोको अपना इष्ट समझेगा उसके दु खको कोई मेट न सकेगा। उसकी अतिम दशा यही होगी कि दु.खी होना पडेगा। तो यह इष्ट समागम, जिनके लिए निरन्तर ध्यान बना रहता है वह तो बरबादीका ही साधन है। तो ये सांसारिक सुख जो कि दु खके कारण है वे भी हेय है, और सुख दु खके निमित्तभूत जो कर्मोदय है, पुण्य पाप है वे भी हेय है, और पुण्य पापके कारण जो शुभ अशुभ भाव है, विकारभाव है वे भी हेय है। तो निष्कर्ष यह निकला कि शुभ और अशुभ दोनो प्रकारके विकारभाव होते है परके आश्रयसे। तो परावलम्बन यह भी हेय है। अर्थ यह निकला कि स्वका आश्रय ही उपादेय है। जब यह जीव अपने इस स्वतत्र अविकार सहज ज्ञानस्वभावका ज्ञाता होता है तो अपने ही स्वभावका आश्रय करता है। स्वभावका आश्रय करनेसे सहज अनाकुलता उत्पन्न होगी और आनन्द जगेगा। यही है आनन्द पानेका उपाय।

आनन्दके परिचयकी विशेषतामें आनन्दका लाभ—भैया! जब यह आत्मा सहज स्वभावका ज्ञाता हो गया तो ज्ञाता होनेके साथ ही उसमे यह सहज कला आ जाती है कि अब उसको भोगोकी इच्छा नही रहती। जब अविकारी ज्ञानस्वभावका आश्रय करके एक विचित्र अनुपम स्वाधीन सहज आनन्दका अनुभव हो तो इसके सामने अन्य बातें असार जंचती है। तो उसको भोग शरीर आदिककी इच्छा न रहेगी। उसका तो सारा उपयोग परिवर्तित हो गया। जो उसका विकारकी ओर उपयोग लगा हुआ था वह सब बदल गया। अब उसमे मायाचार नही रहा, भोगोकी इच्छा नही रही। अपने आपके स्वभावका उसे

आश्रय हुआ और सहज अनाकुलता उसके आचरणमे आयी । वहाँ जो अनुभव हुआ बस वही आनन्द है । इस आनन्द पानेका उपाय आनन्दका सही स्वरूप जाननेसे उसका परिज्ञान करनेसे ही मिलेगा । इतनी बात सुनकर जिज्ञासु यह पूछता है कि सांसारिक सुखको आनन्द शब्दसे क्यो नही कहा ? तीन शब्द जो बांटे हैं—सुख, दु ख और आनन्द । तो सुख तो समझमे आता है कि यह हेय है उसको हम कुछ कुछ मान लेते है, क्योकि इस सुखसे पहिले भी विडम्बनायें हैं, सुखके बाद भी विडम्बनायें हैं, लेकिन इस सुखको आनन्द क्यो नही कहते ? आखिर भोजन करने वाले पुरुष भी तो कहते है कि आज भोजन करनेमे बडा आनन्द आया । पञ्चेन्द्रियके विषयोमे रमकर यह जीव कभी कभी आनन्द शब्दसे कह उठता है । तो फिर इन सासारिक सुखोको आनन्द नामसे क्यो नही कहा ? समाधानमे यो समझ लो कि नाम धरनेको कुछ भी कह लो । जैसे बहुतसे गरीबोका नाम लक्ष्मीपति रख दिया जाता है और बहुतसे सेठोका नाम भी लटोरेमल खचोरेमल आदि रख दिया जाता है । तो नाम धर देनेसे कोई फर्क नही है । इन सासारिक सुखोमें आकुलता है और जो सहज आनन्द है उसमे निराकुलता है । वह सहज स्वभाव है । उसके ज्ञानमे आकुलता नही है ।

सांसारिक सुखकी पराधीनतादिका प्रदर्शन—सासारिक सुख पराधीन है । यहाँ कितनी ही परदृष्टियोका जमाव किया जाय तब कही सासारिक सुख मिलता है । प्रथम तो इन्द्रियाँ ही पूर्ण मिलना दुर्लभ हैं । उसमे भी पराधीनता है । अगर जीभमे छाले है तो भोजनके स्वादका आनन्द न मिलेगा । अगर कान बहिरे है तो रागरागनीके शब्द सुननेका आनन्द न मिलेगा । यो ही सभी इन्द्रियोकी बात है । यो सर्वप्रथम सासारिक सुख भोगनेके लिए इन्द्रियोकी बलवत्ता चाहिए । तो इन्द्रियोमे बलवत्ता रहे यह भी अपने आधीन नही । इसके बाद फिर चाहिए बाह्य वस्तुओका समागम । जो विषयभूत पदार्थ है वे चाहिएँ तव इसको आनन्द प्राप्त होगा । वे भी अपने आधीन नही है । सुयोग है तो है, मिल गए तो हो गए, पर उनपर अधिकार नही है कि वे हमे मिलेगे ही । फिर इसके बाद उदय चाहिए अनुकूल । अगर उदय अनुकूल नही है तो इन्द्रियाँ भी बलवान हैं, बाह्य साधन हैं, फिर भी उन्हे नही भोग सकते । जैसे कोई रईस पुरुष रोगी हो गया तो उसके इन्द्रियसुख क्यो नही हो पाते कि उदय विपरीत है । इन्द्रियाँ भी हैं, बाह्य साधन भी हैं, सब कुछ होनेपर भी चूंकि उदय विपरीत है इस कारण उसे न खाने पीनेका सुख मिलता और न अन्य ही सुख मिल पाते । तो उदय भी अनुकूल चाहिए । वह भी हमारे आधीन नही । तो कितनी पराधीनतायें है इन सासारिक सुखोमे ? इतनी पराधीनतासे भरे ये सासारिक सुख हैं । इन

सासारिक सुखोमे पराधीनताकी ही विडम्बना नही है किन्तु ये सुख विनाशीक है । कैसे ? प्रथम तो इनकी विनाशीकताको मेटनेका कोई उपाय नही है क्योकि कोईसा भी भोग भोग लिया जाय । भोग भोगनेके समय भी आकुलता है, भोगते ही वे सुख नष्ट हो जाते है। किसी भी इन्द्रियका भोग हो, भोगनेके बाद वह सुख खतम हो जाता है । जैसे भोजन किया तो सुख मान लेते है, पेट भर गया । भोजन करनेके बाद वह सुख जो प्राप्त होता है वह भी मिट जाता है । तो किसी भी इन्द्रियका सुख हो, भोगनेके बाद वह सुख नही रहता, यह प्राकृतिक बात है, इसलिए वह सुख नियमसे विनाशीक है । इसके अतिरिक्त इन्द्रिया बिगड गईं, साधन बिगड गए, यो भी वे सांसारिक सुख पराधीन है और वे विनाशीक है । कोई मोही पुरुष इतनेपर भी अगर राजी हो जाय कि चलो रहने दो पराधीनता, हम इस पराधीनताकी बातको सह लेगे, पर मुझे तो इन सासारिक सुखोमे मौज मिलता है । मुझे तो ये सासारिक सुख ही चाहिए, तो उसके लिए समझना होगा कि ये ससारके सुख पराधीन है । विनाशीक हैं, इतनी ही बात नही, किन्तु वे दु खपूर्ण भी है । जितने काल उन सुखोको भोगा जा रहा है उतने काल भी तो अनाकुलता नही है । उतने काल भी दु ख भरा पडा हुआ है, परदृष्टि है यह तो एक निरन्तरका दु ख है ।

विषयवेदनाकी क्षणिक दवा—यह जीव जब अपने स्वभावसे डिग गया और किसी परपदार्थमे इसने अपना मन लगाया तो यह एक सबसे बड़ी भारी विडम्बना है । तो ये ससारके सुख निरन्तर दु खपूर्ण है । प्रसिद्धियाँ कर रखी हैं कि दु ख तो है मेरूपर्वत बराबर और सुख है राई बराबर, लेकिन वास्तविकता यह है कि इस संसारमे राई बराबर भी सुख नही है । निरन्तर अशान्ति ही रहती है । पसीना लेता है मनुष्य तो उसे ज्वर है, रोग है, आकुलता है, अशान्ति है, वेदना है तभी तो पसीना लेना पडता है । स्वस्थ पुरुष तो पसीना लेनेकी चाह नही करता । यह वेदना वाला, ज्वर वाला पुरुष तो दो चार रजाई ओढकर पसीना लेना चाहता है । इसी तरह ये भोग जब भोगे जाते है जब कि भीतरमे अशान्ति है, वेदना है । तो ये रोगोकी दवा हैं भोग । औषधि और दवामे अन्तर है । औषधि वह है जो रोगको जड़से समाप्त कर दे और दवा वह है जो रोगको दवा दे । तो यह तो रोगकी दवा है । जैसे दवा तो थोडी देरको रोगको दबा देती है, रोगको मिटाती नही, इसी तरह ये इन्द्रिय सुख भोगने से भोगके रोग मिटते नही किन्तु दब जाते हैं । भोग भोगकर नही भोगोकी वेदनाको मिटाया जा सकता है । ये भोग भोगे जाते है फिर भी इनकी वेदना मिटती नही, वेदना कुछ दब जाती है । तो ये सब साँसारिक भोग विपत्तिके ही कारण है, ऐसे सासारिक सुखोको आनन्द शब्दसे कहना उचित नही है ।

आनन्दके परिणमनके प्रसंगमें—आनन्दका अर्थ है जो आत्मामे चारो ओरसे समृद्धि

उत्पन्न कर दे। जो इस आत्मामे आनन्द उत्पन्न कर दे उसका नाम आनन्द है। इन सासारिक सुखोको आनन्द नही कह सकते, लेकिन यह बात न भूलना चाहिए कि अगर शुद्ध आनन्द मिले तो, सुख मिले तो, दुख मिले तो ये सब आनन्दशक्तिके ही परिणमन है। आत्मा चूंकि आनन्दस्वरूप है तो जो शक्ति है उस शक्तिका कोई परिणमन होना ही चाहिए। तो उस आनन्द शक्तिका परिणमन है विकार सुख और दुख। और स्वाभाविक परिणमन है आनन्द। तो आनन्द गुणकी सुख दुख विकृत पर्यायें हैं। किन्तु इन दुख सुखो को आनन्द शब्दसे नहीं कह सकते। स्वका आलम्बन करनेसे, अविकार स्वभावका आत्मा आलम्बन लेनेसे जो स्वमे आनन्द जगता है उसको आनन्द कहते हैं। यो आनन्द और इन दो का स्वरूप जाननेके बाद यह जीव आनन्द पानेका उपाय करता है।

तत्त्वके सत्य परिचयके लिये द्रव्य गुण पर्यायके परिचयकी आवश्यकता—किसी भी समस्याको समझनेके लिए तीन बातोका परिज्ञान करना आवश्यक है—पदार्थ, पदार्थकी अवस्था, पदार्थकी शक्ति। इन तीन तत्त्वोको ठीक-ठीक समझे बिना न तो भेदविज्ञान हो सकता और न शान्तिका मार्ग मिल सकता। इन तीन बातोका ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे यहाँ किसी बडे कामको करनेमे जोडनेमे बडी तकलीफ भी सहन करते और बडा वैभव भी खर्च कर लेते है ऐसे ही शान्तिका मार्ग प्राप्त करने के लिए भी तन, मन, धन, वचन आदिक सर्व कुछ भी खर्च करना पडे तो खर्च करना चाहिए। इतने बडे लाभकी बातको प्राप्त करनेके लिए अगर तन, मन, धन, वचन सर्व कुछ खर्च करने पडे तो वह कौनसी बडी चीज है? एक इस गुत्थीको सुलझा लेना चाहिए जिस गुत्थीके सुलझने के बाद आत्माको अनन्तकाल तक एक अविनाशी आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसीकी बात यहाँ कही जा रही है। किसी भी चीजका ज्ञान करनेके लिए तीन बातोका ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। चीज, चीजकी हालत और हालत की शक्ति। चीज न हो तो हालत किसकी बने? चीज अच्छी तरहसे समझ ली जाय। चीज पदार्थ यदि न हो तो जीवकी हालत कैसे बनेगी? जैसे कषाय करना, शान्ति रखना, ज्ञान रखना, आनन्द पाना आदिक जो भी बाते बन रही है वे किसमे बन रही हैं? यदि कोई पदार्थ न हो तो उसकी हालत भी नही होती। जैसे कुछ दार्शनिक कहते हैं कि इस आत्माकी कोई हालत नही होती। यह अपरिणामी है, इसकी कोई व्यक्त दशा ही नही होती, और फिर भी जबरदस्ती कहा जा रहा है। कोई अवस्था नही होती, कोई हालत नही बनती फिर भी कहते कि जीव कोई चीज है। यदि चीज है तो उसकी कुछ हालत होगी, अवस्था बनेगी, परिणमन होगा। तो ये तीन बातें हैं—चीजका होना, चीजकी हालत होना और चीजकी शक्ति होना। जैसे ये दिखने वाले जो पदार्थ है इनमे जो रूप है, रग है, वह तो उनकी हालत है,

और जिसकी वह हालत है वह मुख्य चीज है, स्कंध है। चीजका होना और उसकी कोई न कोई हालत रहना अत्यन्त आवश्यक है। और उस चीजकी किस तरहकी हालत बनेगी, स्थिति बनेगी, इसका कारण कोई शक्ति है। पदार्थकी जैसी शक्ति है, उस प्रकारकी अवस्था बनती है। इन तीन बातोको किसी भी चीजके समझनेमे ध्यान रखना चाहिए—चीजका होना, चीजकी हालतका होना और उस चीजमे हालत बननेकी शक्तिका रहना।

आत्माके आनन्द धर्मका परिचय—अब आत्मामें आनन्द गुणकी बात चल रही है। आनन्दपरिणमनकी बात चल रही है कि आत्मामे आनन्द होता है और उस आनन्दकी शक्ति आत्मामे है। आत्माका आनन्दस्वरूप है। आत्मा स्वयं ही आनन्दमय है। दुःख किसी भी जीवको नही है, वह भी बनाना पडता है पर यह आनन्द तो अपने आप मिलता है, आनन्द बनाना नही पड़ता क्योकि आनन्द जीवका स्वरूप है। तो इस प्रकरणमे यह बात इतनी लम्बी चौड़ी इस विषयकी चल रही है कि वह आनन्द आत्माका गुण है या पर्याय ? गुणके मायने शक्तिरूप, पर्यायके मायने हालत। जीवकी हालतका नाम है ना आनन्द ? या जीवकी शक्तिका नाम आनन्द है ? इस सम्बधमे यह निर्णय रखना चाहिए कि इस विषयमे जो आनन्दका परिणमन होता है उसका भी नाम आनन्द रखा गया है और जीवमे जो आनन्द पानेकी शक्ति है उसका भी नाम आनन्द है, मगर इसे न भूलना चाहिए कि आनन्द शक्तिका स्वरूप और है, आनन्दपरिणमनका स्वरूप और है। आत्माके आनन्द शक्तिकी स्वाधीन परिणति है, उसका नाम आनन्द पर्याय है, और वह आनन्द पर्याय जिस शक्तिके कारण प्रकट होती है उस शक्तिका नाम आनन्द गुण है। अर्थात् जीव आनन्दमय है। उस अविकारी आनन्दस्वरूप निज तत्त्वकी भावना की जाती है और इस भावनाके फलमे जीवको सहज आनन्द प्राप्त होता है। उस समय जीवको स्वत. सहज अनाकुलता जगती है। उस अनाकुलताका नाम है आनन्द पर्याय। हमे चाहिए आनन्द। तो आत्माका स्वरूप तो समझा है कि हमे चाहिये क्या ? जो चाहिए वह ध्यानमे ही न हो और चाहिए चाहिए ऐसी कोई बात कहता फिरे तो वह तो एक उन्मत्त चेष्टा है। हमे क्या चाहिए ? पहिले यह तो दिमागमे लायें। हमे आनन्द चाहिए। तो वह आनन्द है क्या चीज ? उस आनन्दके स्वरूप की बात चल रही है। जो अनाकुल परिणमन है वह तो है आनन्द पर्याय और आनन्द परिणमन होनेकी जो जीवमे शक्ति है वह है आनन्द गुण। जिस जिस चीजमे जो जो बात प्रकट होती है, निर्णय करना चाहिए कि उस उस बातके प्रकट होनेकी शक्ति इसमे है। न हो शक्ति तो बात समझें क्या ? जैसे कागजमे फूलो जैसी गंध निकलनेका गुण नहीं है तो उसमे वह गुण लाया कहाँसे जाय ? जिस पदार्थमे जैसी योग्यता है उसमे वैसा होता है। तो पदार्थका होना, उसकी अवस्था बनना और उसमे शक्तिका होना ये तीन बाते किसी

पदार्थकी जानकारीके सम्बधमे सबसे पहिले जान लेनी चाहिएँ। जिन्हें अपने आत्माका हित करना है उन्हे भी इन तीन बातोको ध्यानमे रखना चाहिए--जीव, जीवमे आनन्दशक्ति और जीवमे आनन्द परिरामन। आनन्दके मायने शुद्ध परिरामन। सुख दु खसे परे निर्विकार अनाकुल परिरामन ज्ञानी जीवको ही प्राप्त हो सकता है। इस आनन्द परिरामनकी शक्ति का नाम आनन्दशक्ति है, और वह आनन्दशक्ति जीवमे है। इसके समझते समय इस निष्कर्षपर आना चाहिए कि अगर आनन्द पाना है तो इसके लिए किसी अन्यको उद्यम न करना होगा। करना होगा स्वयको ही, परपदार्थोंका आश्रय तजना होगा और स्वयमे अपने ज्ञानबलसे विश्रामसे रह जाना होगा।

आत्माकी आनन्दस्वरूपता--भैया! आत्मा आनन्दस्वरूप है ही तो उसमे अपने आप आनन्द प्रकट होगा। आत्माकी आनन्दमयताको जानकर ही अद्वैतवादियोने बताया है कि आनन्द ब्रह्मरा स्वरूप। ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है। यद्यपि यह बात सत्य है कि ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है पर उनके ब्रह्मका स्वरूप कुछ और ही है। ब्रह्मको एकान्त करके उन्होने माना है। किसीने बताया है कि ब्रह्मका रूप है एक शक्ति। यदि एकान्त करके कहा जाय कि वह शक्ति ही ब्रह्मका रूप है, उसके अन्य असाधाररा विशेष चिन्ह और नही है, जैसे परमाराुको कोई सत्त्व कहे और रूप, रस, गध, स्पर्श न स्वीकार करे तो सत्य न ठहरेगा, इसी तरह ब्रह्मका, जीवका स्वरूप कोई सत्य तो नही है किन्तु ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक न माने तो सत्य कैसे ठहर सकता है? साधाररा गुरा और असाधाररा गुरा बने रहते हैं पदार्थ मे तब पदार्थकी सत्ता बनती है। तो आत्मा आनन्दस्वरूप है। हम यदि परपदार्थोंकी आशा तज दे और आनन्दका निज आत्माका ध्यान करें, आत्मामे ही विश्राम करे, यहाँ ही ज्ञान स्थिर बनाये तो हमे आनन्द प्राप्त होगा, और ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जो अग्निकी चिनगारीकी तरह समस्त कर्मईंधनको भस्म कर देनेमें समर्थ होता है। वह आनन्द आत्माकी दशा है, और आत्माकी श्रद्धा करनेसे वह दशा प्राप्त होती है।

आत्मस्वरूपकी स्वयंकी बरबादी करनेमें अक्षमता---सर्वप्रथम इस आत्माको समझना है। आत्मा आकुलतारहित स्वरूप है। किसी भी पदार्थका स्वरूप उस पदार्थके बिगाड के लिए नही है। मेरी सत्ता मेरे बनाये रखनेके लिए है। आप कही यह शका न कर दे कि देखो अग्निका स्वरूप अग्नि मिटानेके लिए है। अग्नि जलती है, जलकर होता क्या है? अग्नि मिट जाती है। तो भाई अग्नि कोई पदार्थ नही है। अग्नि एक परिरामन है। पदार्थ तो पुद्गल परमाराु है। परमाराुका स्वरूप परमाराुको मिटानेके लिए नही होता। जीवका स्वरूप जीवके मिटानेके लिए नही हो सकता। आकुलता तो जीवकी बरबादी है, अनिष्ट है। आकुलता यदि जीवका स्वरूप होता तो आकुलतामे जीव प्रसन्न रहता और शान्त रहता।

पर ऐसा तो नही है, जीवका स्वरूप जीवकी बरबादीके लिए हो ही नही सकता। तो आकुलता जीवका स्वरूप नही है। अब यहाँ देखना चाहिए कि मेरा आत्मा आकुलता रहित है।

बरबादीका हेतुभूत कषायोंमें आत्मस्वरूपताका अभाव—अब और आगे चलो—क्रोध, मान, माया, लोभादिक जो कषाय तरगें जीवमे उठती है उनके कारण यह जीव अपने वश मे नही रहता। ये तरगे क्या जीवका स्वरूप है ? ये भी जीवका स्वरूप नही है। तरगे जिसकी हालत है वह तो है, पर तरंगे जीवका स्वरूप नही है। जैसे हवाके चलनेसे समुद्रमे लहरें उठती है। पूछा जाय कि लहरे क्या समुद्रका स्वरूप है ? तो उत्तर मिलेगा कि लहरें समुद्रका स्वरूप नही है। यदि लहरे समुद्रका स्वरूप कहलाती तो जिस कालमे लहरें नही है उस कालमे समुद्र मिट जाना चाहिए, क्योकि तुमने लहरोको मान लिया समुद्रका स्वरूप। तो ये लहरें समुद्रका स्वरूप नही है। यद्यपि लहरे जो उठती है वे जलकी ही है, समुद्रकी ही हैं लेकिन समुद्रका स्वरूप नही है। इसी तरह क्रोध, मान, माया, लोभादिक जो लहरे उठती हैं, वे जीवमे ही उठती है, जीवका परिणमन है लेकिन ये कषाये जीवका स्वरूप नही है। कषाये यदि जीवका स्वरूप होती तो कषाये मिटते ही जीव भी मिट जाना चाहिए, पर ऐसा तो नही होता। ये तो नैमित्तिक भाव है। जैसे कि समुद्रमे कषायोका उठना नैमित्तिक है, हवा चलती है तब लहरें बनती हैं, हवा न चली तो लहरे खतम। इसी तरह जब तक परिणमन है तब तक जीवमे कषायें है, जब परिणमन न रहा तो जीवकी कषायें भी न रही। तो ये कषाय तरगें जीवका स्वरूप नही है। तो अपना स्वरूप कैसा है ? आकुलतारहित और निस्तरग।

आनन्दस्वरूप निज तत्त्वको उपयोगमें बसानेमें आनन्दोपायकी उपलब्धि—यदि अपने ज्ञानस्वभावको अपने उपयोगमे स्थिर बनाये तो बस यही पुरुषार्थ आनन्द पानेका उपाय है। जीव जब जब किसी कारण दुखी होता है तो वह बाह्यपदार्थोंके रागके कारण दुखी होता है। किसी परपदार्थके रागके होनेके कारण जब वेदना उत्पन्न होती है तो यह जीव परपदार्थोका समागम जुटाता है, परपदार्थोंमे दिल लगाता है, परपदार्थोकी आशा बनाता है, यह तो दुख पानेका ही उपाय है। आनन्द पानेका उपाय तो यह है कि पर पर ही है, विनाशीक है, अतएव इस परका ध्यान करनेसे कोई लाभ नही। जो पदार्थ मेरे साथ रहेगा ही नही, मिट ही जायगा, अलग हो ही जायगा उस पदार्थको चित्तमे इतना बसाना यह तो कोई विवेककी बात नही है। एक अपनी ऐसी हिम्मत बना ले कि जब ये परपदार्थ मेरे साथ रहेगे ही नही, मेरेसे बिल्कुल अलग है तो फिर मै किसी भी परपदार्थको अपने उपयोगमे न रखूँगा, ऐसा जिनका संकल्प बन जाता है, ऐसा जिनका पुरुषार्थ बन जाता है

वे ही तो बडे है, वे ही तो कल्याण करते है, पर ऐसा स्वरूप जिनके प्रकट हो जाता है उनको ही बडा कहते है। तो यह श्रद्धा रखनी होगी कि मेरा आनन्द, मेरा परिणमन, मेरा स्वरूप, निस्तरग, आकुलतारहित निजस्वरूपका ध्यान करनेमे मिलेगा। अन्य बाहरी बातोमे ध्यान देनेमे तो पराधीनता परिश्रमकी बात है पर निजस्वरूपका ध्यान तो एक स्वाधीन सहजक्रियाके द्वारा ही सम्भव है। लेकिन यह बात लग रही है कितनी कठिन ? क्या ये मोही जन हमारा साथ दे देंगे ? क्या यह रागभाव हमारा साथ निभा देगा ? क्या ये परिजन मित्रजन आदिक हमारा साथ निभा देंगे ? एक थोडे दिनोका जीवन है और स्वप्न जैसी बात है, ये कोई साथ न देंगे। सार, मंगल, वैभव सब कुछ एक अपने निजस्वभावमे उपयोग की स्थिरता है। अपने उपयोगको अपने ज्ञानस्वभावमे स्थिर करना और ज्ञानको ज्ञानमे लगाये रहना यही आनन्द पानेका उपाय है। और इस ही आनन्द पानेके उद्यममे आत्माका स्वरूप और आनन्दका स्वरूप--ये दोनो बातें बराबर ध्यानमे रहनी चाहिएँ। अत कहा गया है कि आनन्द पानेके लिए इन दो बातोका परिज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। आनन्दका स्वरूप क्या है और जिसे आनन्द चाहिए उसका स्वरूप क्या है, इन दो बातोके निर्णयमे आनन्दका उपाय मिलेगा।

आनन्दधाम निज अन्तस्तत्त्वके परिचय बिना बाह्यविषयोंमें प्रतिधावनका क्लेश-- भैया ! अपने मूलका ही पता न हो तो आनन्द कही भी मिलना कठिन हो जायगा। आनन्द बाह्य पदार्थोंकी ओर भाग दौड़ मचानेसे न मिलेगा। जैसे किसी बालकको किसीने बहका दिया कि अरे बालक देख तेरा कान कौवा ले गया। उस बालकने उसकी बात सत्य मान ली। अब वह बालक एक कौवाके पीछे दौड लगाने लगा और रो रोकर पुकारने लगा-- अरे मेरा कान कौवा ले गया। किसी समझदार व्यक्तिने समझाया कि अरे बालक कहाँ भागा जा रहा है ? कहाँ तेरा कान कौवा ले गया ? अरे जरा अपने कानको टटोलकर देख तो सही। तेरा कान तो तेरे ही पास है। जरा सा टटोलकर देखा तो समझ गया--ओह मेरा कान तो मेरे पास है, अरे कहाँ मेरा कान कौवा लिए जा रहा ?

तो इसी तरह आनन्द पानेकी आशासे इन मिथ्यादृष्टियोने बहका दिया कि अरे तेरा आनन्द घरमे है, स्त्री पुत्रादिकमे है, धन वैभवमे है। अब वह उस आनन्दकी प्राप्तिके लिए बाह्यमे दौड लगाता फिरता है पर आनन्द प्राप्त नही होता। उसे समझदार ऋषि संतजन समझाते है कि अरे कहाँ है तेरा आनन्द तो तेरे ही पास है। जरा अपने अतरगको टटो-लकर देख तो सही। जरा विश्रामसे अपने आपमे ठहरकर अपने अतरगमे टटोलता है तो उसे पता पडता है—ओह मेरा आनन्द तो मेरे अन्दर ही भरा पडा है। कहाँ मेरा आनन्द

इन बाहरी पदार्थोंमे है ? तो यह आत्मा आनन्दस्वरूप तो है ही, ज्ञानस्वरूप तो है ही। जब ऐसा उसकी समझमे आता है और वह इस ओर प्रयत्न करता है, परपदार्थोंका विकल्प छोडकर अपने आत्मस्वरूपमे उपयोग लगानेका उद्यम करता है तो उसे मालूम होता है कि ओह ! आनन्द तो मेरा स्वरूप ही है, मेरा आनन्द मुझमे ही है। तो आनन्द पानेके उपायमे इन दो बातोका निर्णय करना बहुत आवश्यक है कि मेरे आत्माका वास्तविक स्वरूप क्या है ? और जो एक वास्तविक आनन्द है उस आनन्दका वास्तविक स्वरूप क्या है ? इन दो बातोको अपने आपमे तके और प्रसन्न होकर, निर्मल रहकर रहे तो हमारा कल्याण अवश्य होगा और हमे शान्ति व आनन्द प्राप्त होगा।

परकी उपेक्षामें आनन्दलाभ--आनन्दके पानेके उपायका चिन्तन चल रहा है, आनन्द इस ही पद्धतिसे प्राप्त हो सकता है कि आनन्दमय निर्विकार सहज शुद्ध चित्स्वभाव को ज्ञानमे ले और अनुभव करे कि मैं तो सहज ज्ञानमात्र हू। अन्य समस्त परपदार्थोका विकल्प तोड दे तो इस विधिसे सत्य आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह बात तभी बन सकती है जब कि निजको निज परको पर जाने, मै क्या हूँ यह समझ लिया जाय और पर क्या है यह जान लिया जाय। तो इस सत्य आनन्द पानेका उपाय प्राप्त कर सकते है। सत्य है अपने स्वभावमे उपयोगकी स्थिरता। तो मै अपने स्वभावमे उपयोगकी स्थिरतासे रह सकूँ इसका उपाय क्या है ? यह एक प्रश्न सामने होता है। इसका निर्णय इसमे ही है कि निज पदार्थका और परपदार्थका सर्वप्रथम विज्ञान किया जाय। उस निज और परके यथार्थ जान लेनेसे अपने आपकी अनाकुलता प्राप्त होगी। और, परम उदासीनता बनेगी।

बस जान लिया कि यह मैं ज्ञानमय प्रभु हूँ और इससे भिन्न है ये समस्त परपदार्थ। परपदार्थसे मुझमे कुछ आता नही। निजसे परपदार्थमें कुछ जाता नही। यदि परपदार्थसे मुझमे कुछ आने लगे तो निज और परपदार्थ ये भिन्न न रहे। जब निज न रहा और पर न रहा तो फिर जगतमे रहा क्या ? लेकिन यह सारा जगत बना हुआ है, समस्त परपदार्थ बने हुए है, आत्मतत्त्व बना हुआ है तो यह समस्त जगत, समस्त परपदार्थ बने हुए है, आत्मतत्त्व बना हुआ है तो यह समस्त जगत, समस्त परपदार्थ जो दीखता है वही इसका प्रमाण है। परसे निजमे कुछ नही आता है और निजसे परमे कुछ नही जाता है। तो जब ऐसा निज और परपदार्थका यथार्थ विज्ञान होगा तो सहज उदासीनता प्राप्त होगी। परमे अब क्या लगना, परको चित्तमे ज्यादह क्या रखे रहना, ऐसे उदासीनता के परिणाममे यह करना होगा कि अपने स्वभावमे उपयोग स्थिर रह सके तो आनन्द पाने का उपाय है, तब अपने स्वभावमे उपयोग स्थिर हो, इसका उपाय है सहज उदासीनता होना।

परमोपेक्षा अर्थात् वैराग्यका साधक भेदविज्ञान—वैराग्य जगे इसका उपाय है भेदविज्ञान करना। निजको निज समझे और परको पर जाने। इतनी बात जब एक साधकके सामने आती है तो यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि निज क्या कहलाता है और पर क्या कहलाता है? निजमे कितने पदार्थ आते है और परमे कितने पदार्थ आते है। यह घर हमारा है, यह निजका है कि पराया है? ये रिश्तेदार मेरे है कि पराये है? तो निजमे कितने पदार्थ आते है और परमे कितने पदार्थ आते है? इसका जब निर्णय करने बैठेंगे और और पदार्थ क्या कहलाता है इसका निर्णय करने बैठेंगे तो यह समझमे आयगा कि निजमे तो केवल एक मैं ही आता हू और परपदार्थमे एक निजको छोडकर बाकी जितने जगतके जीव पुद्गल आदि हैं वे सभी आते हैं। तो निज हुआ यह मैं एक शेष सभी सत् पर है। इस भेदविज्ञानबलसे सहज वैराग्य उदित होता है।

प्राणीकी विडम्बना आधार देहात्मबुद्धि—भैया! जब कभी कोई विपत्ति आती है तो समस्त परका ख्याल छोडकर एक निजकी ओर झुकने लगाता है प्राणी, जिसमे कि अहं का बोध होता है। जिससे यह शिक्षा लेना चाहिये कि आपत्ति आने पर सर्वपरको छोड दें और एक निजको बचालें, लेकिन मोही प्राणी परको निज मानते है जैसे कहा जाता है कि बदरियाको अपना बच्चा इतना प्यारा होता है कि यदि उसका बच्चा मर भी जावे तो भी उसे काफी दिनो तक अपने पेटमे चिपकाये फिरती है। जब कभी किसी नदीमे बाढ आनेके कारण वह वृक्ष पानीसे घिर जाता है जिसपर वह बदरिया चढी थी और पानी इतना चढ आया कि वृक्ष भी डूबने लगा, वह स्वय डूबने लगी तो वह अपने बच्चेको बचानेके लिए बच्चेको अपने दोनो हाथोमे लेकर ऊपर उठा देती है। इतना प्रेम होता है उस बदरियाको अपने बच्चेसे। परन्तु जब वह खुद ही डूबने को होती है तो वह अपने बच्चेके ऊपर खडी होकर अपने प्राणोकी रक्षा करनेकी बात सोचती है। तो परपदार्थोंसे हटकर अपने आपकी ओर आने की तो इस जीवकी स्वाभाविक आदत है। इस जीवको सर्वोपरि ममता होती है शरीरसे। यो समझिये कि इस शरीरकी ममताके ही कारण इस जीवकी अन्य परपदार्थोंमे ममता होती है। इस देहकी ममता मिट जाये तो परकी ममता मिट जाय। कितने ही लोग तो कहते हैं कि हमे अपने शरीरसे ममता नही है। हम तो अपने देशसे ममता करते हैं। लेकिन यह कहना व्यर्थ है। जैसे कोई योद्धा देशमे छिडे हुए युद्धमे देशकी रक्षाके लिए लडता है और वह युद्धमे मारा भी जाता है तो लोग उसे कहते हैं कि देखो उस योद्धाको अपने देहसे ममता न थी, उसे तो अपने देशसे ममता थी, पर ऐसा कहना गलत है। अरे देहसे ममता थी क्यो नही? उसने इस देहको ही मान रखा था कि यह मैं हूँ और इस मेरेका नाम होगा कि अमुक वीरने देशके लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर दिए। तो

यह देहसे ममता नही है तो फिर और है क्या ? उसने अपने आत्मस्वरूपको पहिचाना नही। इस देहको ही उसने मैं समझ लिया। और उस देहके नामके लिए ही अपने प्राणो को न्यौछावर कर दिया।

सत्य अर्थकी शुद्धता— मुझमे तो केवल एक आत्मा ही आता है। इसके अतिरिक्त अन्य सब पर हैं। चाहे चेतन हो चाहे अचेतन एक मुझ आत्माको छोडकर अन्य सब पर है। निजको निज और परको पर जाननेकी बात कैसे समझमे आये ? यह बात भी बहुत मार्केकी है। जब तक निज और परका सही निर्णय न होगा तब तक आनन्द पानेका उपाय न बन सकेगा। निज पर का निर्णय तभी कर सकेंगे जब कि पदार्थका सही स्वरूप समझ लें। अपने आपको समझ ले कि यह मै आत्मा सहज चैतन्य तो निज है और बाकी समस्त परपदार्थ पर है। इसको जाननेके लिए पदार्थका स्वरूप जानें। पदार्थका मोटा स्वरूप यही है कि यह समझमे आ जाय कि जैसे बाहरमे देखते है तो चौकी, चटाई, तखत कपडे आदिक ये सब खण्ड-खण्ड हो जाते है। तो जिसका टुकडा होगा वह पदार्थ नही है, वास्तवमे पदार्थ उतना होता है जितनेका कभी टुकडा न हो सके। जिसको कहते हैं एक निज पदार्थ। दिखने वाले पदार्थोंमे एक पदार्थ उतना है जो एक अणु है, जो किसी प्रकार बनाया नही जाता, किन्तु अपने आप प्रकट होता है। आजके विज्ञानवादमे अणु निर्माण की बात चल रही है अणु बम आदिक जितने है उनमे जो वास्तविक अणु है वह किसी प्रकार बनाया नही जाता। इस लोकमे जो बड़े पदार्थ माने जाते है उन्हे लोग अणु मान लेते है पर वास्तवमे ऐसी बात नही है। वास्तविक अणु वह है जिसका कोई दूसरा टुकडा न हो सके। वह अणु सहज बनता है। तो इन दिखने वाले पदार्थोंमे अणु ही वास्तविक पदार्थ है, और जो ज्ञानवान पदार्थ है, जिनके समझ बनी है उनमे एक पदार्थ कितना होता है ? एक पदार्थ उतना होता है जिसका कि दूसरा टुकडा न हो सके। कोई यह सोचे कि देखो छिपकली की पूँछ टूट जाती है तो शरीरका आधा अग एक जगह पडा हुआ तडफा करता है और दूसरा अग दूसरी जगह पडा तड़फा करता है तो वहा तो आत्माके दो टुकडे हो गए। तो ऐसी बात नही है। वह एक समुद्घात जैसी दशा है। जितनी दूर तक वे दोनो शरीर खण्ड पड़े हुए तडफ रहे है उतनी दूर तक आत्माके प्रदेश फैले हुए है। जीव एक है पर उसके प्रदेश उतनी दूर तक फैल गए है।

अपना अन्तः स्वरूप— अब जरा बाहरी दृष्टिसे बात करें कि प्रदेशोसे अखण्ड जो यह मैं आत्मा हूँ, देहसे निराला केवल एक चैतन्यमात्र उसमे भी वास्तवमे मैं क्या हू ? तो वास्तवमें मैं वह हू जो मैं कभी मिट नही सकता। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाये तो मिट जाती है। कोई निमित्त साधन आश्रय पाकर कषाय जगी, वह आश्रव मिटा, निमित्त

परमोपेक्षा अर्थात् वैराग्यका साधक भेदविज्ञान—वैराग्य जगे इसका उपाय है भेद-विज्ञान करना। निजको निज समझें और परको पर जानें। इतनी बात जब एक साधकके सामने आती है तो यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि निज क्या कहलाता है और पर क्या कहलाता है? निजमे कितने पदार्थ आते हैं और परमे कितने पदार्थ आते हैं। यह घर हमारा है, यह निजका है कि पराया है? ये रिस्तेदार मेरे हैं कि पराये है? तो निजमे कितने पदार्थ आते है और परमे कितने पदार्थ आते है? इसका जब निर्णय करने बैठेंगे और और पदार्थ क्या कहलाता है इसका निर्णय करने बैठेंगे तो यह समझमे आयगा कि निजमे तो केवल एक मैं ही आता हू और परपदार्थमे एक निजको छोडकर बाकी जितने जगतके जीव पुद्गल आदि है वे सभी आते है। तो निज हुआ यह मैं एक शेष सभी सत् पर है। इस भेदविज्ञानबलसे सहज वैराग्य उदित होता है।

प्राणीकी विडम्बना आधार देहात्मबुद्धि—भैया! जब कभी कोई विपत्ति आती है तो समस्त परका ख्याल छोडकर एक निजकी ओर झुकने लगाता है प्राणी, जिसमे कि अह का बोध होता है। जिससे यह शिक्षा लेना चाहिये कि आपत्ति आने पर सर्वपरको छोड दे और एक निजको बचालें, लेकिन मोही प्राणी परको निज मानते है जैसे कहा जाता है कि बदरियाको अपना बच्चा इतना प्यारा होता है कि यदि उसका बच्चा मर भी जावे तो भी उसे काफी दिनो तक अपने पेटमे चिपकाये फिरती है। जब कभी किसी नदीमे बाढ आनेके कारण वह वृक्ष पानीसे घिर जाता है जिसपर वह बदरिया चढी थी और पानी इतना चढ आया कि वृक्ष भी डूबने लगा, वह स्वय डूबने लगी तो वह अपने बच्चेको बचानेके लिए बच्चेको अपने दोनो हाथोमे लेकर ऊपर उठा देती है। इतना प्रेम होता है उस बदरियाको अपने बच्चेसे। परन्तु जब वह खुद ही डूबने को होती है तो वह अपने बच्चेके ऊपर खडी होकर अपने प्राणोकी रक्षा करनेकी बात सोचती है। तो परपदार्थोंसे हटकर अपने आपकी ओर आने की तो इस जीवकी स्वाभाविक आदत है। इस जीवको सर्वोपरि ममता होती है शरीरसे। यो समझिये कि इस शरीरकी ममताके ही कारण इस जीवकी अन्य परपदार्थोंमे ममता होती है। इस देहकी ममता मिट जाये तो परकी ममता मिट जाय। कितने ही लोग तो कहते हैं कि हमे अपने शरीरसे ममता नही है। हम तो अपने देशसे ममता करते हैं। लेकिन यह कहना व्यर्थ है। जैसे कोई योद्धा देशमे छिडे हुए युद्धमे देशकी रक्षाके लिए लडता है और वह युद्धमे मारा भी जाता है तो लोग उसे कहते है कि देखो उस योद्धाको अपने देहसे ममता न थी, उसे तो अपने देशसे ममता थी, पर ऐसा कहना गलत है। अरे देहसे ममता थी क्यो नही? उसने इस देहको ही मान रखा था कि यह मैं हूँ और इस मेरेका नाम होगा कि अमुक वीरने देशके लिए अपने प्राण भी न्योछावर कर दिए। तो

यह देहसे ममता नही है तो फिर और है क्या ? उसने अपने आत्मस्वरूपको पहिचाना नही। इस देहको ही उसने मैं समझ लिया। और उस देहके नामके लिए ही अपने प्राणो को न्यौछावर कर दिया।

सत्य अर्थकी शुद्धता—मुझमे तो केवल एक आत्मा ही आता है। इसके अतिरिक्त अन्य सब पर है। चाहे चेतन हो चाहे अचेतन एक मुझ आत्माको छोडकर अन्य सब पर है। निजको निज और परको पर जाननेकी बात कैसे समझमे आये ? यह बात भी बहुत मार्केकी है। जब तक निज और परका सही निर्णय न होगा तब तक आनन्द पानेका उपाय न बन सकेगा। निज पर का निर्णय तभी कर सकेंगे जब कि पदार्थका सही स्वरूप समझ लें। अपने आपको समझ लें कि यह मैं आत्मा सहज चैतन्य तो निज है और बाकी समस्त परपदार्थ पर है। इसको जाननेके लिए पदार्थका स्वरूप जाने। पदार्थका मोटा स्वरूप यही है कि यह समझमे आ जाय कि जैसे बाहरमे देखते है तो चौकी, चटाई, तखत कपडे आदिक ये सब खण्ड-खण्ड हो जाते है। तो जिसका टुकडा होगा वह पदार्थ नही है, वास्तवमे पदार्थ उतना होता है जितनेका कभी टुकडा न हो सके। जिसको कहते हैं एक निज पदार्थ। दिखने वाले पदार्थोंमे एक पदार्थ उतना है जो एक अणु है, जो किसी प्रकार बनाया नही जाता, किन्तु अपने आप प्रकट होता है। आजके विज्ञानवादमे अणु निर्माण की बात चल रही है अणु बम आदिक जितने है उनमे जो वास्तविक अणु है वह किसी प्रकार बनाया नही जाता। इस लोकमे जो बड़े पदार्थ माने जाते है उन्हे लोग अणु मान लेते है पर वास्तवमे ऐसी बात नही है। वास्तविक अणु वह है जिसका कोई दूसरा टुकडा न हो सके। वह अणु सहज बनता है। तो इन दिखने वाले पदार्थोंमे अणु ही वास्तविक पदार्थ है, और जो ज्ञानवान पदार्थ है, जिनके समझ बनी है उनमे एक पदार्थ कितना होता है ? एक पदार्थ उतना होता है जिसका कि दूसरा टुकडा न हो सके। कोई यह सोचे कि देखो छिपकली की पूँछ टूट जाती है तो शरीरका आधा अग एक जगह पडा हुआ तडफा करता है और दूसरा अग दूसरी जगह पडा तड़फा करता है तो वहा तो आत्माके दो टुकडे हो गए। तो ऐसी बात नही है। वह एक समुद्घात जैसी दशा है। जितनी दूर तक वे दोनो शरीर खण्ड पड़े हुए तडफ रहे है उतनी दूर तक आत्माके प्रदेश फैले हुए है। जीव एक है पर उसके प्रदेश उतनी दूर तक फैल गए है।

अपना अन्तः स्वरूप—अब जरा बाहरी दृष्टिसे बात करें कि प्रदेशोसे अखण्ड जो यह मैं आत्मा हूँ, देहसे निराला केवल एक चैतन्यमात्र उसमे भी वास्तवमे मै क्या हू ? तो वास्तवमें मैं वह हू जो मैं कभी मिट नही सकता। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषायें तो मिट जाती है। कोई निमित्त साधन आश्रय पाकर कषाय जगी, वह आश्रय मिटा, निमित्त

दूर हुआ तो कषाय भी दूर हो गई। इसलिए ये कषायें भी मेरा स्वरूप नही। कषायोकी इच्छा प्रतीक्षा ये सब मेरे नैमित्तिक भाव है। मैं हूँ एक चैतन्यमात्र। तो ऐसा चैतन्यमात्र अखण्ड तत्त्व यह मै हू। पदार्थका स्वरूप है अखण्ड सत् होना और साथ ही साथ अपने आपमे असाधारण गुणमे अनादि अनन्त तन्मय रहना। जैसे मेरे जीवका स्वरूप है ज्ञान तो मैं सदा ज्ञानमे रहता हू। ज्ञानको छोडकर कोई एक समय भी नही टिक सकता। ज्ञान मेरा स्वरूप है। अगर ज्ञान न रहे तो मैं न रहा। कोई यह सोचे कि यह तो अच्छी बात है, अगर मेरा किसी तरह ज्ञान मिट गया तो मैं मिट जाऊँगा फिर झगडा न रहेगा; सो ऐसी बात नही है। आत्मा कभी मिटता नही है। दृष्टान्त जब जब दिया जाता है तो जितनी बातके लिए दिया जाता है दृष्टान्तमे केवल उतनी ही बात नही है। दृष्टान्तमे सारी बातें मिलती है। अगर वृत्तान्तकी सारी बात ले लें तो वह तो टेढी खीर जैसी बात हो जायगी। जैसे एक अधा पुरुष था, उससे किसी बालकने कहा कि बाबा जी हम तुम्हें खीर खिलायेंगे। उस बेचारे अधेने कभी खीर देखा तो था नही, क्योकि वह जन्मसे अधा था। सो वह पूछ बैठा कि खीर कैसी होती है? तो वह बालक बोला–खीर सफेद होती है। कैसी सफेद? बगले जैसी सफेद। अब उसने बगला भी कभी न देखा था जन्मान्ध होनेसे। तो पूछा कि बगला कैसा होता है? तो उस बालकने बूढे अधेके सामने बगले जैसा टेढा हाथ करके कहा कि ऐसा होता है तो ज्यो ही उस अधेने टटोला तो कहा कि मुझे ऐसी टेढी मेढी खीर न चाहिए जो पेटमे गडे। तो बालकको बतानेमे मूलमे गल्ती कहाँ हुई? बताना तो चाहिए था खीरके गुण, पर वह बता बैठा उसका रग। तो इस दृष्टान्तका जितनी बात समझानेके लिए कथन था उतनी ही बात समझ लेना चाहिए। वृत्तान्त देना था गुणका, न कि आकार का। आकारका वृत्तान्त दे दिया इसलिए वह टेढी खीर बन गई। तो दृष्टान्त जितनी बात समझानेके लिए दिया जाता है वही तक रखना चाहिए। जैसे अग्निमे उष्णता न रहे तो अग्नि मिट जायगी। इस दृष्टान्तसे केवल इतना ही प्रयोजन लेना है कि जैसे मान लो अग्नि एक पदार्थ है। उसका स्वभाव है उष्णता। तो वह उष्णता तब तक रहेगी जब तक कि अग्नि है। इसी तरह यहाँ देखो तो आत्मा एक पदार्थ है। आत्माका स्वभाव है चैतन्य, ज्ञान दर्शन। तो तो आत्मामे ज्ञानदर्शन जब तक रहेगा तब तक है आत्मा। आत्मा अनादि है, ज्ञानदर्शन सदा रहता है। तो आत्माका स्वरूप वह है जो सदा नही मिट सकता। ऐसा स्वरूप यह मैं हूँ, और इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है वे सब पर हैं, चूंकि मैं हू तो हू के नाते से जो है वह कभी मिट नही सकता।

आत्माकी अविनाशिता—विज्ञानवादमे भी यही बात सिद्धान्तमे रखी गई है कि जो

है उसकी दशा कैसी ही हो जाय लेकिन है कभी मिट नही सकता। चाहे पानीसे हवा बन जाय, हवासे पानी बन जाय, लेकिन जो है पदार्थ वह कभी मिट नही सकता। मैं हू तो मै अपने स्वभावको कभी नही छोडता। एक स्वभाव पड़ा हुआ है कि मै हर समय बनता रहू, बिगडता रहू और बना रहू। तो बनने बिगडने और बने रहनेका हर पदार्थमे स्वभाव पडा हुआ है चाहे जीव हो, चाहे अणु हो। यह पदार्थके स्वरूपकी बात चल रही है। केवल कहानी किस्सोकी बातें सुन कर मनको खुश कर लेने भरसे आत्माका उद्धार न हो जायेगा। खूब दिल लगाकर जब पदार्थका वास्तविक स्वरूप भलीभाँति समझ लिया जायेगा तो अपनी शान्तिका मार्ग समझमे आ जायगा। संसारमे मुक्तिके मार्गमे लग सकने वाले जीव बहुत थोडे होते हैं। भला बतलावो कि संसारके समस्त संकट सदाके लिए छूट जायें, यह कोई साधारण बात तो नही है, यह बात तो बिरले ही ज्ञानी पुरुषोको होगी। तो उन्ही बिरलो में अपने आपकी गिनती क्यो नही करा लेते? भली भाँति समझ लीजिए कि पदार्थका स्वरूप क्या है? इससे यह ध्यानमे आयेगा कि मैं कितना हू और बाकी जितने अन्य जीव पुद्गल आदि है वे सब अपने अपने मे कितने है? जैसे अन्य देशके लोग मुझसे अत्यन्त भिन्न है इसी प्रकार घरमे आये हुए परिजन भी मेरे से अत्यन्त भिन्न है, यह भली भाँति समझमे आयेगी पदार्थका स्वरूप समझने से।

आत्माके उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपतासे प्रयोज्य शिक्षा—तो यह मैं हू और इस नाते से उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त हू। मैं हर समय बनता रहता हूँ और बिगडता रहता हू और बना रहता हूँ। जबसे मनुष्यभवमे हम आपका जन्म हुआ इससे पहिले भी मैं था। जो था वह बिगड गया और आज मनुष्य बन गया हू। कुछ समय बाद मैं इस मनुष्यभवको छोड़कर जाऊँगा, अन्य किसी पर्यायको धारण करूगा। इस प्रकार अनेक जन्म मरण करके यह जीव बनता बिगडता रहता है, संसारमे भ्रमण करता रहता है, फिर भी बना रहता है। और अब देखिये—इसही भवमे एक ही घरमे पहिले बालक था, फिर जवान हुआ, फिर बूढा होगा, तो इसमे भी बनना बिगडना और बना रहना देखा गया। पर मै एक हू। जो बनता, बिगडता और बना रहता है वह मैं चैतन्यमात्र पदार्थ हू, और इस मुझका सब कुछ जो मुझमे है वह मुझसे बाहर कभी हो नही सकता। और जो मुझसे बाहर है वह त्रिकाल भी मुझमे आ नही सकता।

आनन्दस्वरूप आत्मा द्वारा भ्रमवश क्लेशोंका आमन्त्रण—भला बतलाओ कि दुख है कहाँ, लेकिन इस दुखसे सभी लोग इतना परेशान है कि बहुत-बहुत समझाया जाने पर भी वे अपने दुखको दूर नही कर पाते। अब तो अपना एक ऐसा संकल्प करे कि मै केवल ज्ञानमात्र हू, इसके अतिरिक्त अन्य सब चीजे विनाशीक है। किसीसे मुझमे कुछ सम्बन्ध

नही। बडे बडे काम इस जीवने अभी तक सुख पानेके किए परन्तु वे सभी काम फाल्तू किए। जिन परपदार्थोमे इस जीवका कुछ भी अधिकार नही उनसे सुखकी आशा करके हर समय अनेक प्रकारके सकल्प विकल्प करना है। यह जीव घर द्वार, स्त्री पुत्रादिक परिजन को देख देखकर खुश होता है, उन्हे अपना समझता है, और ये कोई इस जीवके होते हैं नही, यह जीव उनके पीछे नाना प्रकारके विकल्प करता है। अरे यह जीव जो भी विकल्प करता है जब वे विकल्प भी इसके बनकर नही रह पाते तो फिर अन्यकी तो बात ही क्या ? लेकिन धर्मके अतस्तत्त्वके रचिया ज्ञानी सत जन जान सकते है कि ये सब बाह्यमे दिखने वाली चीजें असार है, अशरण हैं, बेकार हैं, इनमे चित्त फँसानेसे लाभ क्या ? जो कुछ बाह्यमे दिख रहा है वह सब फसानेके लिए प्रलोभन है। इनके प्रलोभनमे पडकर यह जीव आत्मकल्याणके लाभ पानेसे वचित रह जाता है। तो मुक्ति पानेके लिए अपने आपको पहिचाननेकी सर्वप्रथम आवश्यकता है। मैं क्या हू ? एक ज्ञानमात्र पदार्थ हूँ और प्रतिसमय बनता बिगडता और बना रहता हू। अब यह छटनी करनी होगी कि मैं अपने आपको क्या बनाये रखूं ? क्या मैं अपने आपको मनुष्य बनाये रहू ? इसमे भी क्या आराम है ? क्या मैं अपनेको पशु बनाये रहू ? इसमे भी क्या आराम है ? जो ससारकी भवभूतियाँ हैं उनको मिटाऊँ और अपने आपके विशुद्ध ज्ञानानन्दके विकासमे आऊँ, इस प्रकार अपनेको बनाऊँ तो मेरा कल्याण है। मैं हू, प्रतिसमय बनता हू, बिगडता हू और बना रहता हू, मैं हू ज्ञानमात्र। मैं अपनेको ससारके सकटोंसे मिटाऊँ और जो आत्मीय तत्त्व है, शुद्ध विकास है उसे प्रकट करूँ, उसके लिए मुझे करना है और उस पर चलकर हमे आत्मशान्ति प्राप्त करना है।

आनन्दके उपायमें आत्मत्वका चर्चण—आत्मतत्त्वके सम्बधमे पदार्थके स्वरूपके नाते चर्चा चल रही है। मै आत्मा सत् हू और चैतन्य गुणमय हू। पदार्थमे जो अन्य पर्यायें हुआ करती है, गुण और पर्यायके समुदायका नाम सत्त्व है। गुण कहते है सत्त्वको और पर्याय कहते हैं परिणमनको। तो आत्मामे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द और श्रद्धाकी प्राप्ति ये ५ बातें विशेष करके जानना है। आत्मामे जाननेकी शक्ति है, तभी तो यह नाना प्रकारसे जानता रहता है। आत्मामे दर्शनकी शक्ति है, तभी तो अपने आपका कुछ न कुछ समझ किए रहता है। आत्मामे श्रद्धानकी शक्ति है, तभी यह जीव कुछ न कुछ विश्वास बनाये रहता है। चाहे सही विश्वास बनाये, चाहे झूठा, पर विश्वास रखनेकी आत्मामे शक्ति है। आत्मामे चारित्रशक्ति है। तो यह आत्मा किसी न किसी बातमे रमा रहता है। कोई विषयो मे रमे, कषायोमे रमे अथवा अपने स्वरूपमे रमें, ये इसके रमनेकी विशेषतायें हैं। स्वभावमे रमण हो या विभावमे, पर कही न कही रमण करनेका स्वभाव इस जीवमे पडा हुआ है।

आत्मामे आनन्दशक्ति है। यह जीव चाहे सुखी हो, चाहे दुखी हो अथवा सुख दुःखसे परे शुद्ध आनन्दमे आये, ये सब आनन्द शक्तिके कारण है। ये सुख और दुख आनन्द शक्तिके विभावपरिणमन है। आत्माका स्वभावपरिणमन है आनन्द। आत्मशक्तिके बारेमे यह विश्लेषण समझना चाहिए। जब आत्मा और आनन्द दोनोका स्वरूप ज्ञात हो तभी आनन्द पाने का उपाय किया जा सकता है।

गुण पर्यायसम्बन्धी सिद्धान्त--अब अन्तर्रहस्यकी जानकारीके लिए यह विश्लेषण करना होगा कि गुण और पर्याय ऐसी एक ही चीज है या अन्य-अन्य चीज है? पर्याय-परिणमन हुए इस कारण पर्याय गुणसे भिन्न नही। जैसे कहते है कि चटाई, चौकी, दरी आदिक ये सब भिन्न-भिन्न हैं, अणु-अणु भिन्न-भिन्न है। एक जीव दूसरे जीवसे अत्यन्त भिन्न है। इस तरहसे गुण और पर्याय ये एक ही प्रदेशमे है। आत्माके जिस प्रदेशमे गुण है उस ही प्रदेशमे पर्याय है। और जिस गुणकी जितनी पर्याय है वह उस गुणकी अवस्था है। तो जो परिणमन जिस कालमे है उस कालमे वह परिणमन देहसे निराला नही है। देहकी ही दशा है, शक्तिकी ही दशा है। समस्त शक्तियोको एक शब्दसे कहा जाय तो उसका नाम पदार्थ है, और पदार्थकी भिन्न-भिन्न शक्तियाँ, भिन्न-भिन्न अवस्थाओकी दृष्टि से विश्लेषण किया जाय तो वे भिन्न नही है, लेकिन यह जानना कि गुण तो है सामान्य, सदा रहने वाला और जब जो पर्याय होती है वह पर्याय उस समय की है। ज्ञानपरिणमन चलता है तो जो जिस समय ज्ञानमे आ रहा है वह शाश्वत न रहा वह बदल जायेगा, फिर दूसरा व्यक्ति ज्ञानमे आयेगा, लेकिन यह समस्त ज्ञान बनते रहनेकी शक्ति जो है, सहज ज्ञान जो है वह शाश्वत है, एक है। ज्ञानशक्ति शाश्वत है, और ज्ञानशक्तिके जो परिणमन हैं, जो अवस्थाये हैं, यह जानन बदलता रहता है। इस कारण पर्याय है क्षणिक और गुण है शाश्वत। गुण और पर्यायमे कालके भेदसे भिन्नता है। गुण तो रहे आत्मामें सदा और पर्याय होती है आत्मामे क्षणिक। तो कालके भेदसे भी भिन्नता समझमे आयी और लक्षणके भेदसे भी भिन्नता समझमे आयी। गुणका लक्षण है पदार्थकी शक्ति और पर्यायका लक्षण है पदार्थकी व्यक्ति। एक अवस्था। परिणमन जिसका भिन्न भी है और अभिन्न भी, तो पदार्थ जाननेके लिए हमे तीन बातें जाननी आवश्यक होगी। पदार्थ गुण और पर्याय। पर्याय कहो अथवा द्रव्य कहो। तो गुण हुई शक्ति और पर्याय हुई व्यक्ति, और द्रव्य क्या हुआ? इन समस्त गुणोका जो एक समुदाय है वह द्रव्य है। द्रव्य शक्तिकी अपेक्षासे भिन्न-भिन्न प्रकारके देखे गए है, जो पिण्डरूप है वह द्रव्य है। तो यहाँ यह समझना है कि पर्याय गुणोंसे कथंचित भिन्न है, कथचित अभिन्न है। द्रव्य एक अखण्ड सत् होता है ऐसा श्रद्धान अपने आपमे घटाते जाइये। मैं जीव हू और मुझमे जानने देखने और

विश्वास करने की शक्ति है, तभी ये सब काम हो रहे है। कभी तो जान रहे है, कभी विचार कर रहे है, कभी रमण किया करते है।

परमार्थतः अन्तस्तत्त्वकी दृष्टव्यता व अवक्तव्यता—मै जो जीव हू उस अपने स्वरूप को कह नही सकता। किसी भी पदार्थके स्वरूपको कभी कहा नही जा सकता। केवल कुछ शब्द ही बोले जा सकते है। मगर शब्द तो सकेत मात्र करते है। स्वरूप समझनेके लिए उस सकेतको नही पकडना है। वह शब्द सकेत जिस तत्त्वके लिए किया जाता है, उस तत्त्व को पकडना है, न कि शब्दको। जैसे कोई वैद्य एक दो चपरासियोको लेकर किसी जगलमे जडी बूटिया दिखाने गया। उस वैद्यके हाथमे एक बेंत था। वह उस बेतसे सकेत करता जाता था–देखो यह अमुक चीजकी दवा है, यह अमुक चीजकी। तो वहा उस बेतको नही देखना है। बेत तो सकेतके लिए है। देखना है दवाओको। अथवा जैसे मा अपने बच्चेको अगुलीके इशारेसे चन्द्रमा दिखाती है तो वह बच्चा उस चन्द्रमाकी ओर देखने लगता है। अथवा वैद्य चपरासियोको बेंतके सहारेसे दवायें दिखाता है तो चपरासी उन दवावोको देखने लगते है। कही वह बच्चा अगुलीसे दिखाये जानेपर अगुली नही देखता और न कही वे चपरासी बेत द्वारा दवायें दिखाये जानेपर बेत नही देखते, वह अगुली और बेंत ये तो सहारा मात्र है। ऐसे ही श्रद्धा, दर्शन, ज्ञान, चरित्र, आनन्द, शक्ति आदि ये सब आत्मज्ञान करनेके सहारा हैं। इनके द्वारा आत्माका परिचय किया जाता है। जब इन शब्दोका सहारा लेकर परिचय करना चाहे तो आत्माका परिचय किया जा सकता है। मैं हू क्या ? इन समस्त श्रद्धा, दर्शन आदिक शक्तियोका समुदाय। मै एक अखण्ड अवक्तव्य पदार्थ हू। कहनेमे नही आता हू। जैसे हम अपने आपको जीव शब्दसे कहते है तो जीव वह जो प्राणोसे जीवे। जो कुछ मैं हूँ समूचा वह जीव शब्दसे नही जाना जा सकता। मै ज्ञाता हू। ज्ञायक अथवा ज्ञाता इन शब्दोसे कहकर भी मै अपनेको पूरा नही बता सकता। इस ज्ञानकी मुख्यतासे मै अपनेको कैसे कह सकूं ? आत्मा हू मै। आत्मा शब्द कहकर मै अपनेको पूरा नही बता सकता। अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते हैं। तो गुण कहने पर भी एक ज्ञानशक्ति ज्ञानरूप इसका ही तो हम ज्ञान कर सकते। आत्मा शब्द कहकर 'मे ज्ञानमात्र हू' यह नही बता सकते। तो आत्मा एक द्रव्यसे किसीको नही कहा जा सकता। शब्द जितने है वे विशेषण हैं। पदार्थके कहे जाने वाले शब्द तो यही हैं। ये सब ध्रुव है। तो जब इस आत्मामे हम एक एक गुणकी विवक्षा करके निरखते है तो इसका नाम गुण है। और जब हम पर्यायपर दृष्टि देते हैं तो मै यह द्रव्य हू। अब आप समझे कि गुण और द्रव्य ये भिन्न-भिन्न वस्तु हैं क्या ? लक्षणकी दृष्टि से देखे तो भिन्नता समझमे आती है। लक्षण तो एक होता है, उसमे भिन्नता नही होती, पर गुण भिन्न-भिन्न प्रकारके हुआ करते हैं। इतने एक सक्षिप्त कथनके बाद इस

आये कि मै एक आत्मा हूँ। मुझमे अनन्त शक्ति है। जितनी शक्तिया है उतनी तरहके परिणमन चल रहे है। तो मै एक द्रव्यगुण पर्यायात्मक हूँ। मै एक द्रव्य हू। जैसे म एक जाननहार चेतन हूँ उसी प्रकार जगतके समस्त जीव जाननहार चेतन है। वे सब एक एक द्रव्य है। ऐसे भी द्रव्य है जो जानते नही।

पदार्थोंका विस्तार--अब पदार्थका सक्षिप्त स्वरूप जाननेके बाद यह जिज्ञासा बनाये कि ऐसे द्रव्य है कितने जगतमे ? तो जगतमे द्रव्य अनन्तानन्त है क्योकि अभी द्रव्यका स्वरूप जो दिखाया गया है उसकी जानकारी हुई है कि जितने गुण परिणमन होते है, वे द्रव्य नही होते। तो जितने परिणमन होगे उतने द्रव्य। जैसे जब हम सुखी होते है तो अकेले ही सुखी होते है, घरके अन्य स्त्री पुत्रादिक तो नही सुखी हो जाते। उन सभीका परिणमन न्यारा है, मेरा परिणमन न्यारा है।

यही बात बतलाते है कि मै द्रव्य जुदा हूँ। इस तरह तकेंगे तो अनन्त जीव है। इसी तरहसे बाहरमे जितने जो कुछ पदार्थ है पुद्गल है, वे भिन्न-भिन्न है। द्रव्य अनन्तानन्त है, उनसे मेरा कुछ भी सुधार बिगाड नही होता। वे सभी पदार्थ चेतन हो अथवा अचेतन, सभी पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न है। कुछ द्रव्य ऐसे होते है जिनमे ज्ञानदर्शन नही है और कुछ ऐसे होते है जिनका यहाँ कुछ भी नही है और कुछ होते है अचेतन। लेकिन इस प्रकार के भेद करनेसे हमे पदार्थके गुण समझमे नहीं आते। उनमे उपादान गुण क्या है, यह समझ मे नही आया। इस कारण चेतन अचेतन करके दो प्रकारसे बताना यह किसी खास बुद्धि को पैदा करनेके लिए है, परतु परिचय असाधारण गुणोसे होता है। अब कोई यो भेद करे कि पदार्थ दो प्रकारके है मूर्त और अमूर्त। मूर्तके मायने है कि जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श आदि पाये जाये। लेकिन मूर्तिक कहकर पुद्गलका गुण नही बताया जाता अमूर्तका अर्थ है जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्शादि न हो। यह मूर्त और अमूर्त बताना किसी विशेष बुद्धिके लिए है। पर असाधारण गुणकी अपेक्षासे ये गुण जाति नही कहे जा सकते। असाधारण गुणकी दृष्टिसे उन अनन्तानन्त द्रव्योको ६ साधारण गुणोमे बाँटा जा सकता है--जीव, पुद्-गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। छोटे-छोटे बच्चोको इतनासा पढा दिया जाता है कि द्रव्य ६ प्रकारके हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। मगर इतने मात्र ज्ञान कर लेनेसे कही उनका आत्मकल्याण न हो जायगा। यह भी उन बच्चोको सिखा दिया जाता कि देखो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पापोको नही करना चाहिए। ये सब बाते कोई मौलिक नही है। कितनी ही बाते नाना प्रकारसे की जा सकती हैं। झूठे रूपमें अथवा सच्चेरूपमे, हर तरहसे ये बाते चल सकती है, लेकिन एक मौलिक परिज्ञान करनेके लिए यहाँ कहा जा रहा है। द्रव्य, गुण और पर्यायोको समझें, इससे हम भेदविज्ञान कर सकेंगे। यह तो मै हू और बाकी सब परपदार्थ है।

आनन्दलाभके लिये निज कारण परमात्मतत्त्वकी आज्ञा मानकर उसपर चलनेकी आवश्यकता—यहाँ हितके मौलिक उपायकी बात इस प्रकरणमे कही जा रही है। यह बात सुननेमे कुछ कठिन लग रही होगी। कोई इन बातोको समझकर ग्रहण कर सके अथवा न ग्रहण कर सके, लेकिन कुछ भी दृष्टि देकर अगर इस प्रकरणको कोई सुने और भेदविज्ञान कर लेवे तो उसका निश्चय ही भला हो जायेगा।

एक बार बादशाहने बीरबलसे कहा कि यह बताओ कि हमारी प्रजा आज्ञाकारिणी है या नही? तो बीरबल बोले—महाराज आज्ञाकारिणी है भी और नही भी है। · नही कैसे? अच्छा हम तुम्हे कल इसकी परीक्षा करके दिखा देगे। बीरबलने क्या किया कि वही आगनमे एक बडा हौज साफ करवा दिया और सारे राज्यमे यह ऐलान करवा दिया कि बादशाहको कलके दिन बहुत दूध चाहिए। राज्यके सभी लोग आज रातको एक बजे एक एक किलो दूध ले आवें। अब क्या था? राज्यके सभी लोगोने यह सोच डाला कि बहुत सा दूध बादशाहके यहा जायेगा। एक हम अगर पानी ही वहा दे आवें तो कुछ पता तो न पड सकेगा। राज्यके सभी लोगोने वैसा ही किया। सुबह देखा गया तो सारा हौज केवल पानीसे भरा था। तो बादशाहसे बताया बीरबलने कि देखिये महाराज जिस प्रजाको आप बडी आज्ञाकारिणी समझ रहे थे वह कहा आज्ञाकारिणी है? बादशाह उस घटनाको देखकर दग रह गया। तो ऐसे ही समझो कि अगर कोई अपना धर्मात्मापन ऊपरी ऊपरी दिखाता है और समझता है कि सभी लोग तो धर्म पाल रहे हैं, एक मैंने अच्छी तरह न पाला तो क्या होगा? यदि ऐसा ही सभी लोग सोच लें तो वह तो एक बडी विडम्बना बन जायगी। जब सभीने वैसा ही सोच लिया तो वह तो शून्य बराबर रहा। यदि सभी लोगोमे से एक भी व्यक्ति धर्मात्मा बन गया तो भला एक तो वहाँ रहा। उस एकके प्रसगमे दूसरे लोग भी धर्मपालनमे आ सकेंगे। तो धर्मपालना किसे है, धर्म है क्या चीज? इसको समझ लो। धर्मपालना है आत्माको और धर्म है आत्माका स्वभाव। आत्माके अविकार स्वभावको ज्ञानमे लिए रहना, इसी बातके लिए प्रयत्न करना है तभी जीवनकी सफलता है। यदि यही एक बात न की, अन्य अनेक बातें करते गए तो उससे जीवनकी सफलता नही है।

पदार्थोंके विविध परिचयका प्रयोजन—एक इस ही बातके लिए यह प्रकरण चल रहा है कि मैं समझूँ कि द्रव्य क्या है, गुण क्या है, पर्याय क्या है? बताया गया कि द्रव्य ६ जातियोमे विभक्त है। ५ अथवा ७ जातियोमे द्रव्यविभक्त क्यो नही हुए? तो उसका उत्तर यह है कि द्रव्य तो अनन्तानन्त है। एक परिणमन दूसरेमे न बने तो समझ लो कि वे भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं। एक द्रव्यका परिणमन उसही द्रव्यमे रहता है अन्यमे नही। ये सभी द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं, ऐसी ही बात अणुवोकी भी है। द्रव्यका अणु-अणु भिन्न-भिन्न

है। एक द्रव्यका उसमे जितना परिणमन हो सकता है उसे एक जाति मान लो। द्रव्यकी अपेक्षासे ६ प्रकारके द्रव्य माने गए है। जैसे जीव द्रव्य अनन्तानन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य। जिनका परिणमन सदृश हो सकता है उनको एक जातिमे मान लो। जातिकी अपेक्षासे जब देखेगे तो द्रव्य ६ जातिके मिलेगे। जो जाननहार है वे जीव कहलाते है। जो रस गंध वाले है वे पुद्गल जातिके कहलाते है। जो जीव पुद्गलके चलनेमे सहायक हो वह एक धर्मद्रव्य है, वह संख्या मे भी एक है और जातिमे भी एक है। जो जीव पुद्गलके ठहरनेमे मदद करे वह है अधर्मद्रव्य। वह जातिमे भी एक है और संख्यामे भी एक है, आकाश जीव और पुद्गलको स्थान देनेमे सहायक है, वह सख्यामे भी एक है और जातिमे भी एक है और असख्यात कालद्रव्य है जो कि जीव पुद्गलके परिवर्तन करनेमे सहायक है। इस तरह पदार्थोकी संख्या जाना, जाति जाना और पर्याय जाना। अब इस निर्णयमे आ जायें कि यह मैं आत्मा सर्वसे निराला एक द्रव्य हू। यही मैं एक मेरा सर्वस्व हू। एक इस ही की शरण लेनेसे मेरे आत्माका उद्धार है। जगतके अन्य पदार्थोमे लगाव रखनेसे मेरे आत्माका उद्धार नही है।

पदार्थ परिचयका प्राथमिक उपाय लक्षणपरिचय—पदार्थके परखनेका उपाय है लक्षणका परिज्ञान करना। पदार्थ ६ जातिके बताये गए हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये ६ जातिके पदार्थ इस तरह कहे गए है कि जीव-जीव जितने हैं वे सब एक स्वरूप है। जीव तथा पुद्गल अनन्तानन्त है धर्म, अधर्म, आकाश ये एक एक है और कालद्रव्य असंख्यात है। जिनके परिणमन शक्ति है वे सब एक जातिमे पाये जाते है। ये ६ जातियोमे विभक्त अनन्तानन्त पदार्थ है। मिले हुए पदार्थोमे से किसी एक पदार्थ को अलग करा देने वाला जो स्वरूप रखा है वह चर्चाका कारण बनता है। जीव तथा पुद्गलमे साधारण गुण क्या है, इसे समझना होगा। असाधारण का अर्थ है कि जो अन्य द्रव्योमे न पाया जाय। जीवमे श्रद्धा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्द आदिक गुण है। श्रद्धा—जिस गुणके कारण जीव अपना विश्वास बनाये रखे। ऐसा विश्वास करनेका, जानकारी करनेका, प्रतिभास करनेका गुण केवल जीवमे छोडकर अन्य किसीमे न मिलेगा। दर्शन—जिस गुणके कारण यह जीव अपने स्वरूपका स्पर्श कर सके। ज्ञान—जिस गुणके कारण यह जीव अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान कर सके। चारित्र—किसी न किसीमे रमण बना रहे उसे चारित्र कहते हैं। यह जीव कही न कही रमता अवश्य है। भगवान अपने स्वरूपमे रम रहे है। जो संसारी जीव हैं वे अपने विषय कषायोमे रम रहे हैं। तो चारित्रगुण भी जीवमे पाया जाता है अन्यमे नही। इसी प्रकार आनन्द गुण भी जीवमे पाया जाता है। यह स्पष्ट समझमे आ रहा है कि इन पुद्गलोमे आनन्दगुण नही है। ये पुद्गल जल जाये, सड जाये, किसी भी स्थितिको प्राप्त हो, उनको कोई तकलीफ नही। तो ये

धारण गुण पुद्गलमें पाये जाते हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये पुद्गलके असाधारण गुण हैं। ये असाधारण गुण किसी पुद्गलमे व्यक्त हैं किसीमे नही। जैसे—हवा—इसमे रूपादिक गुण कहाँ व्यक्त है ? जब ये पदार्थ बदलकर एक दूसरे रूप हो सकते है—जल पृथ्वी हो जाय, पृथ्वी जल हो जाय, अग्नि जल हो जाय, आदिक परिणमन आपसमे एक दूसरेके साथ हो सकते है, पुद्गलमे ये गुण कही व्यक्त रूपसे हैं और कही अव्यक्त रूपसे है। तो इससे सिद्ध होता है कि ये सभी पुद्गल रूप, रस, गंध, स्पर्शमय हैं। ये असाधारण गुण होते है जो कि सदा पदार्थमे रहते है।

किसीके स्वरूपका किसी अन्यमें पहुँचनेकी असंभवता—कभी एक द्रव्यके ये असाधारण गुण दूसरे द्रव्यमे नही पहुच सकते। जैसे जीवद्रव्यके जो असाधारण गुण हैं श्रद्धा दर्शन ज्ञानादिक वे एक द्रव्यसे निकलकर दूसरे द्रव्यमे नही जाते। इसी तरह एक पुद्गलके ये असाधारण गुण एक पुद्गलसे निकलकर दूसरे पुद्गलमे नही जाते। जब पदार्थका स्वरूप इस ढगसे समझमे आ जाता है तो ज्ञानियोका यह सकल्प हो जाता है कि मैं आत्मा तो सर्वसे निराला हूँ। क्योंकि किसी अन्य द्रव्यसे कोई भी चीज मुझमे त्रिकाल नही आती। और न मैं ही किसी अन्यरूप हो सकता हू। एक पदार्थकी कोई भी चीज किसी अन्य पदार्थ मे नही पहुचती। धन्य हैं वे जीव जिनका यह निश्चय हो जाय कि किसी भी पदार्थकी गुण शक्ति पर्याय किसी अन्य पदार्थमे नही पहुँचती। मेरा कही कुछ दूसरा है ही नही। मेरा मात्र मैं ही हू, मैं अपने स्वरूपरूप हू, अपने स्वरूपमे ही रहता हुआ अपना परिणमन करता हू। मेरा स्वरूप है इतना ही मात्र मेरा आत्मा है। इतना जब निश्चय हो जाता है तो उस जीवको सासारिक सकटोसे मुक्ति प्राप्त करने व शाश्वत आनन्द प्राप्त करनेका मार्ग प्राप्त हो जाता है। अपना आत्मीय आनन्द पानेके लिए भेदविज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है।

बाह्यसमागमके लगावकी विषरूपता—पुण्यके उदयमे जो सम्पदा आज प्राप्त हुई है, वह तो मीठा विष है। जैसे मीठा विष खानेमे तो मधुर है पर उसका परिणाम कटुक है। इसी तरह ये सासारिक सुख समागम भोगनेमे तो मधुर लगते हैं पर इनका परिणाम कटुक है। इस जीवकी सासारिक सुख समागमकी स्थितिमे इस ओर दृष्टि नही जाती कि मैं जैसे परिणाम करता हू वैसा कर्मबन्ध होता है और उसका फल मुझे अवश्य प्राप्त करना पडेगा। ये जीव तो कुछ पुण्योदयकी स्थिति पाकर समझ लेते है कि हम तो एक खास व्यक्ति हैं। दुःख तो अन्य लोगोको मिलता है, हमे दुःख क्यो प्राप्त होगा ? ऐसी धारणा मोही जीवोकी होती है। उन्हे यह पता नही कि जो कुछ मैं करूँगा उसका फल मुझे ही भोगना होगा। मेरे किए हुए कर्मोका फल उदयमे अवश्य आयगा। अपनेको इस ससारमे अकेला समझकर,

पदार्थोंका स्वरूप निराला निरखकर इस ओर दृष्टि जानी चाहिए कि मैं तो एक अपने आपका ही अधिकारी हू, यहाँ मेरा कोई नही है। ये सब बाते एक आत्माके स्वरूपके परिचयसे प्राप्त होगी।

अन्तः परिचयमें ही परिचयकी सर्वस्वता—एक ज्ञ त स्वरूपके परिचयकी बात यहाँ कही जा रही है। जीवमे जो भी गुण पाये जाते है वे अन्य पदार्थमे नही पाये जाते। पुद्गल के भी जो रूप, रस, गंध, स्पर्शादिक असाधारण गुण हैं वे भी एक पदार्थसे निकलकर दूसरे पदार्थमे नही जाते। धर्मद्रव्यका काम है जीव पुद्गलके चलानेमे सहकारी होना, अधर्म द्रव्य काम है जीव पुद्गलको ठहरानेमे सहायक होना, आकाशद्रव्यका काम है जीव, पुद्गलको स्थान देना, और असख्यात कालद्रव्यका काम है जीव, पुद्गलमे परिणमानेका काम करना। इस तरह ये असाधारण गुण पदार्थमे पाये जाते है। जिस जातिके जो गुण बताये गए है वे उस जातिके पदार्थमे पाये जाते हैं, न उससे कम हो और न अधिक। इस कारण निजको निज व परको पर जान लेनेसे सहज वैराग्य बढता है। किसी भी परपदार्थसे मेरा कुछ सम्बध नही। मैं परपदार्थोंको क्यो अपने आपमे लूं? एक निजका परिचय करना और परपदार्थोंको उपयोगसे हटाना। इस सहज उदासीनताके कारण जो अपने आपमे विश्राम मिलता है वही वास्तविक आनन्द है। अपने आपको आनन्द पानेके लिए अपनेको सबसे निराला समझना जरूरी है, और सबसे निराले अपने आपको तब समझ सकते है जब सच्चा ज्ञान करें। जितने भी ज्ञान है वे ज्ञान भेदविज्ञानके कारण होते है, लेकिन सामान्य रूपसे यदि जाने कि यह मैं जीव सबसे निराला हूं, अन्य बाकी समस्त जीव पुद्गल आदिक परपदार्थ मुझसे अत्यन्त निराले हैं, इतना जान लिया बस समझो कि उसने सारे विश्वको जान लिया। जैसे किसीको सनीमा देखनेकी रुचि नही है और उससे किसीने कहा कि भाई सनीमा देखने चलोगे, तो वह कह देता है कि क्या रखा है वहाँ? मैंने तो यहीसे उस सनीमे का सारा परिज्ञान कर लिया। तो जिसने जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनका स्वरूप अच्छी तरह जान लिया उसने समझो विश्वका सब कुछ जान लिया। वे सभी पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न है, उनसे मेरा कुछ भी उद्धार नही। जिसने निजको निज पर को पर जान लिया उसने समझो सारे विश्वको जान लिया।

आत्मपरिचय करके स्वरूपमग्नताके पौरुषका अनुरोध—भैया! अपने आत्माका परिज्ञान करना सबसे आवश्यक कार्य है। यहां आत्माका स्वरूप बताया गया है। यदि अपना जीवन सफल करना है तो यह जानना होगा और निर्णय रखना होगा कि ये धन वैभव परिजन मित्रजन आदि असार है, इनसे मेरा कुछ भी हित न होगा, ये मेरे बिगाडके ही कारण बनेगे। मेरा स्वरूप क्या है? मै चैतन्यमात्र हू। जो जीव इस चैतन्यभावका ही

सहारा लेगा, उसको ही दृष्टिमे रखेगा तो उसका भला होगा और जो अपने चैतन्यभावका सहारा न लेकर परपदार्थोमे ही दृष्टि रखेगा, परपदार्थोके पीछे ही अपनी दौड लगायेगा वह तो विकल्प ही मचाता रहेगा, अपना कल्याण न कर पायेगा। यह बात यदि सत्य हो तो मान लो और असत्य हो तो न मानो। जीवका स्वभाव है कि वह किसी भी बातको स्वय जान ले। जब घरका कोई बडा आदमी बाजारसे लौटकर कुछ साग सब्जी आदि लेकर आता है तो बच्चे लोग दौड पडते है यह जाननेके लिए कि थैलेके अन्दर क्या है ? अथवा कोई हवाई जहाज ऊपर उड रहा हो तो प्रकृत्या सभीकी निगाह दौड जाती है उसके बारेमे जानकारी करने के लिए। तो सभी जीवोमे प्रकृत्या जानकारी करनेकी बात चित्तमे रहती है। कोई यदि उल्टी बात भी कहता है जिस बातसे किसी दूसरेको कुछ मतलब नही है, कुछ लेना देना नही है फिर भी उस दूसरेके मनमे यह चाह बनी रहती है कि इसका हम यथार्थ ज्ञान कर लें। जब प्रत्येक चीजका यथार्थ ज्ञान करने की हम आपमे आदत बनी हुई है तो फिर अपने आत्माका यथार्थ परिज्ञान करनेमे आलस्य क्यो किया जा रहा है ? जीव क्या है, पुद्गल क्या है, ये दिखने वाले समस्त पदार्थ क्या हैं, इनका स्वरूप क्या है, सबका यथार्थ परिज्ञान तो कर ही लेना चाहिए। एकस्वरूप परिचयकी बात कही गई है। यह जीव पदार्थ सत्यज्ञानमय है, चैतन्यस्वरूप है। मै चैतन्यस्वरूप हू पर देखिये—मेरे जितने विचार विकल्प वितर्क चलते है वे सब मेरे स्वरूप नहीं हैं। ये तो नैमित्तिक भाव है, किसी कार्यसे ये उत्पन्न हुए हैं, पर ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। मै इन समस्त विभावोसे कषायोसे अपने आपको न्यारा करके अपने स्वरूपमे मग्न होऊँ तो मेरा कल्याण होगा। परपदार्थोके लगावसे तो जीवकी बरबादी ही है।

आत्मकल्याणके लिये आत्मपरिचयकी साधकतमता—अपना कल्याण करनेके लिए यह परिज्ञान करना आवश्यक है कि इस मुझ आत्माका वास्तविक स्वरूप क्या है ? इस मुझ आत्माको जो आनन्द चाहिए वह आनन्द है क्या चीज, इसका यह सक्षेपमे विवरण है कि आनन्द सम्बंधित बाते तीन हुआ करती हैं—दुख, सुख और आनन्द। इस दुखको तो कोई चाहता ही नही। ससारका यह सुख भी आकुलताओसे भरा हुआ है। इस सासारिक सुखमे आनन्द नहीं है, वास्तविक शान्ति नही है। उस आत्मीय आनन्दका चिन्तवन करनेसे बहुत कुछ परिचय हो जायगा। आनन्द एक ऐसी चीज है जो ध्रुव है। वह आनन्द है स्वाधीन। अपने आपका परिज्ञान रहना जितना अधिक बनता चला जायगा उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होता चला जायगा। लोग तो अपना निजी घर वन गया, निजी दूकान हो गई, निजी सारे काम काज हो गए तो समझ लेते हैं कि हम तो स्वतत्र है, पर स्वतत्र हैं कहाँ ? केवल स्वतत्र अपनेको मानते हैं। अरे घर, द्वार, कुटुम्ब परिजन आदि जिन पर-

पदार्थोंके पीछे लगाव लगा रखा है उससे निरन्तर परतंत्रता ही तो बनी रहा करती है। मैं ज्ञानमय हू, अपनेको ज्ञानस्वरूप ही अनुभवमे लिए रहू तो यह तो है वास्तविक स्वतंत्रता और वास्तविक स्वतंत्रता मिलने पर ही सत्य आनन्द प्राप्त होगा, अन्यथा आनन्द नही प्राप्त हो सकता। स्वरूपकी बात यह है कि मैं आत्मा हू एक अमूर्त, जो कि पकडनेमें नही आ सकता, देखने, सूघने आदिमे नही आ सकता; जो छेदा, भेदा जलाया आदि नही जा सकता। ये दु ख सुख परिणमन होते है आत्मामे, पर ये आनन्दगुणके विकृत परिणमन है। जब कभी शरीरमे कोई फोडा हो जाता है तो लोग कह उठते है कि हमारे शरीरमे इस जगह बडा दर्द है, पर वह दर्द शरीरमे नही है, आत्माके सर्व प्रदेशोमे वह दर्द है। दर्द तो होता है जीवके मगर वह दर्दका दु ख होता है शरीरमे उत्पन्न हुए फोडासे। इस कारण उसी पर दृष्टि रखकर कहते हैं कि मेरे शरीरके इस अंगमे फोडेके कारण बडा दर्द है। जो यह कहते हैं कि हमारे इस जगह बडा दर्द है तो निमित्तपर आरोप करके ऐसा कहते हैं। बहुतसे लोग तो ऐसा कहते है कि खैर दर्द शरीरमे न सही, आत्मामे ही सही। चलो कल्पनासे ही। मेरा यह दर्द आत्माके सर्व प्रदेशोमे ही सही। शरीर तो बाह्यपदार्थ है। तो शरीरमे दु ख नही होता है और शरीरमे सुख नही होता है, ये सुख दु ख आत्मामे ही होते है। ये सुख दु उ आनन्दगुणके ही विकृत परिणमन है। तो ये सासारिक दु ख सुख आकुलतासे ही भरे हुए है। इन सासारिक सुख दु खोसे शान्ति नही प्राप्त होती। शान्ति तो एक आनन्दमे ही है। स्वतत्रतामे, स्वाधीनतामे शान्ति है। यह अपने आपको समझ लेना कि मैं एक आत्मा हू, अन्य किसी भी परपदार्थसे मुझे शान्ति नही प्राप्त होती। बाह्य मे कुछ भी हो, ये बाह्य पदार्थ जब जैसा चाहे परिणमते है परिणमे। इस प्रकारकी बुद्धि जब जगती है तब ही इस जीवको शुद्ध आनन्द प्राप्त होगा। तो शान्ति प्राप्त करनेके उपायमे इन दो बातोको कहा गया है कि आनन्दका स्वरूप जानो और आत्माका स्वरूप जानो।

पदार्थोंके निर्णय करनेके उपायोंकी जिज्ञासा—आनन्द पानेके लिए आनन्दके स्वरूप का और आत्माके स्वरूपका परिज्ञान करना अति आवश्यक है। इस सम्बन्धमे कुछ अभी कहा गया था। अब आत्माका संक्षिप्त स्वरूप और आनन्दका संक्षिप्त स्वरूप जानकर आगे चलिये। चूंकि यह बात कही गई थी कि ये सब बाते पदार्थोंके स्वरूपका निर्णय करनेसे ही हो सकती है, इससे अब यह जिज्ञासा की जा रही है कि पदार्थोंका निर्णय किन उपायोसे होता है ? पदार्थ सत् है, उत्पादव्ययध्रौव्य वाला है, अखण्ड है, अपने-अपने असाधारण गुणको लिए हुए है इत्यादिक रूपसे सक्षेपमे निर्णय बताया गया था। लेकिन अब उस निर्णयका अधिकृत रूप देनेके लिए पूछा जा रहा है कि पदार्थोंका निर्णय किन-किन उपायो

से होता है ? ऋषिजनोने जो पदार्थो के निर्णयके उपाय बताये हैं वे उपाय कई प्रकारके हैं एक तो उपाय लक्षण है। पदार्थों का लक्षण निरखकर पदार्थों के स्वरूपका परिचय किया जाता है। दूसरा उपाय है—प्रमाण। सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते है। सर्वतोमुखी दृष्टियोसे पदार्थों के स्वरूपका वर्णन करना यह प्रमाणका कार्य है। तीसरा उपाय है नय प्रमाणसे पदार्थो को जानकर। फिर उसमे अश अश दृष्टिसे उसका विवरण करना नय है। चौथा उपाय है निक्षेप। लोग किस प्रकारसे स्वरूपके सम्बन्धमे व्यवहार करते हैं। उस व्यवहारकी अपेक्षासे जो पदार्थो का परिचय किया जाता है वह कहलाता है निक्षेप। इन चार उपायो के अतिरिक्त अन्य भी स्फुट उपाय है। जैसे–पदार्थों की श्रेणियोकी सख्या वताना, पदार्थों की सख्या बताना। पदार्थ कहा रहते है, पदार्थका स्वामी कौन है, वह पदार्थ कितने समय तक टिक सकता है, वे पदार्थ कितने प्रकारके होते हैं आदिक अनेक निणय पदार्थ परिचयके उपाय है।

पदार्थों का निर्णय करनेके उपायोंकी जानकारीकी आवश्यकता—पदार्थोंका निर्णय करनेके उपायोका परिचय पा लेना बहुत आवश्यक है। यदि पदार्थो के स्वरूपके परिचयका मौलिक उपाय पा लिया तब फिर सब बातें बहुत सरल हो जायेंगी। जैसे बहुतसे लोग २०–२५ वर्षसे स्वाध्याय करते चले आते हैं और उन अनेकोका ऐसा स्वाध्याय रह जाता है जैसा २० साल पहिले था वैसा ही अब है। कोई ज्यादह अन्तर नही आता। उसका कारण यह है कि वे अपनी बुद्धिमे ऐसा परिश्रम नही करना चाहते कि जिससे रोजके रोज उन्हे पदार्थो के स्वरूपके बारेमे नई-नई बातें मालूम पडे और नई-नई ज्ञानकी धारणा बनायें ऐसा सोचते तक भी नही है। एक रूढिसे चूंकि स्वाध्याय करनेका नियम है, अथवा हमे स्वाध्याय करना है, इस भावसे पुस्तक ली और थोडासा पढा, बस वन्द करके चल दिये। यदि यह मनमे भाव होता कि इसलिए पढना चाहिए कि हमे वस्तुस्वरूपका परिज्ञान हो, अपने सम्बन्धमे अपना परिचय प्राप्त हो, तो अवश्य ही पद्धति बदलती। और यह चाहते कि चाहे कितना ही कठिन लगे मगर मुझे तो इसे समझ करके रहना है। यदि कठिन बातोको समझनेमे श्रम मानकर डरते रहे तो जीवन भर भी कभी प्रगति नही हो सकती। इस अध्यायमे पदार्थो के स्वरूपका परिचय बताया जायगा। यद्यपि वह कुछ थोडा कठिन लगेगा, लेकिन अपने आपको सम्भालकर, उपयोगको निर्मल रख करके, मुझको तो इसे समझना ही है इस तरहसे सुनें, चिन्तन करें तो अवश्य ही यह बात समझमे आ जायेगी।

पदार्थों के निर्णयनके उपायोंमें लक्षण उपायकी विचारणा—अब पदार्थोंका परिचय पानेके उपायोमे प्रथम उपाय जो लक्षण बताया है उसकी चर्चा करते है। लक्षण नाम है

किसका ? बहुतसे मिले हुए पदार्थोंमे से किसी एक इष्ट पदार्थको जुदा कर देने वाला जो चिन्ह है उसको लक्षण कहते है । जैसे मान लो बहुतसे अनाज गेहू, जौ, चना, मसूर आदिक मिले हुए है । अब इनमेसे बताना है कि मसूर क्या चीज है ? तो कहते है कि जो बिल्कुल गोल, चिकना, सही गोल हो वह मसूर है । तो झट वह पहिचान लेता है । उतने सही गोल आकारसे बना हुआ न गेहू है, न जौ और चना है । तो उसे पहिचानकर झट बता देता है कि यह मसूर है । जैसे यहाँ बहुतसे मनुष्य बैठे है, एक मनुष्य पगडी वाला था, उसे बताना था । तो कोई कहता है कि अमुक चन्दको बुलाना । वह पूछता है कि अमुकचंद इनमे कौन से है ? जो पगडी पहिने है । तो वह लक्षण बन गया । बहुतसे मिले हुए पदार्थोंमे जो जुदा कर देने वाला चिन्ह है उसे लक्षण कहते है । इस सम्बधमे बहुत विवरणसे बताया जायगा, जिससे यह मालूम होगा कि यह सदोष लक्षण है और यह निर्दोष लक्षण है ।

लक्षणोंके प्रकार—लक्षण नाम उसका है जो पदार्थका असाधारण गुण हो, अन्य में न पाया जाय, केवल उस ही मे पाया जाय । ऐसे लक्षण दो प्रकारके होते है—एक तो आत्मभूत और दूसरा अनात्मभूत । आत्मभूत मायने—जो पदार्थोंमे मिला हो, पदार्थोके प्रदेश से जुदा न हो और जो पदार्थोके स्वरूपसे प्रदेशसे जुदा हो, केवल सम्बध मात्र हो, उसे कहते हैं अनात्मभूत । तो आत्मभूत पदार्थ होता है पदार्थके प्रदेशमे और अनात्मभूत होता है पदार्थ के प्रदेशोसे जुदा । जैसे अग्निका लक्षण गर्मी है तो इसे आप आत्मभूतमे शामिल कर सकेंगे अनात्मभूतमे नही, क्योकि अग्निके प्रदेशसे अलग गर्मी नही पायी जाती । जैसे छतरी वाले पुरुषका लक्षण छतरी है तो यह अनात्मभूतमे जायगा, क्योकि वह छतरी उस पुरुषमे मिली हुई नही है । तो जो पदार्थके प्रदेशमे हो, उससे अभिन्न हो वह आत्मभूत चिह्न है, और जो चिह्न, तत्त्व उस पदार्थसे जुदा हो वह अनात्मभूत है ।

ये सब बातें इसलिए बतायी जा रही है कि हम आत्माका सही लक्षण जानें । आत्मा का सही लक्षण जाननेके लिए ही अन्य पदार्थोके लक्षणोको जानना पड रहा है, क्योकि मैं समस्त अन्य पदार्थोंसे जुदा हू यह बात कैसे समझी जा सकेगी ? जब अन्य पदार्थोका भी स्वरूप ज्ञानमे आयगा तब बात समझमे आ सकेगी । तो अपने ही स्वरूपके परिचयके लिए परदार्थोंके स्वरूपका भी परिचय करना पडता है । तो हमे सभी पदार्थोका ज्ञान करना है, उसका उपाय बताया जा रहा है, और बहुत ही उपयोगमे आने वाला उपाय है जिसके बिना व्यवहार भी नही चलता, तत्त्वचिन्तन भी नही चलता ऐसा यह एक प्रमुख उपाय है लक्षण का जानना । तो लक्षण दो प्रकारके होते है—एक आत्मभूत और दूसरा अनात्मभूत । जो पदार्थके प्रदेशसे अभिन्न हो वह आत्मभूत है और जो पदार्थके प्रदेशसे जुदा हो वह अनात्मभूत है ।

आत्मभूत लक्षणके प्रकार— आत्मभूत लक्षण दो प्रकारके होते है—एक तो सदा ही आत्माके प्रदेशोमे रहने वाला और एक कुछ समयके लिए आत्माके प्रदेशसे अभिन्न हो गया है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ, विचार आदि ये सब कुछ समयके लिए आत्मामे अभिन्न रूपसे हैं और ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चारित्रशक्ति और आनन्दशक्ति, ये सदाके लिए आत्मामे मिली हुई है। तो आत्मभूत भी दो प्रकारके है। एक शाश्वत आत्मभूत और दूसरा वर्तमान मात्र आत्मभूत। इन लक्षणोके परिचयसे यह बोध हो जायगा कि शाश्वत आत्मभूत तो पदार्थका लक्षण कहा जा सकता है, पर वर्तमान मात्र आत्मभूत किसी समयके लिए, किसी विशेष परिस्थितिमे लक्षण कहा जायगा, पर वह पदार्थका सही स्वरूप न होगा। जैसे आत्मामे ज्ञानशक्ति सदा पायी जाती है तो ज्ञानशक्ति आत्माका सही लक्षण बन जायगा, पर क्रोधादिक कषायें यद्यपि आत्मामे अभेदरूपसे है, जितने समयके लिए हैं, लेकिन सदा नही रहती। ये जीवके लक्षण नही कहे जा सकते। तो आत्मभूत दो किस्मका हुआ—शाश्वत और वर्तमान। शाश्वत आत्मभूत तो एक ही किस्मका है। जो शाश्वत है उसमे भेद क्या, लेकिन वर्तमानमे भेद हो सकता है, ऐसा चिन्ह, ऐसा परिणमन जो इस समय मेरे आत्मामे एकमेक हो रहे हैं लेकिन फिर भी वे नाना किस्मके है। कोई स्वभावरूप हैं, कोई विभावरूप हैं। फर्क इतना ही है कि जो स्वभावरूप आत्मभूत वर्तमान मात्र है, वह अनन्त काल तक रहेगा, पर उसकी आदि है, किन्तु विभावोकी बात देखो उनकी आदि भी है और अत भी है।

वर्तमानमात्र आत्मभूत लक्षणके प्रकार—वर्तमानमात्र आत्मभूत चिन्ह दो किस्मके होते हैं—एक स्वभावपर्यायरूप और एक विभाव पर्यायरूप। वर्तमान मात्र स्वभाव पर्याय क्या ? जैसे विभावमे विकारमे कषायमे यह जीव चल रहा था और अब उसके विभाव दूर हुए तो वह स्वभाव पर्याय बन गई। तो वह चूंकि अतीतकी दृष्टिमे वह शाश्वत नही है, लेकिन भविष्यके लिए शाश्वत है और तब भी पर्यायकी दृष्टिमे शाश्वत धारारूप है। परमार्थत तो समस्त पर्यायें क्षण क्षणके लिए हुआ करती है, इसलिए वर्तमान मात्र स्वभाव पर्याय भी दो प्रकारके होते है। कुछ तो अपूर्ण होती हैं और कुछ पूर्ण होती हैं। जैसे क्षायोपशमिक ज्ञान पैदा हुआ है तो जानना यह एक आत्माके स्वभावकी परिणति है जो कि सम्यक् हो रही है लेकिन वह अपूर्ण है, इसी प्रकार सकलचारित्र, देशचारित्र ये अपूर्ण है, इनमे भी ऐसी दृष्टि लगाकर निरखें कि जैसा स्वभावका ढग है उस दृष्टिसे कहा जा रहा है स्वभावपर्याय और जो कर्मोकी मर्यादाके कारण रुकाव है उसकी अपेक्षा कहा जा रहा है अपूर्ण और पूर्ण स्वभावपर्याय जबसे होता तबसे उसही किस्मका रहता है और परिपूर्ण है। तो स्वभावपर्याय यह भी एक चिन्ह है, यद्यपि वह किसी स्थितिका है। जैसे

कहा जाय कि भगवानका स्वरूप क्या है ? जो त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक साथ जाने सो भगवान। यह कहा गया है, मगर किसी पदार्थका एक शाश्वतस्वरूप नही कहा गया है। जो पदार्थ है वह जीव है। जबसे भगवान है तबसे बात कही जा रही है। वह शाश्वत आत्मभूत न रहा, इसलिए वर्तमानमात्र आत्मभूत लक्षण कहा। तो यो कुछ लक्षण ऐसे होते है जो पदार्थके स्वरूपमे मिले हुए होते है और उन लक्षणोसे पदार्थका परिचय पाते है।

लक्षणके परिचयकी उपयोगिता—देखिये लक्षणके परिचयकी बात इसलिए कही जा रही है कि हम आपको अपने आत्माके स्वरूपका परिज्ञान करना है। तो हम किस उपायसे अपने स्वरूपका परिचय पा सकेंगे वह उपाय कहा जा रहा है। मुझमे अनादिकाल से अनन्तकाल तक एक रूपसे जो बात पायी जाती हो वह हमारा लक्षण है, सो उसे जान कर हम अपने आपका परिज्ञान करे। अनात्मभूत लक्षण वह कहलाता जो पदार्थमे मिला हुआ न हो। जिस पदार्थका हम लक्षण करते है वह लक्षण उस पदार्थमे मिला हुआ नही है। तो अनात्मभूत लक्षण है। जैसे डडे वाले पुरुषका लक्षण डंडा, पगडी वाले पुरुषका लक्षण पगडी। अब पगडी उस पुरुषमे मिली हुई तो नही है, अलग है, अत. वह अनात्म-भूत कहलाता है। जैसे हम यह कहने लगे कि मनुष्य जीवका लक्षण है। खास प्रकारका यह शरीर। तो इस जीवमे यह शरीर मिला हुआ तो नही है, अतएव यह अनात्मभूत लक्षण बनेगा।

अनात्मभूत लक्षणके प्रकारोंमें निमित्तनैमित्तिक संबंधी अनात्मभूत लक्षण—अनात्म-भूत लक्षण चार किस्मसे निरखा जाता है। कुछ तो है निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धसे लक्षण। जैसे कर्मसहित जीवका लक्षण क्या है ? कर्म बधे हुए हो। जहाँ कर्म बंधे है वह जीव सकर्मा है। तो कर्म और जीव, इनका क्या सम्बन्ध है ? क्या कर्म जीवका लक्षण है ? लक्षण तो नही है, आत्मभूत तो नही है, यह तो जीवके प्रदेशोसे अलग चीज है। देखिये जीवके प्रदेशमे भी मिला हुआ हो कोई, लेकिन जीवके प्रदेशोमे न हो तो वह मिला हुआ नही कहलाता। जैसे हम आप जीवके जहाँ प्रदेश है वही तो कर्मो के प्रदेश है लेकिन कर्मों के प्रदेश जीवके प्रदेशोमे मिले हुए नही है। जैसे लोकाकाशमे कोईसा भी प्रदेश ऐसा नही बचा जहाँ छहो जातिके द्रव्य न हो। सर्वत्र जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल मौजूद है। आकाश तो है ही। धर्मद्रव्य एक सर्वव्यापी है, वह भी सर्वत्र है। अधर्मद्रव्य भी एक है और लोकाकाशमे सर्वत्र है। कालद्रव्य असख्यात है, एक एक प्रदेश पर एक एक कालद्रव्य है इसलिए वह भी लोकाकाशमे सर्वत्र है। पुद्गल द्रव्य भी सर्वत्र है, जीव सर्वत्र है तो लोकाकाशके एक ही प्रदेशमे और परस्परके प्रदेशोमे छहो जातिके अनेक पदार्थ रहने

पर भी क्या यह कहा जा सकेगा कि किसीके प्रदेशमे किसी अन्यके प्रदेश मिल गए ? नही कहा जा सकता। तो ऐसे ही मेरे जीवके प्रदेशमे कर्मके प्रदेश भरे पडे हुए है, एक क्षेत्रावगाही हैं लेकिन मेरे प्रदेशोमे मिले हुए वे कर्म न कहे जायेंगे। और मैं हू अभी कर्मसहित। तो क्या कहा कि सकर्मा जीवका लक्षण क्या है ? कर्म। तो यह निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध से अनात्मभूत लक्षण बताया गया है। कर्म मेरे प्रदेशोमे मिले हुए नही है। और ये कर्म निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धसे है क्योकि कर्मोको जीव पकड नही सकता। कर्म मूर्तिक हैं, जीव अमूर्तिक है। कर्म और जीवका सम्पर्क नही बन सकता। सम्पर्क मायने जैसे दो रस्सियोको मिलाकर गाँठ लगा दी गयी तो वे आपसमे जुड गईं, इस तरहका सम्बन्ध नही बन सकता लेकिन यह है इस तरह कि जब यह जीव इस शरीरको छोडकर आगे जाता है तो शरीर तो यही रह जाता है और कर्म जीवके साथ जायेगे। इतना सम्बन्ध है। ये कर्म इस जीवको छोडते नही फिर भी जीवसे मिलते नही। जीवका इन कर्मोके साथ सम्पर्क नही है, और, है इतने घने सम्बन्धमे कि देह छूटनेके बाद भी ये जीव और कर्म एक साथ जाते है। तो इसे कहते है निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमे रहता हुआ अनात्मभूत लक्षण।

एक क्षेत्रावगाही संयोगी अनात्मभूत लक्षण—दूसरा अनात्मभूत लक्षण होता है एक क्षेत्रावगाही सयोगी लक्षण। जैसे सशरीर जीवका लक्षण क्या है ? शरीर। अब देखिये—शरीर और जीवके साथ निमित्तनैमित्तिक सम्बध नही है। लोग मोटेरूपसे यह कह देते है कि निमित्तनैमित्तिक सम्बध है। तो यो तो बहुतसे लोग कैसा भी कुछ कह देते है। कोई किसी फोटोको देखकर यदि भाव शुद्ध होता है तो कह उठता है कि यह फोटो हमारे भावोको ठीक करनेमे निमित्त है। कोई यदि उसके भाव बिगड गए तो वह कह उठता है कि यह फोटो हमारे भाव बिगाडनेमे निमित्त है। लेकिन ऐसी बात नही है। वह निमित्तभूत नही है। यह आश्रयभूत है। यदि उस फोटोके देखनेसे सभी लोगो के भाव ठीक बनें अथवा बिगड़ें तो उसे निमित्त कह सकेंगे। उसी फोटोको देखकर एक साधु तो वैराग्यमयी भाव बना लेता है और कोई व्यसनी व्यक्ति बुरे भाव बना लेता है।

जैसे किसी नगरमे कोई वेश्या मरी, लोग उसे जलानेके लिए गए तो कामी जन उसे देखकर यह सोचते हैं कि यह मर गई। यदि यह जीवित होती तो कुछ दिन और इससे प्रीति करते। कोई मुनि उसे देखकर यह विचार करता है कि कितने दुर्लभ जीवनको इसने पाया था और कितने बुरे विचारोमे ही इसने अपना सारा जीवन व्यर्थ खो दिया। कुछ कुत्ते, स्याल आदिक उसे देखकर यह सोचते है कि यह व्यर्थ ही जलायी जा रही है। यदि ये लोग इसे यों ही छोड जायें तो कुछ दिनोका हमारा भोजन हो। निमित्तमे यह बात नही होती है।

निमित्त होता है कर्मका उदय । कर्मोदय होनेपर एक किस्मका एक ढंगका भाव होता है । तो यह आश्रयभूत है । देह भी मेरे आत्मासे पृथक् है । इसलिए निमित्तभूत नही है किन्तु एक क्षेत्रमे रह रहे है तो एक क्षेत्रावगाही सम्बंध है । इस तरह लक्षणोमे कुछ लक्षण बताकर अब मूल बातपर आयेंगे कि हम आत्माको किस प्रकार जानें ? यह परिचय बहुत ही मदद देगा आत्माके स्वरूपको जाननेके लिए ।

अनात्मभत लक्षणके शेष प्रकार—पदार्थकी पहिचान लक्षणसे हुआ करती है, यह बात व्यवहारमे रोज ही रोज गुजरती है । जब कहते है कि चौकी लावो, पुस्तक लावो, रोटी लावो, यो कुछ भी कहते है तो उसका लक्षण जब ध्यानमें है तभी तो वह चीज ला पाते है तो लक्षणके बिना पाते हैं । तो लक्षणके बिना पदार्थकी पहिचान होती ही नही है । इस ही कारण लक्षणकी बात कह रहे है । लक्षण दो प्रकारके होते है—एक तो पदार्थमे मिला हुआ और एक पदार्थसे जुदा । तो जो पदार्थसे जुदे लक्षण है उनके दो भेद कल बताये गए हैं । आज यह बताना है कि तीसरा अनात्मभूत वह है कि जो दूसरी जगह रहने वाला है पर संयोगसम्बधी है । जैसे यह पुरुप सपत्नीक है । भाई, सपत्नीक पुरुषका क्या लक्षण है ?·· पत्नी । तो पुरुषमे पत्नी मिली हुई नही है, सयोग भी नही है । पत्नी अलग है, पुरुष अलग है लेकिन सपत्नीक पुरुषका लक्षण है पत्नी । तो लक्षण है पत्नी । तो इस लक्षणमे एक संयोग सम्बध वाली बात है । वैवाहिक सम्बंध हुआ या अन्य प्रकारके नियोग हुए । कुछ अनात्मभूत लक्षण ऐसे होते है जो काल्पनिक है, सम्बंध कुछ नही है । जैसे घर वाला, मामा वाला, साला वाला आदिक अनेक प्रकारकी बाते होती है, और कल्पनाओसे ही तो मान लिया गया है सम्बध ।

अपना प्रयोज्य लक्षण—भैया ! यो तो अनेक प्रकारके लक्षण होते हैं लेकिन अपने प्रयोजनमे लक्षण क्या लेना है ? जो लक्षण पदार्थमे मिला हुआ हो । हमे समझना है आत्मा । आत्माका वह लक्षण जो आत्मामे सदाकाल रहता है, आत्माको छोडकर कभी रह नही सकता और आत्माके सिवाय अन्य किसीमे जा नही सकता, ऐसा लक्षण हमे पहिचानना है तब हम जानेंगे कि यह मैं आत्मा हू । सभीकी जिज्ञासा होती है जो कुछ थोडा धर्ममार्गमे लगे हुए हो कि मैं अपने आत्माको जानूं कि मैं क्या हू, अपने आत्माका सत्यपरिज्ञान हो तो समझिये कि हमने सबसे बडा भारी वैभव पाया । वैभव ही एक है, और कुछ वैभव ही नही है । मान लो किसीने समझ लिया कि मेरा घर है, मेरे परिजन है, मेरी दूकान है, मेरे पास इतना धन है, तो यह केवल कल्पनासे समझ रहा है । वस्तुत मेरा कुछ भी नही है, पर थोडा भी यदि ध्यान दिया कि जब इस देहको मैं छोडकर चला जाऊँगा मैं तो सत् हूँ, कभी नष्ट नही होता तो फिर मेरी क्या गति होगी ? कुछ तो विचार करना चाहिए ।

आज यह मनुष्यभव मिला है तो यह रत्न समझिये। जिससे बढकर ससारके भवमे और कुछ नही कहा जा सकता। कैसा तत्त्वचिन्तन कर सकते है, अब इस नररत्नको पाकर हम यदि सदुपयोगमे लगायें तो अपना होनहार अच्छा समझिये और अगर दुरुपयोगमे लगाया, विषयो मे, चाहमे, इज्जतमे, इसी धुनमे लगे रहे तो जिन्दगी तो उस तरहसे गुजर रही है जैसे कि पर्वतसे गिरने वाली नदी। जब वह नदी वेगपूर्वक गिरती है तो फिर उसके लौटनेका काम नही, इसी तरह आयु भी गुजर रही है इसके भी लौटनेका काम नहीं। आज जो ५०-६० वर्षोके हो गए और यह सोचते है कि यदि मै बच्चा होता तो बडे विवेकपूर्वक रहता और अपनी इस जिन्दगीको पहिलेकी तरह निरर्थक न गुजारता। क्योकि बचपनमे व जवानीमे अपने जोशमे यह जीव नानाप्रकारकी क्रियायें करता है और अन्तमे जब आयु घटती है तो वह पछताता है। उस समय सोचता है कि यदि मैं बचपनमे होता तो ऐसी गल्ती न करता। खूब ज्ञान कमाता, आत्माकी बात करता। लेकिन अब ऐसी बात हो कैसे सकती ? मरणके बाद बचपन आयगा तो वह दूसरा बचपन है। वहाँ फिर वही गल्ती होगी। अपना तथ्य समझिये इसमे ही कल्याण है। इसके उपायमे प्रयोज्य लक्षणका परिचय करना है।

मनुष्यभवकी श्रेष्ठताका कथन—यह मनुष्यभव एक रत्न है। इसका एक एक क्षण कीमती है, लेकिन लोग कहाँ कीमती समझ रहे हैं। अगर इसका आदर किया होता तो यह ठीक उपयोगमे लगाता। इस नर-जीवनका सदुपयोग यही है कि बाह्यपदार्थोके जो समागम मिले हैं उनमे उपेक्षाबुद्धि रखें। वे सब हमारे कुछ नही है, ये हमसे अत्यन्त भिन्न है। जिन पदार्थोमे लगाव रख रहे हो उन पदार्थोके क्या तुम जिम्मेदार हो ? क्या उनपर तुम्हारा अधिकार है ? अथवा कुछ हितके लिए उन पदार्थोकी सम्भाल कर लिया तो वे भविष्यमे सभाले रहेगे, क्या यह नियमकी बात है ? अरे ये सभी मिटेंगे तो है ही। जब प्रलय काल आता है, प्रकृति मिटा देती है तो फिर उन सब कल्पनाओसे क्या उठता है ? सब विनष्ट हो जायेगा। ये सब बाह्यपदार्थ लगाव रखने लायक नही है। लगाव रखे तो आत्माके हितसे। आत्महितके उपायमे लगें, इससे बढकर कोई बुद्धिमानी नही है। और, देखिये—बाहरी पदार्थकी बातें तो सब कर्माधीन है। हम चाहें और उदय अनुकूल न हो तो हो नही सकता। हम उपेक्षा बुद्धि रखें, उदय अनुकूल है तो स्वयमेव होता है। इस कारण इस बातकी परवाह न करें कि बाह्य पदार्थ यो ही होना चाहिए, यो क्यो न हुए ? साधारणतया तो बात गृहस्थीमे कल्पनाओसे आती है लेकिन उसके पीछे ही अपनी सारी जिन्दगी समझना, यह बात उचित नही है। यह नरभव बहुत अमूल्य है, इसकी कीमत कोई विवेकी ही समझता है, या मरण समय कुछ ख्याल आता है कि ओह ! यह मेरा नररत्न छूट रहा है। इस जीवनमे यदि हमने अच्छा कार्य कर लिया होता, ज्ञान ध्यान किया होता, आत्म-

कल्याणकी बात की होती तो बडे संतोषसे मरण करता और आगे भी अच्छी गति पाता। जो मरणासन्न है अथवा वृद्धजन है, अथवा विवेकी पुरुष है या जो श्रेष्ठ मन वाले इन्द्र-देवादिक है वे जानते है कि इस मनुष्यभवका कितना मूल्य है ?

एक घटना द्वारा मनुष्यभवकी श्रेष्ठताका कथन—एक घटना यो सुनो कि जब तीर्थंकर भगवानको वैराग्य होता है, गृहस्थावस्था अथवा राज्यावस्थासे विरक्त होते है तो उस समय लौकातिकदेव उपस्थित होते है। लौकातिक देव कभी यहाँ आते नही है, केवल भगवानके वैराग्यके समय आते है और वे भगवानकी स्तुति करके चले जाते है। उनके वैराग्यभाव पुष्ट करके अपने स्थान चले जाते है। उसके बाद जब वे तीर्थकर गृहस्थ साधु दीक्षा लेनेके लिए चलते है तो इन्द्र पालकी सजाता है, पालकीमे विराजमान करता है और पालकी ले जानेके लिए उद्यत होता है। ज्यो ही इन्द्र पालकी उठाना चाहता है उसी समय मनुष्य टोक देते हैं कि यह पालकी तुम नही उठा सकते। इसे हम मनुष्य लोग ले जायेगे। इन्द्र बोले कि तुम कैसे ले जावोगे ? देखो हमने बडे बड़े कार्य किए, गर्भ कल्याणक मनाया, १५ महानी रत्नवृष्टि की, ज्ञानकल्याणक मनाया, अब यह तपकल्याणक मनानेका भी हमको अधिकार है तो मनुष्य बोल उठे कि यह नही हो सकता। तुमने सभी कल्याणक मनाये, मगर इस पालकी मे तुम हाथ नही लगा सकते। जब बडा विवाद हुआ तो कुछ विवेकी पचोके बीच मनुष्य और देव उन दोनोने अपनी-अपनी बात डाली। सोच विचारके बाद वे वृद्धजन यह निर्णय देते हैं कि इस पालकीमे वह हाथ लगायेगा जो भगवानकी तरह वैराग्य और दीक्षा ले सके। अब यह बात देवोमे कहाँ सम्भव ? देव असंयमी होते है। चार गतियोमे देवगतिके भी जीव है। नरकगतिमे तो नारकी जीव आते है। तिर्यञ्चमे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, पेड, कीडा मकोडा, पशुपक्षी आदिक ये सब आते है। मनुष्यगतिमे पुरुष स्त्री बालक आदि आते है। और देवगतिके जीव वैक्रियक शरीर वाले होते है। देवोके सम्बन्धमे सभीको कुछ न कुछ विश्वास है। उन्हे खाना नही पडता। जब भूख लगती है तो कठसे अमृत झरता है, उनके शरीरमे हाड मास नही होता है। उनके सुन्दर वैक्रियक शरीर होता है। सागरोपर्यन्त की उनकी आयु होती है। वे बड़े सुख मे रहते हैं। ऐसे सुखोमे रहने वाले देव उस समय अपना माथा धुनते हैं कि अहो ! हमारा क्या भव ? मनुष्यभव ही श्रेष्ठ है जिससे दीक्षा लेकर ससारके सकटोसे सदाके लिए मुक्त हो जाते हैं। और उस घटनाके समय वे देव बडा खेद मचाते हैं कि हम भी यदि मनुष्य होते तो इस पालकीके उठानेके सर्वप्रथम अधिकारी होते। उस समय इन्द्र मानो पल्ला पसारकर मनुष्योसे कहता है कि ऐ मनुष्यो ! तुम मेरे इन्द्रत्वके समस्त वैभवको ले लो, पर अपना मनुष्यत्व मुझे दे दो। तो आप समझिये कि यह मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ भव है ?

संसारमें अहितसमागमोंकी भरमार—भैया ! दूर भी क्या परखते ? यहीं अपने आपमे अदाज लगा लो, समझ तो है अपनेमें, ज्ञान है अपनेमें। जरा यह बतलावो कि जिस घरमें हम आप रहते है क्या वह घर सदा रहेगा ? क्या उस घरमे हम आप भी सदा रहेगे ? जिन परिजनोके बीच हम रहते है उन सबका वियोग होगा। कोई किसी ढगसे बिछुडेगा, कोई किसी ढगसे। पुराणोमे सुना होगा भगवान श्रीराम जिन्होने बचपनसे ही अपनी धर्मनीतिके कारण सकट ही सकट भोगे, अन्तमे कुछ समय ऐसा आया कि बनवासके बाद रावणसे युद्धके बाद, सीताको घरमे रखनेके बाद कुछ समय सन्तोषसे रहते थे मगर अग्निपरीक्षाके समयका क्लेश और उसके बाद भी सतोषसे रहते थे, लेकिन हुआ क्या कि राम लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा लेनेके लिए एक देव आया। देवने तो परीक्षा की, पर हो गया वहाँ बुरा हाल। परीक्षा यो की कि देवोने अपनी मायासे ऐसा दृश्य बना लिया कि मानो राम गुजर गए है और स्त्रियाँ विलाप कर रही है। उसी समय वह देव हा राम हा राम कहता हुआ लक्ष्मणके पास पहुंचा और लक्ष्मणसे बताया कि श्रीराम गुजर गए। इतनी बात सुनते ही लक्ष्मण गुजर गए। देवने तो परीक्षा की और हो गया अनर्थ। लक्ष्मण तो यो गए। श्रीराम उस लक्ष्मणके शरीरको ६ माह तक लिए फिरते रहे, उससे यो ही बातें करते रहे—ऐ लक्ष्मण उठो, खावो, बोलो आदि। अब आप सोचिये कि समागममे कितनी विडम्बना होती है ? ये तो बडे पुरुषोकी विडम्बनायें बतला रहे है। जब तक वे गृहस्थीमे रहे तब तककी बात है। उससे आप अनुमान लगाओ अपनी विडम्बनाओ की बातका। आप सबकी विडम्बनायें तो उनसे भी कठिन हैं। वे तो बडे पुरुष थे, किसी एक बातको लेकर चलते थे, यहाँ आप लोग तो किसी एक बातको ही नही लेकर चलते, अपना कोई एक निश्चित उद्देश्य ही नही बनाते। जो मनमे बात आ गयी वह कर बैठते हैं।

विरागभावमें विडम्बनासे छुटकारा—देखो भैया ! श्रीरामको तब तक चैन न मिली जब तक कि उनके चित्तमे विराग भाव नही जगा। इस घटनामें वैराग्यका आना बहुत कठिन था। कैसे वैराग्य आये ? रामको लक्ष्मणके देहसे था बड़ा प्रेम। एक दो देव आये उन्होने रामको बहुत समझाया। कोल्हूमे बालू पेलनेका दृश्य दिखाया। श्रीराम पूछते हैं कि यह क्या कर रहे हो ? बालूसे तैल निकालेंगे। अरे कही बालूसे तैल भी निकला करता है ? तो क्या मुर्दा भी बातें करता है ? इतनेपर भी श्री राम कुछ न समझ सके। देवो ने दूसरा दृश्य पर्वतमे कमल उगानेका दिखाया। श्रीरामने पूछा कि यह क्या कर रहे हो ? पर्वतमे कमल उगा रहे हैं। कही पर्वतमे कमल भी उगा करते है ? तो क्या कही मुर्दा भी बोला करता है ? इतने पर भी श्रीराम कुछ न समझ सके।

देवोने तीसरा दृश्य दो मरे हुए बैलोको गाड़ीमे जोतनेकी कोशिश करते हुए दिखाया। श्रीरामने पूछा कि यह क्या कर रहे हो ?·· गाडीमे ये मरे हुए बैल जोत रहे हैं।·· कही मरे हुए बैल भी गाडी जोता करते है ? ·· तो क्या कही मुर्दा भी खाना खाया करता है ? वहाँ श्रीरामकी समझमे आ गया। उनका सारा राग छूटा, वैराग्य जागृत हुआ और दीक्षा ली। उसके बाद इतना सकल्प हुआ कि सीताके जीव प्रतीन्द्रने बडी बाधा दी कि श्रीरामको अभी मोक्ष न होने दें, बादमे हम दोनो एक साथ मोक्ष जायेंगे। एक बार ऐसा दृश्य दिखाया कि मानो रावण सीताके केश खीच रहा है, सीता हा राम हा राम पुकार रही है। इतने पर भी राम अडिग रहे। तो कहनेका प्रयोजन यह है कि यह नरभव एक रत्न हैं। इसको यो ही नही गमाना है। इस जीवनका सदुपयोग करना है।

नरजीवनके सदुपयोगमें आत्मपरिचयका मूल आधार—नरजीवनका सदुपयोग यही है कि विषय कषायोका आदर न करे। आदर करे स्वरूपदृष्टिका। मेरी दृष्टिमे मेरा सहज चैतन्यस्वरूप अधिकाधिक बर्ते। यह प्रयत्न करें तो जीवन सफल हो जायगा। यह बात तब बनेगी कि मैं अपनी दृष्टिमे अपना स्वरूप तो ले लूँ कि मेरा स्वरूप क्या है ? मेरा स्वरूप क्या है, इसको जाननेका उपाय यहाँ लक्षण कहा जा रहा है। लक्षणसे समझिये कि मैं क्या हू ? लक्षणके अभी इतने भेद बताये गए हैं, उन सब भेदोमे से वास्तविक लक्षण जाननेका उपाय क्या है ? तो वह तो है शाश्वत आत्मभूत लक्षण। सभी पदार्थोंकी वास्तविक पहिचान शाश्वत आत्मभूत लक्षणसे होगी। अर्थात् पदार्थका ऐसा चिन्ह जो पदार्थमे सदाकाल रहता हो। उससे उसकी पहिचान होगी। जो बात पदार्थमे थोडे समयके लिए है उससे पहिचान नही हो सकती।

सर्वदृष्टियोंसे परिचय होनेपर प्रयोज्य परिचयमें सुविधा—इस प्रसंगमे एक यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब पदार्थकी पहिचान शाश्वत आत्मभूत लक्षणसे होती है याने निशान जो पदार्थमे सदाकाल रहता हो उसे जानकर पदार्थ समझमे आयगा तो अन्य अनात्मभूत लक्षणके बतानेकी क्या जरूरत थी ? केवल एक ही लक्षण बताते शाश्वत आत्मभूत लक्षण।। फिर ऐसा बताते कि कुछ लक्षण ऐसे होते हैं कि पदार्थ उस वर्तमान समयमे तो हैं लेकिन वे सदा नही रहते। फिर ऐसे लक्षणको बतानेकी क्या जरूरत थी ? उत्तर उसका यह है कि किसी पदार्थके बारेमे सब तरहसे यदि ज्ञान होता है तो मुख्य लक्षण से ज्ञान करनेमे बडी सुविधा होती है। यहाँ भी आप देख लीजिए। किसी मनुष्यका परिचय है कि यह अमुकका मामा है और केवल इतना ही जानता हो, उसे स्पष्ट परिचय न हो। उसके बारेमे सर्वतोमुखी ज्ञान हो कि यह अमुक नगरका है, अमुक व्यवसाय करने वाला है, अमुकका भाई है, अमुकका पिता है, यो सबको ज्ञान है ही। फिर प्रयोजनवश एक बात कही

जाती है तो वह एक बात अच्छी तरहसे समा जाती है। फिर बाकी जिनके जाति चिन्ह बताये गए है उनसे भी परखे कि मेरा आत्मा किस किस ढंगमे रहता है ? किस-किस हालत मे रहता है ? इसमे क्रोध, मान, माया, लोभादिक भी है। कभी पशु बने कभी पक्षी। सभी तरहके प्रयोजन धारण करता। इस तरह नानारूपोमे रहने वाला यह जीव वास्तवमे है किस तरहका ? अब शाश्वत आत्मभूत लक्षणसे तर्के कि है यह आत्मा शुद्ध सहज चैतन्यस्वरूप। यह मैं जीव अपने आप बिना दूसरेके सम्बधके स्वयमे जैसा कुछ रह सकता हू उसकी निगाह की जाय तो मैं अपने आपकी पहिचान कर पाऊँगा। जो बात मुझमे नही है ऐसी बातोको देख करके हम अपनी पहिचान करें तो तथ्यपरिचयकी बात सम्भव नही है। अपनी ओर आ जायें। बाहरसे दृष्टि संकोच करके अपने आपमे निरखिये। जब मैं अपने आपमे यह देखता हू कि मैं एक ज्ञानप्रकाशमात्र हू, सदा इस ही सहज ज्योतिस्वरूपमे रहने वाला हू, भावमात्र हू। इसमे रूप, रस, गध, स्पर्श आदि कुछ नही, केवल एक भाव भाव है, और वह भाव भी ज्ञान चेतन है। ऐसा चैतन्यभावमात्र मैं आत्मा जिसको कोई दूसरा पहिचान ही नही सकता, उस तक कोई दूसरा दृष्टि दे ही नही सकता। हाँ दृष्टि दे सकता है कोई विवेकी। वह दृष्टि देगा भी तो वह तो निज चैतन्यभावमे मग्न हो जायगा। उसके लिए मैं व्यक्ति ही क्या रहूगा ?

आत्मपरिचयकी वार्ता--चैतन्यभावमात्र यह मैं आत्मा यही मैं अपने लिए सर्वस्व हू, हमारा एक यही सर्वस्व वैभव है। उस चैतन्यमात्र आत्माका जगतमे कही कुछ नही है। मैं केवल अपने स्वरूपमात्र हू, अगर यह बात गाँठ सी बँध जाय, इस बातका निर्णय कर ले और इस ही ओर आ जाय, ऐसा साहस बना ले कि बिखरना तो है ही सब कुछ, जिनका सयोग हुआ है उनका वियोग तो नियमसे होता ही है। जो वियोग कुछ दिन बाद होगा वे आजसे ही अलग हो जायें। कुछ समयका ही तो फर्क रहा। जो चीज चार दिन बाद विघटनी थी उससे आज अलग हो गए। विघटना तो अवश्य है। यदि पहिलेसे ही हम अपना विवेक करके श्रद्धामे अलग हो गए, कुछ चारित्रकी अपेक्षा बढकर बाह्य तत्त्वसे अलग हो गए तो उससे हमे लाभ मिलेगा। और न अलग हो सके तो लाभ न मिलेगा। तो जब बाहरी पदार्थोंकी दृष्टि न करके अपने आपमें अपने स्वरूपको निरखने चलेंगे तो हमे अपने ज्ञानप्रकाशका अनुभव होगा। अनुभव होगा क्यो नही ? वह तो सरलतासे होगा क्योकि मैं खुद ज्ञानमात्र हू और उस ज्ञानमयको जाननेके लिए हम प्रयत्न करें तो यह बात कठिन न होगी।

कठिनाईसे हटकर सरलता अपनानेका विवेक—भैया ! कठिन बात तो यह थी कि मैं

तो ज्ञानमय हू, सबसे निराला हू और अत्यन्त भिन्न परपदार्थको जानने मे अपनानेमे, उनको अपनी इच्छाके अनुसार परिणमन बनानेमे जो उद्यम करते है, कठिन बात तो यह है। कठिनाई यह नही है लेकिन कठिन बना रखी है, मोह मदिरा पी रखी है। घरके लोग ही सब कुछ विदित होते है। कभी यह उद्यम नही जगता है कि वीतरागदेव और हितपिरूपक शास्त्र और विरक्त गुरुजन इनका सग ही हमारा भला कर सकेगा। यहाँ मोही जनोका यह संग तो हमें रागमोहमे लपेट देगा। जिनको मानते है कि ये ही मेरे सब कुछ है वे ही संसारमे रुलानेके कारण बनेंगे। हाँ एक दृष्टिसे सत्य है कि ये ही सब कुछ है। किस दृष्टिसे है ? जीवकी बरबादी करनेकी दृष्टिसे। कल्याणके लिए मेरा सब कुछ क्या है ? अपने हितके लिए, शान्तिके लिए मेरा सब कुछ क्या है, इस ओर अपनी निगाह यह जीव नही बनाता। अगर हितकी ओर अपनी निगाह बनाये तो जचेगा कि अरहत सिद्ध सशरीर परमात्मा अरहत परमात्मा वैरागी साधुजन अथवा हितपिरूपक शास्त्र ये ही मेरे लिए व्यवहारमे सब कुछ हैं। और परमार्थत मेरा जो यह अविकार ज्ञानानन्दस्वभाव है यह ही मेरे लिए सब कुछ है। उस अविकार ज्ञानस्वभावसे आशा करे कि यदि वह मेरा सहज अविकार ज्ञानस्वभाव प्रसन्न होगा तो हमारे जन्म मरणके संकट दूर होगे और सदा के लिए हम आनन्दमय हो जायेगे। तो दृष्टि देना है अपने अविकार ज्ञानस्वभावकी ओर। यह बात जब हमारे ज्ञानमें हो तब ही हम उस ज्ञानस्वभावकी ओर दृष्टि देंगे। कैसे ज्ञानमे आये, उसके लिए बताया जा रहा है कि अपना शाश्वत आत्मभूत लक्षण पहिचानो। जो मुझमे सदाकाल रह सकता है ऐसा चिन्ह परखो और उसको निरखकर उसीमे मग्न हो। इसीलिए यह लक्षणकी बात चल रही है।

आत्माके विविध परिचयकी पूर्वापर उपयोगिता—आत्माकी पहिचान अनेक प्रकारो से बतायी गई है। कुछ चिन्ह बताये गए है ऐसे जो कुछ समयको आत्मामे आते है और फिर नही आते। कुछ चिन्ह बताये गए है ऐसे जो आत्मामे सदाकाल रहा करते है। तो इन चिन्होमे से ऐसे चिन्होसे हमारा काम बनता है कि जो चिह्न सदाकाल रहते है। जैसे आत्मामे ज्ञानस्वभाव चैतन्यस्वभाव केवल जानने और प्रतिभासनेकी शक्ति। तब इस समय यह प्रश्न होता है कि फिर अन्य चिह्नोकी बात ही क्यों कही जाती ? जैसे हम आप जीवो को पहिचानते है तो इन्द्रियोसे पहिचानते है, ज्ञानसे पहिचानते है। कषाय करे उससे पहि-चानते है। क्रोध किया किसीने तो जान लिया कि यह जीव है। अगर जीव न होता तो क्रोध कैसे कर लेता ? कही खम्भा चटाई आदिक पुद्गल पदार्थ तो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि नही करते। तो विकारोसे तो जीवकी पहिचान हो रही है और प्राय करके ये संसार के लोग विकारको ही तो जानते है। जो शाश्वत चैतन्यस्वरूप है उस स्वभावको नही जानते।

तो प्रश्न यह हो रहा कि जब हम इसीसे जानते है और इसीको अप्रयोज्य बताते हैं, कहा यह जाता है कि प्रयोजन तो इसको अपने सदा अकेले रहने वाले चिन्होसे है। शाश्वत आत्मभूत लक्षणसे आत्माकी पहिचान होती है। फिर इस अनात्मभूत अथवा वर्तमानमात्र आत्मभूतको बतानेसे क्या मतलब ? समाधान यह हैं कि जब हम कषायोको विचारोको प्रकट करते है तो उससे यह जाहिर होता है कि इसका आधारभूत जीव है। तो उससे भी कुछ समझ बनती है। कोई पुरुष यदि किसी कुत्तेको मार रहा है तो देखने वाले लो॰ उसको कहते है—भाई क्यो मार रहे हो, इसने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? क्यो इसपर दया नही करते ? और यदि कोई भीतमे ही लाठी मार रहा है तो देखने वाले कोई भी न कहेगे कि क्यो इसे मारते ? तो मालूम होता है कि सबके ज्ञानमे यह बात बसी है कि यह जीव है और इसे मारा जाना उचित नही है, इसे क्लेश होता है। तो जब इन बातोसे आधार जान ली तो उस ही आधारके बारेमे अब हम सदा रहने वाले चिन्होका परिज्ञान करेंगे, इसलिए वर्तमान मात्र आत्मभूत भी बतानेकी आवश्यकता रहती है।

आत्माके आत्मभूत लक्षणकी प्रसिद्धि--कुछ सत मनुष्य ऐसे है कि जो आत्माके बारेमे एकदम अन्य बातें न जानकर सीधा चैतन्यस्वभावको जान लेते हैं। उनको भी पहिले से परिचय तो हो रहा था विकारोका, कषायोका। ऐसी स्थितिमे कषायोका आधार जो जीव है ऐसा खूब परख लिया था। अब इस प्रकारसे परखे हुए जीवमे ऐसे लक्षण जाननेका कुछ पुरुषार्थ कर लेते हैं कि जो लक्षण सदाकाल रहता है इसलिए सब प्रकारसे परिचय करना बेकार बातें नही है। जैसे कल कहा गया था कि किसी आत्माके सम्बधमे यह जान लेना जितना कि उसको प्रयोजन हो उतने मात्रसे स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, किन्तु बहुत-बहुत बातोकी जानकारी हो उस पुरुषके बारेमे और फिर प्रयोज्य बातको जाने तो स्पष्ट रहता है, तो आत्माको प्रत्येक दृष्टियोसे परखिये। परखकर फिर आत्माके केवल एक चैतन्यस्वभाव को देखो। तो आत्मामे बताया जा रहा है कि शाश्वत आत्मभूत चिन्ह क्या है ? चैतन्यभाव, जो सदाकाल रहे। समझनेका माद्दा और किसी पदार्थमे नही है। और समझनेका माद्दा भी जिस पदार्थमे है उसमे और कुछ नही है। अगर रग गधादिक होते तो वह ऐसा पिण्ड होता कि जड ही होता। उसमे फिर समझनेकी बुद्धि न आती। जो जानता है देखता है उसे आत्मा कहते हैं। आत्माका असली लक्षण हुआ ज्ञानस्वभाव। देखिये—जो हम भिन्न-भिन्न चीजोको जानते हैं, यह जानन भी स्वभाव नही है, किन्तु नाना जानकारियाँ की, उनकी जो इसमे शक्ति है वह जहाँ है उसे जीव कहते हैं। तो जीवका लक्षण हुआ ज्ञान। यह लक्षण ऐसा कि कोई थोडा या अधिक पढा लिखा हो सभी प्रकारके लोग उसे परख सकते हैं कि जीवका लक्षण ज्ञान है, क्योकि ज्ञानका प्रसार बहुत है। तो जो जिस प्रसार तककी

योग्यता रखता है वह उस ही मे जान लेता है कि जीव है, जैसा कि सभी जानते है। यह मनुष्य जीव है, पशु पक्षी भी जीव है, कीडे मकौडे भी जीव है, कुछ लोग नही जानते थे कि पेड पृथ्वी भी जीव है, लेकिन वैज्ञानिकोने यह सिद्ध कर दिया कि इनमे भी जीव है। साधारण बुद्धि वाले भी ज्ञानलक्षण द्वारा जीवकी पहिचान करते है। और जो विशेष पहुचे हुए ज्ञानी ध्यानी जन है वे भी ज्ञानद्वारा जीवका लक्षण पहिचानते है। वे पहिचानते है सहज ज्ञानस्वभाव, प्रतिभासशक्ति, ज्ञानशक्ति द्वारा। उस ज्ञानशक्तिके द्वारा यह जीवका स्वरूप समझता है। तो ज्ञान एक ऐसा जीवका लक्षण है जिस लक्षणके द्वारा यह जीव पहिचाना जाता है।

लक्षणके निर्दोष लक्षणका दिग्दर्शन—अब इस समय प्रसगवश एक कुछ साधारण विज्ञानकी बात कह रहे है लक्षणके बारेमे। आप किसी पदार्थका परिचय करने जायेगे तो लक्षण द्वारा परिचय करेगे। तो वह लक्षण कैसा होना चाहिए ? निर्दोष। अगर लक्षण कमजोर है तो उससे पदार्थकी पहिचान न बन सकेगी। तो ऐसे कमजोर लक्षण तीन तरहके होते है, जिनको पारिभाषिक शब्दमे कहते है अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव। जिसे घरेलू शब्दमे कहते कि जो चिन्ह जिसकी पहिचान कराता है वह उस सबमे न जाय वह है अव्याप्ति और जो अन्यमे भी जाय वह है अतिव्याप्ति। तब उस चिन्हसे पदार्थका ज्ञान तो नही किया जा सकता। जैसे कोई पूछे कि पशुका लक्षण क्या है बताओ ? तो कोई उत्तर देता है कि जिसमे सीग पाये जाये वे पशु है। तो सुननेमे यह पहिले कुछ अच्छासा लगता होगा कि ठीक ही तो कहा जा रहा है, जिसमे सीग हों वही तो पशु है। पर बताओ कि क्या वह लक्षण सही है ? नही। क्योकि सीग सब पशुओमे नही मिलती है। घोडा, गधा, कुत्ता, बिल्ली वगैरह पशुओके सीग कहा है ? तो पशुका लक्षण सीग कहना सीग देखकर पशुओकी पहिचान कर लेना कि ये पशु है तो इसमे इतनी बात तो आयी कि जिनमे सीग हो वे तो पशु है ही, मगर सब पशु नही आ सकते क्योकि सभी पशुओके सीग नही है। अत यह लक्षण सही न माना जायेगा।

अव्याप्तिदोषदूषित आत्मलक्षणसे आत्माके यथार्थ परिचयकी अशक्यता—लक्षणके दोषकी बात बतला रहे है यह समझानेके लिए कि दोषरहित लक्षण मेरा क्या है ? जैसे कोई पूछे कि जीवकी पहिचान क्या है ? और उत्तर दिया जाय कि जो खाये पिये, चले फिरे वह जीव है। तो सुननेमे यद्यपि भला लग रहा है कि ठीक ही तो कहा जा रहा, है, लेकिन यह लक्षण सही नही है। जो रागद्वेष मोह कषाय आदि करे सो जीव है, यह भी सुननेमे अच्छा सा लग रहा है, मगर यह भी लक्षण सही नही है। क्योकि बहुतसे जीव ऐसे भी है जो खाते पीते नही, कषाय आदिक नही करते। लक्षण वह होना चाहिए जो

सब पदार्थोंमे पहुचे । सर्व जीवोमे जो लक्षण पहुचे वह लक्षण जीवका सही कहलायेगा । तो जीवका लक्षण कोई करे और यह कहे कि जिसमे राग हो, द्वेष हो सो जीव है, तो यह लक्षण भी सही नही है । इसको पारिभाषिक शब्दोमे कहेंगे कि इस लक्षणमे अव्याप्ति दोष आता है । यह बात इसलिए समझना है कि हमे पहिचानना है जीवको । जब तक हम जीवका सही स्वरूप न जानें तब तक आनन्द पानेका उपाय नही बन सकता । क्योकि आनन्द पानेका उपाय तब ही बनेगा जब जिसको आनन्द देना है उसका स्वरूप समझमे आये । और जो आनन्द दिया जाना है उसका स्वरूप समझ लिया जाय । तो आनन्द देना है अपने आपको जीवको, आत्माको, तो अपने आपका स्वरूप तो जानना चाहिए । पहिचान करे इस विधिसे कि जो प्रेम करे मोह करे सो जीव है । तो जीवकी सही पहिचान नही हुई, इस कारण आनन्द पानेका उपाय बनेगा नही । अब आप जान गए होंगे कि लक्षणकी निर्दोषताकी पहिचान कितनी आवश्यक है ? अगर हम निर्दोष लक्षणको जीवमे पहिचानेंगे तो सही पहिचान आयगी । और आनन्दका, शान्तिका, मुक्तिका उपाय निकलेगा, अन्यथा अपने उद्धार का उपाय नही बन सकता । ससारकी अन्य अनेक चीजोको पहिचाननेके लिए हम आप बडी कोशिश किया करते है । कपडे के रूप रगादिककी पहिचान, सोना चाँदीकी पहिचान, और और भी बड़ी सूक्ष्म पहिचान लोग रखते हैं, बडे बड़े व्यापारी व्यापारादिक के हिसाब किताब भी रखते है । तो देखिये बारीकसे बारीक पहिचान करनेकी हम आपकी इच्छा बनी हुई है तो फिर हम अपने आपकी बात पहिचाननेमे क्यो विलम्ब करें ? जब हम अपनी पहिचान करने चलें तो उस लक्षणसे पहिचान करना चाहिए जिस लक्षणमे दोष न आये । मैं वह हू जो प्रेम रागद्वेष करता हू, यह लक्षण सही नहीं है । अपने आपके बारेमे हर एक कोई कुछ न कुछ विश्वास लिए बैठे है कि मैं अमुक लाल हू, अमुक चद हू, अमुक परिवारका हू, ऐसी पोजीशनका हू । तो ये सब पहिचानें बिल्कुल गलत हैं क्योकि मैं यदि ऐसी पोजीशन वाला होऊँ तो पोजीशन तो कभी मिट जायगी । फिर तो पोजीशनके मिटने पर हमें भी मिट जाना चाहिए । मगर ऐसी बात तो नहीं होती । लोग अपने आपकी सही पहिचान नही कर पाते इसीलिए दुखी हो रहे हैं । तो निर्दोष लक्षण जाननेके बाद अपनी अनुभूति बनेगी, इस कारण निर्दोष लक्षणके परिचयकी महती आवश्यकता है ।

अतिव्याप्तिदोषदूषित आत्मलक्षणसे आत्माके यथार्थ परिचयकी अशक्यता—दूसरा दोष बताया गया था अतिव्याप्ति । जो लक्षणसे भी दूर चला जाय, जिनसे हमे जुदा समझना है उनमें भी वह लक्षण चला जाय तो वह कैसे सही रह सकेगा ? जैसे उपदेश हो कि देखो गायकी रक्षा करो, गृहस्थीमे गायका पालना यो आवश्यक है कि शुद्ध दूध मिले, घी मिले । वह जीव है इसलिए उसकी रक्षा करो । कोई पूछे कि गाय किसे कहते है ? तो

बताया कि जिसके सीग हो सो गाय। सुननेमे अच्छा लगेगा कि गायके सीग तो होती है, लेकिन यह कहना सही नही है। गायका लक्षण सीग कहना युक्त नही। गायका लक्षण सीग है ऐसा कहनेका अर्थ होगा कि जिस जिसको सीग हो वह गाय है। हिरन, बकरी, भैंस आदि के भी तो सीग पाये जाते है तो क्या वे भी गाय कहे जायेगे ? कोई जीवमे वारेमे कह उठे कि जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श आदि न हो उसे जीव कहते हैं। तो यह भी सुननेमे वडा भला लगता है कि ठीक ही तो कहा जा रहा है। देखो जीवमे कहाँ रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक है। जिसमे रूप, रस, गंध, स्पर्शादि न हो उसे अमूर्त कहते है। तो जीवका विशेषण है अमूर्त होना, मगर यह लक्षण सही नही है। इसमे यह व्याप्ति बन बैठी कि जिसमे रूप, रस, गंध, स्पर्श न हो उसे जीव कहते हैं। तो रूप, रस, गंध, स्पर्शादिक तो आकाशमे भी नही हैं। लेकिन जिसकी हमे पहिचान नही करना है, जिससे हमें जुदा करना है उसमे भी अमूर्तपना चला गया। तो जीवका लक्षण अमूर्त कहना सही तो न रहा।

अव्याप्त लक्षणके अपनानेमें पर्यायबुद्धता—देखो भैया ! हम अपने आपकी पहिचान करने चलते हैं और पहिचान भी इस ढंगकी कि मैं ऐसी पोजीशनका हू, इस घरका हू, इतने लडको वाला हूँ, स्त्री वाला हू आदि। यो अनेक प्रकारसे इस जीवने अपनेको समझा, लेकिन उसकी ये सभी समझ गलत है। और, इस समझमे वह आनन्द पानेका कोई उपाय नही कर सकता क्योकि अपने आपका उसे सही परिचय नही हुआ। जब तक अपने आपका सही परिचय न हो तब तक वह आनन्द पानेका उपाय नही बना सकता, यह बात ध्रुव सत्य है। तो सही परिचय पानेके लिए लक्षण जानना जरूरी है और ऐसा लक्षण जानना जरूरी है जिसमे दोष न हो। इसे तो मिथ्यात्व कहेगे यदि कोई यो पहिचान करता है कि मैं ऐसी पोजीशनका हूँ। इसे पर्यायबुद्धि कहते हैं। जब-जब जो पर्याय प्राप्त की जाती है उस पर्याय रूप ही अपनेको अनुभव करें तो वह तो मिथ्यात्व है। शास्त्रोमे वर्णन किया गया है कि मैं नारक हू, तिर्यञ्च हू, मनुष्य हू देव हू, इस प्रकारका अपने आपका अनुभव करना भ्रम है, मिथ्यात्व है, संसारमे रुलनेका उपाय है। मैं सुखी हूँ, दुखी हू, गरीब हू, धनिक हू आदिक रूपसे अपनेको अनुभव करना यह तो एक भ्रम है। यह भ्रम इस जीवको संसारमें रुलानेका कारण है। तो यह अव्याप्ति दोष है।

अतिव्याप्त लक्षणके अपनानेमें तथ्यपरिचयका अभाव—यदि अपने आपके वारेमे कोई इस तरहसे भी देखने चले कि मैं वह हू जिसमें रूप रस गंध स्पर्श आदि नही। तो ये बातें यद्यपि मुझमे नही है मगर 'नही हैं नही हैं' इस तरह कहनेसे तो काम न चलेगा। उस जीवके स्वरूपका परिचय होता है असली विधिसे। निषेधसे परिचय होता है, पर निषेध

से उसकी पकड नही होती। निषेधसें वस्तुके परिचयकी मदद मिलती है। वस्तु विधिसे परखी जाती है। जब अपने आपके बारेमे यह जाना जायगा कि मैं चैतन्यस्वभावमात्र हू तब आत्माकी पकड बनेगी अन्यथा नही। तो आत्माको अमूर्त निरखना यह बात तो यद्यपि ठीक है लेकिन लक्षण बनाना कि जो अमूर्त है सो आत्मा, यह बात गलत है। अमूर्त तो आकाश, धर्म, अधर्म, काल आदि द्रव्य है, पर ये तो जीव नही कहलाते। तो अतिव्याप्ति दोषसे भी रहित लक्षण हो तो पदार्थकी पहिचान उस लक्षणसे सही होती है।

असंभव दोपसे दूषित लक्षणकी अकिञ्चित्करता—तीसरा दोष होता है लक्षणका असम्भव। जो लक्षण लक्ष्यमे पाया ही न जाय। जो चिन्ह जिसकी पहिचान करता है उसमे न हो तो वह पहिचान न करा सकेगा। जैसे कोई कह बैठे कि मनुष्यका लक्षण सीग है। तो यह सुननेमे कितना अटपटा सा लगता है। बात बिल्कुल असत्य बोली गई। मनुष्यो के सीग होता ही नही। मनुष्योमे सीग होना बुरा समझा जाता है। मनुष्योका लक्षण यदि कोई सीग बता दे तो यह तो एकदम सदोष विधि हो रही है। इसी तरह कोई आत्माका लक्षण बता दे भौतिकपना पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे जो बनता हो सो जीव है। तो देखिये सुननेमे यद्यपि ऐसा लगता है कि ऐसा कौन कहता होगा, मगर इस विचारके लोगोसे प्राय सभी दुनिया भरी हुई है। कोई किसी ढगसे मानता, कोई किसी ढगसे। यह सैद्धान्तिक ढगसे बात की जा रही है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे ये जीव बने हुए है और इस विचारधारामे चार्वाक सिद्धान्त बना हुआ है। और वे मरण इस बातको कहते है कि जब पृथ्वीका अश पृथ्वीमे, जलका अश जलमे, अग्निका अश अग्निमे और वायु का अश वायुमे पहुच गया तो वह ज्योति बुझ गई। इसीको वे लोग मरण कहते है। और जब ये चारो मिश्रित रहते है तो वह जीव कहलाता है। इस सिद्धान्त की परिभाषासे चाहे लोग परिचित न हो पर बात ऐसी वे मानते है। उन्होने इस देहको ही मान लिया कि यही मैं हू। यद्यपि यह देह त्रसकाय है। हाँ कुछ बाते ऐसी देखी भी गईं कि जिनसे लोगोको यह श्रद्धा बढ गई कि वास्तवमे पृथ्वी जल अग्नि वायुसे मिश्रित जो होता है वह जीव है। जब कोई बीमार होता है तो उसका इलाज भी प्राकृतिक ढगसे चलता है। प्राकृतिक चिकित्सा बहुत ही अच्छी चिकित्सा है। उसमें यद्यपि समय अधिक लगता है पर रोगको जडसे समाप्त करती है। तो वह प्राकृतिक चिकित्सा पृथ्वी, जल, धूप और वायु आदिके द्वारा ही की जाती है। लोग समझते हैं कि देखो यदि इन चारोसे मिश्रित यह जीव न होता तो कैसे अच्छा हो जाता? परन्तु यह बात ठीक नही है। अरे यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे मिश्रित जीव होता है तो जब आगपर बटलोई रखी जाती है खिचडी पकाने के लिए तो वहाँ तो ये चारो चीजे पाई जाती हैं। पृथ्वी भी है, जल भी है, अग्नि भी

है और वायु भी है, फिर तो दनादन वहाँ जीवोकी उत्पत्ति हो जानी चाहिए। उस बटलोई मे से खूब बिच्छू, ततैया, सर्प, व्याघ्र आदि निकल भागने चाहिएँ, पर ऐसी बात तो नही होती।

जीव तो एक न्यारी चीज है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायुसे जो मिश्रित हो वह जीव है ऐसा कहना गलत है। ऐसा कहना तो उसी प्रकार मिथ्या है जैसे कोई यह लक्षण बनाये कि जिसके सीग हो वह मनुष्य है। तो अपने बारेमे ऐसा लक्षण बनाये जिससे अपने आपकी पहिचान करना है। देखिये जीवनमे एक ही आवश्यक काम पडा हुआ है। अपने चित्तको बदल ले। यह तीन लोक तीन कालका समय कितना बडा है? इतने बडे कालके सामने थोडेसे जीवनके लिए परमे अपना उपयोग फंसाकर अपना जीवन बरबाद करनेमे अपनी कुछ भी भलाई नही है। काम पडेगा अपने आपसे, इस समागमसे काम न पडेगा। मैं अपने आपके बारेमे यह परिचय कर लूँ कि वास्तवमे मै क्या हू? मुझे समझना है जीवके लक्षण को। तो यहाँ मूलमे चर्चा यह चल रही है कि निर्दोष लक्षण क्या होता है जिससे जाने कि यह मैं आत्मा क्या हूँ?

सहज शाश्वत आनन्द पानेके लिये सहज स्वभावके आलम्बनकी आवश्यकता—जिस जीवको अपने आपका सत्यस्वरूप भानमे आया है सत वही है, धन्य वही है, समृद्धिशाली वही है। बाकी लोग तो चाहे वे कितना ही धनी हो अथवा राज्यके अधिकारी हो, मालिक हो, समझो कि वे सब एक कीचड़मे जैसा पडे हुए हैं। जिनके उपयोगमे खुद नही समाया है, बाह्यपदार्थ समाये हुए हैं वे तो मूढ है, मलिन है। ऐसे लोग पुण्यके उदयमे चाहे संसार के कितने ही महान कहलाते हो, वे ससारके ही महान है, परमार्थत महान नही है। तो यहाँ बताया जा रहा है आनन्द पानेका उपाय। आनन्द पानेके उपायकी जिनकी इच्छा हो उनको यह आवश्यक है कि वे आनन्दका स्वरूप और आत्माका स्वरूप भली-भाँति समझ लें। और, उसी स्वरूपको समझनेके लिए यह लक्षणका अध्याय चल रहा है। हमे जानना चाहिए अपने आपका लक्षण। तो हमारा लक्षण है, चिन्ह है, असाधारण गुण है एक चैतन्यस्वभाव। उस चैतन्यस्वभावमे मग्न होनेका हम आपको ख्याल होना चाहिए, उसकी दृष्टि होना चाहिए, इतना तो निर्णय कर ही लो पहिले। इस चित्स्वभावके आश्रयके अतिरिक्त अन्य सब बेकार विषयोका जो आलम्बन है वह नितांत अनर्थक है, घर वैभव परिजन इज्जत इन सबका लगाव आत्माके लिए एक विडम्बना है, इतनी बात तो ध्यानमे आनी ही चाहिए। यह बात अगर समझमे नही है तो वह धर्मपालनका अधिकारी नही है। भले ही लोकव्यवहारसे धर्मपालनके नामपर पूजा हो, समारोह हो और भी बडे बड़े धार्मिक कार्य हो, लेकिन कर्मका बन्ध, कर्मकी निर्जरा, कर्मका सम्वर जिस परिणामके निमित्तसे होता है वह तो उन्ही

परिणामोसे होगा, बाहरी बातोसे नही। आडम्बर दिखावटसे कुछ अन्तर न पडेगा, क्योकि कर्म तो जड चीज है, उसका निमित्तनैमित्तक सम्बध जिस तरहसे है उस तरहसे होगा। अत उससे बचनेके लिए अन्त शुद्धि चाहिये।

कर्मनिर्जराकी दिशामें व्यवहारसुधारका प्रथम यत्न दयावृत्ति— कर्मनिर्जराका मूल उपाय है अपने स्वभावका आश्रय करना। उस स्वभावका आश्रय करनेके लिए जब कि यह जीव अनादिसे अथवा इस जीवनमे जन्मसे विषयकषाय रागद्वेषादिकमे लगे हुए है, तो ऐसे लोगोको कुछ अपना व्यवहार सुधार करना ही होगा। इसके विना यह पात्रता न जगेगी कि इस चैतन्यस्वभावका आलम्बन कर सकें। वह व्यवहार क्या हो ? इसे सक्षेपमे कहा जाय तो यो कहेगे कि अणुव्रतरूप व्यवहार होना चाहिए। अहिंसाणुव्रत किसी दूसरे जीव को मेरे कारण क्लेश न हो या मैं किसीके क्लेशरूप यत्न न करूँ, मैं अपने परिणामोमे दूसरोके प्रति बुरे भाव न रखूं। यह होना चाहिए अहिंसाणुव्रतमे बाह्यप्रवृत्ति। देखिये जगतमे जो अन्याय किया जाता है वह परिग्रहके लोभमे किया जाता है, इज्जतके लोभमे किया जाता है, पर ज्ञानीको विदित होता है कि यह समस्त परिग्रह तो एक पिशाचका सग है। इज्जतका लगाव यह तो कोरी मूढता है। किनसे इज्जत चाहना ? जगतमे ये जितने दिखने वाले लोग हैं ये कर्मोके प्रेरे जन्म मरणके दु खी और अनेक प्रकारकी इच्छायें रखकर इनका मरण होता है। और, वह इज्जत भी क्या चीज है ? वह तो एक स्वार्थवश दो शब्द किसीने गा दिया। यह तो सब एक मायामय व्यवहार हो रहा है। तो इस मायामय व्यवहारमे सार समझना, नाम इज्जत समझना यह तो कोरी मूढता है। तो यहाँ किनके लिए अन्याय करना ? परिग्रहका सग है। प्रथम तो परिग्रह अपना कुछ है नही। परिग्रह अधिक हो गया तो उससे आत्माका क्या उत्कर्ष हो जायेगा ? मानलो यहाँसे मरकर पशु पक्षी कीडा मकोडा आदि हो गए तो कौनसा लाभ लूट लिया जायेगा ? यहाँ तो देव भी मरकर कुत्ता बन सकता है। राजा भी मरकर कीड़ा हो सकता है। यह विपत्ति तो शिरपर पड़ी है, उसकी चिन्ता नही करते, यहाँके व्यर्थके माया भ्रममे पडकर अपने होशको खो रहे है। यह कोई बुद्धिमानी नही है।

अन्यायत्यागमें अहिंसावृत्तिकी संभवता— भैया ! सोचो तो किनके लिए दूसरोपर अन्याय करना ? जो बताया गया है कि मिथ्यात्व, अभक्ष्य, अन्यायका त्याग करने पर ही आत्माका हित हो सकता है, ऐसा पढ तो सभी लोग लेते है, पर चित्तमे यह बात नही जमती कि एक एक अक्षरका भाव इस चित्तमे बसाने लायक है। देखिये अन्यायका भाव— जिसकी अन्यायरूप प्रवृत्ति है उसने यह ध्यानमे नही रखा कि जगतके सभी जीव मेरे स्वरूपके समान हैं। ऐसा ध्यानमें रखने वाले व्यक्तिसे अन्याय अभक्ष्य आदिके कार्य न हो

सकेंगे। सवका स्वरूप एक समान है, यह वात जव दृष्टिमे नही रहती है और कुछ स्वार्थ-वासना वढती है तो अन्यायरूप प्रवृत्ति होती है। उस अन्याय करने वाले पुरुषको अ ना कुछ भी होश नही है। अन्याय यही है कि अगर अपना दिल किसी वातसे दुखता है तो वह वात दूसरो पर ढा देना। हम ऐसे कार्य न करे कि जिससे दूसरोको कष्ट हो। अन्याय करना छोड दें तो हमें धर्मपालनका अधिकार मिलेगा अन्यथा धर्मपालनका अधिकार नही मिलता। यहाँ कोई लोग जानें या न जानें कि यह वास्तवमें धर्मपालन कर रहा है, चाहे कोई उल्टा ही समझे, चाहे कोई निन्दा भी करे, उससे अपनेमे कुछ प्रभाव नही होता, पर अपने आपका अगर श्रद्धान गलत हो गया, अपने आपका वह चैतन्यस्वरूप उपयोगमे न रहे तो यहाँ बिगाड हो गया। दुनियामे कुछ भी रहो, पर अपने आपको अपनी दृष्टिमे रखोगे तो आपने विवेक किया और यदि स्वयं दृष्टिमे न रहे तो दूसरे कोई क्या कर देंगे ? कोई किसीका मददगार है क्या, शरण है क्या ? सव बेकारकी बाते है। तो अहिंसारूप व्यवहार हो।

अभक्ष्यत्यागमें अहिंसावृत्तिका उद्भव—अहिंसारूप व्यवहारमे अभक्ष्यका त्याग होना ही होगा। जिन पदार्थोमे त्रस जीव रहते है ऐसे पदार्थोंको जो कुचल डालता है, भक्षण कर डालता है वह तो समझो कि उन जीवोको अपने पेटमे डाल लेता है। पेटको एक श्मशान जैसा वना लेते हैं। अरे जहाँ मुर्दा गाड़े जायें वही तो श्मशान है, और कीड़े जिसमे पड गए हो, वे कीड़े चाहे दिखें अथवा न दिखें, उन चीजोको कोई खाये तो उसका अर्थ यही तो हुआ कि अपने पेटमे मुर्दोका ढेर लगा लिया अर्थात् पेटको एक श्मशान वना लिया। ऐसा व्यक्ति धर्मपालनका पात्र नही हो सकता है। उसे अपने स्वरूपकी कहाँ सुध है ? गोभीका फूल कितना अभक्ष्य है ? उसमे तो साक्षात् त्रस जीव नजर आते है, लेकिन न जाने कैसा चित्त है लोगोका कि उसे नही छोड पाते। विवेकी जन तो छोड देते है पर अक्सर लोग यही सोचते है कि अगर गोभीका फूल हमने छोड दिया तो फिर क्या होगा ? अरे दुनियामे हजारो चीज है खाने पीनेके लिए। अगर त्रस जीवोके साक्षात् घात होने वाली चीजोको छोड दें तो कुछ विगाड नही होता है, मगर लोग सोचते है कि मेरे स्वादमे अन्तर आ जायगा इस-लिए वे नही छोडते। अरे अगर यहाँसे मरकर पशु पक्षी कीडा मकोड़ा आदि हो गए तो फिर क्या हालत होगी ? वहाँ फिर क्या मौज रहा ? क्यो व्यर्थमे अन्यायी वनते हो ? जो चीजें त्रस जीवोके घातमे युक्त है उनका त्याग होना चाहिए। शराव, अडा, मास आदिककी तो वात ही क्या कहना ? उनका तो नाम लेनेमे भी संकोच होता है। आजकल तो लोग नाम भी उनका ले लेते है मगर कुछ समय पहिले लोग इन चीजोका नाम लेनेमे भी संकोच करते थे। अगर कोई मास खाता था तो उसे कहते थे कि यह तो मिट्टी खाता है। आज-कल वहुतसे लोगोकी ऐसी प्रवृत्ति हो गई है कि वाजारके दही रवडी जलेवी चाट पकौड़ी

आदिकको वडे शौकसे खाते है व खानेमे वडा मौज मानते है। पर उन्हे यह पता नही कि उसमे कितने जीवोकी हिंसा होती है, न जाने वे कितने दिनोकी वनी होती हैं, न जाने किस किस प्रकारकी चीजोसे वनती है ? तो वे चीजें तो महा अभक्ष्य हैं। परन्तु रसनाइन्द्रियके वशीभूत होकर लोग उन्हे खाते हुए वडा मौज मानते है। इस रसनाइन्द्रियके वशीभूत होकर ये प्राणी इस संसारमे घूमते है। अपनेको असंयमी वनाकर कुयोनियोमे भ्रमण करते हैं। तो ठीक है, खूव असंयममे रहे ? लेकिन जिन्हे अपने आपपर कुछ दया हो उन्हे चाहिए कि वे असंयमकी प्रवृत्तिसे हटे, संयमकी प्रवृत्ति वनाये। देखो अपनेको यदि मैं अब वहुतसी चीजोसे विरक्त हो रहा हूँ, अपने आत्माकी आराधनाका पात्र वन चला हू, इसमे तो हर्ष मानना चाहिए। अपनी प्रवृत्ति अणुव्रत रूप हो तो जीवका उद्धार हो सकता है।

आत्मोद्धारके लिये सत्यव्यवहारकी आवश्यकता— दूसरी वात सत्याणुव्रतकी देखिये लोग तो विना प्रयोजन भी झूठ वोलनेमे वडा चैन मानते हैं। जैसे एक कथानक है कि एक आदमीको झूठ बोलनेकी बड़ी आदत थी, इसी कारण वह किसी नौकरीमे नही टिक सकता था। एक वार उसने किसी सेठसे कहा कि मुझे नौकरी चाहिए। · क्या चाहिए ? ·· वस खाना पीना और वर्षमे एक वार झूठ वोलना। सेठने सोचा कि ऐसा सस्ता नौकर और कहाँ मिलेगा ? सो रख लिया। वहुत दिनो तक वह नौकर ठीक ठीक काम करता रहा। वर्षके अतिम दिनोमे उसके मनमे आया कि झूठ वोलना चाहिए। सो सेठानीसे कहा तुम्हे मालूम भी है। सेठ जी तो रोज रातको वेश्याके घर जाते हैं। तुम्हे विश्वास न हो तो एक परीक्षा कर लो। तुम रातको सेठजी की एक ओर की हजामत वना दो (कुछ उस्तरे ऐसे भी आते हैं जो सोते हुएमे भी हजामत बना लो फिर भी पता नही पड़ता) जब एक ओर वनी हजामत लेकर सेठजी वेश्याके घर जायेंगे तो वहाँ उनकी हँसी होगी, कुछ वात होगी तो सारी पोल खुल जायगी। उधर सेठसे ऐसा कह दिया कि आपकी सेठानी आज रातको उस्तरा लेकर आपका ही गला काटने आयगी। आपको मौजकी कहाँ पडी है ? सो रातको होना तो यही था। सेठानी उस्तरा लेकर गई। हजामत बनाने लगी। सेठ जग गया और उसने तुरत समझ लिया कि हमारा नौकर ठीक ही कह रहा था। सो सेठ और सेठानीमे बडी जोरकी लडाई हुई। जब लडाईका बडा भयानक रूपक उस नौकरने देखा तो बोल उठा वस अब मत लडो। हमारी नौकरीका वेतन हमे मिल चुका। हमने पहिलेसे ही तय कर लिया था कि हम वर्षमे एक वार झूठ वोलेंगे। हमने ही झूठ वोलकर ऐसी घटना उपस्थित करवा दी है। सेठने उस नौकर को भगा दिया। सोचा कहीं ऐसा न हो कि यह फिर कभी ऐसी परेशानीकी वात डाल दे। तो अनेक लोग ऐसी आदतके होते हैं कि प्रयोजन कुछ नही फिर भी झूठ बोलने लगते हैं। अपनी सच्चाईसे अपनेको डिगाना न

चाहिए। ससारमे ऐसी कौनसी चीज प्राप्तव्य है जो किसी तरह झूठ बोलकर पा ली जाने लायक हो ? अरे तुम्हारा बनकर यहाँ कुछ रहेगा क्या ? मरण होने पर तो यहाँका सब कुछ छूट ही जायगा। अपनेको ऐसा सत्यपर अटल रखो कि जिससे कभी शल्यमे न आ सकें, मायाचारमे न आ सके और अपनेको धर्मका पात्र बनाये रखा जा सके। सच बोलने की प्रवृत्ति कीजिए। अब उसमें नुक्सान भी तो हर्षसे सह लीजिए। यहाँका यह धन वैभव आनन्द मानने लायक नही है। दु खकी बात तो ऐसी है कि देखिये ये दु ख बडे बडे पुरुषोपर भी आये। भगवान आदिनाथ जब दीक्षित हुए तो ६ माहका तो उनका उपवास था। उपवासके बाद आहारको जब निकले तो ६ माह तक अतराय हुए। भला बतलावो जो आहारकी इच्छासे निकले और अन्तराय आ जावे तो यह कितनी दु खद बात है ? जो आदि पुरुष थे, जिनके इन्द्र तक सेवक थे, जिनको लोग आज भगवानके रूपमे मानते है। कोई आदिम बाबा कहते है, कोई शकर कहते है, कोई ईश्वर कहते हैं, कोई ऋषभदेव कहते है। यो सारा संसार जिन्हे पूजता हो ऐसे महापुरुषोपर भी ये उपद्रव आये। फिर यहाँ हम आपपर तो कोई उपद्रव नही है। एक कल्पनाका दु ख मचा रखा है। धन वैभवके संचयकी दृष्टिसे न जाने कितने कितने अन्याय किए जाते, असत्यके व्यवहार करनेमे भी जरा संकोच नही करते। तो अपना एक सत्यका व्यवहार होना चाहिए।

आत्मोत्कर्षके लिये अचौर्यव्रतके पालनकी आवश्यकता—किसी भी वस्तुके लोभमे आकर उसके चुरानेका भाव न जगे। ये सभी बाते यद्यपि मोही जीवोको भली लग रही है कि जरासा भी मौका मिल गया तो दूसरेकी चीज चुरा ले गए, पर जरा सोचो तो सही कि इस धन वैभवके संचय कर लेनेसे इस आत्माका क्या भला हो जायगा ? यह आत्मा तो अकेला ही है। अपने आपको देखो, अपने आपपर प्रसन्न हो, अपने आपपर दया करो। गृहस्थी है तो गृहस्थीके नाते उदयानुसार जो कुछ आये उसके अनुसार अपना गुजारा चलावो और प्रसन्न रहो। ऐसी हिम्मत बनाओ कि उदयानुसार जो आना हो आये, हम उसीमे अपना गुजारा चला लेंगे। इस धन वैभवसे हमारा उद्धार न होगा। उद्धार तो हमारा इस बातसे होगा कि प्रभुका जो स्वरूप है वह कभी हमारी दृष्टिसे ओझल न हो। बातें इसलिए कही जा रही है कि हम धर्मपालनके पात्र बने।

आत्मोद्धारके लिये ब्रह्मचर्यव्रतकी मुख्य आवश्यकता--हमारा व्यवहार ब्रह्मचर्य पूर्ण होना चाहिए। वस्तुत ब्रह्मचर्य तो है—ब्रह्म मायने आत्मा, उसके स्वरूपमे रमना, लेकिन इस परमार्थ ब्रह्मचर्यके लिए साधक है यह लौकिक ब्रह्मचर्य। किसी भी बाह्यरूपको निरखकर किसी तरहका मनमे विकार न करना और जानना कि ये सब असार हैं, मायारूप हैं, ये सब दु खी प्राणी है, संसारमे जन्ममरण करने वाले हैं। यहाँ सार कुछ नही है। और

इस देहके समान अशुचि और कोई चीज नही है। इसके अन्दर खून, मास, मज्जा, मल, मूत्र, पसीना आदि महा अपवित्र चीजे भरी हुई है। इस शरीरको छोडकर दुनियामे अन्य कुछ गदा नही। लोग तो नापदानकी नालियोको गदा कह देते है मगर वहाँ भी है क्या? त्रस जीवोका समुदाय जो वहाँ पर भरा हुआ है वही तो सारी गदगीका कारण है। तो यह शरीर सबसे गदा है। तो ऐसे अशुचि शरीरमे प्रीति रखना अथवा कामभाव रखना यह तो एक बडी विडम्बनाकी बात है। ऐसा व्यक्ति धर्मपालनका अधिकारी नही हो सकता। तो सम्हालना है अपने आपको। अगर यो ही हठ किए रहे कि भाई सतोकी बात तो सिर माथे मगर पनाला तो यहीसे निकलेगा अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा आदिमे ही डूबे रहेगे। उपदेश भी सुनेंगे और परिग्रह भी बढायेंगे। सोचना होगा कि ये सभी चीजे जब छोड्कर जाना है तो फिर कुछ समय पहिलेसे ही क्यो न इनसे विरक्त होकर अपने आत्मा का लाभ ले ले। अपना व्यवहार पवित्र हो किसलिए कि हम अपने आत्माके धर्मका पालन कर सके। हममे इस प्रकारकी पात्रता रहे।

आत्मीय विकास पानेके लिये अपरिग्रह होनेकी आवश्यकता—परिग्रह पापकी बात देखिये—समयसारमे इच्छाको परिग्रह बताया है। इच्छा अज्ञानमय भाव है। यह ज्ञानियोके नही होती। परिग्रहपरिसमता, चारो ओरसे विपदाओ को ग्रहण कर लेना यही तो परिग्रह है। लालच—ला और लच ये दो शब्द है। तू ला और मैं लच जाऊँ, तृष्णा लोभका रग इतना गहरा है कि करणानुयोगके जानकार जानते हैं कि अन्य कषायें तो ९वें गुणस्थान तक ही होती हैं पर यह लोभकषाय १०वें गुणस्थान तक पायी जाती है। जब सब कुछ छूट ही जाना है तो लालच किसका करना? तो लोभ लालच आदिकके रहते हुए हमारा व्यवहार ठीक नही रह सकता। और, हम धर्मधारण करनेके विचार भी नही बना सकते। तो हम परिग्रहसे मुख मोडें, परिग्रहको ढीला बनाये। यह जानना होगा कि मेरे आत्माका तो मात्र मैं ही हू, ये सब आज व्यवहारकी बातें कही हैं जिनसे कि धर्मधारण करनेकी पात्रता आती है। मगर इससे ही सम्बधित एक बात और भी कह दें कि कुछ तो ठीक व्यवहार होना ही चाहिए। और जब आत्माका यह शुद्ध चित्स्वभाव अनुभवमे आ जायेगा, समझमे आ जायगा तो व्यवहार कैसे पवित्र बनना चाहिए यह बात सब अपने आप सहज हो जायगी। अत दोनो ओरका व्यवहार पवित्र रखना होगा और आत्मस्वरूप समझनेकी बात भी चलती रहे तो ऐसे अत पुरुषार्थसे आत्माका कल्याण होगा और अपना जीवन सफल होगा और कभी वह समय आयेगा कि ससारके संकटोसे सदाके लिए मुक्ति हो जायगी। इतना तो भाव बनायें कि जो चीजें छूटनी हैं उनसे प्रेम क्या करना, मोह क्या करना? विवेकपूर्वक, उदारतापूर्वक, उपेक्षापूर्वक रहना और अपने स्वरूपके सम्भाल

की सुध बनाये रहना, यही अपने कल्याणका उपाय है।

सत्य आनन्दके लाभके लिये आत्मस्वरूपके परिचयकी मुख्य आवश्यकता—जीव की इच्छा है सुख शान्ति प्राप्त करनेकी तो इसी सम्बन्धमे कहा जा रहा है कि सुख शान्ति कैसे प्राप्त हो ? शान्ति पानेके उपायमे इतनी बातोंकी जानकारी करना बहुत आवश्यक है, जिनको इस ग्रन्थके मगलाचरणमे बताया है। पहिली बात समझे कि मैं कौन हू ? इस बातका निर्णय किये बिना आनन्द पानेका उपाय न बन सकेगा। जिसको आनन्द चाहिए उसका ही निर्णय नही है तो आनन्द पानेकी विधि बनेगी कैसे ? इसलिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि मैं कौन हू ? इस सम्बन्धमे सभी जीव कुछ न कुछ जानते है। मै अमुक चन्द हू, अमुक प्रसाद हू, इस पोजीशनका हूं, मनुष्य हू। बल्कि जो गाय भैंस आदिकके भवमे हैं वे भी समझते है कि मैं यह हू। भले ही वे गाय भैंस आदि इन शब्दो को नही समझते है लेकिन वे जिस पर्यायमे हैं उसरूपमे अपनेको जानते है कि मैं यह हू। तो सभी जीव अपने आपके बारेमे कुछ न कुछ समझते हैं, मैं हू ऐसा सभीको विश्वास है। अब मैं क्या हू बस इसका ही एक निर्णय करना होगा। तो यह निर्णय हर एक प्राणी नही कर सकता। जिसको कुछ ज्ञान मिला है जिसका भवितव्य उत्तम है ऐसा पुरुष ही इसका निर्णय कर पाता है कि मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ, इसका यदि यथार्थ निर्णय करना है तो इस विधिसे करें कि अपने आपके सम्बन्धमे यह समझ करे कि मैं वह हो सकूंगा जो सदा रहूगा। अपने आपका विनाश किसे इष्ट है ? तो मैं वह हू जो सदा रह सकता हूँ। मैं नाम वाला, इज्जत वाला, पोजीशन वाला या किसी पर्याय वाला यदि होता तो सदा उसी रूप रहता पर उन रूप सदा तो रहता नही। मैं वह हू जो सदा रह सकता हूँ। बस इस ही विधिसे निर्णय किया जायगा तो अपने आपका निर्णय हो जायेगा। मै मनुष्य नही हू क्योंकि यह मनुष्यभव मिट जायेगा। मै मिटने वाला नही। रागद्वेष, क्रोध, विचार, वितर्क ये भी मै नही हू, क्योकि ये भी मिट जाते है। खूब देखते है कि सुबह क्रोध है, पर अब नही है। सुबह कैसे ही भाव है पर अब नही है, यदि मैं इन भावोरूप होता तो सदा वैसा ही रहना चाहिए था, पर मै उन भावरूप भी नही हू, मै तो वह हूँ जो सदा काल रह सकता हूँ।

दुर्लभ नरजन्मसे यथार्थलाभ उठा लेनेकी प्रेरणा—देखिये—मनुष्यभवका पाना, जैन शासनका पाना, श्रेष्ठ कुलका पाना ये सब बडी दुर्लभ बाते है। जगतके पशुपक्षी आदिक अन्य जीवोपर दृष्टि डालकर देखो—वे भी जीव है, हम आप भी जीव है, जीव जीवके स्वरूपमे कुछ फर्क नही है। वह तो एक पदार्थ है। पदार्थका जो ढंग होता, स्वरूप होता वह सब पदार्थोमे उसी प्रकार होता। तो मेरे ही जैसे जीव सब हैं, इसका अर्थ यही है कि जो

इन समस्त जीवोकी हालत है वही हालत हम आपने भी पाया और आगे भी पा सकते है। तो अब यह विचारमे लाये कि यह जीवन कितना व्यर्थका है ? जब हम दूसरे जीवोको देखते है, उन पर जो हालत गुजर रही है वही हालत हम आपपर भी तो गुजर सकती है। अन्य जीवोकी ये अवस्थाये इस बातका अनुमान करा देती हैं। कुछ समय वाद यह देह भी छूट जाने वाला है, मैं एक अकेला रह जाऊँगा, मुझे आगे जाना है, हम आगे क्या बनेंगे, कैसे रहेंगे, इस पर भी तो दृष्टि देना है। अपने आपके वारेमे तो इस जिन्दगी भरका प्रोग्राम बना लेते हैं, ऐसा व्यापार करते, ऐसा ढग बनाते कि सारी जिन्दगीभर कष्ट न भोगना पडे। आगे बढो तो ऐसी मोहकी बात उनमे है कि वे सोचते है कि इतना जोडकर रख जावो कि ये नाती पोते भी कभी कष्टका अनुभव न करें। लेकिन क्या कभी कोई ऐसा भी प्रोग्राम बनाता कि अब ऐसा कर लें, ऐसा पुरुषार्थ कर लें कि जिससे भवभवके क्लेशजालोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाय ? ऐसा तो कोई नही सोचता। अरे जो असार बाते हैं, जिनसे कुछ भी सम्बध नही, जिनपर अपना कुछ भी अधिकार नही उनके वारेमे तो विकल्प करते है, पर जिसपर अपना अधिकार है, जिसको हम बना सकते है उसके वारेमे कुछ नही सोचते। यदि यह बुद्धि जगी हो कि मुझे तो ऐसा पुरुषार्थ चाहिए, ऐसा प्रकाश चाहिए, अत ऐसी करनी चाहिए कि मैं भविष्यमे आकुलित न रहूँ और क्लेशोसे दूर रहूँ, तो मार्ग मिल जायगा।

आत्मसामर्थ्यके भानकी ओर--आत्मामे बहुत बडा सामर्थ्य है। (यह ज्ञानमयकी और ज्ञानसामर्थ्यकी बात कह रहे हैं)। आत्माको जो चाहिए, जिसमे आत्माका आनन्द रह सकता है, ऐसी बातके लिए आत्मामे बहुत बडा सामर्थ्य है उस सामर्थ्यका हम सदुपयोग नही करते। सामर्थ्यका सदुपयोग यही है कि हम अपने आपके वारेमे कुछ प्रकाश पायें समझें। यह जानने वाला मैं दुनियाके किसी पदार्थको जानने चलता हू तो जानने लगता हू, जानता रहता हू, और, जानने वाला यह खुद कैसा है, इसकी जानकारी न बने, यह कैसे हो सकता है ? हम अपनी जानकारी कर सकते हैं पर जानकारी करनेकी रुचि जगनी चाहिए। हमारी जानकारी हमें बराबर हो सकती है। इसके लिए रुचि चाहिए, परद्रव्योकी उपेक्षा चाहिए। परद्रव्योकी उपेक्षाके लिए तीन बातोका विचार करो— पहिली बात तो यह कि ये परद्रव्य मेरे किस कामके हैं ? मुझको ये क्या दे सकते हैं ? इस बातका भली प्रकार विचार करिये। आत्माका सुख इस समय भी हमारी कल्पना और ज्ञानके अनुसार चल रहा है। घरके कारण नही चल रहा कि घर अगर चार खण्डका बन गया है तो इससे हमारा सुख बढ गया है, बच्चे लोग काफी पढ लिख गए है, उनकी सख्या भी काफी हो गई हैं इससे हमारा सुख बढ गया है अथवा अन्य अन्य भी अनेक बातें हैं, पर इनमे कुछ भी सुखकी बात नही नजर आती। खूब ध्यानसे सोच लीजिए कि इस समय भी सुख ज्ञान और कल्पनाके

अनुसार है। जिसकी जैसी कल्पना है उसके अनुसार उसको सुख और दुःख है। बाहरी चीजोके अनुसार सुख और दुःख नही है। जो बात सुनें, समझे वह यथार्थताका निर्णय करते हुए सुने। गलत हो तो उसके बारेमे चर्चा करे और उसके बारेमे धारणा विचार करे।

ज्ञानानुसार आनन्दगुणके परिणमनका लाभ--इस समय भी हम आपको सुख मिल रहा है वह ज्ञान और कल्पनाके आधारपर है। बहुत कुछ सुख सुविधाये पाने पर भी यदि कल्पना ठीक नही है, तृष्णा चल रही है तो वह सुखी नही है, और वह बडे कष्टमे है। यदि अपने भीतरकी कल्पना विशुद्ध है तो भीतरमे कोई अधीरता नही है। ज्ञानप्रकाश है तो उस ज्ञानप्रकाशका इतना माहात्म्य होता है जिसको देखकर दूसरे लोग समझे कि यह तो बडी विड़म्बनामे है, बडे आरम्भमे है और वहाँ भीतरमे देखिये तो कुछ नही। बडे बडे मुनिराज खूब तपश्चरण करते है। उनके तपश्चरणको देख कर लोग यह कह उठते है कि यह तो बडे कष्टमे हैं पर वहाँ कुछ भी कष्ट नही। उन्हे भूख, प्यास, शर्दी गर्मी आदि की कुछ भी परवाह नही। उन्हे कष्टका अनुभव नही हो रहा बल्कि उनके अन्तरङ्गमे एक अद्भुत आनन्द ही बढ रहा है। तो वह क्या बात है? वह सब ज्ञानप्रकाश की बात है। सुख और दुःख कल्पना और ज्ञानप्रकाशके अनुसार चलते है। बाहरी बाते देख करके सुख दुःखका निर्णय मत करो। ये सुख दुःख तो अपनी कल्पनाओके आधारपर निर्भर है। तब फिर सुखकी वृद्धिके लिए बाहरमे कुछ करना है या भीतरी कल्पनामे? जो बात सही है वहाँ अपना निर्णय निश्चिय तो बनाये। सुख शान्तिकी वृद्धिके लिए बाहरमे करनेको कुछ नही पडा है, किन्तु भीतरमे ही करनेको पडा है। मान लो दुनियामे इज्जत बढ गई, लखपती करोडपती हो गए तो उन दूसरोके समझ लेनेसे आपके आत्मामे कौन सी वृद्धि हो गई? आत्माका कुछ भी तो उससे लाभ नही होता। तो यह समझ लीजिए कि बाहरी जितने भी परिग्रह हैं, समागम है, वैभव है वे सब परपदार्थ हैं और उनसे इस मुझ आत्माको मिलता कुछ नही है। प्रत्येक परिस्थितिमे आत्माको सुख अथवा दुःख आत्मा के ज्ञान और कल्पनाके आधारपर चलता है। कोई ज्ञानी पुरुष है, उसका यह निर्णय है कि कोई मुझे न समझे तो न समझे। मैं तो अपने ज्ञानमे अपनेको स्पष्ट तक रहा हूँ। मेरी दुनिया, मेरा वैभव, मेरा सब कुछ जो मुझमे है वह मेरे द्वारा मेरे प्रकाशमे है। उसको अन्य से क्या मतलब? बुद्धिमानी तो इसीमे है कि ऐसा कुछ अत पौरष कर लेवे कि सदाके लिए हमारे सकट मिट जाये। यहाँकी आँखो देखी शर्म, जिसे कहते हैं लोकलिहाज, उसकी उधेड-बुनमे रहकर अपने इस जीवनको फसा लेते हैं, तो यह क्या है? ये सब चीजें कितने दिनोके लिए है, यहाँका कोई भी पदार्थ इस आत्माका साथ न दे देगा।

स्वयंके भविष्यकी स्वयंपर जिम्मेदारी—आजके जीवनमे मान लो कोई बडा पुरुष पागल हो जाय, दिमाग खराब हो जाय तो फिर उसका कोई साथी है क्या ? नही है। तो फिर दूसरे लोग कब तक साथी है ? तभी तक जब तक कि उनका कुछ स्वार्थ सधता है। इन स्वार्थी जनोको अगर साथी कहते हो तो कह लो, मगर इनके सम्बधमे भी निर्णय कर लो कि ये कब तकके साथी है, जब तक कि हमारा ज्ञान सही है, हमारा आचार सही है। जब तक हम सम्हले हुए है तभी तक ये दूसरे लोग भी साथी है। अगर हम ही बिगड गए, हम ही ढगसे न रहे तो फिर कोई साथ देने वाला नही है।

यही बात सबकी है। तो अपने जिम्मेदार आप स्वय है। मैं भविष्यमे क्या रहूगा, किस ढगमे रहूँगा, यह बात किसी दूसरेके आधीन नही है, वह तो खुदके ही आधीन है। कर्मसिद्धान्तमे जो बताया है वह निमित्तनैमित्तिक भावकी बात है। हम जैसे भाव करते हैं वैसे ही कर्म तुरन्त बँध जाते है। कर्म बंध गया, अब बधा हुआ कर्म अबाधाकालके बाद उदयमे आता है, इसको मोटे शब्दोमे यो समझो कि जैसे किसीने कर्म बाँधा मानो १० अरब वर्षका। ये कर्म १० अरब वर्ष तक तग करेंगे। तो वे तग करना कबसे प्रारम्भ करेंगे ? उसकी आबाधा होती है। जैसे मान लो ये २० वर्ष बाद तग करेंगे तो आजका बाँधा हुआ कर्म २० वर्ष तक फल न देगा। २० वर्षके बाद फिर बीस वर्ष कम १० अरब वर्ष तक फल देता रहेगा। तो लोग आज पाप करते हैं और तुरन्त उसका फल वे नही पाते हैं तो लोग सदेह करने लगते हैं कि देखो कहा तो जाता है कि जो जैसे कर्म करता है वैसा फल पाता है, पर देखो ये अयुक लोग कितने हिंसात्मक कार्य कर रहे हैं फिर भी मौजमें रहते है। तो इसमे शका करनेकी जरूरत नहीं है। लोग तो ऐसी बातें देखकर शका कर बैठते हैं और अपने श्रद्धानको बिगाड लेते हैं। पर इस बातको करणानुयोगमे जानना चाहिए। वहाँ बताया है कि जो जीव जैसे कर्म करता है उसका फल वह नियमसे भोगेगा।

ज्ञान व संयमके बलसे पूर्वबद्ध कर्मोंके निर्जरणकी संभवता—हाँ अगर पूर्व बँधे हुए कर्मोंको खिराना है तो उसके लिए बड़ा ज्ञानबल चाहिए, बडा संयम चाहिए। कोई करोडो जन्मोमे भी तप करके जितने कर्म खिरा सकता है उतने कर्म कोई ज्ञानी जीव अपने ज्ञान-स्वभावका आश्रय लेनेके प्रतापसे एक सेकेण्डमे खिरा सकता है। ऐसा ज्ञानका माहात्म्य है। मान लो एक अज्ञानी जीव है, जिसे रास्तेका पता नही कि किस रास्तेसे चलना है, उल्टा रास्ता चल पडा, मान लो जाना तो था पश्चिम दिशाके किसी नगरमे और चल पडा पूरव दिशाकी ओर। चाहे किसी सवारीसे बडी तेजीसे जाय, फिर भी वह तो भटकता ही फिरेगा। और अगर कोई बिना किसी सवारीके, पैदल ही सही दिशामे चलता जाय तो कुछ दिन बाद

तो वह पहुच ही जायगा। और, जितना भी वह पैदल चलकर गया उतना निकट तो पहुंच ही गया। तो इसी तरहसे समझिये कि जिसे कर्मोंकी निर्जरा करनेके ढंगका ही पता नही है वह तो चाहे धर्मके नामपर, तपश्चरणके नामपर करोडो जन्मो तक कठिनसे कठिन तप क्यों न करे फिर भी उसका वह तपश्चरण निष्फल हो जायगा। कर्मके खिरनेका काम तो शुद्ध ज्ञानसे चलता है, अपने आत्माके चैतन्यस्वरूपके बोधसे चलता है। तो जिसे ज्ञान नही है वह करोडो जन्म तक तप करके भी अपने पूर्वबद्ध कर्म न खिरा पायेगा और जो ज्ञानी जन हैं, वे अपने ज्ञानस्वभावके आश्रयसे क्षण मात्रमे ही अपने पूर्वबद्ध कर्मोंको खिरा लेते है। तो जरा चिन्ता करे अपनी, दया करे अपनी, कुछ विचार करें अपना। मेरा कोई साथी नही है, मेरा साथी मेरा ज्ञान है, मेरा आश्रय मेरा आत्मा मेरा साथी है, उसकी सम्हाल करे, उसको प्रबल बनायें, अपनी ज्ञानवृद्धि, ज्ञानार्जन, ज्ञानदृष्टिका यत्न करें तो आराम मिलेगा, शान्ति मिलेगी, कर्म कटेगे। यदि यही न किया गया तो चाहे कितने ही लोकमे बडे कहलाये फिर भी उस बडप्पनसे आत्माका कुछ भी कल्याण नही है।

निर्भ्रान्त आत्मज्ञानके बलपर ही आत्महितकी संभवता—भैया! यदि अपना ज्ञान भ्रममे ही पडा रहेगा तो यह संसार बधन बढाता ही चला जायगा। तो शान्ति प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि मै यह जान लूं कि मैं क्या हू? मैं क्या हू, इसके परिचयके लिए लक्षण की बात कही जा रही है। किसी भी बातको, किसी भी पदार्थको कोई समझता है तो चिह्नसे, लक्षणसे समझता है। अब आत्माको समझनेका क्या चिन्ह है? किसके द्वारा हम आत्माको समझें? कोई चिह्न बाहर नही है। इसी कारण प्रवचनसारमे इसे अलिङ्ग कहा है। किसी भी लिङ्गसे इसका ग्रहण नही होता। कानोसे सुनकर आत्मा परख लिया जाय, क्या ऐसा किया जा सकता है? अथवा आंखोसे देखकर, नाकसे सूंघकर, या जिह्वासे चखकर क्या आत्माका परिचय लिया जा सकता है? नही लिया जा सकता। आत्माका चिन्ह ही कुछ बाहर नही है। यह आत्मा रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। इन पञ्चेन्द्रियोके द्वारा इस आत्माको नही परखा जा सकता है। जब पञ्चेन्द्रियोका व्यापार बन्द किया जाय, क्योकि यह व्यापार विरुद्ध व्यापार है। जब तक यह इन्द्रियव्यापार चलेगा तब तक आत्मा समझमे न आ सकेगा तो सर्वप्रथम इन्द्रियका व्यापार दूर करें, कानोंसे सुनना बद करे, यह तो एक बडी कठिन बात है। कानोमें कोई पर्दा तो है नही इसलिए कानोसे एकदम सुनना खतम करना बडी कठिन बात है। अगर कोई कानोमे अगुली लगाकर बैठ जाय और कहे कि लो मैं अब कुछ भी न सुनूंगा तो वह ऐसा कर न सकेगा, क्योकि फिर तो उसका दिमाग कानोमे लगी हुई अंगुलियो पर ही धरा रहेगा। तो कानोका व्यापार बन्द करना कठिन है। हाँ यदि अन्य इन्द्रियोका व्यापार करके ज्ञानको ज्ञानमे लगाया

स्वयंके भविष्यकी स्वयंपर जिम्मेदारी—आजके जीवनमे मान लो कोई बडा पुरुष पागल हो जाय, दिमाग खराब हो जाय तो फिर उसका कोई साथी है क्या ? नही है। तो फिर दूसरे लोग कब तक साथी है ? तभी तक जब तक कि उनका कुछ स्वार्थ सधता है। इन स्वार्थी जनोको अगर साथी कहते हो तो कह लो, मगर इनके सम्बधमे भी निर्णय कर लो कि ये कब तकके साथी है, जब तक कि हमारा ज्ञान सही है, हमारा आचार सही है। जब तक हम सम्हले हुए हैं तभी तक ये दूसरे लोग भी साथी हैं। अगर हम ही विगड गए, हम ही ढगसे न रहे तो फिर कोई साथ देने वाला नही है।

यही बात सबकी है। तो अपने जिम्मेदार आप स्वय है। मैं भविष्यमे क्या रहूगा, किस ढगमे रहूँगा, यह बात किसी दूसरेके आधीन नही है, वह तो खुदके ही आधीन है। कर्मसिद्धान्तमे जो बताया है वह निमित्तनैमित्तिक भावकी बात है। हम जैसे भाव करते है वैसे ही कर्म तुरन्त बँध जाते है। कर्म बंध गया, अब बंधा हुआ कर्म अबाधाकालके बाद उदयमे आता है, इसको मोटे शब्दोमे यो समझो कि जैसे किसीने कर्म बाँधा मानो १० अरब वर्षका। ये कर्म १० अरब वर्ष तक तग करेंगे। तो वे तग करना कबसे प्रारम्भ करेंगे ? उसकी आबाधा होती है। जैसे मान लो ये २० वर्ष बाद तग करेंगे तो आजका बाँधा हुआ कर्म २० वर्ष तक फल न देगा। २० वर्षके बाद फिर बीस वर्ष कम १० अरब वर्ष तक फल देता रहेगा। तो लोग आज पाप करते हैं और तुरन्त उसका फल वे नही पाते हैं तो लोग सदेह करने लगते है कि देखो कहा तो जाता है कि जो जैसे कर्म करता है वैसा फल पाता है, पर देखो ये अयुक लोग कितने हिंसात्मक कार्य कर रहे हैं फिर भी मौजमें रहते हैं। तो इसमे शका करनेकी जरूरत नहीं है। लोग तो ऐसी बातें देखकर शंका कर बैठते हैं और अपने श्रद्धानको बिगाड लेते हैं। पर इस बातको करणानुयोगमे जानना चाहिए। वहाँ बताया है कि जो जीव जैसे कर्म करता है उसका फल वह नियमसे भोगेगा।

ज्ञान व संयमके बलसे पूर्वबद्ध कर्मोंके निर्जरणकी संभवता—हाँ अगर पूर्व बँधे हुए कर्मोंको खिराना है तो उसके लिए बड़ा ज्ञानबल चाहिए, बड़ा संयम चाहिए। कोई करोडो जन्मोमे भी तप करके जितने कर्म खिरा सकता है उतने कर्म कोई ज्ञानी जीव अपने ज्ञान-स्वभावका आश्रय लेनेके प्रतापसे एक सेकेण्डमे खिरा सकता है। ऐसा ज्ञानका माहात्म्य है। मान लो एक अज्ञानी जीव है, जिसे रास्तेका पता नही कि किस रास्तेसे चलना है, उल्टा रास्ता चल पडा, मान लो जाना तो था पश्चिम दिशाके किसी नगरमे और चल पडा पूरब दिशाकी ओर। चाहे किसी सवारीसे बडी तेजीसे जाय, फिर भी वह तो भटकता ही फिरेगा। और अगर कोई बिना किसी सवारीके, पैदल ही सही दिशामे चलता जाय तो कुछ दिन बाद

से पदार्थ जाना जाता है यह बात सही है। तो लक्षण है पदार्थके जाननेका उपाय, ऐसा कहनेमे भी ज्ञानकी बातका निमित्त ही हुआ कि सच्चे ज्ञानसे पदार्थ पहिचाना जाय। यहाँ सीधा कथन करते हुए दूसरा उपाय बता रहे है कि पदार्थके सच्चे ज्ञानसे पदार्थका परिचय होता है।

प्रमाणमें अर्थात् सच्चे ज्ञानमें संशयका अनवकाश—सच्चा ज्ञान क्या कहलाता ? जिस ज्ञानमे संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय—ये तीन प्रकारके दोष नही होते। यहाँ लौकिक तत्त्वके सम्बन्धमे भी सच्चाज्ञान तभी कहलाता है जब उसमे न तो संशय हो, न विपर्यय हो और न अनध्यवसाय हो। सशय नाम है विरुद्ध दो कोटियोका स्पर्श करने वाले ज्ञानका अथवा अनेक विरुद्ध कोटियोका स्पर्श करने वाले ज्ञानका। जैसे यह ज्ञान करना कि यह सीप है या चाँदी। कोई सामने चमकती हुई चीज नजर आयी, अब उसमे सफेद होना, आकार होना यह तो दोनोमे समानरूपसे पाया गया। चादी भी इसी तरहकी होती है और सीप भी। अब सीप और चादीमे जो विशेष धर्म होते है उनका ज्ञान नही हुआ। तो यहा जैसे सशय हुआ कि यह सीप है या चादी तो यह ज्ञान निर्दोष न कहलायेगा। कोई पुरुष समझ रहा है, ऐसा सशय कर रहा है कि यह सीप है या चादी, तो उस ज्ञानमे उसे क्या फायदा मिला ? कुछ भी फायदा न मिला। वह सच्चा ज्ञान नही है। सच्चे ज्ञानसे लाभ अवश्य मिलता है। चाहे किसी भी प्रकारका लाभ समझ लो शान्ति हुई, संसारकी अपेक्षा कोई स्वार्थ सिद्ध करनेका यत्न किया ये सब बाते लाभके लिए जान ली जायें, तो सशयज्ञान सच्चा ज्ञान नही है। सच्चा ज्ञान वह है जहा संशय न मिलता हो। संशय तो एक शल्यस्वरूप है। कुछ निर्णय ही नही है। आगे यह कुछ बढ ही नही सकता। तो संशयरहित जो ज्ञान है वही सच्चा ज्ञान होता है।

प्रमाणमें विपर्यय दोषका अभाव—दूसरा दोष है ज्ञानका विपर्यय। किसी पदार्थके बारेमे विपरीत ज्ञान बन जाय, हो तो कुछ और मान ले कुछ, इसीको ही विपरीत कहते, भ्रम कहते। जैसे किसी पुरुषने किया तो कुछ और मान लिया उससे विपरीत, उसे भ्रम कहते, विपर्यय कहते। जैसे एक कथा बहुत प्रसिद्ध है, अथवा समझिये उस समयकी घटना है कि किसी समय एक मुनिराजने एक नगरमे चातुर्मास किया तो वह नगरसे बाहर एक वृक्षके नीचे ठहर गए चार महीनेके लिए। उस नगरका भक्त एक सेठ था, वह भी मुनिराज के पास चार महीनेके लिए उसी वृक्षके नीचे ठहर गया। उसने क्या किया कि उसका पुत्र था कुपूत, इसलिए जहाँ मुनिराजके पास ठहरा वही एक हडेमे घरके सोना चाँदी हीरा जवाहरात आदिकी कीमती चीजे गाड़कर रख दिया। सोचा कि यहाँ रक्षित रहेगे। अब चार माह तो पूरे हो गए। उस चातुर्मासके बीचमे ही उस कुपूत पुत्रने जिसने देख लिया था

जाय तो कानोका व्यापार बन्द हो जायगा । यहाँ भी तो देखते है कि किसी पुरुषका चित्त किसी बाहरी बातमे बहुत तेजीसे लग जाता है तो उसे हल्ला नही सुनाई देता । तो कानो का व्यापार बन्द करना हमारी वृत्तिपर निर्भर नही है, वह तो ज्ञानवृत्तिपर निर्भर है । अब उससे आगे चलो—आखे बन्द करना तो आसान है । आँखोमे ऊपर और नीचेके दो पट ऐसे है कि जिनको बन्द कर देनेपर इन्द्रिय व्यापार खतम हो जाता है । तो इन आँखोका व्यापार बन्द करे । यहाँ ऐसी कौन सी चीज है जो देखने लायक हो ? कोई नाम तो बताओ । घर, ईंट, पत्थर अथवा स्त्री पुत्रादिक परिजन ये सब मेरे आत्मासे कुछ सम्बन्ध रख रहे है क्या ? ये मेरा कोई उद्धार कर रहे है क्या ? यह बतलाओ कि यहाँ आँखोसे देखने योग्य है क्या चीज ? हां कुछ हद तक वीतराग भगवान पचपरमेष्ठी ये देखने योग्य है । जब जगतमे देखने योग्य कुछ है ही नही तब फिर आँखोका ज्यादा परिश्रम न कीजिए। आँखोमे लगे हुए जो ढक्कन है उनका उपयोग कीजिए । और नीचे उतर कर देखिये—नाक । इसको तो बन्द करनेकी कुछ जरूरत भी नही है । हाँ जो गध सुगंध सूंघनेका मन करता है उसको दिलसे हटा दें । रखा क्या है उन सुगधोमे ? उससे आत्माका कल्याण क्या होता है ? और नीचे चलो—जिह्वा, मुख । इसको भी वद करनेके लिए दो ढक्कन मिले हुए हैं । दोनो ओठ वद कर लें लो सारा वचनव्यवहार खतम । लोकमे जो फसाव है वह बोलचालका है । बोलनेसे सभी इन्द्रियोका फंसाव बढता है । आखोसे देख लिया, मुखसे बोल दिया, लो राग बढ गया । राग बढनेसे पराधीनता बढी । ऐसी ही बात स्पर्शनइन्द्रियकी है । तो इन इन्द्रियोका व्यापार बन्द करके फिर अन्तरङ्गमे कुछ निरखें तो अपने आपकी निरख बन सकेगी । केवल एक ज्ञानप्रकाश, भाव ही भाव, चैतन्यमात्र, हल्का प्रकाश अपने आप अपने ज्ञानमे आयगा । आनन्द उस ही अनुभवमे है, इन बाहरी चीजोके अनुभवमे आनन्द नही है, आनन्द पानेके लिए सबसे पहिले यह निर्णय करना होगा कि मैं क्या हू ?

आत्मपरिचयके उपायभूत प्रमाणके वर्णनका उपक्रम—पदार्थका परिचय किन उपायो से होता है, उसकी बात चल रही है । यहाँ तक यह बताया है कि लक्षणसे पदार्थकी पहिचान होती है । पदार्थमे जो प्रसिद्ध चिह्न देखा जाता है जिस चिह्नमे कोई दोष न आये तो उस चिह्नसे पदार्थका परिचय होता है । जैसे आत्माका लक्षण चैतन्यज्ञान । यह एक आत्मा का चिह्न है जो यद्यपि इन्द्रियो द्वारा नही जाना जाता है, किन्तु ज्ञान द्वारा समझ लिया जाता है । तो वह आत्माका लक्षण हुआ । लक्षणसे आत्माका परिज्ञान और अन्य पदार्थोका परिज्ञान होता है । अब दूसरा उपाय कह रहे है प्रमाण । सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं । यद्यपि पदार्थके परिचयका सही उपाय प्रमाण ही है, क्योकि लक्षणके कहनेमे ज्ञान हुआ तभी तो जाना । लक्षणसे पदार्थ जाना जाता है यह कथन उपचरित है । लक्षणके सच्चे ज्ञान

से पदार्थ जाना जाता है यह बात सही है । तो लक्षण है पदार्थके जाननेका उपाय, ऐसा कहनेमे भी ज्ञानकी बातका निमित्त ही हुआ कि सच्चे ज्ञानसे पदार्थ पहिचाना जाय । यहाँ सीधा कथन करते हुए दूसरा उपाय बता रहे हैं कि पदार्थके सच्चे ज्ञानसे पदार्थका परिचय होता है ।

प्रमाणमें अर्थात् सच्चे ज्ञानमें संशयका अनवकाश——सच्चा ज्ञान क्या कहलाता ? जिस ज्ञानमे संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय—ये तीन प्रकारके दोष नही होते । यहाँ लौकिक तत्त्वके सम्बन्धमे भी सच्चाज्ञान तभी कहलाता है जब उसमे न तो संशय हो, न विपर्यय हो और न अनध्यवसाय हो । सशय नाम है विरुद्ध दो कोटियोका स्पर्श करने वाले ज्ञानका अथवा अनेक विरुद्ध कोटियोका स्पर्श करने वाले ज्ञानका । जैसे यह ज्ञान करना कि यह सीप है या चाँदी । कोई सामने चमकती हुई चीज नजर आयी, अब उसमे सफेद होना, आकार होना यह तो दोनोमे समानरूपसे पाया गया । चादी भी इसी तरहकी होती है और सीप भी । अब सीप और चादीमे जो विशेष धर्म होते हैं उनका ज्ञान नही हुआ । तो यहा जैसे संशय हुआ कि यह सीप है या चांदी तो यह ज्ञान निर्दोष न कहलायेगा । कोई पुरुष समझ रहा है, ऐसा सशय कर रहा है कि यह सीप है या चादी, तो उस ज्ञानमे उसे क्या फायदा मिला ? कुछ भी फायदा न मिला । वह सच्चा ज्ञान नही है । सच्चे ज्ञानसे लाभ अवश्य मिलता है । चाहे किसी भी प्रकारका लाभ समझ लो शान्ति हुई, संसारकी अपेक्षा कोई स्वार्थ सिद्ध करनेका यत्न किया ये सब बाते लाभके लिए जान ली जायें, तो सशयज्ञान सच्चा ज्ञान नही है । सच्चा ज्ञान वह है जहा संशय न मिलता हो । संशय तो एक शल्यस्वरूप है । कुछ निर्णय ही नही है । आगे यह कुछ बढ़ ही नही सकता । तो संशयरहित जो ज्ञान है वही सच्चा ज्ञान होता है ।

प्रमाणमें विपर्यय दोषका अभाव——दूसरा दोष है ज्ञानका विपर्यय । किसी पदार्थके बारेमे विपरीत ज्ञान बन जाय, हो तो कुछ और मान ले कुछ, इसीको ही विपरीत कहते, भ्रम कहते । जैसे किसी पुरुषने किया तो कुछ और मान लिया उससे विपरीत, उसे भ्रम कहते, विपर्यय कहते । जैसे एक कथा बहुत प्रसिद्ध है, अथवा समझिये उस समयकी घटना है कि किसी समय एक मुनिराजने एक नगरमे चातुर्मास किया तो वह नगरसे बाहर एक वृक्षके नीचे ठहर गए चार महीनेके लिए । उस नगरका भक्त एक सेठ था, वह भी मुनिराज के पास चार महीनेके लिए उसी वृक्षके नीचे ठहर गया । उसने क्या किया कि उसका पुत्र था कुपूत, इसलिए जहाँ मुनिराजके पास ठहरा वही एक हडेमे घरके सोना चाँदी हीरा जवाहरात आदिकी कीमती चीजें गाडकर रख दिया । सोचा कि यहाँ रक्षित रहेगे । अब चार माह तो पूरे हो गए । उस चातुर्मासके वीचमे ही उस कुपूत पुत्रने जिसने देख लिया था

अपने पिताको हडा गाडते हुए, वह उस हडेको खोदकर निकाल ले गया। मुनि तो चातुर्मास पूरा करके दूसरे नगर चले गए। सेठने बादमे देखा तो वहाँ हडा न था। सेठको यह भ्रम हो गया कि वे मुनिराज ही हमारा हडा ले गए होगे। सो सीधा मुनिराजके पास दूसरे नगर गया, वहाँ मुनिराजके सामने उसने कुछ ऐसी कहानियाँ कही जिनसे साफ जाहिर होता था कि हमने तो काफी दिन मुनिराजकी सेवा की और मुनिराज हमारा धनका हडा निकाल लाये। उत्तरमे मुनिराजने भी कुछ कहानियाँ ऐसी कही जिनसे साफ जाहिर होता था कि अरे सेठ तुझे मेरे प्रति व्यर्थका भ्रम है, तेरा धनका हडा कोई दूसरा ही ले गया है। तो मुनिराजने जो कहानियाँ कही थी उनमे से एक कहानी सुनाते है।

भ्रम और निर्भ्रम तत्त्वके उपासकोंका परिणमन—किसी गृहस्थके घर एक नेवला पला था, वह बडा समझदार था। एक दिन घरकी मालकिन अपने बच्चेको पालनेमे लिटाकर पासके कुवेंसे पानी भरने चली गई। उसी बीच क्या घटना घटी कि उस पालनेके पास एक सर्प आया। नेवलेने यह जानकर उसके खण्ड-खण्ड कर दिये कि कही यह बच्चेको डस न ले। अब नेवलेका मुख तो खूनसे लथपथ हो गया था, वह नेवला वाहवाही लूटनेके लिए दरवाजे पर आ गया। उसने सोचा था कि मेरी मालकिन आज तो मेरे कामसे बहुत खुश होगी। पर जब मालकिन आयी, नेवलेका मुख खूनसे लथपथ देखा तो उसे यह भ्रम हो गया कि इसने तो आज मेरे बच्चेको खा डाला। सो पानीसे भरा हुआ घडा नेवलेपर पटक दिया। नेवला तो मर गया। बादमे मालकिनने घरके अन्दर जाकर सापके खण्ड खण्ड पालनेके पास देखे तो सारी बात समझ गई और बडा पछतावा किया। तो मुनिराजके कहनेका आशय यही था कि मैंने तेरा धनका हडा नही उठाया, तू व्यर्थ ही भ्रम करके मेरे ऊपर आरोप लगाता है। तो कहानीमे विशेष बात यह नही कहनी थी। अब कुछ निष्कर्ष समझना हो तो समझ लीजिए कि जिस समय सेठ मुनिराजसे कहानियाँ कह रहा था और मुनिराज उसका उत्तर दे रहे थे तो वह कुपूत बालक सब बातें सुन रहा था। वह कुपूत बालक दोनोके मनकी बातोको समझ गया। मुनिराजके प्रति पिताका ऐसा भाव देखकर उस कुपूत बालकको बडी विरक्ति उत्पन्न हुई, सोचा कि धिक्कार है ऐसे परिग्रहपर, जिसके पीछे बडे बडे साधु सतोपर भी इस प्रकारका भ्रम किया जाय। उस समय वह बालक बोल उठा कि पिता जी आपका वह हडा मैंने निकाल लिया था, और आप यह चाभी लीजिये और घरमे आरामसे रहिये। मै तो इन ही साधु महाराजसे साधु दीक्षा लेकर यहाँ रहूगा। तो भ्रमकी बातके लिए दृष्टान्त दिया गया है कि जिस बातमे भ्रम पडा हो वह सच्चा ज्ञान नही है। पदार्थका परिचय प्रमाणसे होता है याने सच्चे ज्ञानसे होता है। हमे अपने आपके आत्मतत्त्वका परिज्ञान करना है तो सच्चे ज्ञानसे कर सकेंगे, जिसमे सशय न हो और अनि-

श्चय भी न हो। एक बार तो अपने जीवनमे यह पक्का निर्णय बना लो कि जो कुछ ससार मे आज समागम मिला है (घर वैभव कुटुम्ब देहादिक) ये सभी चीजें मेरी बरबादीके लिए है, न कि मेरे उत्थानके लिए। यह बात यदि सच हो तो मान लेना चाहिए। मोहवश रागवश आप उसपर न चल सकें यह आपकी अलग बात है, लेकिन यथार्थ बात है तो मानना ही पडेगा आपको, और जब तक आप नही मान रहे तब तक आपको यथार्थ स्वरूप का विश्वास नही है।

अस्वके समागममें स्वकी उपलब्धिकी असंगतता—जितने भी समागम हैं ये सब बरबादीके लिए है। किस तरह ? मानते तो यो होगे कि बडे आरामसे रहते है, सब प्रकार की सुविधासे रहते हैं, दसो आदमी पूछते हैं, सभी प्रकारके अच्छे साधन जुटे है, इसमे हमारी बरबादी क्या है ? इसमे तो हमारी श्रेष्ठता है। लेकिन इस समयकी भी भीतरकी बात तो तको, तिरन्तर आकुलता मचाये रहते है। वैभव खूब हुआ तो क्या उससे शान्ति मिल पाती है ? कितनी ही चिन्ताएँ, कितने ही भय, कितने ही संशय बने रहते है जिनसे निरन्तर आकुलित रहते है। लेकिन मोहके कारण आप अपने उन क्लेशोंका अनुभव नही करते। दूसरी बात यह है कि इस भवमे कल्पनासे कुछ मौज मान लिया तो इतने से क्या गुजारा चल जायेगा ? मरणके बाद फिर आप क्या बनेंगे ? उसका अनुमान है संसारके जीवोकी दशा। मान लो यहासे मरकर गाय, बैल, भैंस, घोडा आदिक हो गए, भले ही सेवाके लिए नौकर लगे हुए है, भूसा दाना घास आदिक समयपर मिल रहे है लेकिन वह जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है ? उन्हे आगे पीछे का कुछ पता ही नही, कुछ होश ही नही, आत्माके स्वरूपका कुछ भान ही नही। उन पशुओकी जिन्दगी क्या जिन्दगी है ? उन पशुओ की तरह मनुष्योकी भी जिन्दगी समझिये जो सच्ची श्रद्धासे रहते है। कुछ सुख साधन पाकर मौज मान लिया तो भी वह क्या जिन्दगी है ? कुछ विवेक नही। सत्यशान्ति मिल सके वह प्रकाश पासमे नही, सच्चा आराम पाया जा सके वह प्रकाश पासमे नही तो फिर वह जिन्दगी क्या जिन्दगी है ? जितने भी समागम मिले है वे पापोमे, अन्यायमे, खोटे विचारोमे, पराधीनतामे, परवस्तुओके लगावमे प्रेरित करते है। थोड़े समयके ये समागम, ये भ्रम और बहकावा का कारण बन रहे है। इनमे कल्याण कहां है ? बरबादी सारी है। आपके घरमे आज जो ४–६ जीव पैदा हुए या बाहरसे आकर रह रहे है उनसे आपका सम्बन्ध क्या ? इस जगतमे जीव तो अनन्तानन्त हैं। जैसे वे अनन्तानन्त जीव आपसे भिन्न हैं वैसे ही ये आपके घरके भी जीव आपसे भिन्न है, आपसे उनका कुछ सम्बन्ध नही, परिचय नही, लेकिन राग इतना बढा रखा है, मोह इतना कर रखा है कि यह समझ लिया कि ये ही मेरे सब कुछ हैं, बाकी जीव तो गैर है, मेरे कुछ भी नही हैं। उनके प्रति

कुछ दर्द ही नही है। और घरके उन ४–६ आदमियोपर किसी पर कोई विपदा आ जाय तो ये रात दिन बेचैन रहा करते है। तो समझ लीजिए कि असत्यकी ओर रहनेमे कितनी अशान्ति है ? तो सत्यका परिज्ञान तो कीजिए। जो भी समागम मिले है वे सब क्षणिक है, विनाशीक है, भिन्न है, और उनके लगावमे इस जीवकी बरबादी ही है। कर्मबन्ध है, जन्म मरणकी परम्परा बढती है इस कारणसे समागमोमे रच भी सार नही है। तब फिर आओ विचार करें कि सारभूत चीज क्या है ?

उपयोगमें सहज ज्ञानस्वभावको बसानेमें ही सारपता—जिन भगवानको हम आप पूजते है उन्हे क्यो पूजते है ? वे हम आपको कुछ देते भी नही, देते हुए नजर आते नही, पर जो सभी लोग आ आकर उन्हे पूजते है उसका कारण क्या है ? जिनकी हम आप मूर्ति बनाकर पूजा करते है उन पुरुषोने, योगी सतोने समस्त परद्रव्योकी उपेक्षा की। छह खण्डका साम्राज्य उनके पास था, उस सबका उन्होने परित्याग किया, और अपने आपमे अपने आत्मतत्त्वके स्वरूपका परिचय किया, उसमे मग्न हुए। उनके कुछ कर्म नही रहे, शरीर नही रहा, सत्य ज्ञान हो गया। तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ उनके ज्ञानमे एक साथ है। उनके आनन्दमे कोई बाधा नही है। वे अमूर्त हो गए, कोई उपद्रव नही रहा। यही कारण है कि हम उन्हे पूजते हैं। यह रहस्य पूजने वाले लोग जानें या नही मगर पूजनेका कारण है तो एक यही, और कोई दूसरा कारण नही है। जैसे वे जीव है वैसा ही आपका जीव है। हम भी परपदार्थोंकी उपेक्षा करके अपने आपमे अपने सहज ज्ञानस्वरूपकी सम्हाल करें तो हम आपको भी वही वैभव वही समृद्धि प्राप्त हो सकती है। तो दृष्टि दें इस ओर कि क्या चाहिए आपको ? उसका उत्तर होना चाहिए कि मेरे ज्ञानमे मेरा ज्ञानमय आत्मस्वरूप रहे। बस यही एक मात्र चाहिए। इससे बढकर और कुछ भी पदार्थ नही है, यह निर्णय आपको तो हो जाय। अगर यही निर्णय आपका नही है तो जीवन बेकार है।

भ्रान्त अहंकारपूर्ण जीवनकी व्यर्थता—जैसे बहुतसे भिखारी जब किसी एक जगह रहते है तो वे भी एक दूसरेसे अपनेको बढ बढकर मानकर अभिमानमे बसे रहा करते हैं, इसी तरह परद्रव्योके आशावान ये ससारके मनुष्य भी इन मोही रागी जीवोके बीच बसकर एक दूसरेसे बडा मानकर अहकारमे रत रहते हैं। ठीक है, खूब रत रहे, पर इतनेसे आत्मा का बडप्पन नही बन गया। आत्माका बडप्पन तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से है। आत्माका सही विश्वास होना, सही ज्ञान होना और आत्मामे ही रमण होना, इस विधिसे आत्माका बडप्पन है। बाहरी वैभवसे आत्माका कुछ बडप्पन नही है। दिलमे अपने उद्धारकी बात लाना चाहिए, इससे ही आपका बडप्पन बनेगा, कल्याण होगा, सदाके लिए

सकटोसे मुक्ति मिलेगी। बाकी और जो समागम है वे स्वप्नवत् नि सार है। स्वप्नमे बडे बडे वैभव भी दिख जाते है मगर वहाँ है क्या? कुछ भी नही। इसी प्रकार मोहमे भी बडा बडा वैभव समझा जा रहा है मगर है क्या यहाँ इसका? कुछ भी नही। अपने आपका तो केवल एक अपना आत्मा ही शरण है, सार है, सर्वस्व है, उसका परिचय करना है। इसका परिज्ञान प्रमाणसे होता है। प्रमाण क्या कहलाता है, उसकी चर्चा यहाँ है। जिस ज्ञानमे संशय न हो, भ्रम न हो, अनिश्चय न रहे उस ज्ञानको प्रमाण कहते है। जैसे कोई आदमी के बारेमे सदेह करे कि यह आदमी है या नही, तो यह संशयज्ञान हुआ, प्रमाण नही रहा। ऐसे ही आत्माके बारेमे कोई यह ज्ञान करे कि आत्मा भौतिक है या अभौतिक याने पृथ्वी जल आदिकका समूह रूप है या उससे भिन्न है तो यह ज्ञान संशय हो गया। प्रमाणरूप न रहा। तो सशयज्ञान भी न हो वह ज्ञान प्रमाण है।

विपर्यय ज्ञानमें मूढ़ताका हठ—विपरीत ज्ञान (उल्टा ज्ञान) है। उल्टा निश्चय कर लेना। स्वरूप तो है और प्रकारका और मान ले और प्रकारका। जैसे पडी तो है सामने सीप और मान लिया चाँदी, तो यह उल्टा ज्ञान है। ऐसे ही जीव तो है ज्ञानानन्दमय अमूर्त पदार्थ और मान ले कि यह पृथ्वी, जलादिकका समूह है, इससे आगे जीव और कुछ नही है, तो यह हो गया विपरीत ज्ञान। तो स्वरूप हो और भाँति, मान ले और भाँति, यह तो उल्टा ज्ञान है, प्रमाणरूप नही है। ऐसे ज्ञानसे पदार्थका परिचय नही होता। जितना क्लेश भ्रमका है उतना क्लेश तो कोई सामने आपत्ति आ जाय उसमे भी नही है। भ्रमका क्लेश अन्य क्लेशोसे सबसे बढकर होता है। यह जो भ्रम लगा हुआ है कि ये लोग मेरे घरके है, इस भ्रममे कितना क्लेश करना पड रहा है? बाहर जितने श्रम और मेहनत करने पड रहे है वे तो बाहरी क्लेश है। मगर भीतरमे सच्चा प्रकाश न करनेके कारण जो एक मूढता बसी है, क्या करना चाहिए उसका निर्णय न किया जाय। सच्चा पथ क्या है उसका भान न किया जा सके, यह जो भीतरमे एक विडम्बना बनी हुई है, यह जीवके लिए एक महान क्लेशकी चीज है। भले ही मोहमे यह जीव क्लेश न समझे, मगर भ्रममे महान क्लेश बसा हुआ है।

भ्रममें महती विडम्बनाका घटन—राजवार्तिकमे एक दृष्टान्त दिया है कि एक सेठ पैदल जा रहा था तो दूरसे देखा कि एक हाथीने एक बच्चेको सूँडमे उठाकर बडी दूर फेक दिया और वह लडका मर गया। यह घटना देखकर उसे यह भ्रम हो गया कि कही घूमता हुआ मेरा लडका तो नही आ गया। उतनी ही उमर थी, उतना ही आकार था, वैसा ही रूप रग था। तो यह बात जानकर सेठ वहा मूर्छित हो गया—हाय मेरा लड़का गुजर गया। लोगोको खबर पडी, दौडे आये, बहुत उपचार किया, लेकिन एक बुद्धिमान पुरुष

था। उसने पासमे उस लडकेको मरा हुआ देखकर सब कुछ जान लिया। वहा उपचार किया जा रहा था, उसी समय उस बुद्धिमान पुरुषने उस सेठके लडकेको उसके घरसे बुलवाया। जब थोडी देरमे उस सेठकी आखें खुली और सामने अपना लडका देखा तो वह तुरन्त ठीक हो गया। तो वहा था क्या ? केवल भ्रमका ही क्लेश था। तो भ्रमका क्लेश बडा कठिन क्लेश होता है। आज मनुष्य दुखी क्यो है ? भ्रमसे यह कहना बिल्कुल झूठ है कि मेरे पास धन कम है, मेरे पास कोई आरामके साधन नही है, हमे इतने इतने काम करने पडते हैं इसलिए दुख है। ये सब तो बिल्कुल बेकारकी बातें हैं। उन बातोसे दुख नही है। दुख है तो भ्रमसे है, पर्याय बुद्धि लगी है, यह शरीर मैं हू, इसे तकलीफ न हो, ये घरके लोग बडे लाड प्यारमे रहे यह वाञ्छा जगी, यह भ्रम हो गया इसलिए दुख बढ गया। इस पर्यायको देखकर यह मैं हू, इसकी इज्जत होनी चाहिए, ऐसा इसे भ्रम हो गया। अरे तू क्या है ? यह देह तो जला दिया जायगा। तू अमूर्त चेतन है, इसकी खबर ही नही है। व्यर्थ ही कल्पनायें करता और दुःखी हो रहा। तो इस भ्रमका दुख बहुत बडा दुख है। जिस ज्ञानमे भ्रम बसा हो, उल्टा ज्ञान बना हुआ हो वह ज्ञान प्रमाणरूप नही है, सच्चा ज्ञान नही है। और उस ज्ञानसे पदार्थका परिचय नही हो सकता। हमे करना है अपने आत्माका परिचय और उस परिचयसे हम अपने आपके स्वरूप को जानकर कर्मोंकी निर्जरा करेंगे, ससारके सकटोसे हटेंगे, अत आत्मस्वरूप जानना आवश्यक है। इस को जाननेके उपायमे यहाँ दूसरे उपाय प्रमाणकी बात चल रही है।

निःसमारोप ज्ञानसे ही यथार्थ वस्तुस्वरूपका निश्चय—सच्चे ज्ञानसे पदार्थके स्वरूपका परिचय होता है। सच्चा ज्ञान वह है जिसमे न संशय हो, न भ्रम हो और न अनिश्चय हो। जिस जानकारीमे सशय बना हुआ है वह जानकारी सही नही है। यद्यपि सशय किसी जानकारीके निर्णयके लिए होता है लेकिन सशयके समय ज्ञान सत्य ज्ञान नही है। किसी पुरुषको ऐसा सशय हुआ कि यह सीप है या चादी तो जिसे इस तरहका सशय हो रहा, उसके मनमे यह भाव जरूर है कि हम एक इस निर्णयमे पहुच जायें कि यह वास्तवमे सीप है या चादी ? तो सशयमे जिज्ञासा रहती है और किसी एक निर्णयके लिए भीतर भावना रहती है लेकिन संशयके सम्बन्धमे सशयात्मक जो ज्ञान है वह ज्ञान असत्य है, उससे पदार्थका सही निर्णय नही होता। सच्चे ज्ञानको भ्रमरहित भी होना चाहिए। एक किसी निर्णयपर तो है लेकिन वह भ्रम वाले निर्णय पर है, वह भी सच्चा ज्ञान नही है। सशयज्ञानसे विपर्ययज्ञान बहुत खतरनाक है। सशयज्ञानमे तो फिर भी भावना बनी हुई है कि वास्तविकता क्या है ? सशयज्ञान वाला फिर भी समझ रहा है कि मैं किसी एक निर्णय मे नही पहुचा हू लेकिन भ्रम वाले ज्ञानमे तो उसे होश ही नही है। भ्रमके समग्रमे उसकी

यह भावना नही है कि मै सही ज्ञान पर पहुंचूं। भ्रम वाला पुरुष अपनेको ऐसा सही मानता है और भ्रमरहित ज्ञानकी बात कोई कहे तो उसको वह असत्य समझता है। जैसे एक घटना बतायें कि एक गावके किनारेपर एक बढ़ई रहता था। वह बडा मजाखिया था। तो उस रास्तेसे जब कोई नया मुसाफिर निकले तो सबसे पहिले वह मुसाफिर उस बढई से पूछता था कि अमुक गाँवका रास्ता कौनसा गया है ? तो वह बढई उल्टी रास्ता ही बता देता था, साथ ही यह भी कह देता था कि इस गावके सभी लोग बड़े मजाखिया है, वे सभी तुम्हे उल्टा रास्ता बतावेगे, सो तुम उनके कहेगे न आ जाना। ऐसा ही किसी मुसाफिरको हुआ। उसने किसी गावका रास्ता पूछा तो रास्ता गया था पूरबको मगर बता दिया दक्षिणको। आगे बढकर अन्य लोगोसे पूछा तो सभी ने पूरबकी ओर जानेका रास्ता बताया परन्तु उसे अन्य किसीकी बातका विश्वास न हुआ। उसके मनमे यही बात जम गई थी कि वह बढई सत्य ही कहता था कि इसके गावके सभी लोग मजाकिया हैं। वे उल्टा ही रास्ता बतावेगे। सो वह अन्य किसीकी भी बात न मानकर दक्षिण दिशाकी ओर चलता गया। तो जिस पुरुषको भ्रम हो जाता है वह दूसरेकी सत्य बात भी माननेको तैयार नही होता है। इतना धोखे वाला होता है भ्रम। तो जिस ज्ञानमे विपर्यय पडा हुआ है वह ज्ञान सत्य नही है, प्रयोजनभूत नही है। तो भ्रमरहित ज्ञानसे ही पदार्थका परिचय होता है।

संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय तीनों ही दोषोंमें हितका विरोध--अब आत्माके स्वरूपके बारेमे कितना भ्रम लगा हुआ है सो विचारिये। दुनियामे सशय वाले लोग तो कम हैं और भ्रम वाले अधिक हैं। यह देह ही मैं हू, ये आकाररूप रगादिक भी मैं हू ,इस प्रकार का निर्णय रखने वाले, परिचय करने वाले लोग बहुत हैं, और आत्मा वास्तवमे है या नही है इस तरहके सशयकी बात जिसके मनमे आये ऐसे लोग कम है। सशय वालेको तो फिर भी आत्माके बारेमे कुछ भी नही भावना है। है क्या ? है या नही, पर भ्रम वाले पुरुषको तो आत्माके सम्बधमे भावना ही कुछ नही है। बस यह जो देह है, पर्याय है, भवमूर्ति है यही मैं हू, ऐसा उनका परिज्ञान बना हुआ है, और कभी भी इसके विपरीत बात नही जगती कि मैं कहीं असत्य तो नही समझ रहा। तो जहाँ भ्रम हो ऐसा ज्ञान भी सच्चा ज्ञान नही कहलाता। जहां अनिश्चय है, जिसके बारेमे कुछ निश्चय करनेकी बात ही नही आती वह ज्ञान भी अप्रमाण है। जैसे रास्तागीरके पैरमे कोई तिनका लग गया, अब उसकी ओर उसको ज्यादह कोई दृष्टि नही है। वह जा रहा है किसी ध्येयसे, उसमें ही उपयोग है लेकिन थोडा यह भान तो है कि कुछ लग गया, पर उसके बारेमे आगे कुछ निर्णय नही है, न निर्णय करनेकी चाह है। तो ऐसे अनिश्चयात्मक ज्ञानसे भी पदार्थका परिचय नहीं होता।

जहाँ संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नही होते ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। अब जरा विपर्ययके बारेमे कुछ विस्तारसे वर्णन करते है।

स्वरूपविपर्ययताका दोष--किसी भी पदार्थके सम्बधमे कोई उल्टी बातका ज्ञान होता है वे उल्टी बातें तीन प्रकारसे जानी जाती है, जिसको पारिभाषिक शब्दोमे कहते है स्वरूप विपर्यय, भेदाभेदविपर्यय और कारणविपर्यय। किसी पदार्थके बारेमे यदि उल्टा ज्ञान किया जा रहा है तो या तो वह स्वरूपका उल्टा ज्ञान है या उस पदार्थके स्वरूपमे, गुणमे, शक्तिमे या अन्य प्रसगोमे परस्परमे भेद है या अभेद है। इस तरहका उल्टा ज्ञान चल रहा हो या वह पदार्थ किन कारणोसे उत्पन्न होता है उस कारणके सम्बधमे उल्टा ज्ञान चल रहा हो। तीन प्रकारकी विपरीतता होती है किसी भी पदार्थको विपरीत जाननेमे। तो स्वरूपविपर्यय की बात तो प्रसिद्ध है, उसके सम्बधमे बहुत कुछ वर्णन किया ही गया है। वस्तुके स्वरूपके विपरीत स्वरूपका निश्चय करना यह स्वरूपविपर्यय कहलाता है। जैसे पडी तो थी सीप और जान रहे चाँदी। विपरीत जानने वालेके चित्तमे शल्य शंका, रुकावट या अन्य जिज्ञासा नही है। वह तो उस ही बातको सही रूपमे मान रहा है। तो जैसे सीप पडी हो और चाँदीका निर्णय किया जा रहा हो तो यह स्वरूपविपर्यय ज्ञान है। आत्माके बारेमे लगाओ। आत्माको यो मानना कि यह पृथ्वी, जल, अग्नि आदिकसे बना हुआ है, यह भवमूर्ति जो कुछ यहाँ दिख रही है इसी पिण्ड रूप है, यह जीवके सम्बधमे स्वरूपविपर्यय है। तो जहाँ स्वरूप भी उल्टा जाना जा रहा हो वहाँ सब बातें उल्टी-उल्टी जाननेमे आयेंगी। जब मूल ही उल्टा जान लिया तो भेदाभेद कारण आधार आदिक अन्य सब बातें विपरीत जाननेमें आयेंगी। जैसे जहाँ पहिली बटलोही उल्टी धरी गई हो तो उसके ऊपरकी सभी बटलोही उल्टी ही उल्टी धरी जायेंगी। ऐसे ही जिस पदार्थके शुरूमे ही उल्टा-ज्ञान चल रहा है उसके बारेमे अन्य जो भी परिज्ञान किए जायेंगे वे उल्टे ही उल्टे किए जायेंगे।

भेदाभेदविपर्ययताका दोष—जिस जीवने पदार्थका स्वरूप विपरीत समझा है उसके बारेमे भेद और अभेदका भी सही निर्णय नहीं है। भेदको अभेदरूपसे जानना, अभेदको भेद रूपसे जानना इसका नाम है भेदाभेदविपर्यय। जैसे कोई यह जाने कि शरीरसे आत्मा जुदा नही है, और ऐसा जानने वाले अनेक है ही, मैं शरीरसे निराला कोई वास्तविक सत् हूँ इस प्रकारकी परख किसको है ? तो जो भिन्न चीजें है उनको भिन्न-भिन्न न पहिचान सकना, अभेदरूपसे जानना यह हुआ अभेदविपर्यय। अब कुछ लोग ऐसा मानते है कि ज्ञान भी आत्मासे जुदा है, शरीर आत्मासे जुदा है, कषायें आत्मासे जुदा है, तो ज्ञान भी आत्मासे जुदा है। यो बढ बढकर जो निज साधारण स्वरूप है उसको भी जुदा मान लें, यह है अभेद विपर्यय। भेदाभेद विपर्यय अभेद है पर उल्टा जान रहे भेद है, पर उल्टा जान रहे यह विपरीत ज्ञान है। विपरीत ज्ञानमे पदार्थका परिचय नही है।

स्वरूपविपर्यय, भेदाभेदविपर्यय व कारणविपर्ययका एक प्रसङ्ग—यहाँ प्रसंगवश एक दार्शनिक बात आयी है–एक सिद्धान्तमे ज्ञानको आत्मासे जुदा माना गया है। मूलतत्त्व दो समझे है उन्होने, प्रधान और आत्मा, प्रकृति और आत्मा। ज्ञानको प्रकृतिका विकार माना है, आत्मा ज्ञानसे जुदा है और ऐसे आत्माका स्वरूप कहते है वे चैतन्यमात्र, केवल चित्स्वरूप। भाई उस चित्स्वरूपका अर्थ क्या है ऐसा कोई पूछता है तो आगे नहीं बढा जा सकता। बस चित्स्वरूप। जो चित् है, जानता है वह ही जीवका स्वरूप है। भाई कुछ तो बताओ आगे बढकर। इतनेसे तो हम कुछ नही समझ सकते। क्या इसका यह मतलब है कि ज्ञानस्वरूप याने जिसमे जाननेका सामर्थ्य है वह है जानन। जो जानता है जिसका प्रतिभास होता है उसे कहते है चित्स्वरूप। तो उत्तरमे मना करते है कि ऐसा नही है। ज्ञान तो आत्मासे जुदा है। ज्ञान प्रकृतिका विकार है। ऐसा कहनेमे उनको बल यहाँसे मिला कि चूंकि यहा दिखते है कि जिस किसी भी पदार्थका हम ज्ञान करते है वह तो ज्ञान मिट जाता है। हमने जाना चौकी किवाड, लो थोडी देर बाद इसका ज्ञान मिट गया। तो जो ज्ञान मिटता है, जो ज्ञान दूसरेके आधारसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रकृतिका विकार हो सकता है, आत्माका स्वरूप नही हो सकता। यहाँसे उन्होने बल पाया और यह कहा है कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नही है, आत्मा ज्ञानसे जुदी चीज है। बात कुछ हद तक सत्य होने पर भी यह बात सर्वथा सत्य नही कही जा सकती। जो ज्ञान मिट जाता है, जो ज्ञान किसी परके लगावसे, आधारसे, इन्द्रियसे उत्पन्न होते है वे ज्ञान जीवके स्वरूप नही है, यह बात सत्य है। लेकिन इतने पर भी इन ज्ञानोके जीवके परिणमनसे मना नही किया जा सकता। है सब ज्ञान जीवके ही परिणमन। कई लोग मानते है इन परिणमनोको जीवका स्वरूप लेकिन इन सब परिणमनोका आधारभूत स्रोतरूप जो ज्ञानकी शक्ति है, जिसे सहज ज्ञान कहते है, जिस शक्तिके रहे बिना आत्मामे ज्ञान जगे कैसे ? ऐसा मूलमे ज्ञानशक्तिमात्र जो ज्ञानस्वभाव है, ज्ञायकस्वरूप है वह ही आत्माका स्वरूप है, किन्तु इसे न मानकर यो बढकर बोलना कि ज्ञान आत्मासे जुदा है तो यह कहलाया भेदाभेद विपर्यय। विपरीत ज्ञान से पदार्थका निर्णय नही होता, बल्कि विपरीत ज्ञानमे चाहे यह जीव न माने क्लेश, लेकिन निरन्तर क्लेश रहता है।

भ्रममें ही क्लेशरूपता—ससारमे दुख और है ही क्या ? सिवाय भ्रमके। सबने अपने अपने मनमे नाना प्रकारके भ्रम बना रखा है उनका दुख भोगते हैं। जब आप अपनी कहानी सुनायेगे कि मुझे तो बड़ा दुख है तो विवेकी पुरुष वहाँ बताता जायगा कि देखो आपको इस जगह यह भ्रम है इसलिए यह दुख हुआ। सभी प्रकारके दुखोमे केवल भ्रम ही क्लेशका कारण मिलेगा। इस बातको कोई बडे विवेकसे निर्णय करे तो वह खुद ही

जहाँ संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नही होते ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहते है । अब जरा विपर्ययके बारेमे कुछ विस्तारसे वर्णन करते है ।

स्वरूपविपर्ययताका दोष--किसी भी पदार्थके सम्बधमे कोई उल्टी बातका ज्ञान होता है वे उल्टी बातें तीन प्रकारसे जानी जाती हैं, जिसको पारिभाषिक शब्दोमे कहते हैं स्वरूप-विपर्यय, भेदाभेदविपर्यय और कारणविपर्यय । किसी पदार्थके बारेमे यदि उल्टा ज्ञान किया जा रहा है तो या तो वह स्वरूपका उल्टा ज्ञान है या उस पदार्थके स्वरूपमे, गुणमे, शक्तिमे या अन्य प्रसगोमे परस्परमे भेद है या अभेद है । इस तरहका उल्टा ज्ञान चल रहा हो या वह पदार्थ किन कारणोसे उत्पन्न होता है उस कारणके सम्बधमे उल्टा ज्ञान चल रहा हो । तीन प्रकारकी विपरीतता होती है किसी भी पदार्थको विपरीत जाननेमे । तो स्वरूपविपर्यय की बात तो प्रसिद्ध है, उसके सम्बधमे बहुत कुछ वर्णन किया ही गया है । वस्तुके स्वरूपके विपरीत स्वरूपका निश्चय करना यह स्वरूपविपर्यय कहलाता है । जैसे पडी तो थी सीप और जान रहे चाँदी । विपरीत जानने वालेके चित्तमे शल्य शंका, रुकावट या अन्य जिज्ञासा नही है । वह तो उस ही बातको सही रूपमे मान रहा है । तो जैसे सीप पडी हो और चाँदीका निर्णय किया जा रहा हो तो यह स्वरूपविपर्यय ज्ञान है । आत्माके बारेमे लगाओ । आत्माको यो मानना कि यह पृथ्वी, जल, अग्नि आदिकसे बना हुआ है, यह भवमूर्ति जो कुछ यहाँ दिख रही है इसी पिण्ड रूप है, यह जीवके सम्बधमे स्वरूपविपर्यय है । तो जहाँ स्वरूप भी उल्टा जाना जा रहा हो वहाँ सब बातें उल्टी-उल्टी जाननेमे आयेंगी । जब मूल ही उल्टा जान लिया तो भेदाभेद कारण आधार आदिक अन्य सब बातें विपरीत जाननेमे आयेंगी । जैसे जहाँ पहिली बटलोही उल्टी धरी गई हो तो उसके ऊपरकी सभी बटलोही उल्टी ही उल्टी धरी जायेंगी । ऐसे ही जिस पदार्थके शुरूमे ही उल्टा ज्ञान चल रहा है उसके बारेमे अन्य जो भी परिज्ञान किए जायेंगे वे उल्टे ही उल्टे किए जायेंगे ।

भेदाभेदविपर्ययताका दोष—जिस जीवने पदार्थका स्वरूप विपरीत समझा है उसके बारेमें भेद और अभेदका भी सही निर्णय नहीं है । भेदको अभेदरूपसे जानना, अभेदको भेद रूपसे जानना इसका नाम है भेदाभेदविपर्यय । जैसे कोई यह जाने कि शरीरसे आत्मा जुदा नही है, और ऐसा जानने वाले अनेक है ही, मैं शरीरसे निराला कोई वास्तविक सत् हूँ इस प्रकारकी परख किसको है ? तो जो भिन्न चीजे है उनको भिन्न-भिन्न न पहिचान सकना, अभेदरूपसे जानना यह हुआ अभेदविपर्यय । अब कुछ लोग ऐसा मानते है कि ज्ञान भी आत्मासे जुदा है, शरीर आत्मासे जुदा है, कषायें आत्मासे जुदा है, तो ज्ञान भी आत्मासे जुदा है । यो बढ बढकर जो निज साधारण स्वरूप है उसको भी जुदा मान लें, यह हैं अभेद विपर्यय । भेदाभेद विपर्यय अभेद है पर उल्टा जान रहे भेद है, पर उल्टा जान रहे यह विपरीत ज्ञान है । विपरीत ज्ञानमे पदार्थका परिचय नही है ।

स्वरूपविपर्यय, भेदाभेदविपर्यय व कारणविपर्ययका एक प्रसङ्ग—यहाँ प्रसगवश एक दार्शनिक बात आयी है–एक सिद्धान्तमे ज्ञानको आत्मासे जुदा माना गया है। मूलतत्त्व दो समझे है उन्होने, प्रधान और आत्मा, प्रकृति और आत्मा। ज्ञानको प्रकृतिका विकार माना है, आत्मा ज्ञानसे जुदा है और ऐसे आत्माका स्वरूप कहते है वे चैतन्यमात्र, केवल चित्स्वरूप। भाई उस चित्स्वरूपका अर्थ क्या है ऐसा कोई पूछता है तो आगे नहीं बढा जा सकता। बस चित्स्वरूप। जो चित् है, जानता है वह ही जीवका स्वरूप है। भाई कुछ तो बताओ आगे बढकर। इतनेसे तो हम कुछ नही समझ सकते। क्या इसका यह मतलब है कि ज्ञानस्वरूप याने जिसमे जाननेका सामर्थ्य है वह है जानन। जो जानता है जिसका प्रतिभास होता है उसे कहते हैं चित्स्वरूप। तो उत्तरमे मना करते है कि ऐसा नही है। ज्ञान तो आत्मासे जुदा है। ज्ञान प्रकृतिका विकार है। ऐसा कहनेमे उनको बल यहाँसे मिला कि चूंकि यहां दिखते है कि जिस किसी भी पदार्थका हम ज्ञान करते है वह तो ज्ञान मिट जाता है। हमने जाना चौकी किवाड, लो थोडी देर बाद इसका ज्ञान मिट गया। तो जो ज्ञान मिटता है, जो ज्ञान दूसरेके आधारसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रकृतिका विकार हो सकता है, आत्माका स्वरूप नही हो सकता। यहाँसे उन्होने बल पाया और यह कहा है कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नही है, आत्मा ज्ञानसे जुदी चीज है। बात कुछ हद तक सत्य होने पर भी यह बात सर्वथा सत्य नही कही जा सकती। जो ज्ञान मिट जाता है, जो ज्ञान किसी परके लगावसे, आधारसे, इन्द्रियसे उत्पन्न होते है वे ज्ञान जीवके स्वरूप नही है, यह बात सत्य है। लेकिन इतने पर भी इन ज्ञानोंके जीवके परिणमनसे मना नही किया जा सकता। हैं सब ज्ञान जीवके ही परिणमन। कई लोग मानते है इन परिणमनोको जीवका स्वरूप लेकिन इन सब परिणमनोका आधारभूत स्रोतरूप जो ज्ञानकी शक्ति है, जिसे सहज ज्ञान कहते है, जिस शक्तिके रहे बिना आत्मामे ज्ञान जगे कैसे ? ऐसा मूलमे ज्ञानशक्तिमात्र जो ज्ञानस्वभाव है, ज्ञायकस्वरूप है वह ही आत्माका स्वरूप है, किन्तु इसे न मानकर यो बढकर बोलना कि ज्ञान आत्मासे जुदा है तो यह कहलाया भेदाभेद विपर्यय। विपरीत ज्ञान से पदार्थका निर्णय नही होता, बल्कि विपरीत ज्ञानमे चाहे यह जीव न माने क्लेश, लेकिन निरन्तर क्लेश रहता है।

भ्रममें ही क्लेशरूपता—संसारमे दुख और है ही क्या ? सिवाय भ्रमके। सबने अपने अपने मनमे नाना प्रकारके भ्रम बना रखा है उनका दुख भोगते हैं। जब आप अपनी कहानी सुनायेंगे कि मुझे तो बड़ा दुख है तो विवेकी पुरुष वहाँ बताता जायगा कि देखो आपको इस जगह यह भ्रम है इसलिए यह दुख हुआ। सभी प्रकारके दुखोमे केवल भ्रम ही क्लेशका कारण मिलेगा। इस बातका कोई बडे विवेकसे निर्णय करे तो वह खुद ही

समझ लेगा। जैसे मानो कोई कहता है कि मुझे बडा दु.ख है, मेरा बड़ा लडका मेरेसे विरुद्ध हो गया है, वह मेरी आज्ञा नही मानता, और वह मेरी भक्ति भी नही रखता। तो बतलाओ साहब इसमे क्या भ्रम है, जो यह कहते हो कि जगतमे जितने भी क्लेश हैं वे सब भ्रमके है ? तो सुन लो—आपने यह भ्रम बना रखा है कि यह मेरा लडका है। अरे वह आपका लडका है कैसे ? दुनियामे तो करोडों लडके हैं, वे भी तो आपकी कुछ पूछ नही करते, पर उनसे तो आपको कोई क्लेश नही मिलता। उस लडकेसे आपको कोई क्लेश नही है। लडका चाहे कैसा ही चले, वह तो उसका परिणमन है। उससे आपमे क्या आयगा ? आपमे तो आपके ही किसी परिणमनसे क्लेश होगा। आपको है भ्रम। यह लडका मेरी बात नही मानता, पहिली बात तो भ्रमकी यह है कि यह लडका मेरा है, दूसरी भ्रमकी बात यह है कि यह बात मेरी है और तीसरी बात भ्रमकी यह है कि यह मेरी बात नही मानता। अरे वह तो कभी भी नही मानता था, अब भी नही मानता है और आगे भी न मानेगा। मेरी कोईसी भी बात कोई दूसरा कभी मान ही नही सकता, क्योकि पदार्थ सभी अपने आपके स्वरूपमे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं।

प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे अपनी ही परिणतिमे उत्पाद करेंगे, अपने ही परिणमनसे नष्ट होगे और अपने ही भावमे बने रहेगे। किसी एक पदार्थसे दूसरे पदार्थका रंच मात्र भी सम्बध नही है। तो भ्रम ही भ्रम बना है। जैसे केलेके पेडमे कोई सार नही है, अर्थात् वहाँ लकडी न मिलेगी, कोई सार चीज न मिलेगी। पत्तोको निकालते जाइये बस पत्ते ही पत्ते मिलेंगे। पत्तोके नीचेका जो मोटा बक्कल है वही मिलेगा। वहाँ पेड मूलमे कुछ नही है, उसका तना कुछ नही है, यो ही समझिये कि यहा भी जितने क्लेश हैं, इन क्लेशोका वास्तविक आधार कुछ नही है, भ्रम ही भ्रम है, उनको चीडते जाये, विवेक करते जायें तो भ्रम ही भ्रम समझमे आता जायगा। वास्तविक दु खका कारण वहा कुछ भी न मिलेगा। सारे दु खोकी यही बात है। खूब निर्णय करके देख लो, यही बात तो समझने की है। समझ लिया कि जीवन सफल है।

दुःखका भ्रमातिरिक्त अन्य आधारका अभाव—यहां दु खका वास्तविक मूल आधार कुछ नही है। सिर्फ भ्रम ही भ्रम है। बातका निर्णय अगर करेंगे तो कोई बात सुननेमे चाहे देश या समाजके विरुद्ध लगे तो लगे, मगर आपको हर एक दुखका कारण भ्रम ही मिलेगा अन्य कुछ नही। आप सारे दु ख पेश कर दे, खूब विस्तारपूर्वक बता दें तो सबमे यही बात जाहिर होगी कि भ्रम है उस भ्रमका क्लेश है, ऐसी भी कठिन बात अगर आप रख दें कि अच्छा बतलाओ हमारे इस समय बडी तेज भूख लग रही है, तो भूखका वडा क्लेश है कि नही ? इसमे भ्रमकी कौनसी बात है ? हा धन घट गया तो उसमे भी भ्रमका क्लेश है, और और भी जगह भ्रमका ही क्लेश है मगर इस भूखकी वेदनामे भ्रमकी क्या बात है ?

अच्छा तो सुनो—यहा भी भ्रम ही कारण है । प्रथम तो इस जीवने इस देहको माना कि यह मैं हू । इस देहमे पेटके भीतर मशीनरीकी चीज अमुक जगह गर्म हो रही है, इसमे इस समय कुछ भोजन देनेकी आवश्यकता है, यो इस जीवने अपनेको इस देहरूप मान लिया, तव कहता है कि हमे भूख लग रही है । देखिये क्षुधा शब्दके मायने कुछ और है, भूख मायने कुछ और है । भूखका तो सम्बध इस जीवसे है और क्षुधाका सम्बंध इस शरीरसे है । संस्कृत मे भूखको खानेकी इच्छा कहते हैं और क्षुधा नाम है देहके भीतर क्षोभकी कोई वात वर्तने का । तो भ्रम लगा रखा है कि यह मैं हू, मुझे भूखकी वेदना है । कोई कहे कि वाते रहने दो वनानेको, जव भूख लगती है तो पड़ जाता है । हा पता पड तो जाता है । जब अनादि-कालसे भ्रम वसा रक्खा है, भ्रमका संस्कार वना हुआ है, जिससे हमे भूख प्यास आदिक की वेदनाये होती है ये सब वेदनाएँ भ्रमके ही आधारपर चल रही है । भ्रम मिटकर सही भावनाये वना ली जायें तो भ्रम मिट जाने पर भी कुछ समय तो ये वेदनाये रहेगी, क्योकि भ्रमसे जो पहिले पाप उसके कारण कुछ क्लेश तो मिलेगा, पर वह क्लेश अधिक समय तक न चलेगा ।

विभ्रमज क्लेशके क्षयकी विभ्रमविनाशसे ही संभवता—जैसे सामने किसी लडकेको हाथीने सूँडमे उठाकर फेक दिया, किसीको यह भ्रम हो गया कि अरे यह तो मेरा लडका है जो हाथी द्वारा पटक दिये जाने पर मर गया । यह घटना देखकर वह बेहोश होकर गिर गया, उसका सिर फूट गया । थोडी देर बाद किसी विवेकी पुरुषने सब बाते समझकर उसके ही लडके को उसके घरसे बुलवा दिया । अपने बालकको अपने सामने खडा देखकर वह अच्छा हो गया । तो देखो भ्रम मिट जाने पर यद्यपि वह अच्छा हो गया, पर सिर फूट जानेका दर्द तो अभी कुछ समय तक वना ही रहेगा । तो सारा क्लेश भ्रमका है । इस शरीरमे भूख प्यास, सर्दी गर्मी, सम्मान अपमान, इष्टवियोग अनिष्ट संयोग आदिक होना, इन सवका आधार एक भ्रम ही है । जिन्हे इन समस्त दुखोको मिटाना है उन्हे आवश्यक है कि वे भ्रमको दूर करनेका इलाज करें । वाह्यपदार्थोमे और अपने आपके सम्वन्धमे उल्टा ज्ञान न रहे, यही उन क्लेशोके दूर करनेका उपाय है । इन दुनियाकी वाहरी चीजोको इधर से उधर करनेमे ये दुख दूर न होगे । जैसे कोई मोटर चलती है, तो जिस पुर्जाको चलाने से चलती है उसीको चलाना पडेगा तव चलेगी, अथवा जिस पुर्जेसे मोटर रुकती है उसी को रोकनेसे मोटर रुकेगी, अन्य पुर्जोमे श्रम करना व्यर्थ है, ठीक इसी प्रकार ये दुख जिस उपायसे मिट सकेंगे वही उपाय हम आपको करना होगा तभी ये दुख मिट सकेंगे । हमारे ये दुख मिट सकते हैं भ्रमके दूर होनेसे । सो भ्रम तो हम दूर करनेका भाव न वनायें और वाहरी अनेक यत्न करें तो उससे दुख दूर तो न हो जायेंगे । तो विपरीत ज्ञान जहा है

वह ज्ञान अप्रमाण है, और अप्रमाण ज्ञानसे पदार्थका निर्णय नही होता।

कारणविपर्ययताका दोष—अब कारणविपर्ययकी बात कहते है। ऐसा भी भ्रम होता है कि किसी पदार्थके बननेका कारण तो है और, यहा मान लेते है और, तो विपरीत कारण समझ लेना यह भी भ्रम वाला ज्ञान है। जैसे आत्माके बारेमे समझना—मैं माता पितासे उत्पन्न हुआ हू अथवा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे उत्पन्न हुआ हू, तो यह सब कारण-विपर्यय है। मेरे आत्माके अस्तित्वका कारण माता पिता नही, पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आदिक नही, मेरा अस्तित्त्व तो सहजसिद्ध स्वयसिद्ध आनन्दसिद्ध है, मैं अपने आपमे अपने ही स्वरूपसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य किया करता हू। मेरी उत्पत्ति किसी अन्यसे नही हुई है। मोटे रूपमें लोग भूत चतुष्टयसे आत्माकी उत्पत्ति मानते हैं, किन्तु इस सम्बधमे भी उन पुरुषोंको विपरीत ज्ञान बना हुआ है। तो जहा भ्रान्त ज्ञान हो उस ज्ञानसे पदार्थका निर्णय नही होता। आनन्द पानेके लिए आनन्दके स्वरूपका सही ज्ञान और आत्माके स्वरूपका सही ज्ञान होना आवश्यक है। और उस ज्ञानसे ही यह जीव आनन्दका उपाय बना सकेगा। उसका ज्ञान हो कैसे, उसके सम्बन्धमे दूसरे उपायकी चर्चा चल रही है। पहिला उपाय तो लक्षण बताया है, दूसरा उपाय प्रमाण बताया जा रहा है कि सच्चे ज्ञानसे हम पदार्थकी, आत्माकी, आनन्दकी सबकी पहिचान कर सकते हैं। वह ज्ञान होना चाहिए सशयविपर्यय और अनध्यवसायसे रहित। इसमे तीसरा दोष है अनध्यवसाय। अनध्यवसाय किसे कहते हैं? किसी वस्तुमे अनिश्चयात्मक मामूली बोध हो जाय, फिर उसमे कोई विशेष निश्चय ही न हो उसे कहते है अनध्यवसाय। जैसे जीवके बारेमे इतना ही कुछ थोडा आभास कर लेना कि है कुछ, पर इसके आगे जरा भी आगे न बढना, इसके लिए जो अनिश्चयात्मक बोध है उसे कहते है अनध्यवसाय। तो जहा अनिश्चय नही, जहाँ विपरीत ज्ञान नही, जहाँ किसी प्रकारका संशय नही, किन्तु जैसा पदार्थका स्वरूप है उसही प्रकारका सच्चा ज्ञान बन रहा है तो उस ज्ञानके उपाय द्वारा पदार्थके स्वरूपका परिचय होगा। हमे जानना है अपने आत्माको, तो आत्माको हम कैसे जान सकें, उस उपायकी यहा चर्चा चल रही है। एक ठोस विधिसे अगर हम अपने आपको पहिचानने चलेंगे तो इसमे हम अवश्य सफल होगे।

प्रमाणके प्रकार—आत्माको व सभी पदार्थोंको जाननेका उपाय है दूसरा प्रमाण। प्रमाणका अर्थ है सच्चाज्ञान। जिसमे सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय दोष नही होते उसे प्रमाण कहते हैं। तो प्रमाणका स्वरूप बताकर अब यह जानना है कि प्रमाण कितने प्रकारका होता है? प्रमाण मूलमे दो प्रकारके होते हैं—एक तो ऐसा ज्ञान जो इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना केवल ज्ञानमय आत्मतत्त्वके बलसे ही जाना जाता है। एक ऐसा

ज्ञान जो इन्द्रिय और मनकी सहायतासे जाना जाता है। जैसे हम आप लोगोके जितने भी ज्ञान होते है वे परोक्षज्ञान है—इन्द्रिय और मनका आलम्बन लेकर ज्ञान हो रहे हैं। जैसे यह जानना है कि यह ठडा, गर्म, रूखा, चिकना कैसा है, तो उसको स्पर्शन इन्द्रियसे छूकर जान पाते है। यह जानना है कि इसमे खट्टा मीठा आदिक कैसे रस हैं ? तो रसनाइन्द्रिय के सम्बन्धसे जाना जाता है। सुगंध, दुर्गन्ध घ्राणइन्द्रियसे, काला, पीला आदिकरूप चक्षु-इन्द्रियसे, शब्द कर्णइन्द्रियसे तथा समस्त अन्य विषय नाम चाहना, इज्जत चाहना, कुछ सोचना, किसीको इष्ट अनिष्ट समझना ये सब बाते मनसे जानी जाती है। तो इन्द्रिय और मनका जहा आलम्बन लिया गया, ऐसे ज्ञानको परोक्षज्ञान कहते है। और जहाँ इन्द्रिय मनकी सहायता नही है, केवल आत्मीय शक्तिसे ही जाना जाता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं। यह अर्थ शब्दमे भी बसा हुआ है। प्रत्यक्षमे दो शब्द है—प्रति और अक्ष। जो इन्द्रिय मनका आश्रय करके उत्पन्न हो उस ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। और जहाँ इन्द्रिय मन बिना आत्माका सहारा लेकर जो ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है और इन्द्रिय मनका सहारा लेकर जो ज्ञान हो वह परोक्ष ज्ञान है। हम आपमे शक्ति प्रत्यक्षज्ञानकी भी है। इस इन्द्रिय और मनका हम सहारा न लें केवल आत्मबलसे ही जाने तो जान सकते है, लेकिन रागद्वेष मोहके सस्कार इतने बना रखे हैं कि जिससे परमे इतना उपयोग फसा रहता है कि वहाँ आत्मबल प्रकट नही हो पाता कि हम इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना केवल आत्मीय शक्तिसे ही पदार्थोको जान लें। पर करे पौरुष तो प्रत्यक्ष ज्ञान हम आपके बन सकता है।

प्रत्यक्ष प्रमाणके प्रकार—प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारके होते है—एक विकल प्रत्यक्ष और दूसरा सकल प्रत्यक्ष। थोडा-२ भी जान पाया करता हो प्रत्यक्ष तो उसे कहते हैं कि विकल प्रत्यक्ष और तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोको एक साथ जाना जाता हो उसे कहते है सकल प्रत्यक्ष। तो विकल प्रत्यक्ष अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान यो दो प्रकारका है। अवधिज्ञानमें तो कुछ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लेकर रूपी पदार्थोको आत्मीय शक्तिसे जानना होता है और सकल प्रत्यक्षमे कोई मर्यादा नही है और समस्त पदार्थोको जान लिया जाता है। मन पर्ययज्ञानका विषय यद्यपि रूपी पदार्थ नही है लेकिन रूपी मन मे तिष्ठे हुए पदार्थको जाना जाता है। तो अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टिके भी होता है। कुअवधि-ज्ञान मिथ्यादृष्टिके भी हो सकता है। यह ज्ञान भी एक बडा ज्ञान है कि भला बतलावो कि बहुत दूरकी चीज, बहुत पहिले या बादके समयकी चीजको यहा जाना जाय, ऐसे ज्ञानमे क्षयोपशम तो कुछ विशेष चाहिए हो। वह प्रत्यक्षज्ञान है। ये सब बातें इसलिए कही जा रही है कि यहा यह परखते जाइये कि पदार्थके स्वरूपका ज्ञान हम जिन-जिन प्रमाणोसे करते है वे प्रमाण किस ढगके होते है ? अवधिज्ञानके द्वारा जो हमने पदार्थोको समझा

उसका जो ज्ञान हुआ वह पुष्ट ज्ञान है। उसमे किसी प्रकारका सदेह नही है। जैसे सामने सीप अथवा चादी दिख गई मगर वहा जो 'यह सफेद है' इस तरहका ज्ञान हुआ नेत्रइन्द्रिय से उसमे तो कोई सन्देह नही। अब यह मन वाली बात है कि हम इसमे सन्देह करे कि यह सीप है या चादी। आखोसे जो देखा जाता है उसमे किसी प्रकारका सदेह नही होता लेकिन मनके द्वारा जो विचार चल रहे है उन विचारोने सारे पदार्थ पैदार्थ पैदा कर दिया कि यह सीप है या चादी तो जैसे निर्विकल्प मतिज्ञानके द्वारा हम जो कुछ जानते हैं वह सही जानते है। इसी प्रकार अवधिज्ञानके द्वारा जो कुछ जाना जाता है वह सही जाना जाता है।

ज्ञानके पांच प्रकारोंमें परोक्ष ज्ञानोंकी पद्धति—इस समय सक्षेपमे कुछ ज्ञानका विवरण सुनो। ज्ञान ५ प्रकारके कहे गए हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इनमे से श्रुतज्ञान तो है सविकल्प, बाकी चार ज्ञान हैं निर्विकल्पज्ञान तो केवलज्ञान है इसमे तो कोई सदेह है ही नही। थोडा यहाँ प्रश्न किया जा सकता कि मतिज्ञान भी क्या निर्विकल्प होता है? चक्षुइन्द्रिय अथवा अन्य इन्द्रियसे जो हमने विषय जाना वह ज्ञान निर्विकल्प होता है, यह प्रसग है। तो यह बात यो समझमे आयगी कि हम वहाँ यह समझें कि एकके द्वारा जो कुछ हमने प्रतिभासमे लिया वह तो है आँखोका बिषय। अब उस समयमे हम यह जानें कि यह काला है, पीला है, नीला है आदिक ये मतिज्ञानके विषय नही है। ये श्रुतज्ञानके विषय है। मतिज्ञानका विषय ऐसा निर्विकल्प है कि उसे जानकर फिर कोई तरग उठे, शब्दो द्वारा कुछ बात आये, यह यो सीधे समझिये कि जिस ज्ञानके मूल मे शब्द भी अन्तरङ्गमे पडा हुआ हो वे सब सविकल्प ज्ञान हैं। इस तरह बहुत जल्दी ध्यान मे आयगा। हम किसी पदार्थको जानते है तो जाननेके साथ भीतरमे अन्तर्जल्प भी होता है, कुछ शब्द भी उठते हैं। उठे या न उठे मगर प्राय करके यह लक्षण बता रहे हैं। जैसे हमने खम्भा देखकर जाना खम्भा, तो भीतरमे खम्भा आदिक कोई शब्द उत्पन्न हो जाता है, यह सविकल्प ज्ञानकी निशानी है। निर्विकल्प ज्ञानमें किसी प्रकारका शब्द भी भीतर उत्पन्न नही होता। अपनी आँखोसे देखा, क्या देखा? इसका उत्तर विकल्पमे आयगा, निर्विकल्पमे न आयगा। देखा और देखकर यह बोध हुआ कि यह हरा है, यह विकल्प बन गया। हरा है इस प्रकारका विकल्प न बना, उससे पहिले जो कुछ आँखो द्वारा प्रतिभास हुआ वह मतिज्ञान निर्विकल्पका सीधा विषय है, ये बातें सबकी हैं। सबका काम पड रहा है। सब जान रहे, सबकी पद्धति है, पर अपने आपके सच्चे ज्ञानकी पद्धतिका ही बोध नही है। हम आपके अथवा सभी ससारी जीवोके दो ज्ञान तो होते ही है—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। मतिज्ञानसे तो होता है निर्विकल्प बोध और श्रुतज्ञानसे उसके साथ विकल्प उत्पन्न

होता है । चीटी कीडा मकोडा आदिकके भी श्रुतज्ञान है । उनके भी जो मतिज्ञान होता है वह निर्विकल्प है, और जहा कुछ भेद हो, विकल्प हो, मन न होनेपर भी श्रुतज्ञानके कारण जिस ढगके उनके विकल्प जगें, खाते है, कुछ मौज भी होता, उनके सुख भी होता, उनको छेडते है तो दु ख भी होता। तो कोई चित्तमे ज्ञान तो आता ही है । ज्ञान बिना सुख दु ख तो होता नही । तो सुख दु ख होनेमे जो ज्ञान बना वह ज्ञान उनका सविकल्प बना । निर्विकल्पज्ञान सुख और दु खका उद्बोधक नही होता है । तो अब आप यह जानेगे कि मतिज्ञानके द्वारा जो हमे बोध होता है वह कैसा निर्विकल्प है, जिसका कि हम बयान नही कर सकते । प्रतिभास हो गया आखोंसे, पर ज्यो ही हमने जाना कि यह हरा है, काला है । वह श्रुतज्ञान हो गया, सविकल्प उठ गया । तो मतिज्ञानका विषय एक सूक्ष्म ढगका विषय है । वह निर्विकल्प ज्ञान है ना ? विकल्प उठता है श्रुतज्ञानमे तो संशय वगैरह जितने भी विकल्प है उन सबका सम्बंध श्रुतज्ञानसे है । सीप है या चादी, ऐसा जो बोध होता है उसका सम्बध श्रुतज्ञानसे है । वहां जो सफेदी समझमे आयी वह भी यद्यपि श्रुतज्ञान है, उससे प्रथम जो प्रतिभासमे आया वह मतिज्ञानका विषय है, उसमे सदेह नही, उसमे विकल्प नही, उसमे आकुलता नही ।

प्रत्यक्ष ज्ञानोंमें विकल्पका अभाव——प्रत्यक्षज्ञान सभी निर्विकल्प होते है । अवधिज्ञानसे जो कुछ जान लिया अब उसका जो मुनिजन वर्णन करते हैं, दूसरोको समझाते है, वह अवधिज्ञान का काम नही । अवधिज्ञानसे जानकर फिर उसकी स्मृति हुई, स्मृतिके बाद श्रुतज्ञानसे उसका उत्तर दिया । अवधिज्ञानसे जो जाना गया वह तो जाना गया । जानकर अपने आपके लिए भी कुछ समझना, कुछ विकल्प करना, कुछ संकल्प करना अथवा दूसरो को समझाना ये सब श्रुतज्ञान की बातें हैं । हम आपमे जो ज्ञान उत्पन्न हो रहे हैं वे ज्ञान किस ढगके है, यह बात वहां कही जा रही है । तो विकल प्रत्यक्ष अर्थात् थोडा सा प्रत्यक्ष कर लेना दो प्रकारके है–अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान । दूर क्षेत्रमे क्या है, दूर समयमे भूत अथवा भविष्यमे क्या है ? इन बातोको जानता है अवधिज्ञान । और मन पर्ययज्ञान जानता है कि इसके मनमे क्या विचार है, यह क्या चिन्तन कर रहा है ? अवधिज्ञानका भी विषय अल्प है और मन पर्ययज्ञानका भी विषय अल्प है । समस्त विषय तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ तो केवल एक ज्ञानमे आते ही है इसलिए वह सकलप्रत्यक्ष है । यह प्रमाण है । इससे जो जाना गया है वह पदार्थ सही जाना गया है ।

ज्ञानमें ही प्रमाणरूपता——लोकव्यवहारमे जैसे लोग अदालतोमे पूछते है कि इस घटनाका क्या प्रमाण है ? तो लोग पेश कर देते है कोई कागज, पर कागज तो प्रमाण

नही है। प्रमाण होता है ज्ञान। सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते है। उस कागजमे जो लिखा है उसे बाचकर जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान प्रमाण है, न कि कागज। पर उस प्रकारका ज्ञान कागज बाच कर हुआ, कागजके निमित्तसे हुआ अत कागजमे उपचार करके कहते हैं कि लो प्रमाण यह है। कागज सामने रख दिया, पर कागज अजीव चीज वह प्रमाण कैसे बन सकता है? प्रमाण होता है ज्ञान, जिसमे संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नही होते। व्यवहारमे लोग तीन तरहके प्रमाण मानते है—लिखित, साक्षिणो, भुक्ति। एक तो लिखा हुआ, दूसरा गवाह और तीसरा कब्जा। यदि किसीका कब्जा है किसी वस्तु पर तो कहते हैं कि लो हमारा यही प्रमाण है कि कब्जा चला आ रहा है अथवा कोई गवाह हो तो कहते हैं कि यह प्रमाण है अथवा कोई लिखित दस्तावेज है तो वह प्रमाण है, लेकिन ये तीनो बातें उपचारसे है। वास्तवमे तो ज्ञानको ही प्रमाण कहते है। लिखित कागजको देखकर जो बोध किया वह बोध प्रमाण है। गवाहकी बात सुन करके जो ज्ञान किया वह ज्ञान प्रमाण है अथवा कब्जा निरख करके जो ज्ञान हुआ कि यह तो इसकी चीज है, चली आयी है, इसके अन्दरमे है, जो भी ज्ञान हो, जितने अशके लिए ज्ञान हो वह प्रमाण है। तो प्रमाणसे पदार्थकी परीक्षा होती है।

आत्मज्ञानके उपायभूत ज्ञानके विलासोंकी चर्चा—भैया! हमे करना है आत्माका ज्ञान, आनन्दका ज्ञान। आनन्दका स्वरूप क्या है, आत्माका स्वरूप क्या है, यह समझना है तो इसके समझनेका उपाय पहिले तो लक्षण कहा था। निर्दोष लक्षणसे आत्मतत्त्वका परिज्ञान होगा। लक्षण भी बताया गया था चैतन्यस्वरूप, ज्ञानभाव सहज ज्ञान। अब लक्षणकी बात कहकर यहा प्रमाणकी बात कह रहे हैं कि ज्ञानसे ही पदार्थका परिचय होता है। जिस ज्ञानसे पदार्थका परिचय होता है उस ज्ञानका विवरण किया जा रहा है कि वे ज्ञान किस-किस ढगके होते हैं? तो प्रत्यक्ष दो प्रकारके हैं—एकदेश प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। एकदेश प्रत्यक्षमे तो थोड़ासा पदार्थ जाना जाता है, पर जाना जाता है आत्मबलसे। इन्द्रिय और मनकी सहायता लिए बिना ऐसे प्रत्यक्ष दो तरहके होते हैं—अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान। अवधिज्ञानसे तो दूर क्षेत्र, दूर कालके रूपी पदार्थ जाने जाते हैं, पर सम्यग्दृष्टि हो तो उसे तो सच्चा अवधिज्ञान होता है और वह होता है अवधिदर्शनपूर्वक।

मिथ्यादृष्टिके कुअवधिज्ञानकी पद्धतिका दिग्दर्शन—मिथ्यादृष्टिके अवधिज्ञान हो तो उसे खोटा अवधिज्ञान होता है—कुअवधिज्ञान और उससे पहिले अवधिदर्शन नही होता। कुअवधिज्ञानमे पदार्थ तो जाना जाता है मगर इसही ढगसे जाना जाता है कि जो एक अहित करने की दिशा लिए हुए होता है। जैसे नरकोमे नारकियोको कुअवधिज्ञान होता है तो जो सामने नारकी है वह चाहे पूर्वभवका माताका जीव हो पर उसे निरखकर वह

सोचेगा तो यही सोचेगा कि इसने तो मेरी आंखोमे सलाई चुभोकर मेरी आखें फोडनेका यत्न किया था, हालाकि उस मा ने आखोमे ज्योति बढानेके लिए सलाई द्वारा अंजन लगाया था, पर उसे ऐसा कुअवधिज्ञान होता है, खोटा ज्ञान होता है कि इसने तो मेरा अहित ही विचारा था। एक बडो प्रसिद्ध घटना है आदिनाथ भगवानके पूर्वभवके समयकी। आदिनाथ भगवानका जीव कोई राजा था तब उसे मत्री प्रतिबोध रहा था निकट भव्य जानकर, तो उसमे एक कथा कह रहा था कि आपके वशजो मे एक अरविन्द नामका राजा था। उसे एक बार बडे जोरका ज्वर आया। ऊपरकी छतमे कोई दो छिपकलियाँ लड रही थी तो एक छिपकली की पूंछ टूट गई, उसके खूनके दो चार बूंद उस अरविन्द राजाके शरीरपर पडे। उन खूनके बूदोसे राजाको बडा चैन सा मिला। सो उसने अपने पुत्रोको यह आदेश दिया कि ऐ पुत्रो, जावो कहीसे हिरण, खरगोश, बनगाये आदि मारकर उनका खून लावो और एक खूनकी बावडी बनाओ हम उसमे नहाकर तृप्त होगे। तो वे दो पुत्र बोले कि पिता जी इतना खून कहासे लाया जाय ? वह अरविन्द राजा कुअवधि-ज्ञानी था, मिथ्यादृष्टि था। उसने बताया कि अमुक जंगलमे जावो, उस जगलमे बहुतसे हिरण खरगोश आदिक जानवर है। वे लडके उस जगलमे गए तो वहाँ एक मुनिराज बैठे हुए थे। उन्होने अवधिज्ञानसे, मन.पर्ययज्ञानसे सब कुछ जान लिया। मुनिराज बोले—देखो पुत्रो, तुम किसका खून लेने के लिए जा रहे हो ? कुछ धर्मोपदेश दिया, आत्माका स्वरूप कहा, आत्माके एकत्वका वर्णन किया। आखिर वे दोनो राजकुमार बोले कि हमारे पिता तो बडे ज्ञानवान है, वे तो आगे पीछे की भी बातें बता देतें है, उन्होने बताया है कि इस जगलमे बहुतसे पशु है, वहाँसे खून लावो। तो मुनिराज बोले कि वह तो मिथ्यादृष्टि है, उसके कहनेमे आकर जो तुम खून करोगे तो इसका पाप कौन लादेगा ? इसका दु ख किसे भोगना पडेगा ? तो वे दोनो राजकुमर बोले कि मेरे पिता मिथ्यादृष्टि हैं यह तुमने कैसे जाना ? तो मुनिराजने कहा कि अच्छा तुम वापिस जावो और राजासे पूछो कि उस जगलमे और क्या है ? उसे तो खराब खराब ही बातें सूझेंगी। वह यह न बता सकेगा कि वहा पर कोई मुनिराज बिराजे है। वे राजपुत्र वापिस गए। राजासे बोले—पिता जी उस जगलमे और कौन-कौन है ? तो राजाने कहा कि वहां रीछ हैं, खरगोश है, और और भी बहुतसे नाम बताये, पर यह न बता सका कि वहा पर कोई ज्ञानी ध्यानी मुनिराज भी रहते है। उन राजपुत्रोको निश्चय हो गया कि हमारा पिता मिथ्यादृष्टि है। उसका इतना पापमयी अभिप्राय है तो निश्चय ही नरक जायगा। लेकिन पिता का हुक्म तो बजाना ही था सो जीवोकी हिंसा तो न की, पर खून जैसा ही लाखका रग एक वावडीमे भरवा दिया। परन्तु राजा जब उस बावड़ीमें नहाने गया और समझ लिया कि यह खून नही है

तो नगी कटारी लेकर अपने पुत्रोंको मारने दौडा। वे राजपुत्र भागे जा रहे थे। राजा अरविन्द उनका पीछा किए था। रास्तेमे उस राजाके ऐसी ठोकर लगी कि वह जमीनमे गिर गया और उसकी ही कटारी उसके पेटमे समा गयी। वही वह राजा मरकर नरक गया। तो कुअवधिज्ञानके विषयमे कह रहे है कि उसमे दूर क्षेत्रकी बात तो जानी जाती है पर खोटे ही खोटे दृश्य नजर आते है, परन्तु जो सम्यग्दृष्टि जन होते हैं उनका अवधिज्ञान सत्य अवधिज्ञान होता है। अवधिके दर्शन या अन्य दर्शनोमे एक आत्मावलम्बनसे सामान्य प्रतिभास होता है और उस प्रतिभासपूर्वक ज्ञान होता है छद्मस्थ जीवोको, किन्तु जिन्हे कुअवधिज्ञान है उनके वह ज्ञान कुमति ज्ञानपूर्वक होता है और कुमति ज्ञानसे पहिले जो दर्शन हुआ वह दर्शन परम्परया कारण बनता है।

प्रमाणके भेदोंमें अवधिज्ञानके प्रकार—प्रमाणके दो भेद कहे गये—परोक्ष और प्रत्यक्ष। प्रत्यक्षके दो भेद बताये—एकदेश प्रत्यक्ष और सकलप्रत्यक्ष। एकदेश प्रत्यक्षके दो भेद हैं—अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान। इनमे से अवधिज्ञानकी यह चर्चा चल रही है। अवधिज्ञान तीन प्रकारके होते है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। इनमे से परमावधि और सर्वावधि तो मुनियोके ही होता है और देशावधि चारो गतियोंके जीवोके होता है। कोई तिर्यञ्च भी ऐसे होते है कि जिनके अवधिज्ञान हो सकता है। नारकी, मनुष्य और देवोंके देशावधि के सम्बधमें अब कुछ प्रकार बताये जायेंगे कि देशावधि ज्ञान कतने ढगसे होता है? यह ज्ञान चारो गतियोमे हो सकता है, याने थोडा अवधिज्ञान एक साधारण रूपका अवधिज्ञान। इन्द्रिय और मनकी सहायता लिए बिना केवल आत्मबलसे होता है उस अवधिज्ञानके अब भेद बताये जायेंगे।

निज ज्ञानवैभवके परिचयकी व उपयोगकी उपयोगिता—सभी जीव ज्ञानमय हैं। ज्ञानमय आत्माका ज्ञान कितने तक प्रकट होता है, उस सम्बधको लेकर उस ज्ञानसे पदार्थ परिचय होता है, यह चर्चा चल रही है। ज्ञानविकासके विस्तारको समझकर यह निर्णय करना है कि पदार्थोंके जाननेके उपाय ऐसे ऐसे ज्ञान होते है। ज्ञान ५ प्रकारके बताये गए हैं। सिद्धान्त शास्त्रोमे पढ लेते हैं, तत्त्वार्थ सूत्रमे पढ लेते है पर उनका क्या मतलब है, यह जाननेकी न उनकी इच्छा है, न प्रयत्न है। कभी जाननेके लिए कहा जाय या जाननेकी बात बोली जाय तो वह कठिन मालूम होती है, बुद्धिपर जोर आता है और चाहते यह हैं कि यह बात क्या सुनाते, कोई ऐसी बात होना चाहिए जो चटपट हो, लेकिन अपने आपके ज्ञान की बात जो उच्च विकासकी है, उसका परिचय होनेसे अपने अन्त यह साहस जगता कि अहो मैं तो ऐसे-ऐसे वैभव वाला हू, मेरा ज्ञान-वैभव तो ऐसा महान है, तो अपने छोटे मोटे

इन ज्ञानोमे या इन थोडेसे लगावोमें चित्त न रहेगा। संसारमे क्लेश अज्ञानका है। अज्ञान को छोडकर और कोई क्लेश ही नही। जो जीव दु खी है वे किसी न किसी प्रकारके अज्ञान में है, इसलिए दु खी है। ज्ञान तो सही यह है जब ज्ञानमे ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप समाया हो। अब आप सोच लीजिए कि जिस जीवके ज्ञानमें केवल सहज ज्ञान ज्ञानप्रकाश चैतन्य-मात्र निज ज्योति समाई हुई हो उस उपयोगमे आकुलताका कोई काम है क्या ? वहाँ आकु-लता रच मात्र नही। राग त्यागि पहुंचूं निज धाम। आकुलताका फिर क्या काम॥ बाह्य-पदार्थविषयक ज्ञानोको छोडकर यदि सहज ज्ञान स्वभावमात्र इस निज तत्त्वमे पहुंचें तो आकुलताका फिर कोई काम नही रहता। तब अपने आपके स्वरूपके विकासके वैभवके महत्ताकी जानकारी तो अवश्य कर लेना चाहिए। यही जानकारी न की, निजस्वरूपकी ही समझ न आयी तो बाकी समझोसे तो कोई काम नही बन सकता।

ज्ञानोंमें प्रत्यक्ष व परोक्षरूपता—ज्ञानके इन ५ प्रकारोमे से मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल, इनमे से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो परोक्षज्ञान है, इनकी जानकारीमे तो इन्द्रिय और मनकी सहायता लेनी होती है, पर अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान के परिणमनमे इन्द्रिय और मनकी सहायता नही होती। ये तीन प्रत्यक्षज्ञान कहलाते है। जैसे कि लोकव्यवहारमे लोग कहते कि हमने इसे प्रत्यक्ष आँखो देखा, तो उनका यह कहना औपचारिक है। आँखोसे देखनेका नाम प्रत्यक्षज्ञान नही, वह तो परोक्षज्ञान है, क्योकि उसमे इन्द्रिय और मनका सहारा लिया गया है, लेकिन परोक्ष होनेपर भी यहाँ एकदेश स्पष्ट प्रतिभास किया जा रहा है, इस नातेसे उसे प्रत्यक्ष कहते है, तो भला जो प्रत्यक्ष नही है, परोक्ष है उसमे भी जब हमारा स्पष्ट प्रतिभास हो रहा तो जो सही प्रत्यक्षज्ञान है उनमें कितना स्पष्ट प्रतिभास होता होगा ? इन तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोमे से अवधिज्ञान और मन पर्यय-ज्ञान ये दो ज्ञान तो विकलप्रत्यक्ष है, एकदेश जानते हैं। उसमे अवधिज्ञानकी चर्चा चल रही है कि अवधिज्ञानका कितना फैलाव है ? यहाँ तो लोग अवधिज्ञानकी बात सुनकर भी प्रभा-वित हो जायेंगे। ओह! ये कैसे ऊँचे अवधिज्ञानी हैं। कोई मुनि अवधिज्ञानी हो और वह आगे पीछेकी बात बताने लगे तो लोगोकी श्रद्धा बढती है। लोगो पर प्रभाव होता है। अव-धिज्ञानसे भी बढ़कर मन पर्ययज्ञान है और सर्वोत्कृष्ट है केवलज्ञान। उसकी बात भी आगे आयगी, पर इस समय अवधिज्ञानकी बात सुनो।

अवधिज्ञानके तीन व दो प्रकार—अवधिज्ञान होता है तीन प्रकारका—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। एकदेश याने थोडा अवधिज्ञान होना सो देशावधि है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान होना सो परमावधि है, और सर्वका अवधिज्ञान होना सो सर्वावधि है। इन तीनोमे परमावधि और सर्वावधिज्ञान तो मुनियोके ही हो सकता है, अन्यके नही,

वह भी उसी भवसे मोक्ष जाने वाले मुनियोके हो सकता, पर देशावधि ज्ञान चारो गतियोके जीवोमे होता है। अवधिज्ञानके ऐसे भी दो भेद हैं--भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भव प्रत्ययका अर्थ है कि भवका निमित्त पाकर अवधिज्ञान नियमसे होता ही है। जैसे देव और नारकी इन जीवोके अवधिज्ञान नियमसे होता है। यदि देव नारकी कोई मिथ्यादृष्टि है तो कुअवधिज्ञान होगा और सम्यग्दृष्टि है तो सुअवधिज्ञान होगा, पर वह भव ऐसा है कि उस भवमे अवधिज्ञान होता ही है। इसे कहते है भवप्रत्यय अवधिज्ञान। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान जहाँ भवका नियम नही है किन्तु जैसा क्षयोपशम हो, अवधिज्ञानावरणका पर्दा हटा हो उस हटावके माफिक अवधिज्ञान होना याने जिसमे क्षयोपशम कारण है, भव कारण नही, उसको कहते हैं गुणप्रत्यय, और जो उस भवका निमित्त पाकर नियमसे अवधिज्ञान हो उसे कहते है भवप्रत्यय। भवप्रत्यय देशावधि ही होता है और गुणप्रत्यय तीनो प्रकारके होते है।

अवधिज्ञानके छह प्रकारोंमें प्रथम अनुगामी अवधिज्ञान—अब अवधिज्ञानके अन्य प्रकारसे भेद सुनो। अवधिज्ञान ६ प्रकारसे भी समझा जाता है। जैसे पहिला प्रकार है अनुगामी। अनु मायने पीछे-पीछे, गामी मायने चलना। जिस भवमे अवधिज्ञान होता है वह अवधिज्ञान की धारा मरनेके बाद अगले भवमे भी जाय, एक तो ऐसा अनुगामी अवधिज्ञान होता है। जैसे ऊचे स्वर्गो के देव अवधिज्ञानी होते हैं और अनेकोके अनेक ज्ञान मरने पर भी यहा मनुष्य होते हैं तो यहा भी साथ आते है। तीर्थंकर जो पुरुष बनते है वे जैसे देव-गतिसे आये, मनुष्य बने तो वह अवधिज्ञान वहा और यहा मनुष्य तक बराबर रहता है, अर्थात् एक भव छोडनेके बाद भी दूसरे भवमे अवधिज्ञान जाय उसे अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। यह हुआ भव अनुगामी। अवधिज्ञान क्षेत्र अनुगामी भी होता है। जिस क्षेत्रमे जिस देशमे बनमे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उस क्षेत्रको छोडकर दूसरे देशमे, गावमे कही जाय तो वहा भी वह अवधिज्ञान साथ जाये, इसे कहते हैं क्षेत्र अनुगामी अवधिज्ञान। और किसीके अवधिज्ञान ऐसा पुष्ट होता है कि दूसरे भवमे और दूसरे क्षेत्रमे भी जायगा उसे कहते है अनुगामी अवधिज्ञान।

अननुगामी अवधिज्ञान—दूसरा अवधिज्ञान होता है अननुगामी। मरनेके बाद दूसरा जन्म जहाँ लिया वहा अवधिज्ञान न जाय, ऐसे अवधिज्ञानको भव अननुगामी अवधि-ज्ञान कहते हैं। जिस क्षेत्रमे, बनमे देशमे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है उस क्षेत्रको छोडनेके बाद दूसरी जगह जाने पर अवधिज्ञान न रहे उसे क्षेत्र अननुगामी अवधिज्ञान कहते है। देखिये—कितना कमजोर यह अवधिज्ञान है कि मान लो एक बनमे विराजे हुए किसी जीव को अवधिज्ञान हो गया तो हो गया, चल रहा, अब उस जगहको छोडकर दूसरे गाँव चला

जाय तो अवधिज्ञान न रहे, जैसे बहुतसे ऐसे कमजोर दिलके व्यक्ति रहते है कि जिस कमरे मे रोज सोते वहा तो नीद आती है और कारणवश दूसरे कमरेमे खाट बिछानी पडे तो नीद नही आती, बहुत देरमे आती है। यहीके श्रुत ज्ञानोमे भी यही बात देखी जाती है। जैसे किसीके सत्संगमे रहकर ज्ञान चलता है, बुद्धि चलती है, बडे तत्त्वकी बात भी समझमे आती है। वह सत्संग छूटनेके बाद, वह वातावरण, वह क्षेत्र छूटने के बाद बुद्धि नही चल पाती। तो ऐसे भी अवधिज्ञान होते है कि जिस जगहमे अवधिज्ञान होता है वह जगह छूटनेके बाद, दूसरी जगहमे पहुचने पर अवधिज्ञान नही रहता। और, कुछ अनुभय अननुगामी अवधिज्ञान होते हैं, न दूसरे भवमे जाये, न दूसरे क्षेत्रमे जाये।

अवधिज्ञानका आत्मरूप--यह अवधिज्ञान क्या चीज है ? इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना आत्मबलसे रूपी पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिभास होता है, जिस समय अवधिज्ञानसे कोई बात जानी जा रही है उस समयमे जीवके कोई विकल्प नही है। विकल्पके मायने श्रुतज्ञानमे जो बात होती है वह नही, क्योकि ज्ञान तो सविकल्पका ही नाम बताया गया है। निर्विकल्प दर्शन कहा गया, लेकिन ज्ञानमय श्रुतज्ञानजन्य विकल्प न हो तो उसे निर्विकल्प ज्ञान कहते है। जान लिया बस अवधिज्ञानसे, अब जाननेके बाद चूंकि आत्मा वही है, एक स्मरण हो गया, अब उस स्मृतिके बलपर दूसरे लोगोको बताते भी है कि तुम अमुक थे, यह हो। ऐसा अवधिज्ञान कुछ लोगोको लगता होगा कि बडी ऊँची बात है, बडा विकास है, ऐसा होना बडी कठिन बात है, लेकिन जिनको इसकी कुञ्जी प्राप्त हुई है और उस कुञ्जीपर चलते हैं उनके लिए ऐसा ज्ञान होना कोई कठिन बात नही है। ज्ञानविकासकी कुञ्जी है असली रागद्वेष मोह तजकर अपने आपके ज्ञानस्वरूपका उपयोग बना। यह एक ऐसा अग्निका कण है कि जिसके द्वारा आवरण कर्म जल जाते है और ज्ञानविकास सहज हो जाता है। हम आपको करने लायक केवल एक ही काम है, वह काम यही कि अपने सहज ज्ञानस्वरूपको जानें और ज्ञानमे उस सहज ज्ञानस्वरूपको ही अपनायें, इसके अतिरिक्त और कोई काम करने योग्य है ही नही और करना पड रहा है वह सब एक कर्मोदयकी प्रेरणापर।

सांसारिक समागमोंसे शान्तिकी आशा रखनेकी दुराशा---भैया ! क्या रखा है यहाँकी बातोमे ? जिस घरमे आप रहते है वह घर आपका नही है। कुछ समय बाद छूटेगा। आपका दिल माने या न माने, पर दूसरेकी बात स्पष्ट जानते हैं कि जिस घरमे रहते है यह घर कभी छूटेगा ही। जीव न जाने कहाँ जायगा ? उसे पक्षी चोंट जायेगे या जला दिया जायगा। देहकी बात देहसे, जीवकी बात जीवसे। घर रहेगा नही, जिस धन वैभवको इतना सम्हाल करके रख रहे हैं यह धन वैभव आपका नही है। सम्हाल

कर रखते रखते भी पापका उदय आयगा तो किसी तरहसे यह निकल जायगा, सम्हाल न सकेंगे। और कहो किसी समय एकदम सभीका राष्ट्रीयकरण हो जाय तो लो सबकी सम्पदा गई। किसीकी भी न रही। तो यह तो अच्छी बात है। तुरन्त जरूर बात बुरी लगती है कि तब कुछ न रहेगा, और अच्छा यो है कि फिर ममता न रहेगी तो उस समय अवकाश मिलेगा कि आत्मध्यानमे ज्यादह लगें। यह कोई निश्चय नही है कि आत्मध्यानमे लगेंगे ही, यह तो उसके ज्ञानपर निर्भर है। लेकिन एक अवकाश तो है, और अवकाश तो परिग्रहके रहते हुए भी है। ज्ञानी पुरुष तो परिग्रहके बीच रहकर भी उसे अपना कुछ नही मानते। चक्रवर्ती तो छह खण्डकी विभूतिका स्वामी होनेपर भी उससे उदास रहता है, तो यह तो अपने अपने ज्ञानकी बात है, और इतना तो जरूर चित्तमे लाना चाहिए कि ऐसा लोभ न बनायें कि चाहे कुछ भी हो पर खर्चा न होगा। जैसे कोई एक मजदूर आटा खरीदनेके लिए गया। वह एक हाथमे एक रुपया लिए था, तो जब आटा ले लिया और रुपया देने लगा तो वह रुपया तो मुट्ठीमे बाँधे बाँधे कुछ पसेवसे गीला हो गया था, सो वह मजदूर सोचता है—ओह! देखो यह रुपया तो रो रहा है, सो बोला—ऐ रुपये! हम मर जैहै पर तुम्हे न भजै है। सो वह बिना आटा लिए ही वापिस लौट आया और भूखा ही रहकर सो गया। यो ही समझिये कि जिन परपदार्थोंके पीछे इतनी अधिक ममता रखते वे दुःखके ही कारण बनेंगे। इससे उन परपदार्थोंकी चिंता न करे, उदयानुसार जो आना हो आये। चिंता करने से भी होना क्या है? जहाँ रागद्वेष मोह ढीले हुए और ज्ञानमे अपना सहज ज्ञानस्वरूप समाया तो वहाँ ही यह ज्ञानविकास होगा, सच्चा वैभव बढेगा। झूठे वैभवकी ममतामे सच्चे वैभवकी बरबादी हो रही है। सत्य वैभव अपना ज्ञान है। तो जो लोग अपने वैभवकी बात सुननेमे भी आलस्यकरें उनके लिए फिर आगे कल्याणकी बात भी क्या है? अन्य रागभरी बातोमे चित्त रमे और रागरहित ज्ञानस्वरूपकी कथनी सुननेमे चित्त न जमे, उसका तो स्पष्ट परिणाम है कि उसका ससारमे ही चित्त रहा है, संसारमे ही वह जमना चाहता है।

वर्द्धमान और ह्रीयमान अवधिज्ञान—हाँ यहाँ अवधिज्ञानकी चर्चा चल रही है कि अवधिज्ञान कोई अनुगामी भी होता है और कोई अननुगामी भी होता है और अवधिज्ञानके दो भेद ये हैं—वर्द्धमान और ह्रीयमान। जब जितने रूपका ज्ञान प्रकट हुआ है उससे वह बढता ही जाय, न घटे और न ज्योका त्यो ही रहे ऐसे अवधिज्ञानको वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। होता है ऐसा। जब विकास और निर्मलपरिणाम जीवके बँधते हैं तो सहज ही बढता चला जाता है। बढनेके मायने क्या कि कोई जीव मानो अभी दो हाथ दूर तककी बात अवधिज्ञानसे जानता था। पीछे दो दो हाथमे क्या है? अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र तो बिल्कुल नजदीक है। यो समझिये कि अंगुलके असंख्यातवें भाग दूरकी बात जाने ऐसा भी

अवधिज्ञान है, उसमें भी क्षयोपशम चाहिए। इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना हम एक अगुल पीछेकी भी बात जान जायें यह तो क्षयोपशम साध्य बात है। तो क्षेत्र भी बढे और १० हाथ दूरकी भी बात जान गए, १० कोशकी बात जान गए, १० हजार योजनकी बात जान,गये, सागरो योजनकी दूरकी बात जान गये। कालमे भी एक मिनट पीछेकी वात जान गए, १० साल पीछेकी बात जान गये, सागरो वर्ष पीछेकी बात जान गये। यो अवधिज्ञान बढता जाता है। तो जो अवधिज्ञान बढ़ता ही जाय उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते है और जो अवधिज्ञान घटता ही जाय, जितने परिमाणमे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था बस ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता है त्यो त्यो उनका ज्ञान कम होता जाता है, ऐसे अवधिज्ञानको हीयमान अवधिज्ञान कहते है।

अवस्थित और अनवस्थित अवधिज्ञान--अब दो प्रकारके ज्ञान है—अवस्थित अवधिज्ञान और अनवस्थित अवधिज्ञान। जितनी दूर तकका जानने वाला, जितने लम्बे समय तकका जानने वाला, जितना सूक्ष्मसे सूक्ष्म चीजोको जानने वाला अवधिज्ञान होता है उतना ही रहे, न घटे न, बढे उसे अवस्थित अवधिज्ञान कहते है और जो अवधिज्ञान घटे भी, बढे भी, जितने रूपमे उत्पन्न हुआ था उससे कुछ घट भी जाय, इससे कुछ बढ भी जाय ऐसे अनवस्थित घटने बढने वाले अवधिज्ञानको अनवस्थित अवधिज्ञान कहते है। यह अवधिज्ञान क्या है ? आत्मामे जो एक ज्ञानशक्ति है, ज्ञानगुण है उस ज्ञानगुणसे एक निरपेक्ष परिणमन है याने इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखे बिना परिणमन है। सर्वथा निरपेक्ष नही, क्योकि अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमके आधीन इसका विकास है। यही मैं ज्ञानमय पदार्थ हू, यही मे ज्ञानस्वरूप, जब रागद्वेष मेरे कम हो, और मुझे अपने स्वरूपमे रुचि जगे और इस ही ज्ञानस्वभावका स्पर्श बनाये रहनेमे भाव जगे तो ऐसे ऐसे ज्ञान प्रकट होते है। इस चर्चाको सुनकर इतनी बात तो मनमे लायें कि यदि मैं इस घर, धन, वैभव, परिजन आदिककी ममताको छोडकर रहू और अपने आपके ज्ञानस्वभावके ज्ञानमे यत्न करूँ तो मेरे अतुल वैभव प्रकट होता है। सच्चा वैभव तो इस ही पुरुषार्थमे मिलेगा, बाकी जो और काम किए जा रहे है वे सब व्यर्थके काम है, ससारमे रुलाने वाले काम हैं।

अवधिज्ञानमें प्रयुक्त अवधि शब्दका प्रकाश--अवधिज्ञान इस शब्दका अर्थ क्या है? अवधि कहते है मर्यादाको। जिस ज्ञानमे मर्यादा पडी हुई है कि यह ज्ञान इतने मोटे या इतने बारीक पदार्थको जान सकता है, यह ज्ञान इतने दूर क्षेत्रकी बात जान सकता है। उसे अवधिज्ञान कहते है। मर्यादासहित ज्ञानका नाम अवधिज्ञान है। देखिये मर्यादा तो मन.पर्ययज्ञानमे भी है, ढाई द्वीप तकका इसका क्षेत्र है। और, किसके मनकी बात जान सके, किसके मनकी बात न जान सके यह भी मर्यादा है। अत मन पर्ययज्ञान भी अवधिज्ञान

वाला है, लेकिन अवधिज्ञान इतने मात्रसे दोनोंको कहा जाय तो स्पष्टता तो नही आती कि क्या स्वरूप है ? ऐसे मन पर्ययज्ञानका जो खास विषय है उस विषयकी मुख्यतासे नाम धरा है मन पर्यय । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान ये इन इन चारो ज्ञानोमे निरवधिज्ञान तो केवलज्ञान है सिर्फ और इस दृष्टिसे ५ ज्ञानोके नाम इस क्रमसे लिए जायें तो वहुत ही उत्तम है—मति, श्रुत, मन पर्यय, अवधि और केवलज्ञान । इस क्रममे यह जाहिर हो जायगा कि अवधिज्ञानके पहिलेके ज्ञान अवधि वाले हैं और उसके वादका केवलज्ञान निरवधि है । अवधिकी दृष्टिसे ५ ज्ञानोका क्रम यह होना चाहिए लेकिन चूकि मन पर्ययज्ञान मुनियोके ही हो सकता है, अवधिज्ञान चारो गतियोमे हो सकता है । तो जो चारो गतियोमे सम्भव है उस दृष्टिसे नाम रखा गया तो मति, श्रुत, अवधि और जो केवल मुनियोमे ही सम्भव है सो है मन पर्यय और केवलज्ञान । ये १३वें गुणस्थानके केवली भगवान है ना । है वे भगवान और मुनिसे ऊँचे है, परमात्मा है, लेकिन एक धारामे इन्हे भी निर्ग्रन्थ मुनिमे शामिल किया है, जहाँ कि निर्ग्रन्थमे ५ भेद किए, वे ५ भेद कौन-कौनसे हैं ? भगवान स्नातक हैं । भगवानने अपने ज्ञानसमुद्रमे भरपूर स्नान कर लिया है । अब ये त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको स्पष्ट जानते है । ऐसे इन ५ प्रकारके ज्ञानोमे अवधिज्ञानकी बात बतायी जा रही है ।

मनःपर्ययज्ञान—जिन साधु पुरषोको कोई विशिष्ट ऋद्धि उत्पन्न हो जाती है उनके किन्हीके मन पर्ययज्ञान होता है, अर्थात् दूसरेके मनमे जो विचार हो अथवा कभी विचार किया था, अथवा कभी विचार उत्पन्न होगा, वह सब मन पर्यय ज्ञानी साधु पुरुष जान लेते हैं । यद्यपि ऐसा लगता होगा कि दूसरेके मनकी बात तो यहाँ भी अनेक लोग समझ लेते है लेकिन यह उनकी समझ प्रत्यक्ष और स्पष्ट नही है । मन पर्यय ज्ञानीको प्रत्यक्ष और स्पष्ट ज्ञान होता है । यहाँ हम आप जो दूसरेके मनकी परख करते है कोई चिह्न देखकर, कोई वचन देखकर, कोई सकल सूरत देखकर, इन्ही चिह्नोसे हम विचारका अनुमान करते है, यह प्रत्यक्ष ज्ञान नही है, अवधिज्ञानकी अपेक्षा मन पर्ययज्ञानमें विशेष निर्मलता है । अवधि-ज्ञान तो चारो गतिके जीवोको हो सकता है, लेकिन मन पर्ययज्ञान मनुष्योके ही होगा । मनुष्योमे साधुवोके ही होगा, और साधुवोमे भी जो विशिष्ट ऋद्धिधारी साधु हैं उनके ही होगा । यो विशेष निर्मलता कारण है मन पर्ययज्ञान उत्पन्न होनेमे । मन पर्ययज्ञानमे भी सीमा पडी हुई है, क्योकि यह विकलप्रत्यक्षका भेद है । यह बात पहिले बता दी गई थी कि मन पर्ययज्ञानमे भी सीमा पडी हुई है और नियमित ज्ञान होनेके कारण ५ ज्ञानोका क्रम इस प्रकार भी रखा जाय तो भी सगत है । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मन पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान और केवलज्ञान । अवधिज्ञान और अवधिज्ञानके पहिलेके समस्त ज्ञान मर्यादा रखकर जानते है और अतिम केवलज्ञान निरुपाधि है, लेकिन मन पर्ययज्ञानकी विशेपता, मन.पर्ययज्ञानमे

स्वामीकी पूज्यता ऋद्धिधारी मुनीश्वरोमे ही हो सकती है। इस पूज्यताके नातेसे मन पर्यय ज्ञानको केवलज्ञानके पास रखा गया है। तो यह बताया जा रहा है कि हम आप ज्ञानमय पदार्थ है और हम आपमे कितना विशिष्ट ज्ञान करनेका वैभव पडा हुआ है, उसका तो ख्याल नही करते और जडपदार्थोमे जडता बना बनाकर रागद्वेष कर करके अपने जीवनके इन दुर्लभ क्षणोको व्यर्थ खोया जा रहा है। जिस ज्ञानसे हम पदार्थ जानते हैं वे ज्ञान कैसे कैसे हैं इसकी चर्चा यहाँ चल रही है। तो मन पर्ययज्ञान, दूसरेके मनमे जो विचार आया था, आया होगा, आयगा, उस सबको जाना जाता है मन.पर्ययज्ञानसे।

मनः पर्ययज्ञानके प्रकार—मन पर्ययज्ञान दो प्रकारके होते है.. एक ऋजुमति और दूसरा विपुलमति, अर्थात् सरल मनमें रहने वाले विचारको जाना जावे उसे ऋजुमति मन पर्ययज्ञान कहते है और जो कठिनसे कठिन मायाचारमे रहने वाले विचारोको जान जावे सो विपुलमति मन पर्ययज्ञान है। सरल मनकी बात जाननेमे जितना क्षयोपशम है उससे विशिष्ट शक्तिविकास मायाचारीके मनकी बात परखना है। तो चाहे कैसा ही कुटिल मन हो, उसने जो बात विचारा, जो बात विचार रहा है वह सब मन पर्यय विपुलमति ज्ञानमे बराबर आता है। देखिये – मनमे तो हो और कुछ, वचनसे बोला जा रहा हो और कुछ, ऐसे पुरुषकी विचारधाराको परखना बडे ज्ञानीका काम है, और सरल मनमे जो विचार आये उनको जानना सुगम है। तो इन दो ज्ञानोमे जो विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी है वे नियम से मोक्ष जायेगे। मन पर्ययज्ञानके बाद केवलज्ञान होगा, उसके बाद मुक्ति होगी। मोक्षगामी पुरुषोके ही विपुलमति मन पर्ययज्ञान हो सकता है। और जिनके ऋजुमति मन पर्ययज्ञान हो अर्थात् जो सरल मनकी बातोको जानें वे मोक्षगामी हो अथवा न हो। जायेगें अवश्य कभी न कभी मोक्ष क्योकि सम्यग्दृष्टि हो चुके। सम्यग्दृष्टि साधु सयमी मुनियोके ही मन पर्ययज्ञान हो सकता है।

केवलज्ञानका अनुपम प्रकाश—अब अतिम ज्ञान है निरवधि केवलज्ञान। जरा अपने आपको सम्हालकर सुनना है। केवलज्ञान सबका स्वभाव है। हम आप सब जीव केवल ज्ञानमय बन जायें ऐसा स्वभाव पड़ा हुआ है। ज्ञानमय है ना हम आप ? ज्ञान ही आत्मा है, वह ज्ञान ही ज्ञान आत्मा रह जाय, ज्ञानपर पर्दा कुछ न रहे, लो केवलज्ञान हो गया। केवलज्ञान होनेमे कोई चीज बाहरसे जोड़नी नही पडती, किन्तु जो कुछ रागद्वेष, विकार, अपराध आदि लगे हुए है उनको दूर हटानेकी आवश्यकता है। तो केवलज्ञान तो स्वभावकी चीज रही, विकार हटे कि स्वभाव प्रकट हो जायगा। ऐसा केवलज्ञान हम आपका स्वभाव है। इतना बडा वैभव है। हम आप जिन परमात्माकी मूर्तिके दर्शन करने रोज आते है, घुटने टेकते है, विनती करते है, ऐसा हो जाना तो हम आपका स्वरूप है।

तो क्यो जी, ऐसा दास बना रहना, ऐसा रोज विनती पूजन आदि करते रहना, यही हमेशा चाहिये या जैसा प्रभुका ज्ञानानन्दमय स्वभाव है उस स्वभावका विकास चाहिए ? इन दोनो का निर्णय तो करो। भगवानके चरणोमे भक्ति तब तकके ही लिए है जब तक कि इस स्वभावका विकास न हो। पूजनके अन्तमे उपासक जन बोलते भी हैं—

तब पद मेरे हियमे, मम हिय तब पुनीत चरणनमे।
तब लौ लीन रहो प्रभु हियमे, जब लौ मुक्ति न पाऊँ ॥

हे प्रभो! तुम्हारे चरणकमल मेरे हृदयमे विराजें। तब तक विराजे रहे जब तक कि मैं मुक्ति प्राप्त कर लूं। तो सुननेमे ऐसा लगता है कि जो भक्तिकी पद्धति है उस पद्धति मे न तो शर्त लगती है, न कोई खुदगर्जकी बात कही जाती है, लेकिन इस पदमे तो शर्त लगती है, न कोई खुदगर्जकी बात कही जाती है, लेकिन इस पदमे तो शर्त सीधी लगा दी कि जब तक मुझे मोक्ष न हो तब तक आपके चरणोमे मेरा हृदय रहे, और फिर खुदगर्जी भी साबित होती है। जब तक कि भगवान न हो जायें तब तक भगवानके चरणोमे मेरा चित्त रहे। अगर कोई वस्तुस्वरूपका सही जानकार ज्ञानी पुरुष है तो वह सही स्वरूपसे कभी अपना मुख मोड नही सकता। वह जानता है कि प्रभुके चरणोमे भक्ति करते रहना यह भी तो ससारका रूप है। ज्ञानी तो विकारभावको स्वीकार ही नही करता। जो विकार है सो परभाव है, अन्य है, अधर्म है, और जो अविकार ज्ञानस्वभाव है सो निज है, धर्म है, उस धर्मको स्वीकार करना है। तो ऐसी पवित्र भावना और पवित्र निर्णय रखने वाला ज्ञानी कैसे सही सिद्धान्तसे अपना मुख मोड़ सकता है ? तो केवलज्ञानकी बात कही जा रही है कि ऐसा केवलज्ञान जिस प्रभुके प्रकट हुआ है, तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थों को एक साथ स्पष्ट जानते है। ऐसा ज्ञान हो जाना हम आपके स्वरूपमे हैं, स्वभावमे है। रुचि करें स्वभावकी तो स्वभावकी बात प्रकट होगी। रुचि करें विकारकी तो विकारकी बात प्रकट होगी।

आत्महितके लिये अपनी वृत्तिकी हितरूपता व अहितरूपताके निर्णयकी आवश्यकता—भैया! निर्णय करलो कि विकारमे, विषयमे हित है या अविकार ज्ञानस्वभावमे मग्न होनेमे हित है ? धर्मपालन करने के लिए बडे-बड़े प्रोग्राम बनाये जाते हैं, बडे श्रम किए जाते हैं पसीना भी आने लगता है, लोग थक भी जाते हैं और बहुत बोलना भी पडता है। प्रबध, लडाई झगडे भी बीच-बीचमे आते हैं, ऐसे धार्मिक समारोह उत्सव, धर्मपालन, विधान आदिक करने वाले लोग चाहे इन बातोसे विश्राम ले लें लेकिन एक बार यह निर्णय तो कर ही लें कि धर्म क्या चीज है और धर्मका पालन होता किस प्रकार है ? धर्म है मेरे आत्माका स्वभाव जो सहज है, शाश्वत है, स्वत सिद्ध है उस धर्मकी अथवा कहो कि

आत्मस्वभावकी दृष्टि रखना, उसकी ही रुचि करना, उसका ही उपयोग बनाना और उसके ही उपयोगमे रमे रहना, यही है धर्मपालन। क्योंकि धर्म उसे कहते है जो प्राणीको दु खो से छुटाकर उत्तम आनन्द स्वरूपमे स्थिर कर दे। तो यही धर्मपालन संसारके समस्त दु खोसे छुटाकर जीवको इस आनन्दमे धारण करा देता है। धर्म नाम उसका है कि जो बात पदार्थ मे स्वभाव रूपसे रहे। तो मुझमे स्वभावरूपसे रहने वाला चैतन्यभाव है, ज्ञानभाव है, उस ज्ञानभावमे दृष्टि होना, उपयोग होना, उसमे रमना, यही धर्मपालन है। अब सोच लीजिए जहाँ विकार रुचते है अथवा धर्मके नाम पर दिल बहलावाकी बातें ही रुचती है, अपने ज्ञानस्वभावमे पहुँचनेका पौरुष भी नही करते है उनकी क्या धर्मपालनकी स्थिति है ? वे तो अधर्मकी रुचि करते है, विकारकी रुचि करते है। तो धर्मपालनका प्रभाव है यह कि केवलज्ञान प्रकट हो जाता है। केवलज्ञान पानेके लिए केवलज्ञानकी दृष्टि चाहिए। केवल मायने सिर्फ ज्ञान, ज्ञानभाव, केवल जाननस्वभाव, ज्योति, उसकी दृष्टि चाहिए कि केवल ज्ञान हो जायगा। इसको सकल प्रत्यक्षज्ञान कहते है। तीन लोक तीन काल व अलोक सम्बन्धी समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायोको एक साथ केवल आत्मशक्तिसे स्पष्ट जान लेना सकल प्रत्यक्ष कहलाता है।

ज्ञानका सौक्ष्म्य और विस्तार--ज्ञानका स्वरूप कितना सूक्ष्म है, देखिये सूक्ष्म चीज वह होती है जिसका विस्तार बहुत अधिक हो। बहुत अधिक विस्तार वाला ही सूक्ष्म बन सकता है। अल्पपरिमाण वाला सूक्ष्म नही होता। इसी कारण यदि यह कह दिया जाय कि सूक्ष्ममे स्थूल चीज समा जाती है, लोगोका तो यह ख्याल है कि स्थूलमे सूक्ष्म चीज समाती है मगर विवेकपूर्वक विचार करनेसे यह ज्ञात होगा कि सूक्ष्म चीजमे स्थूल चीज समाती है विस्तार सूक्ष्मका अधिक होता है, स्थूलका परिमाण थोडा होता है। जैसे आजकलके वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि पृथ्वीका भाग थोडा है और जलका भाग अधिक है। पृथ्वीके चारो ओर जल है, पृथ्वी एक द्वीप की तरह है। इसको यदि यह कह दिया जाय कि जल मे पृथ्वी समायी हुई है तो यह कोई अत्युक्ति न होगी। अब जरा सिद्धान्तको लेकर भी देखो तो यहाँ मध्यलोकमे पृथ्वीका हिस्सा थोडा है, जलका हिस्सा अधिक है। बीचमे जम्बूद्वीप है जो एक तरफ एक लाख योजनका है, उससे दूना घेरकर लवण समुद्र है, तब समझ लो कि जम्बूद्वीपसे लवणसमुद्र कितना बडा है। यो दो दो लाख सभी तरफ बडा है तो जरा सोचो तो सही कि उसका कितना बडा परिमाण हो गया ? उससे दूना दूसरा द्वीप है, उससे दूना उसे घेर कर तीसरा द्वीप समाण है। इस तरह दूने-दूने परिमाण वाले द्वीप और समुद्र होते गए हैं। अन्तमे एक समुद्र है, जिसका नाम स्वयंभूरमण समुद्र है। तो हिसाब करके देखो कि जितना विस्तार उस अंतिम समुद्रका है, सारे द्वीप समुद्रका मिल

कर भी उतना विस्तार नही हो सकता । फिर समझ लो कि बाकीमे आधे समुद्र और आधे द्वीप । तो पृथ्वीसे उस समुद्रकी सख्या ४–६ गुनासे भी अधिक हो जायगी । तो समुद्रके जलका परिमाण अधिक है । क्यो अधिक है ? वैज्ञानिक ढगसे तो कोई यो उत्तर देगा कि चूंकि पृथ्वीसे जल पतला होता है इसलिए पृथ्वीमे जल समाया है । पतलेमे मोटी चीज समायी हुई है । सूक्ष्ममे स्थूल चीज गर्भित हो जाती है । अब देखो—जितना जलका परिमाण है वह सारा जल, सारी पृथ्वी, सब हवामे समायी हैं । हवाका विस्तार जलसे अधिक है । उस समुद्रसे बाहर भी हवा है । और सारे लोकमे हवा है । और जहाँ पौद्गलिक पिण्ड नही पाया जाता वहाँ भी हवा है वातवलयके रूप मे ।

तो हवाका विस्तार अधिक है और हवामे जल भी समाया है और पृथ्वी भी । और, हवासे पतला है आकाश । तो आकाशका विस्तार हवासे भी अधिक है । हवा ज्यादहसे ज्यादह तीन लोक तक ही है, परन्तु आकाश लोकसे भी बाहर है । अलोकाकाश जिसे कहते हैं । आकाशका विस्तार असीम है । उसका अन्त ही नही है । और वह इन सबसे पतला है । हवाको तो रबडमे बन्द करके रख लिया जाता है । उसे मोटरके ट्यूबोंमे भरकर हजारो मील तक ले जाया जाता है । मगर आकाशको रोककर किसी थैलेमे भरकर कोई कही ले जा सकता है क्या ? नही ले जा सकता । तो यह आकाश हवासे भी पतला है । अब देखिये कि सारी पृथ्वी, सारा पानी, सारी हवा, सारा आकाश ये सब केवलज्ञानके एक कोनेमे समाये हुए है । ज्ञानका इतना बडा विस्तार है कि ये सब एक अंशरूप मालूम पड रहे हैं । उस केवलज्ञानमे इतनी सामर्थ्य है कि ऐसे ऐसे समस्त आकाश, हवा आदिक कितने ही हो, अनन्त भी हो तो भी केवलज्ञानमे झलक जाते है । क्यो ऐसा होता है ? ज्ञान जो जाननेका काम करता है सो पदार्थमे जा जाकर जाननेका काम नही करता किन्तु ज्ञानमे स्वभाव ही ऐसा है कि जो सत् हो, जो है वह सब ज्ञानमे आयेगा ही । तो अगर ऐसे अनन्त पदार्थ, अनन्त लोक और भी सत् होते तो सत्त्वके नातेसे उन सबको ज्ञानमे आना ही पडता । इस कारण यह कहा जाता कि केवल ज्ञानका इतना बडा विषय है कि उस केवलज्ञानमे ऐसे लोक अनन्त भी होते तो वे सब उस ज्ञानमे प्रतिभात हो जाते । तब समझिये कि ज्ञान कितना सूक्ष्म है और कितने महान विस्तार वाला है ? ऐसा ज्ञान प्रकट हो जाता ।

केवल ज्ञानकी महिमा—जिस ज्ञानमे आनन्द ही आनन्द बसा हुआ है, जहाँ सब कुछ जान लिया, अब उसे आकुलता क्या ? प्रथम तो वीतराग भगवानको इस कारण आकुलता नही कि उनके रागद्वेष मोह नही है । जहाँ रागद्वेष मोह हो आकुलता वहाँ ही हो सकती है, एक बात । दूसरी बात साथ साथ यह भी जान लीजिए कि जिसमे समस्त

त्रिलोक, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोको जान लिया, तो ऐसा जानने के कारण भी आकुलता का अवकाश नही रह सकता। हम आप लोग आकुलित क्यो है ? सब बातोका ज्ञान भी नही है, सब बातोकी जानकारीकी जिज्ञासा भी नही है।

जब कोई काम करते है तो काम करनेका राग है इस कारण भी आकुलता है। पर साथ ही साथ उस कार्यके बारेमे जिज्ञासा भी है कि इतना हो गया, इतना और होना चाहिए, यो उसके ज्ञानकी भावना भी बनी हुई है। तो आकुलतामे कारण साक्षात् और परम्पर्या ये दोनो है। प्रभु सर्वज्ञ है और वीतराग है इस कारण उनकी ऐसी महिमा है कि उनके कोई आकुलता नही जगती। जहाँ आकुलता न हो, केवल आनन्दस्वरूप ही बना हुआ हो, ऐसा वैभव पा लेना योग्य है या यहाँके विनाशीक कर्मके प्रेरे इन परिजन और इन वैभवोमे लगाव रखना, यह योग्य है ? जरा विवेकपूर्वक सोचो और अपने आपपर दया करते हुए तो सोचो तो यह सहज विदित हो जायगा कि अपने आपके इस ज्ञानवैभवका विकास करनेमे ही बुद्धिमानी है, बाकी काम तो बेकार है और उनमे तो समय गंवाना है। समय गंवानेके बावजूद भी अन्तमे हाथ कुछ नही रहता। कितना ही धन कमा लिया जाय, कितना ही परिचय बना लिया जाय। आखिर आखिरी सबकी यही है कि हाथ कुछ न रहेगा, सब कुछ छोडकर जाना पडेगा। लगे भी रहे जिन्दगीभर और जिनमे लगकर ऐसी आकुलता मचाई, ऐसे दुर्लभ मानवजीवनको गमाया और फल यह हुआ कि मिला कुछ नही, बल्कि पाप--कोपला, दुर्गति, ये ही हाथ लगे। भला बतलाओ--ऐसे कार्य करना क्या कोई विवेक का कार्य कहा जा सकता है ? विवेक तो इसमे है कि ऐसी अपने ज्ञानस्वभावकी आराधना बना ले कि जिस ज्ञानस्वभावकी उपासना करनेसे केवलज्ञान प्रकट होगा, सर्वज्ञ वीतराग दशा बन जायगी, सदाके लिए संसारके संकट छूट जायेगे, उस ज्ञानकी बात यहाँ चल रही है जो कि मोही जनोको रुचिकर न होगा, पर ज्ञानप्रेमियोको रुचिकर होगा।

परोक्ष ज्ञान--पदार्थका स्वरूप परखनेका उपाय प्रमाण है, इसकी चर्चा चल रही है। सच्चे ज्ञानसे पदार्थका स्वरूप जाना जाता है, सच्चे ज्ञान कैसे होते है, उनके जितने भी प्रकार है उन सब प्रकारके ज्ञानोमे मूल बात यह रहना चाहिए कि संशय, भ्रम और अनध्यवसाय ये तीन दोष ज्ञानमे न रहना चाहिए, तो वह ज्ञान सच्चा ज्ञान है। तो ज्ञानके प्रकारोमे प्रत्यक्ष ज्ञानोका वर्णन अभी तक हुआ है। अब परोक्ष ज्ञानोका वर्णन चल रहा ये परोक्षज्ञान हम आप सभी ससारी जीवोके पाये जाते है। इसका वर्णन यो अधिक चित्त लगाकर सुनना है कि ये सब बातें हम आप पर जो बीत रही है उसकी कथनी है। हम आपके ज्ञान किस तरहमे चल रहे है वह सब इस परोक्षज्ञानके प्रसगमें मिलेगा। हाँ परोक्ष-ज्ञान—जो ज्ञान इन्द्रिय व मनकी सहायतासे पदार्थोंको जाने उसे परोक्षज्ञान कहते है। हम आप जितने भी इस समय ज्ञान कर रहे हैं, परखते जायें— या तो उसमे किसी इन्द्रियका

व्यापार है या मनका व्यापार है। जब किसी पदार्थको छूकर ठडा, गर्म, रूखा, चिकना आदिक ज्ञान करते है तो स्पर्शन इन्द्रियका व्यापार है। जब घट मिट्टी आदिक पदार्थोंको जानते हैं तो रसना इन्द्रियका व्यापार है, सुगंध, दुर्गन्ध जानते हैं तो वह घ्राण इन्द्रियका व्यापार है। काला पीला आदिक रगोके निरखते समय जो जानते है वह कर्ण इन्द्रियका व्यापार है। इन इन्द्रियोका व्यापार यदि बन्द करदें तो इन विषयोका ज्ञान नही हो पाता और मनका विषय है नाना प्रकारका। न जाने क्या-क्या विचार बनते, क्या क्या ख्याल बनते। इज्जत चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, और और भी अनेक प्रकारके छल षड्यन्त्र वगैरह बनाते ये सब मनके विषय हैं। तो इन ६ विषयोमे से किसी न किसी विषयमे रहा करते है। यद्यपि ऐसा लगता है कि हम आज कुछ नया ही काम कर रहे है, नई चीज छू रहे हैं, नई चीज देख रहे है, नई चीज खा रहे है, लेकिन ऐसा तो कल भी किया था, वर्षोसे करते आये, भवोसे करते आये, फिर भी मोहका ऐसा रग चढा है कि यह ध्यानमे नही ले सकते ये जीव कि ये भोग तो अनेक बार भोगे। ये तो भोगे हुए ही भोग हैं, जब जो विषय मिलता है उस समय यह इसे नवीन अपूर्व मालूम होता है। यह सब मोहके कारण ही हो रहा है। तो हम आपका ज्ञान है परोक्षज्ञान।

परोक्षज्ञानके मूल प्रकार—परोक्षज्ञान दो प्रकारके होते हैं—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मतिज्ञान तो इन्द्रिय मनके निमित्तसे दर्शनपूर्वक पदार्थोंका जानना सो तो मतिज्ञान है और मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थमे अन्य कुछ विशेष जानना सो श्रुतज्ञान है। देखिये मतिश्रुतज्ञान तो कीडा मकोडोके भी पाया जाता है। ये चीटियाँ ऊपर रखी हुई मिठाईके पास पहुच जाती है। तो उन्हे जो गधका ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है और वह गध इष्ट है, उसे अपना खाद्य पदार्थ समझा। देखिये मन न होने पर भी कितनी समझ बनी हुई है। एकेन्द्रियसे लेकर चारइन्द्रिय तक मन नही होता। मन न होनेपर भी उन कीड़ियोको कितनी ससझ बन रही है कि वे सब एक कतारसे (उसी रास्तेसे जिसमे कि दो सूत की भी दूरी नही हो) ठीक एक लाइनमे वे चलती जाती है, एक दूसरी कीड़ी से भेट करती जाती है और सही रास्तेका निश्चय करती जाती हैं। कितनी ही तरहके बोध चलते रहते है। और मन नही है तो मनके बिना भी यह श्रुतज्ञान कहाँ कहाँ तक चल जाता है? तो इससे यह ज्ञात होता है कि जो चार संज्ञायें जीवोमे लगी हैं—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञावोंके भयसे ही इन जीवोको ये सब ज्ञान चल रहे हैं। मनका उपयोग तो वहाँ है जहाँ हित अहितका विवेक कर सके। इससे मेरे आत्माका कल्याण है, इससे अकल्याण है, इस प्रकारका विवेक कर सकना मनका काम है। फिर मन पाकर भी यह न कर सके तो वह इन्द्रियके विषयोमे सहकारी हो जाता है। हम उसका सदुपयोग न कर

सके तो वह इन्द्रिय विषयोके साथ लग बैठता है। और जब ऐसा मालूम होता है कि मन से ही हम इन्द्रिय विषयोको भोग रहे है। पर विषयोका उपयोग मनके बिना भी चल रहा है, यह इस विकलत्रय स्थावर जीवोकी वृत्तिसे समझ सकते है। तो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे हुए ज्ञानका नाम मतिज्ञान है।

मतिज्ञानकी विकल्पदूरता—मतिज्ञानके सम्बन्धमे इतनी बात जान लेना चाहिए कि इन इन्द्रियके द्वारा जो हम सीधा जानते है वह मतिज्ञान है, फिर जो विचार बनाते है वह सब श्रुतज्ञान है। काला रग दिख गया, दिखने पर भी यह काला है ऐसा बोध मतिज्ञानका नही है। वह श्रुतज्ञानका है। काला दिखने पर काला ही जाना गया। यो समझिये कि जैसे तुरन्तका (दो तीन दिनका) जाया हुआ बालक अपने मकानमे देख तो सब रहा है, पर किसी चीजके बारेमे उसे शाब्दिक विकल्प नही हो पाता, इतना तक भी नही समझ पाता कि यह अमुक चीज है, अमुक रंगकी है। ज्ञानमे आकर भी यह छत है, यह अल्मारी है, यह अमुक चीज है, अमुक रगकी है इस प्रकारका विकल्प उस बालकके नही जगता। अब आप जानते जाइये। केवलज्ञानमे ऐसा ही प्रतिभास है। जो चीज है वह सब ज्ञानमे आ गया। तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थ ज्ञानमे आ गए, इसे द्वीप कहेगे, इसे समुद्र कहेगे, यह इससे दूना है, यह इससे दूना है, शास्त्रोमे वर्णन आया है, मगर केवलज्ञानमे ये विकल्प नही है, फिर आप कुछ ऐसी शका कर सकते—तो फिर शास्त्रोमे कैसे आया? तो भाई श्रुतज्ञानकी भी महिमा कम नही है। केवलज्ञानसे जो जान रहे है ऐसे परमात्मासे निकट जो श्रुतकेवली गणधर विराजते है, तो केवलज्ञानीका सान्निध्य पाना, यह मात्र है निमित्त, लेकिन अपने आप इतना महान श्रुतज्ञान हो जाना यह सब श्रुतज्ञानकी महिमा है। केवलज्ञानमे भी दिव्यध्वनिमे जो बात समझी, दिव्यध्वनि भी केवलज्ञानकी अपेक्षा सविकल्प है, वह वचनात्मक है, केवलज्ञान ज्ञानात्मक है, जान लिया सब, पर उसके बारेमे विकल्प न करना कि यह अमुक है, यह अमुक है, यह इतना लम्बा चौडा है, इससे ज्ञानकी महिमा घट जायगी। ज्ञानकी विशुद्ध महिमा वहाँ ही है जहाँ किसी प्रकारके विकल्प न रहकर केवल शुद्ध सहज सामान्य प्रतिभास रहे, क्योकि ज्ञानसे आनन्दका सम्बंध है। ज्ञानके साथ आनन्द भी विराजता है। ज्ञान वही सही ज्ञान है जिसके साथ आनन्द भी वृद्धपगत है। यदि बाह्य आनन्द कम हो तो समझो कि ज्ञानमे कुछ दोष आ गया है। तो मतिज्ञानसे ऐसा ही विकल्परहित प्रतिभास होता है, ज्ञानका स्वरूप है सविकल्प, पर सविकल्प होकर भी मतिज्ञानमे विकल्प नही जगता। ज्ञानाकारका विकल्प है, ज्ञान ज्ञेयाकार रहे, उसकी एक जानन रूप स्थिति रहे यह विकल्प हैं ज्ञानमे, पर शब्दात्मक कोई विकल्प उठे यह सब श्रुतज्ञानमे ही बात पायी जाती है।

मतिज्ञानकी विकल्पदूरताका उपसंहार—अभी मतिज्ञानकी बात चल रही है। हम आपमे मति और श्रुत दो ज्ञान विराजते है। तो मतिज्ञान वह हुआ, जैसे कि अभी दो तीन दिनके जाये हुए बालकके दृष्टान्तसे समझाया है। बस जान गए कि क्या है, कैसा है, किस ढगका है ? हित है, अहित है, चीज है, गलत है सही है आदिक ये सब बातें मतिज्ञानमे नही है। लेकिन मतिज्ञानका जो भेद प्रभेदोमे वर्णन चलेगा, उस वर्णनको सुनकर ऐसा लगेगा कि इसमे विकल्प तो ऐसे हो रहे है। जब सुनेंगे कि ऐसा जानना कि यह वही देवदत्त है जिसे कलकत्तामे देखा था, एकत्व प्रत्यभिज्ञान हुआ, इतने तेज विकल्प चल रहे है, मगर वहाँ निर्णय करना मतिश्रुतवान साथ है। मतिज्ञानके विकल्पसे श्रुतज्ञानका निर्णय किया गया है, इस बातको न भूलना चाहिए। तब असलियत कितनी है ? जब श्रुतज्ञानके विकल्प मे बताया गया, पर इस रूपके वह विकल्प कर रहा है यह असलियत नही है। जैसे—आँखसे हमने हरा जाना और हम बतला रहे हरा रग, तो हरा रग बतला रहे एक तो यह स्थिति है और हरा जाना गया यह दूसरी स्थिति है, दूसरी स्थितिमे जो हरा रग बताया ऐसे ही मतिज्ञानमे आया मगर हरा है, इस प्रकारका शाब्दिक विकल्प करते हुए ज्ञानमे नही आया। तब उसके विषयका पार्थक्य न करके सीधा ही समझ लेते है। सकेत है, समझा वही गया। जैसे माँ ने अगुली उठाकर बालकको चन्द्रमा दिखाया तो वह अगुली मददगार है, उसके रास्तेसे चन्द्रमा दिखा है। यह बालक उस अगुलीको नही देखता है नही तो चन्द्रमा न दिखे। इसी तरह इतना जो विकल्पो द्वारा समझाया गया है वह सब सकेत है। समझा तो यो गया, मगर उनमे विकल्प उठाकर नही समझा, समझा वही। और, समझिये—जैसे लाइनबद्ध १०० ककड लगातार पडे हुए है। उन सबको देख लिया, जैसा है वैसा ही देखा मगर इतनेपर भी यह विकल्प नही उठ रहा है कि इस ककडके बाद यह ककड है, इसके बाद यह है। अथवा जैसे किसी गेहूके ढेरको देखते है तो ऐसा ही दिखनेमे आता कि इस दानेके बाद यह दाना है, इस दानेके बाद यह दाना है, मगर ऐसा देखकर भी क्या कोई इस तरहका विकल्प भी करता है ? नही करता। ऐसा ही जानकर भी विकल्प नही किया, यह भी स्थिति होती है। ऐसे ही केवलज्ञानीने समस्त पर्यायें जान ली, अब जैसी बात है वैसी जान ली, तिसपर भी यह विकल्प नही उठता कि इस पर्यायके बाद यह पर्याय होगी, इसके बाद यह होगी। जाना ऐसा है, ऐसा जाननेके बावजूद भी इसका विकल्प नही रहता। तब जानना चाहिए कि निर्विकल्पज्ञान किसे कहते है।

मतिज्ञानके प्रकार—मतिज्ञानकी बात चल रही है। मतिज्ञान है ५ प्रकारका। साव्यवहारिकप्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान। तत्त्वार्थसूत्रमे आप एक सूत्र पढते हैं—मतिस्मृतिसज्ञा चिन्ता अभिनिबोध—इत्यनर्थान्तर, जिसका कि अर्थ है—मति,

स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, तर्क और अनुमान। ये पाँचो भिन्न-भिन्न अर्थ वाले नही है, भिन्न भिन्न ज्ञान नही हैं, अर्थात् एक मतिज्ञान की ही पर्याये है। अब एक तो वह मतिज्ञान जिसके ये ५ प्रकार बताये और उन ५ प्रकारोमे भी मति रख लो। मतिज्ञानके ५ प्रकार है– मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, तर्क और अनुमान। तो सुननेमे लगेगा कि मतिज्ञानके प्रकारोमे पहिला प्रकार जब मति बता दिया तो सब आ गया। प्रकार तो अंश-अशको कहते है। तो उन ५ प्रकारोमे जो मति शब्द पडा है उसका अर्थ साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। तब मतिज्ञानके ये ५ प्रकार हुए—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मृति, प्रत्याभिज्ञान, तर्क और अनुमान। ये पाँचो बातें हम आप सबमे होती रहती है, मगर उसका ख्याल नही करते। भेद समझना कि कैसे ज्ञान हो, इसका क्या ढंग है, इसका क्या विकास है ? इसका ज्ञान नही करते। वे सब बाते इसमे आयेगी।

ज्ञानकी बात समझनेमें अनुत्साह न करनेका अनुरोध—भैया ! कुछ लोग होगे ऐसे कि जिन्होने न ज्ञानचर्चा सुनी, या एक साधारणरूपसे ही सुना, समझा, जाना, उन्हे इस प्रकरणके सुननेमे कुछ कठिनाई लगेगी, कुछ चित्त घबडायेगा। मगर एक बात तो बताओ– जो अपने जीवनमे एक रटन लगा रखा कि जो बाते सरल हों, तुरन्त दिलचस्प हो, जो दूसरोको तुरन्त हँसा दे, वे बाते तो हम सुनेंगे, तो इस ही बात पर जीवनभर अडे रहने से पावोगे क्या ? कुछ नही। बडा श्रम किया, सब तरहसे व्याख्यानोके सुननेकी लगन भी की, खूब सुना भी मगर ढग ऐसा ही बनाया कि जो बाते सरल, रुचिकर, मनोरञ्जक हो उन्हे ही सुनेंगे, तो भाई ठीक है। इसी आग्रहमे बने रहो, न सुनो जीवनभर, मगर एक यह फैसला तो करलो कि मुझे इससे जीवनमे मिलेगा क्या ? और, फिर मरण समयके लिए मुझे आलम्बन क्या मिलेगा, जिसमे कि वे अपने उपयोगको स्थिरतासे टिकाये-ऐसे शुद्ध तत्त्वमे कि जीवन सफल हो जाय और भविष्य भी सुन्दर बन जाय। ऐसी बात पाने के लिए हम इसे श्रम समझें और जो बेकारकी बाते हैं, वैभव इज्जत आदिक बढ़ानेकी बातें हैं, अथवा अन्य बडीसे बडी समस्यावोके सुलझानेकी बाते है। उनके लिये तो ये सुभट बन रहे हैं और अपने भीतरकी ज्ञानकी बात सुनने, समझने, परखने के लिए बडे कातर बन रहे है, तो यह तो कोई भली बात नही है। अब तो कुछ चेतना चाहिए। कुछ साहस बनायें, कुछ बल बनाये, अपने मनकी ढीलाई को खतम करें और अपना एक ऐसा निर्णय बनाये कि क्या हम अपने आपकी खुदकी बात न समझ सकेगे ? बल्कि परके सम्बन्धमे कही हुई बातका समझना कठिन है। कठिन ही नही बल्कि असम्भव है। कोई परको समझता नही। परके बारेमे जो यह ज्ञान बनता, विकल्प बनता उसका ही समझने वाला है, परको कोई समझ ही नही सकता। लेकिन इस रहस्यके न जानने वाले लोग यह धारणा रखते

हैं कि मैं इतना विज्ञानमे वढ गया, मैं इतने परतत्त्वोको समझने लगा, परन्तु परमार्थत परको कोई समझ नही सकता। व्यवहारमे परकी समझ माने भी तो भी वह परकी समझ कठिन है और अपने आपमे जो अपनी बात वर्त रही है, स्वरूप है उसकी बात समझना सुगम है, मगर मोहके वश होकर जब निर्णय ही पहिलेसे उल्टा कर बैठे है कि यह बात तो सरल है और यह बात कठिन है तो उनके लिए तो कठिन ही रहेगा। एक अपने उस निर्णयको बदल दे तो निजकी बात समझना सरल हो जायगा। एक मामूली सा तो यह काम है मगर लोग ऐसा डर गए कि यह काम तो मुझसे बन ही न सकेगा। अरे एक साहस बनाओ। जैसे कि जब किसी कमरेकी छत गिर गई तो है, यद्यपि वह एक बहुत बडा बोझ, पर समझते हैं कि इस कामको तो हमींको करना है इसलिए तुरन्त उस कामको करनेमे जुट जाते हैं। हाँ अगर पासमे पैसा हुआ तो नौकरोसे वह काम करवा लेते हैं। तो जिस कामको अपना काम समझ रखा है उस कामको करनेका कितना बडा साहस बना लेते हैं। सोचते है कि यह कितनासा काम है, इसे तो हम अभी झट किए लेते हैं। और जिस कामको ऐसा समझ लिया है कि यह काम मेरे करनेको नही हैं, ये तो साधुसत जनो के काम है, ऊंचे विद्वान लोगोके काम है, इनको तो वे ही लोग समझें और करें। मगर बतलावो विद्वान लोग भी कही आकाशसे उतरकर आते हैं क्या ? या वे पेटसे ही सब कुछ सीखकर आते है ? या वे विद्वान लोग कोई अन्य प्रकारके मनुष्य हैं ? बात वही है, बिद्वानोकी तो बात क्या है ? मैं वह हू जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान, बात तो यह आना चाहिए। तो यह बात कोई कठिन नही है, सुगम है। इसमे किस-किस प्रकारके ज्ञान जगते है और वह मतिज्ञान किस-किस ढंगसे होता है ? हम अपने आपके होने वाले ज्ञानोकी ही तो परख करनेकी बात कह रहे है। यह कोई कठिन बात नही है।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष नामक परोक्षभूत मतिज्ञानका प्रकार—मतिज्ञानके जो ५ प्रकार बताये गए है—ये पाँचोके ही पांचो प्रकारके ज्ञान हम आपके करीब-करीब बराबर होते रहते है। पर उनमे परख करें। यह ज्ञान किस प्रकारका है, इन ५ भेदोमे से यह छटनी कर लो—यह ज्ञान इस प्रकारका है, यह ज्ञान इस प्रकारका है, यह बात बतायी गई। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष जिसका अर्थ यह है कि हम इन इन्द्रियोसे, मनसे जो स्पष्ट जानते हैं, वह सब साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। काला, पीला, मीठा, खट्टा आदिक जो कुछ जाना, बिना विकल्प किए, बिना उन शब्दोको उठाये हुए, वह सब साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहलाता है। देखिये परोक्षाज्ञनके भेद बता रहे है, और उन भेदोमे नाम लिया है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। तो बात यह है कि वस्तुत है तो वह परोक्ष, क्योकि यह इतना सीधा इन्द्रियजन्य ज्ञान भी चूकि इन्द्रियजन्य है, इन्द्रिय मनकी अपेक्षा रख रहा है, अतएव परोक्ष

है। लेकिन अवधिज्ञान वगैरह जैसे किसी पदार्थको पूरे रूपसे स्पष्ट जानते है उनकी तरह हमारा यह इन्द्रियजन्य ज्ञान भी एक देश रूपसे जो सामने है उसे स्पष्ट जानता है। इतनी सदृशताके कारण इसको प्रत्यक्ष कह दिया है। तो यह प्रत्यक्ष जो कहा गया है वह व्यवहार से कहा गया है, न कि परमार्थसे। वस्तुत तो यह परोक्ष ज्ञान ही है। तो व्यवहारसे जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप है उसे कहते है सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। इन इन्द्रियजन्य ज्ञानोको जो कि सीधे एकदम होते है ये साव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। अब अन्य प्रकारके प्रत्यक्ष ज्ञानोको फिर कहेगे।

आभिनिबोधिक और सांव्यवहारिकका परिचय—सत् खण्डागममे मतिज्ञानका दूसरा नाम बताया है आभिनिबोधिक। ज्ञान ५ प्रकारके बताये है; आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। आभिनिबोधिक शब्दका अर्थ यह है कि अभिमुख और नियमित पदार्थोंका ज्ञान करना। इसमे दो उपसर्ग लगे हैं—आभि और नि। जो पदार्थ सामने है, जिस औरसे अभिमुख चाहिए उसका ज्ञान करना और नियमित विषयका ज्ञान करना। स्पर्शनइन्द्रियके द्वारा ठडा गर्म आदिकका ज्ञान किया जाता है। अनियमित खट्टे मीठेका ज्ञान नही होता। रसनाइन्द्रियके द्वारा खट्टे मीठे आदिकका ज्ञान होना नियमित है, अन्य पदार्थोंका ज्ञान न होगा। यो अभिमुख और नियमित पदार्थोंका ज्ञान करनेको आभिनिबोधित ज्ञान कहते है। आज चर्चा इस मतिज्ञानकी ही चल रही है। मतिज्ञानकी ५ पर्याये है—साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान। अब इन ५ ज्ञानोमे सभी ज्ञानोमे कुछ न कुछ शंका सी बनी हुई है कि परोक्षज्ञानके तो भेद कर रहे, और पहिले मतिज्ञानका नाम रख दिया साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। उसका समाधान यह है कि प्रत्यक्ष तो इस कारण है यह कि अन्य प्रत्यक्ष ज्ञानोकी तरह पूर्णरूपसे तो नही किन्तु एक देश स्पष्ट प्रतिभास होता है। जैसे आँखो जो कुछ देखा वह तो प्रमाणरूप होता प्रत्यक्ष। दूसरा उसके खिलाफ कुछ कहे तो यह मान ही न सकेगा। वाह मैंने आँखो प्रत्यक्ष देखा। मैंने खुद खाकर देखा कि ऐसा ही है। तो यह ज्ञान प्रत्यक्षकी तरह है। साव्यवहारिक शब्द यो लगा है कि वास्तवमे प्रत्यक्ष नही है, किन्तु व्यवहारमे ही प्रत्यक्ष है।

स्मरणनामक मतिज्ञान—अब स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानकी बात सुनो। स्मरण कहते हैं—पहिले अनुभूत पदार्थका ख्याल होनेको। जैसे कहते ही है कि ख्याल आ गया, स्मरण हो गया, याद आ गई। तो किसी भी बातकी याद आती कब है कि उसका पहिले अनुभव किया हो और कुछ स्मरण हो रहा हो, ऐसे ज्ञानके प्रति यह कहा जा सकेगा कि स्मरणज्ञान तो श्रुतज्ञान जैसा लग रहा है। उसका समाधान यो करना चाहिए कि ये स्मरण और बाकीके प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान भी जब तक स्वके अर्थ बनते हैं तब तक

तो मतिज्ञान हुए और जब दूसरेके समझनेके लिए शव्दात्मक विधिको ले लेते हैं तब ये श्रुतज्ञानरूप हो जाते हैं। तो स्मरण ज्ञान उसे कहते है कि पहिले अनुभूत किए हुए पदार्थों की याद हो जाना। तो ये जब तक स्वार्थ है तब तो ऐसा बोला जाता है और जब ये परार्थ होते है, श्रुतज्ञान जैसा रूप रखते हैं तब भी ये परोक्ष कहलाते हैं।

अब यह प्रश्न किया जा सकता कि जब ये चारो मतिज्ञानरूप भी बन सकते, श्रुतज्ञानरूप भी बन सकते तो इनका मतिज्ञानमे क्यो सम्बध जोडा, श्रुतज्ञानमे जोडते ? उसका समाधान यह होगा कि इसकी उत्पत्ति विशेषतया प्रथम स्वार्थरूपसे होती है इसलिए जब तक ये स्वार्थरूप रखते हैं तब तक ये मतिज्ञान कहलाते हैं। इनके मतिज्ञानमे व्यापकता अधिक है। श्रुत ज्ञानरूप तब होता है जब दूसरेको समझानेके लिए प्रयत्न किया जाता है। स्मरण ज्ञान पहिले साव्यवहारिक प्रत्यक्षसे जाना हो और फिर उसकी याद आती हो तो उसे स्मरण ज्ञान कहते हैं। किसी चीजका इस चखा था, आज वह याद आ रहा है, या किसी वस्तुको कल देखा था, आज वह याद आ रहा है। कभी सुना था आज याद आ रहा है। तो साव्यवहारिक प्रत्यक्षसे पहिले किसी पदार्थको जान लिया गया हो, फिर उसका स्मरण हो रहा हो तो उसे स्मतिज्ञान कहते है। जैसे जहा जहाँ यात्रायें की हो। कोई श्रवणबेलगोल गया हो, वहाँ जाकर बाहुबलि स्वामीकी मूर्तिके दर्शन किए हो और आज उस मूर्तिका स्मरण हो रहा है, तो आज सामने तो वह मूर्ति नही है लेकिन पहिले अनुभव किया था, जान लिया था उसका स्मरण हो रहा है उसे स्मरण ज्ञान कहते है। देखिये यह स्मरण ज्ञान पद पदपर हम आपके होता रहता है, पर उसका हम कुछ विशेष रूप नही रख पाते और यो ही छोड देते है। स्मरण बिना हम यहाँसे घर नही जा सकते, खाना नही खा सकते, कुछ बोल ही नही सकते। हर बातमे बीच-बीचमे स्मरण लगा ही रहता है। स्मरण न हो तो हम कुछ कर ही नही सकते। तो इसको कहते है स्मरणज्ञान। ये हम आप लोगोके ज्ञानकी किस्में हैं। हम आप सबमे ज्ञानका वैभव है, वह वैभव आजकल किस किस रूपमे प्रकट हो रहा है, यह समझना है। और साथ ही यह भी जाने कि वास्तविक रूपमे किस तरह प्रकट होना चाहिए था ? जो हमारा शुद्ध रूप कहलाता, हमारी प्रभुता कहलाती, हम आनन्दमय होते ऐसा कौनसा विकास था ? वह है केवलज्ञान। केवल हम पदार्थोंके जानकार ही होते, उनमे कोई हमारे रागद्वेष मोहके विकल्प न जगते। हमारा सम्बध न बनता। तो हमारा वह विकास बडा उत्तम था और हम सुखी कहलाते। देखिये—कुछ रागद्वेष जगे बिना स्मरण हम कर ही नही सकते। किसी बातका थोडा बहुत रागद्वेष है तब जाकर हमारा स्मरण बनता है। वहा भी स्मरण होता है मगर वहाँ भी आप परख लो किसी न किसी सम्बधका थोडा भी राग होगा तो स्मरण बनेगा, पर रागद्वेष मोह रहित

जो ज्ञान है, जहाँ स्मरण आदिकके विकल्प नही है, केवल जाननमात्र है, ऐसा विकास हमारे लिए किस समय होगा ऐसी प्रतीक्षा करें। आज जो हमारा विकास है वह रागद्वेष भावसे मिला हुआ है और यह हमारी आखिरी कदम नही है। इसलिए यहाँ कभी मौजका सन्तोष न करना चाहिए कि हमको सब कुछ मौज मिला है, सर्व आनन्द है, जो चाहिए था सो सब मिल गया, यह बात नही है। अगर सर्वस्व मिल गया होता तो कुछ समय बाद उत्तरकालमे हमे कमी महसूस न होना चाहिए थी। तो स्मरणज्ञान है यह।

प्रत्यभिज्ञान नामक मतिज्ञानका एकत्वप्रत्यभिज्ञान नामका प्रकार—अब तीसरा प्रकार है मतिज्ञानका प्रत्यभिज्ञान। देखिये—रोज रोज हम आपके काम आते रहते है ये ज्ञानके विकास, मगर परख नही पाते। परख होती जाय और साथ ही यह भी जानते जाये कि ऐसे छुटपुट विकास तो हमारे रागद्वेष भावके कारण हो रहे है, हम वहाँ रागद्वेषकी परख करे, उस रागको मिटानेका यत्न करे यह हमारा पौरुष जगता है। प्रत्यभिज्ञान किसे कहते है? साव्यवहारिक प्रत्यक्षसे जिसका जिस समय ज्ञान किया जा रहा हो और किसी का स्मरण किया जा रहा हो तो स्मरण और प्रत्यक्षका जो जोडरूप ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है। जैसे यह वही मूर्ति है जिसको हमने दो वर्ष पहिले देखा था। श्रवण बेलगोलमे दुबारा पहुच गए। वहाँ जाकर यह ज्ञान हुआ कि यह वही मूर्ति है जिसको हमने दो वर्ष पहिले देखा। तो यह प्रत्यभिज्ञानका रूप है, इसे कहते है एकत्वप्रत्यभिज्ञान। आज जो दिख रहा है, और जो जाना गया था उसमे एकत्व जोडना, यह वही है जिसे हमने पहिले देखा था। अब स्मरणमे और इसमे कुछ अन्तर है ना? स्मरणमें जोड नही है, केवल ख्याल है और प्रत्यभिज्ञानमे जोड हो रहा है। जैसे आज यहाँ बैठे हुए मानो मूर्तिका स्मरण कर रहे है, जैसाका तैसा ही स्मरण कर रहे है यह तो स्मरण है, और वहाँ पहुचनेके बाद जो हम यह ज्ञान करते हैं कि वही है जिसको हमने पहिले देखा था, इसमे जोड हो गया। तो प्रत्यभिज्ञान भी चलता रहता है। अब जरा अपने व्यवहारकी स्थितियोमे भी परखो कि यह ज्ञान भी कितने जल्दी-जल्दी हो रहे है? मोटे रूपसे तो ऐसा सोच लेते है कि जब कभी कोई चीज सामने आयी और हम उसके बाद स्मरण करे और उसे फिर जोडे तो यह प्रत्यभिज्ञान होता है। प्रत्यभिज्ञान हुए बिना हम अपना व्यवहार कर ही नही सकते। भोजन कर रहे हैं, हाथमे कौर उठाते है क्योकि हमे उसमे प्रत्यभिज्ञान का सस्कार बराबर बना हुआ है कि यह वही भोजन है, यह वैसा ही भोजन है, जिससे कि हमारी भूख मिटेगी। हम उनका कोई प्रकट रूप नही ला पाते, लेकिन बनाते है वह भीतर निरन्तर तब जाकर हम व्यवहार कर पाते है।

ज्ञानका विकास और स्रोत—देखिये कैसे-कैसे ज्ञान विकास हम आपमे निरन्तर

चलते रहते है। उनके विकासका मूल आधार तो सहज ज्ञान है। ज्ञानस्वभाव है। जैसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले पदार्थमे जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य होते है उनका आधार ध्रुवता है, कुछ चीज है जिससे नया परिणमन होता है और एक परिणमन विलीन हो जाता है। ऐसे ही हमारे जितने भी ज्ञान विकास होते है वे है किसके ? विकास होकर इससे आगे नया विकास हुआ, वह मिट गया, फिर नया विकास हुआ, यह विकासकी परम्परा किसमे हुते है ? वह तो एक है। जैसे एक अगुली अभी सीधी है, फिर टेढीकी गई है, फिर और कुछ हुआ तो ये सब जितने किस्म हो रहे है इस एक अगुलीमे। इस प्रकार जो छुटपुट ज्ञान हमारे चलते रहते है यह सब ज्ञानविकासकी परम्परा किसमे होती है ? वह आधारभूत कोई एक ज्ञानभाव है ? लोग तो ज्ञानविकास की खूब चर्चा भी कर लेंगे, उनका विकास भी बता देंगे पर ये सब विकास आखिर है किसमे, इसका कुछ उन्हे पता नही। ये सब विकास उस एक ज्ञानस्वभावके ही हैं। उस एक पर जिसकी दृष्टि पहुंच गई उनको सम्यक्त्व हो जाता है। उन्होने वह आश्रय पाया जिसके आश्रयसे उनको मुक्ति प्राप्त होगी। हम चाहते हैं कि हमे बहुत ऊँचा आनन्द मिले। मगर उस आनन्दको पानेके लिए आनन्दमयका आश्रय नही लेते हैं, किन्तु आदन्दरहितका आश्रय लेते हैं।

जैसे बाह्यपदार्थ पञ्चेन्द्रियके विषय मनके विषयभूत विकल्प ये परपदार्थ हैं, परतत्त्व हैं, इनका आश्रय लेते है, उपयोग इनमे फंसाते हैं, इनमे अपनी आशा बनाते है तो आश्रय लेते हैं, पर इन बाह्यपदार्थोंका जो कि आनन्दरहित है, कदाचित किसी जीवका भी आश्रय लें जैसे कि मोही रागी जन लेते ही रहते हैं। घरके बच्चोका, स्त्रीका, इनका भी आश्रय लेते हैं, तो वे आनन्दरहित आश्रय लेते हैं। आनन्दमयका आश्रय नही लेते। अथवा जो भी बाह्य चीजें है, पौद्गलिक हैं, मूर्तिक है उनमे उनमे ही अपना उपयोग रखते हैं, आनन्द-रहित चीजोका ही आश्रय लेते रहते है, और कदाचित जीवस्वरूप पर भी जायें तो वहाँ भी अपने आनन्दस्वरूपका आश्रय नही लिया वह जीवस्वरूप ज्ञानानन्दमय है मगर हमारा आनन्द नही है, हमारा ज्ञान नही है। एक पदार्थका ही आश्रय लिया, और वस्तुत यदि हम उस आनन्दस्वरूपका आश्रय लें तो व्यक्ति उसके उपयोगमे न रहेगा और जो स्वय अपने आनन्दमय स्वरूपमे आ जायगा। दो हम चाहते तो आनन्द है, पर उपाय करते हैं आनन्द-रहित पदार्थका आश्रय लेनेका। कैसे प्राप्त हो ? सदाके लिए आनन्द मिले, सदाके लिए सकट टलें, इसका उपाय तो आनन्दमय तत्त्वका आश्रय लेना है, अन्य उपाय न कभी हुआ, न कभी हो सकेगा। जब भी हम आप इस आनन्दकी स्थितिमे आयेंगे तो इस ही उपायके द्वारा इस आनन्दकी स्थितिमे आयेंगे तो जो ये हमारे ज्ञानविकास हो रहे हैं इनका आधार सहज ज्ञानस्वभाव है, उस पर दृष्टि नही देतें। जब कभी कोई समस्या आती है तो वहाँ तो

बहुत समझाते है—अजी मूल तत्त्वपर आइये उस मूल वातपर आनेसे ये सब समस्याये हल हो जायेगी। व्यवहारमे हम इन समस्याओंके लिए मूलका बहुत आदर करते हैं। हममे जो बात गुजर रही है, जो विकास हो रहे हैं, उसके मूलपर नहीं जाना चाहते। अजी इन बातो मे उपयोग न फंसाइये, जरा मूल तत्त्वपर आइये। मूलतत्त्वपर आनेसे सारा झगडा मिट जायगा, सभी समस्याये सुलझ जायेंगी। तो हम आपके जितने परिणमन है, जितने विकास है, जितने ज्ञानरूप है उन सबका मूल रूप है यह सहज ज्ञानस्वभाव। इस सहज ज्ञानस्वभावका आश्रय लेनेसे ये सारे संकट हमारे टल जायेगे।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञान और प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान——यहाँ चीज चल रही है प्रत्यभिज्ञान की बात। प्रत्यक्ष और स्मरणके विषयमे जोड लगानेको प्रत्यभिज्ञान कहते है। ये जोड चूंकि अनेक प्रकारसे होते है इसलिए प्रत्यभिज्ञानके अनेक भेद हैं। एक तो एकताका जोड। यह मनुष्य मनुष्य है जिसे हमने अमुक नगरमे देखा था। तो यहाँ जोड किया गया एकताका। यह वही है। यह सामनेकी बात और वह पहिलेकी बात इनमे जोड लगा दिया, यह वही है आदिक एक जोड होता है सदृशताका। यह उसके समान है, यह उसकी तरह है। यहाँ यह देखा, यह तो हुआ प्रत्यक्ष। प्रथम और मैं यह हुआ स्मरण। उसमे तरहका, समानताका जोड़ किया गया। यह उसकी तरह है, इसे पारिभाषिक शब्दोमे कहते है सादृश्यप्रत्यभिज्ञान। सदृशताका जोड़ करना प्रत्यभिज्ञान हैं। जितने भी ज्ञान होंगे उनका आधारभूत ये दो ज्ञान हैं—प्रत्यक्ष और स्मरण। प्रत्यक्ष और स्मरणमे आने वाले जो दो तत्त्व है उन दो तत्त्वोमें जोड लगा देनेको प्रत्यभिज्ञान कहते है। चाहे एकताका जोड करे, यह वही है, चाहे समानताका जोड करे, यह उसके समान है और चाहे विलक्षणताका जोड करे, यह उससे बिल्कुल न्यारी चीज है, यह भी प्रत्यभिज्ञान है। "यह" यह तो हुआ प्रत्यक्ष ज्ञान और "उससे" यह हुआ स्मरण बिल्कुल निराला है, यह हुआ विलक्षणताका जोड। इसे कहते हैं वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान। देखिये—ये सब ज्ञानकी किस्में हैं। हम आपमे जब चाहे चलती रहती हैं। और इनमे परस्परमे अन्तर भी है और नही भी है। अन्तर तो यो है कि सूक्ष्मरूपसे विचारो तो इनका विषय जुदा-जुदा है। जैसे एकने एकताका जोड किया, एक ज्ञानने समानताका जोड किया, एक ज्ञानने विसदृशताका जोड़ किया और अन्तर यो नही है कि बात एकसी होती है। क्या कि प्रत्यक्षने जाने हुये पदार्थ और स्मरणके जाने हुए पदार्थमे कुछ जोड दिया गया इसे कहते है प्रत्यभिज्ञान। कही कही जोड प्रतियोगी रूपसे होता है। जैसे कहना कि यह उससे अधिक लम्बा है, यह उस चीजसे छोटी चीज है। इसमे "यह" तो हुआ प्रत्यक्ष, "उससे" यह हुआ स्मरण, और उसमे जोड क्या किया गया? प्रतियोग, अपेक्षा, संतुलन, मुकाबला जोडा गया है। यह उससे छोटा है,

यह उससे बडा है, यह उससे दूर है, यह उससे हल्का है, यह उससे भारी है इन सबको कहते हैं प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान।

आत्मसम्यक्त्व होनेपर स्मरणादिकोंकी उच्च श्रेणी—हम आपके ज्ञानोमे जैसे जैसे विशेष योग्यता बढती है वैसे ही वैसे ये प्रत्यभिज्ञान आदिक ऊँची श्रेणीमे आते रहते हैं। देखिये—कभी कभी स्वानुभवका भी स्मरण चलता है। स्वानुभव क्या है ? सहज शुद्ध आत्मतत्त्व। उसका अनुभव कर लिया। अनुभवके कालमे खूब अमृतपान किया था, खूब आनन्द पाया था। अब वह स्थिति तो थोडे समयके लिए थी। स्थिति हुई और विलीन हो गई। अब आज हम उसका स्मरण करते हैं। तो उस अनुभवके स्मरणमे भी बहुत सामर्थ्य है। वहा भी बडी कल्पनायें कर रहे है, आखिर स्वानुभवका ही तो स्मरण किया जा रहा है। किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष हुआ हो, उसका स्मरण हो सकता है, चाहे वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष हो और चाहे पारमार्थिक। मुनिजन अवधिज्ञानसे कोई बात जानकर दूसरोको जो बताते है, वह किसी आधारपर बताते हैं। अवधिज्ञान तो निर्विकल्प है, उससे तो जान लिया। जान चुके, अवधिज्ञानका उपयोग न रहा, मगर उसके निकट तुरन्त ही उसका स्मरण कर लिया। अब स्मरण करके श्रुतज्ञानके आधारसे वे मुनि दूसरोसे बताते हैं कि ऐसा होगा। जिस समय बता रहे है उस समय अवधिज्ञानका उपयोग नही है, अवधिज्ञानसे जान लिया, अब उस ज्ञाततत्त्वका स्मरण हो रहा हैं और ज्ञाततत्त्वका स्मरण हुआ और वर्तमानमे समक्ष हुआ, उनमे जोड करना उसका प्रत्यभिज्ञान है। यो साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मरणज्ञान और प्रत्यभिज्ञान इन तीन किस्मोका वर्णन किया है। ये तीन किस्म मतिज्ञान नामके प्रथम प्रकारके बताये हुए ज्ञानकी किस्म है। परोक्षज्ञानमे जो मतिज्ञान बताया है उसके ये भेद चल रहे है। इन भेदोको सुनते हुए अपने आपमे ऐसा निरीक्षण करना चाहिए कि इस ज्ञानके जितने प्रकारके विकास हैं ये सब ज्ञानविकास इस सहज ज्ञानस्वरूपके विकास है। तो एक ही चीज है, कभी बढ गया विकास, कभी घट गया, पर जिसके विकास हैं वह है सहज ज्ञानस्वरूप, और वह हैं शाश्वत। उसपर दृष्टि पहुचती है तब समझिये कि हमने आत्माका सच्चा परिचय प्राप्त किया। प्रमाणकी इस पद्धतिसे ज्ञान करें तो हम आत्मा का सच्चा परिचय पा सकते हैं।

तर्कज्ञान नामक मतिज्ञानके वर्णनका उपक्रम—सच्चे ज्ञानसे वस्तुके स्वरूपका निर्णय होता है, इस प्रकरणको लेकर सच्चे ज्ञानकी किस्में बताई जा रही हैं कि वे सम्यग्ज्ञान होते किस तरहके हैं ? सम्यग्ज्ञानके दो भेद पहिले बताये कि ऐसा ज्ञान जो ज्ञान केवल आत्मासे प्रकट हो, इन्द्रिय और मनकी सहायता न ले। दूसरा ज्ञान ऐसा जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे प्रकट हो। दोनो ही प्रकारके ज्ञानोमे उपादान कारण आत्मा ही है। इन्द्रिय और मनका निमित्त करनेपर भी आत्माने जाना अपने ज्ञानस्वभावके आधारसे। कही इन्द्रियके

द्वारा नही जाना। जाना आत्माने अपने ज्ञानस्वभावके बलपर किन्तु वहाँ ऐसी कमजोरी है, ऐसा आवरण छाया है कि निमित्तके न पाये बिना नही जान सकते। तो एक ज्ञान तो है प्रत्यक्ष और दूसरा ज्ञान है परोक्ष। अब परोक्षज्ञानोमे भी किस-किस ढंगके ज्ञान होते है उसकी चर्चा चल रही है। साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, स्मरण और प्रत्यभिज्ञान--इन तीन प्रकार का वर्णन किया जा चुका है। अब आज तर्कज्ञानकी बात कहते है। बहुतसे लोग ऐसा कहते भी हैं कि भाई तर्क मत करो, तो मालूम होता है कि तर्क करनेमे कुछ बुद्धि विशेष लगती है। तर्कके आधारपर ही सब कानून चलते है। तो तर्क ज्ञानको एक सुगम समझनेके लिए आधार पद दिया जाता है--'यदि' और 'तो'। 'यदि' और 'तो शब्दोके योजनपूर्वक विचार चल रहा है, ज्ञान चल रहा है, ऐसी स्थितियोमे तर्क ज्ञान होता है। जिसे पारिभाषिक शब्दोमे कहते है--व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते है। व्याप्ति होते है दो प्रकारके। एक तो हाँ के साथ हाँ लगाना और एक न के साथ न लगाना। विधिकी व्याप्तिका नाम है अन्वयव्याप्ति। और निषेधकी व्याप्तिका नाम है व्यतिरेकव्याप्ति। जैसे ऐसी व्याप्ति बनाना कि जहाँ धुवाँ होता है वहाँ अग्नि होती है, यह अन्वयव्याप्तिका रूप है। यदि अग्नि न हो तो धुवा नही हो सकता, यह है व्यतिरेक व्याप्तिकी बात। तो वास्तविकता क्या है, वह तर्क के आधारसे जाना जाता है।

अनुमान प्रमाणमें प्रमाणताका आधार तर्क ज्ञान--अनुमान ज्ञानको लोग सच्चा ज्ञानसा नही समझते। जब कभी पूछा जाता है कि भाई यह बात तुमने कैसे समझा ? तो कह देते है कि हमने तो अनुमानसे समझा। उसका कुछ ऐसा दृष्टिकोण है कि बात सही है या नही। लेकिन शास्त्रीय प्रकरणके अनुसार अनुमान शब्द वडा पक्का ज्ञान है। लोकव्यवहारमे अनुमान को सशय जैसा रूप देते है, लेकिन अनुमान ज्ञान बड़ा पक्का ज्ञान है। उसमे बल दिया तर्कज्ञान ने। तर्क शून्य अनुमान तो संशय जैसा ज्ञान हो गया, पर तर्कपूर्वक जो अनुमान होता है वह प्रबल ज्ञान होता है। तो तर्कज्ञान व्याप्तिके ज्ञानका नाम है और व्याप्ति दो किस्मके होते है। साधनके होने पर साध्यका होना, साध्यके अभावमें साधनका न होना यह बात हमारे रोज-रोज काममे आती है, पर उसे पकड नही पाते। कही धुवा उठ रहा हो तो उसे देखकर तुरन्त कह देते कि भाई आग लग गई। उसके वारे मे पूरा निर्णय कर लेते है, सदेह नही करते। अब कहाँ आग लगी, कितनी लगी, इसमें चाहे विवाद रहे मगर बहुत धुवाँ देखकर यह निर्णय कर ही लेते है कि इसमे आग है। वहाँ कोई सशय तो नही रहता क्योकि रोज-रोज धुवाँ और अग्नि एक साथ रहते देखा करते है। और यह जान रहे है कि धुवाँसे आग नही पैदा होती, आगसे धुवाँ पैदा होता है। तो अग्नि है कारण और धुवाँ है कार्य। तो जहा कार्य होगा वहा कारण अवश्य है।

कारणके विना कार्य कहां ? तो कार्य जब दिखनेमे आया तो कारण जरूर ज्ञात होगा और कारण दिखनेमे आया उससे कार्यकी सिद्धि हो अथवा न हो, क्योकि अनेक जगह ऐसी अग्नि है कि जिसमे धुवा नही होता। तो अग्निके दिखने से धुवाँके सद्भावका निर्णय हो या न हो, पर धुवाँके निरखनेसे अग्निका निर्णय होता ही है। यह सब तर्क ज्ञानका प्रताप है। इन सब बातोको समझनेके लिए अनुमान ज्ञानका जब प्रकरण चलेगा उसमें तर्क और अनुमानका सम्मिलित रूपसे वर्णन होगा।

अनुमान प्रमाण नामक मतिज्ञानका वर्णन—अब अनुमान ज्ञानको सुनो ! अनुमान ज्ञान किसे कहते है ? साधनको देखकर साध्यका ज्ञान करना ! किसी चीजको देखकर जो सिद्ध करते है उसका अनुमान करना अनुमान है। जैसे धुवाँ निरखकर अग्निका अनुमान करना यहाँ अग्नि है धुवा होनेसे, यह अनुमानका रूप हुआ।

अब इस अनुमानमे कितनी तरहके अङ्ग हैं, इस पर दृष्टिपात करें। इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होनेसे। जहा जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होती है। जहा अग्नि नही होती वहा धुवा भी नही होता। और, धुवा है, इससे सिद्ध है कि अग्नि जरूर होनी चाहिए। देखिये——यह सब अनुमानकी एक रचना बताया है। अनुमान मे इतनी बातें होती हैं। जो लोग बडे अभ्यासी हैं वे लम्बी बातें नही बोलते। इतनी लम्बी बात सोचनेका उनके पास समय नही है। धुवा देखा और झट जान गए कि यहा आग है। लेकिन कोई कम अभ्यासी पुरुष हो तो उसे बहुत बहुत विस्तारसे समझाया जाता है। बुद्धिमान पुरुष तो दो तीन बातोसे ही सारा ज्ञान कर लेते है। यहा अग्नि है धुवा होनेसे। तो सब ज्ञान हो गया। क्या व्याप्ति, क्या तर्क, क्या उदाहरण ? अगर कम बुद्धिमानको समझानेके लिए इतने रूपमे बोलना पडता है। तो अब जो यहा रूप बोले गए उनमे ५ अंग आये। इस पर्वतमे अग्नि है। यह तो हुई प्रतिज्ञा। इसमे दो बातें मिली हुई हैं, पर्वतमे अग्नि। पर्वत है पक्ष जिसकी सिद्धि करना है, अग्नि है साध्य, और हेतु दिया है–धुवा होता है। जहा जहा धुवा होता है वहा वहा अग्नि होनी है यह है अन्वयव्याप्ति। जैसे रसोई घर, यह है अन्वयव्याप्तिका दृष्टान्त। जहाँ अग्नि नही होती वहा धुवा नही होता। जैसे तालाब यह है व्यतिरेकव्याप्ति और यहा धुवा है यह है उपनय। इस लिए यहा अग्नि है यह निगमन हुआ। इस प्रसंगमे यह समझिये कि ये अनुमान आदिकके लक्षण और इन सबका परिज्ञान हमारे किस काममे आयगा ? तो सुनो ! जब आप अपने आत्मस्वरूपका परिचय करना चाहते हैं तो निरखते हैं ना कि यह आत्मा है, क्योकि इसमे ज्ञान है। अब देखिये–अनुमानका रूप बन गया। जहाँ जहाँ ज्ञान होगा वहा वहा आत्मा का अस्तित्व है। जहा आत्माका अस्तित्व नही वहा ज्ञान भी नही। जहा ज्ञानका अस्तित्व

नही वहा आत्मा भी नही । और आपको सब तरहके उदाहरण मिल जायेगे । ये चौकी, बैंच, चटाई आदिक जो कुछ सामने पड़े है ये आत्मा नही है क्योकि इनमे ज्ञान नही है । तो कोई चिह्न देखकर किसी वस्तुका बोध किया जाय तो उसमे अनुमान प्रमाणकी आवश्यकता होती है । उसी अनुमानके लक्षणकी बात कही जाती है ।

वास्तविक ज्ञानकी सम्पन्नता—ज्ञानकी ये सब बाते जब विधिपूर्वक हम बहुत ज्ञान-सम्पादनका प्रयत्न करें तो उसमे ये आवश्यक है । जाननेमे उपाय हमारे मजबूत न हो तो हम जाननेकी दिशामे बढ नही सकते । भले ही हम एक साधारण ज्ञान बनाकर एक मन-बहलावा उत्पन्न कर ले, और इतने मात्रसे सन्तोष कर लें कि हमने सब कुछ सुना, कुछ जान लिया, जाननेके लिए कितना पडा हुआ है । किन्तु जिसे जाननेके बाद फिर जाननेका प्रयत्न न करना पडे ? वहाँ तक जानना पहुंच जाय तो समझो कि हमने अब सर्वस्व जाना । देखिये—लोग काम किसलिए करते है ? इसीलिए कि इस कामसे फुरसत हो और फिर आराम मिले, इस कामसे फिर झगडा न रहे और न मेरे सामने काम पडा रहे । सभीके अन्दर काम करनेका यही भाव रहता है ।

तो जानना भी एक काम है । जाननेसे फायदा क्या ? जानना यह पुरुषार्थ, यह कामकाज करना चाहिए, यो करना चाहिए । हमे ऐसा जानन बनाना है कि जिस जाननके बाद फिर जानना बनानेकी आवश्यकता न रहे । ज्ञानका काम फिर आगे पडा न रहे । जो हो तो सहज हो, वह बात अलग है, मगर यहाँ जो हम ज्ञान किया करते है तो जान जानकर पुरु-षार्थ करके, रागद्वेष करके, आकुलतायें करके जाना करते हैं, ये सारे जाननेके श्रम मुझे न करने पडे, इसके लिए जानन होना चाहिए । तो किस तत्त्वका हमे ज्ञान बने कि ऐसी स्थिति मिले कि कुछ जाननेका श्रम न करना पडे, वह तत्त्व क्या है ? वहाँ तक पहुचना है । अब तो सोच लीजिए कि क्या हम अपने ज्ञानद्वारा कभी उस तत्त्व तक पहुंचे ? उस तत्त्व तक पहुचनेके लिए एक विधिपूर्वक ज्ञान बनाना होगा, और एक मूलको पुष्ट करते हुए ज्ञान बनाना होगा । यो तो कोई पुरुष नावको खेवे और उद्देश्य कुछ न बनाया हो कि हमे किस दिशामे जाना है, तो वह तो कभी पूरबकी ओर जायगी, कभी पश्चिमकी ओर, कभी उत्तर की ओर व कभी दक्षिणकी ओर । नाव खेनेका काम तो वह दिनभर करेगा मगर वह अपने निर्दिष्ट स्थानमे न पहुच सकेगा । ठीक इसी तरह जाननेका उद्देश्य जब हमारा कुछ नही हैं तो जाननेके लिए हम बहुतसे यत्न करेंगे, खूब भ्रमण करेगे, बड़ा परिश्रम करेगे, मगर उस जाननेसे लाभ कुछ न पाया । बात ज्योकी त्यो रही । तो ज्ञान करना है और हमे उस तत्त्व तक जाना है जिस तत्त्व तक जाकर फिर हमे ज्ञानका भी श्रम न करना पडे, ऐसी स्थिति पायें । वह तत्त्व क्या है ? सहज ज्ञानस्वरूप, एक सहज ज्योति । एक ऐसा ज्ञानप्रकाश कि

जहाँ कोई तरग नही, उमग नही, जहाँ किसी प्रकारका क्षोभ नही, केवल एक सामान्यतया जाननप्रकाश चलता रहता है, ऐसी स्थितिमे राग द्वेष मोहका काम ही नही। अगर राग द्वेष मोह किसी ओर जग रहा है तो उसको ऐसी ज्ञातापनाकी स्थिति मिलती ही नही तो सर्व-कल्याण सर्ववैभव सर्वसम्पन्नता इस ही तत्त्वमे प्रवेश करनेमे है, बाकीके जो कितने भी प्रकारके ज्ञान हो वे सब ज्ञान चूंकि अपने आत्माका आधार छोडकर हो रहे हैं, मायने आत्माका उपयोग न बनाकर हो रहे है, इसलिए वे सब क्षोभको साथ लिए हुए है।

परतत्त्वके लगावके आशयका मिथ्यापन--ससारमे दु ख इतना ही तो है कि हम अपने आपके आश्रयमे ज्ञान नही बनाते है। और परकी दृष्टि करके, परमे कुछ चाह करके, परका लगाव रख करके कुछ ज्ञान बनाते है, उसका असर क्या होता है कि चूंकि हमारा यह उपयोग इस आनन्दमय स्वरूपको छोडकर बाहर चला तो जो अपने घरको छोड-कर दूसरेके घरमे रहना चाहे वह टिक तो न सकेगा। उसे तो हर एक कोई भगायेगा। ऐसे ही हमारा उपयोग अपने द्वारको छोडकर बाह्य पदार्थोमे लगा रहे तो टिक तो न सकेगा। वहाँ स्थिरता नही मिलती। यदि ऐसे तत्त्वकी ओर हमे जाना है कि जहाँ जाकर हम आनन्दमय हो जायें। उस तत्त्वकी श्रद्धा जिसे होती है या इस तरहकी श्रद्धा जिसे होती है या इस तरहकी रुचि जिसके जगी है उसको कहते हैं सम्यग्दृष्टि। और जिनको इस तत्त्व की श्रद्धा रुचि नही है, किसी बाह्यमे ही परिज्ञान करनेकी, कुछ प्रयत्न करनेकी लालसा है उन्हे कहते है मिथ्यादृष्टि। मिथ्या दृष्टिके मायने मिथमे दृष्टि जाना। मिथ मायने परमे। मिथ धातु मिथुन अर्थमे आती है। इसीके जोडनेसे तो जहाँ दूसरेका जोड़ रखा ज्ञान द्वारा वहाँ मिथ्या दृष्टि बन गई। और जहा केवल निजका ही लगाव रखा, सत्य स्थितिया रखी, वहा मिथ्या दृष्टि न रही किन्तु एकत्वदृष्टि, कैवल्यदृष्टि, स्वदृष्टि अथवा स्वय ही स्वयं सब कुछ। वहा दूसरेकी बात नही आयी। बस इस स्थितिमे ही सच्चा आनन्द है और ऐसी श्रद्धा बनाकर कुछ क्षण कभी भी किसी भी समय इसकी याद तो रखना चाहिए। जिसको श्रद्धा है उसको जहा कही भी याद आ सके, घरमे हो, दूकानमें हो, बाहर हो, चलता फिरता हो, सोता हो, किसी भी क्षण जब उसकी कषाय मंद होती हैं, श्रद्धालु पुरुष अपने इस अन्त-स्तत्त्वके श्रद्धालु ऐसी दृष्टि बना लेते हैं कि वहा तक जाना है। वहा तक जानेके लिए हमे कितना ज्ञान बनाना है, कितने ढगसे हमे अपनी तैयारी करना है। यहा लौकिक कामोके लिए तो कितनी कितनी तैयारिया,लोग बनाते हैं। कोई समस्या आ जाय, किसीसे विवाद हो जाय तो उसको निपटानेके लिए लोग दसो तरकीबें सोचते है, पर ऐसे तत्त्वको जाननेके लिए जिस तत्त्वके जाननेपर सदाके लिए ससारके सकट छूटें उसके लिए कितना यत्न करना

चाहिए ? यो कहो कि सारा यत्न इसीके लिए होना चाहिए ।

आत्मोपलब्धिका साधनभूत सुगम मंत्रण—मैं ज्ञानमात्र हूँ, यह एक सच्चा निजी मंत्र है । इसमे कल्याणकी सारी वाते समायी हुई हैं । मैं ज्ञानमात्र हू, अन्य कुछ नही हूं, केवल एक ज्ञान ज्योति ही मैं हूं । तव मेरा कही कुछ नही है यह उसकी श्रद्धामे आ ही जायगा । मैं ज्ञानमात्र हू, इसके मायने वस मेरा सव कुछ ज्ञानमे है । ज्ञानको ही करना है, ज्ञानको ही भोगना है, ज्ञानका ही अनुभव है, ज्ञान ही मेरा घर है, ज्ञान ही मैं साथ लिए हुए था । ज्ञान को ही मैं साथ लिए रहूगा, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है । इसका अर्थ यह हुआ कि मैं किसी भी अन्य पदार्थको न करता हू और न भोगता हू । मैं ज्ञानमात्र हू । इस ज्ञानमात्र स्वरूपमे, इस ज्ञानस्वभावमे निरन्तर होता क्या है ? ज्ञान ही ज्ञान, जानन जानन ही चलता रहता है । जब जानन जानन ही चलता रहता है तो फिर अधीरता और आकुलता क्यो ? अधीरता और आकुलता तो लोगोको यो होती है कि आगेका कुछ बोध नही है, भविष्यके परिणमनका कुछ बोध नही है । क्या करना है, कैसे करना है, उसका कुछ पता ही नही है, क्योकि उन्हे यही पता नही है कि भविष्यमे मुझे क्या होना है ? जब भविष्यके ज्ञानका कुछ पता नही रहता तब आकुलता होती है । लो हमे तो भविष्यका सव पता हो गया । क्या पता हो गया ? बस यही कि मैं जानना जानना ही करूँगा और कुछ करूँगा ही नही । पक्का निर्णय हो गया । वस मेरा काम है जानन । जानन जानन ही चलता रहेगा और कुछ वात ही मुझमे न आयगी । मुझे तो भविष्यका पूरा पता हो गया । अब आकुलता और गम्भीरता न रह सकेगी । मैं जानन ही कर पाता हूँ और कुछ नही कर पाता । यदि आकुलता समाती है तो समझिये कि हम अपने निर्णयपर नही टिक रहे । मैं जानन जानत ही कर सकता हू, अन्य कुछ नही । मेरा भविष्य पूरा मुझे मालूम है, इस बात पर अगर टिके रहे तो आकुलता न होगी । तो मैं ज्ञानमात्र हू, यह एक ऐसा मंत्र है, शब्दोको नही कह रहे, उसमे जो कुछ दृष्टिमे आये, उसकी वात कह रहे कि यह सर्वस्व भला कर देने वाला है । और यो समझिये कि शास्त्रोमे जितने भी मत्र कहे गए है, मत्रो की आराधना करो—परमात्माकी, अरहंत सिद्धकी अथवा पचपरमेष्ठीकी अथवा अमुक-अमुक मंत्रकी । सभी मंत्रोका परिसमापन इस भावमे है कि मैं ज्ञानमात्र हूं, यह बात आयी कि सब कुछ मुझे प्राप्त हो गया । तो उस ज्ञानमात्र सहजज्ञानस्रूप तत्त्वकी ओर पहुंचनेका काम हम कब कर पायेंगे ? जब कि उसकी तैयारीमे हमे जाननेके उपाय बहुत-बहुत अच्छी प्रकारसे विदित होगे, उन्ही उपायोसे हम जानने चलेंगे ।

अनुमानप्रमाणके अवयव—पदार्थ परिचयके उपायोमे अनेक प्रमाणके भेद वता वता कर अब यहां वता रहे है अनुमान प्रमाण । एक पूरा वाक्य पुन स्मरण किया जाय,

उदाहरणके रूपमे जैसे बोला उस बोलने और सुननेमे एक प्रकार भी गिनते जाइये। एक बात यह कहा, अब यह कहा। इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होने से। जहाँ जहाँ धुवा होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। जैसे यह रसोई घर, जहाँ अग्नि नही होती वहाँ धुवाँ भी नही होता, जैसे तालाब। और धुवाँ है यहा पर इसलिए यहाँ पर अग्नि होनी चाहिए। इसमे ९ अश हुए। इस अनुमानको पूर्ण रूपसे समझनेके लिए ९ भाग हुए। उन ९ भ गो का नाम क्या है ? तो अब नाम समझ लीजिए। इस पर्वतमे, यह पक्ष है, अग्नि है यह साध्य, धुवाँ होनेसे यह हेतु है। जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है यह अन्वयव्याप्ति है। जैसे रसोई घर, यह अन्वय दृष्टान्त है। जहा अग्नि नही होती वहाँ धुवाँ भी नही होता यह व्यतिरेक व्याप्ति है। जैसे तालाब, यह व्यतिरेक दृष्टान्त है, और इस पर्वतमे धुवा है यह है उपनय। इस कारण पर्वतमे अग्नि होनी ही चाहिए, यह निष्कर्ष अथवा निगमन है।

आत्मबोधकी प्राथमिक आवश्यकता—देखो जब आत्माका बोध करने जायेंगे कि मैं आत्मा क्या हूँ, उस आत्माको पहिचाननेके लिए जो भी साधन बनेगा, वहा भी अनुमान बनेगा तो इन ९ भागोंमे बनेगा। यह आत्मा है, ज्ञान होनेसे। जहा जहा ज्ञान होता है वहा वहा आत्मा होता है। जहा आत्मा नही होती वहा ज्ञान नही होता। जैसे ये चटाई बैंच वगैरह। और यहाँ ज्ञान है इसलिए यह आत्मा है। देखिये इस प्रयोगकी कैसे आवश्यकता है ? किन्तु हमे इसे जानता चाहिए कि यह उपाय है वस्तुके जाननेका। तो हम अपने जीवनमे यह उद्देश्य बनायें कि अपने आत्मस्वरूपको जान लें। देखिये—समय-समय पर सब उपयोगी हैं। जब घरमे आप बस रहे हैं तो घरकी व्यवस्था भी उपयोगी है, उसके बिना भी काम न चलेगा। जब आप देशमे रह रहे हैं तो देशकी व्यवस्था भी उपयोगी है, उसके बिना भी काम न चलेगा। जब आप समाजके बीच रह रहे हैं तो समाजकी व्यवस्था भी उपयोगी है, उसके बिना भी काम न चलेगा। मगर इन सब बातोंमे विचारिये कि इनका आशिक उपयोग भी कब तकके लिए है ? ज्यादहसे ज्यादह जब तक कि मेरा यह जीवन है, जब तक हम इस मनुष्यभवमें हैं, तभी तक देश, समाज घर, मित्र जन, सगी आदिक आवश्यक हैं, लेकिन यह मैं खुद केवल इतनी जिन्दगी तक ही नही हू, मरणके बाद भी मैं होऊँगा, तो बस यह श्रद्धा जिसे हो गई उसने सब परखा, और जिसको यह श्रद्धा नही है उसने तो अपने बारेमे कुछ परखा ही नही। केवल बाह्य विडम्बनामें ही है। तो जो मरकर आगे जायगा उसकी भी तो सुध लेना है। उसकी रक्षा करो। उस क्षणमे भी आनन्दमय रहू इसका यत्न करना है। इसका यत्न होगा सम्यग्ज्ञानसे। उस ही ज्ञानकी बात यहा चल रही है।

अनुमानज्ञानके अङ्ग--सच्चे ज्ञानसे वस्तुका परिचय होता है, अतएव सच्चे ज्ञानके परिज्ञानका वर्णन चल रहा है। मतिज्ञानके प्रकारोमे अंतिम प्रकार अनुमान बताया जा रहा है और उसमे कहा जा रहा था कि देखिये ५ अङ्ग होते है। अनुमान–जैसे अनुमान किया कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवा होने से। जहा जहां धुवा होता है वहा वहा अग्नि है जैसे रसोईघर। जहा अग्नि नही होती यहा धुवां भी नही होता, जैसे तालाब। और यहां धुवां है अत अग्नि होनी चाहिए। जैसे किसी चीजका अनुमान बनाया गया। अनुमानके मायने सशय नही होता, यह तो एक लोकरूढि हो गई है अनुमानको संशय माननेकी। अनुमान का अर्थ लोग अंदाजासे करते है, पर अन्दाजा और अनुमानमे अन्तर है। अदाज सही हो, न भी हो, लेकिन अनुमान पूर्णतया सही होता है। और यदि उस अनुमानमे दोष है तो दोष होनेके कारण अनुमान झूठा है। तो किसी भी चीजका अनुमान करना हो तो कोई मुख्य चीज निरख कर ही अनुमान किया जायगा, उस चिन्हका नाम तो हेतु है और अनुमानमे जो बात रखी है उसका नाम प्रतिज्ञा है। तो प्रतिज्ञा और हेतु इन दो अगोका होना आवश्यक है, बाकीके अग कहे जायें या न कहे जाये यह तो श्रोतावोकी चतुराई पर निर्भर है। कोई श्रोता ऐसे कम कुशल होते है कि उनको ५ अङ्ग कहकर ही कहकर समझाया जाय तो समझते है। उन्हे कहते हैं बालक। बालकको समझानेके लिए तो ५ अङ्ग कहे जायेंगे। बालक मायने छोटी उमरका नही, किन्तु जो जिस विषयका ज्ञान नही रखता उसे उस विषयका बालक कहते है। ऐसे जो बुद्धिमान है, विद्वान है उनको केवल प्रतिज्ञा और हेतु दो बाते कहनेसे ही काम चल जाता है। तो यहा तक ज्ञानके प्रकारोमे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोका वर्णन हुआ, और मतिज्ञान का भी वर्णन समाप्त हुआ।

श्रुतज्ञान नामक परोक्षज्ञान—अब इसके बाद परोक्षज्ञानमे शेष बचा है श्रुतज्ञान। यहा ५ ज्ञानोमे चार तो विकल्प नही बने, श्रुतज्ञानमे विकल्प होता है। श्रुतज्ञान किसे कहते हैं? मतिज्ञानसे जानकर उसी पदार्थके सम्बंधमे और विशेष जानकारी होना सो श्रुतज्ञान हैं। कहते है ना कि सब संसारी जीवोके मति और श्रुतज्ञान है। हम आप सबमे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो होगा ही। जब तक यह जीव भगवान नही होता तब तक उसके मतिज्ञान श्रुतज्ञान जरूर होते हैं। मुनि भी हो गए, मन पर्ययज्ञानी है, गणधर है उन तकके भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होते है। केवलज्ञान होनेपर सभी ज्ञान विलीन हो जाते है। जैसे सूर्यके नीचे बादल आये हो तो उनका आवरण जैसे-जैसे हटता जाता है वैसे ही वैसे प्रकाशका विस्तार बढता जाता है। अभी बहुत अधिक बादल थे तो केवल १० मील तक प्रकाश था, कुछ और अधिक बादल हट गये तो १०० मील तक प्रकाश फैल गया, फिर और अधिक बादल हट

गए तो १००० मील तक प्रकाश फैल गया और जब बादलोका आवरण नही रहता तो पूर्ण प्रकाश फैल जाता है। आप सोच सकते है कि ये छुटपुट प्रकाश उस पूर्ण प्रकाशमे शामिल हो जाते है। जैसे २० हजार कोशका प्रकाश है तो उसमे ५ कोश का भी प्रकाश है, ५०० कोशका भी प्रकाश है। तो वे छुटपुट प्रकाश पूरे प्रकाशमे शामिल हो गए। यहा चाहे ऐसा कह लो। और एक दृष्टिसे ऐसा भी कह सकते हैं, लेकिन ज्ञानमे यह बात नही। केवलज्ञानमे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि ये सब केवलज्ञानके सदृश वीतराग निर्विकल्प ज्ञान अशरूपसे होते तो समा जाना कहना ठीक था, लेकिन ये ज्ञान तो विकल्प लिए हुए है। इनमे आवरणका क्षयोपशम भी कारण है। जिन जिन चीजोमे क्षयोपशम कारण होता है, वे चीजें पूर्णतया शुद्ध नही होती, क्योंकि उनके साथ उदय लगा होता है। छुटपुट ज्ञान जो हम आपको हो रहे है ये आवरणके विनाशसे नही हो रहे हैं, आवरणका विनाश भी है। छुटपुट ज्ञान जो हम आपको हो रहे हैं ये आवरणके विनाशसे नही हो रहे हैं। आवरणका विनाश भी है, साथमे उदय भी है। जिसे कहते हैं देशघाती स्पर्धकोका उदय और सर्वघाती स्पर्धकोका उदय। इस कारण समाया हुआ नही कह सकते, लेकिन सामान्यतया यह कह सकते कि मति, श्रुत, अवधि और मन पर्ययज्ञानमे जो बात समझी, केवल समझ समझकी बात अगर ले लें, उदयकी बात न लें, विकल्प वाली बात न लें, केवल जाननमात्र उनमेसे खीचकर देखें तो कह दें कि केवलज्ञानमे सब ज्ञान समा गए, परन्तु परमार्थत देखो तो केवलज्ञान एक अपने प्रकारका ज्ञान है, समस्त विश्वका जाननहार है, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिककी तरह क्षयोपशमाधीन ज्ञान नही है। इतना सब कुछ वर्णन होनेके बाद अब बडे उपकारी श्रुतज्ञानका वर्णन कर रहे हैं। देखिये—हम आप लोगोका उपकार करने वाला श्रुतज्ञान है। जैसे अरहंत और सिद्ध भगवानमे यह कह देते है कि हमारे उपकारी तो अरहत भगवान हैं। सिद्ध भगवान यद्यपि उनसे भी उत्कृष्ट हैं, अरहत भी सिद्ध होगे लेकिन अरहतका कितना बडा उपकार है कि उनका समवशरण होता है, दिव्यध्वनि होती है, गणधर उनके ही निमित्तसे रचना बनाते हैं। इन समस्त शास्त्रोका मूल आधार तो ये अरहतदेव हैं, यह हमारे मूल उपकारी है। यदि आज यह जिनवाणी हम आपको सुननेको न मिलती तो एक कीचडमे जैसा फसे होते, दुर्गतिकी परम्परामे ही पडे होते। आज समझिये हम आपका कितना अच्छा भवितव्य है कि इस भवमे हम आपको जिनवाणीका सुयोग मिला है और जिसके द्वारा हम आप कष्टसे भी दूर रहते हैं और मोक्षमार्ग भी पा लेते हैं। कोई विपदा आये तो जहा आत्मस्वरूपपर दृष्टि दो, प्रभुस्वरूपका परिचय है अतएव वहा सब सकट दूर हो जाते है।

काल्पनिक संकटोंको हटाकर आत्मवैभवके दर्शनका अनुरोध—यहाके इन काल्पनिक सकटोमे कुछ दम भी तो नही है, हा सकट मान लो तो पहाड है, ठीक-२ समझ लिया तो

कोई सकट नही है। क्या संकट है नाम लेकर तो बताओ ? अधिकसे अधिक शरीरमे कोई विशेष बाधा हुई उसे कुछ सकट कहो तो थोडा मान लिया जाय, क्योकि देहका वर्तमानमे निकट सम्पर्क है, तब भी वस्तुत यदि उपयोग विशुद्ध है तो वह भी सकट नही है, लेकिन धनहानि होना अथवा कोई चीज नष्ट हो जाना, इष्टका वियोग हो जाना, यह सब क्या कोई सकट है ? ये तो मनके ऊधम है। मान लो लखपति है और २०००) की हानि हो गई तो यह दुखी होता है। दुखी क्यो होता ? अरे ६८०००) तो अभी रखा है, वहाँ मौज क्यो नही मानता ? अथवा उसका भी मौज क्या ? उसे पर जानकर, जो आता हो आये, जैसा रहना हो रहे, जो कुछ आज है उसका आधा भी रहे तो रहे, मेरा क्या गया और कभी कुछ भी न रहे तो न रहे, मेरा क्या नुक्सान हुआ ? मैं तो ज्ञानमात्र अमूर्त एक चित्स्वरूप हू। इसमे कुछ आता जाता नही। यह एक भावमात्र पदार्थ है, इसका क्या नुक्सान है ? तो सकट तो माननेकी बात है। सकट मान लिया तो संकटोका पहाड बना लिया और जब सम्यग्ज्ञान किया, सच्ची दृष्टि जगाया तो वहाँ सकटका नाम ही नही। तो ये सब हितकारी बाते, ये उपदेश, ये हमे श्रुतज्ञानसे प्राप्त होते है। उस श्रुतज्ञानका विस्तार बताते है। श्रुतज्ञान दो प्रकारसे विभक्त है—एक अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान और दूसरा अक्षरात्मक श्रुतज्ञान। अक्षरोका उपयोग हुए बिना जो श्रुतज्ञान होता है वह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है, एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके जीवोमे पाया जाता है। अक्षरात्मक भी पञ्चेन्द्रियमे है पर अनक्षरात्मक भी है। हम जान लेते है और किसी अक्षरका आलम्बन भी नही लेते, ऐसे भी जानकारी होती है, और ये कीडा मकोडा, वृक्ष, पत्ते, ये क्या कुछ जानते नही ? इनके जाननेका हम कुछ प्रकटरूप नही बता सकते लेकिन आत्मा है ज्ञानवान है इसलिए उनमे भी जानकारी अवश्य है। तो ये भी जानते है पर इनके कोई अक्षरका उपयोग है क्या ? अथवा कोई वर्णमालाका भी ज्ञान है क्या ? तो अक्षरोका उपयोग किए बिना जो श्रुतज्ञान है वह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है और जो अक्षरोका उपयोग लेकर भीतर ज्ञान बनता है वह सब अक्षरात्मक ज्ञान है। तो हम आप लोगोका हित अक्षरात्मक श्रुतज्ञानसे है।

ज्ञानकी प्रियतमता—देखिये—यह छाँट करके तो बताओ कि दुनियामे सबसे अधिक प्रिय चीज क्या हो सकती है ? सबसे अधिक प्यारी वस्तु क्या है, जिसके बाद यह न कहना पडे कि इससे प्रिय चीज तो यह है। तो दुनियामे प्रियतम चीज क्या है ? बच्चे को प्यारी है माँ की गोद। उससे बढकर उसे और कुछ नही सुहाता। आपके दुकान, धन वैभव आदिकसे उसे कुछ प्रयोजन नही। माताकी गोदसे बढकर उसे और कुछ नही। जब कभी कोई संकट आता तो झट वह बच्चा माँ की गोदमे छिप जाता और अपनेको सकटरहित समझ लेता है। लेकिन वही बच्चा जब कुछ बडा होता है, खेलने लगता है तो

उसे खेलकी चीजे प्रिय हो जाती है। अब उसे माँ की गोद प्रिय नही रहती। माँ कितना ही जबरदस्ती गोदमे रखना चाहे, पर वह बालक उस माँ से छुटाकर खेलने भाग जाना चाहता है। तो उसे प्रिय हो गए खेल। वही बालक जब कुछ और बड़ा हुआ तो उसे स्कूल प्यारा हो गया। झट अपना बस्ता उठाया और स्कूल चल दिया। अब उसे खेल भी प्रिय न रहे। कुछ और बडा हुआ तो उसे परीक्षामे पास होना प्रिय हो गया। चाहे जिस ढगसे पास हो पर पास होना चाहिए। और बडा हुआ तो उसे डिग्री प्रिय हो गई। डिग्रीके बाद कुछ और बडा होनेपर स्त्री प्रिय हो गई। फिर धन प्यारा हो गया, बच्चे प्यारे हो गए। तो ज्यो ज्यो वह बडा होता जाता है त्यो त्यो प्यार बदलता जाता है? किसी स्थितिमे कुछ प्यारा है, आगे चलकर कुछ और प्यारा हो जाता है। वही पुरुष जब ४०-५० वर्षका हो गया, मान लो दफ्तरमे वह बैठा हुआ था। घरसे फोन आया तो वह तुरन्त घबड़ाकर घर भागा। पहिले तो रास्तेमे मिलने वाले लोगोसे कुछ बातें करके जाया करता था, परन्तु अब उसे खडा होनेकी भी फुरसत नही। बडी जल्दी-२ मे घर पहुंचा। वहा जाकर देखा कि घर मे आग लग गई है। घरके अन्दरसे धन, स्त्री, पुत्रादिकको निकाला, आग बढ गई। अतमे एक बच्चा घरके अन्दर ही रह गया। उसे घरके अन्दर जानेकी हिम्मत न हुई तो दूसरोसे कहता है, भैया हमारे बच्चेको निकाल दो, हम तुम्हे २० हजार रुपये देंगे।

अब देखिये—उसे अपने प्राण प्यारे हो गए। इसी प्रकरणमे कदाचित उसके वैराग्य जग जाय, वह साधु हो जाय, आत्मध्यानमे रत हो जाय तो उस समय चाहे कोई शत्रु अथवा कोई क्रूर जानवर प्राण लेने भी जावे तो क्या वह साधु अपने प्राणोकी रक्षा करनेकी बात सोचेगा? वह तो अपने नेत्र बन्द किए हुए आत्मध्यानमे लीन है। कोई पूछे कि क्यो भाई आत्मध्यानमे लीन हो? जरा एक मिनटको इस ध्यानको छोडकर सामने खडे प्राण लेने वाले शत्रुको हटा दो, बादमे निश्चित होकर ध्यान करो। तो वह साधु मानो जवाब देता है, (जवाब तो नहीं देता पर मान लो) कि मैं क्यो अपने आत्मध्यानको छोडकर इस विकल्पमे आऊँ? यो सोचकर वह साधु प्राणोंकी भी परवाह न करके अपने ध्यानको भग नही करता। वह समझ गया कि यह देह तो विनाशीक चीज है। जीव तो जीव है। जब मेरा ज्ञानोपयोग एक ज्ञानस्वभावके चिन्तनमे लग गया तो अब मैं अन्यत्र नही जाना चाहता। मानो यह उत्तर है उस साधुका। लो अब उसे क्या प्यारा रहा? ज्ञान। अब उसे अपने प्राण भी प्यारे नही रहे। तो ज्ञानसे बढकर और कोई हित और प्रिय चीज नही होती। तो समझिये कि हित प्रिय और सर्वोत्कृष्ट वैभव वाली चीज है ज्ञान। जिस ज्ञानके लिए मोही जीव कुछ महत्त्व नही देते, और ज्ञानसम्पादनकी बात तो

फाल्तू समयकी बात समझते है। अजी हमको समय नही मिलता, बडे फसे है। वहाँसे ज्ञान सम्पादन करे ? ज्ञानकी बात सोचनेका अवकाश कहाँसे लायें ?

ज्ञानको महत्त्व देनेकी आवश्यकता—देखिये लोग कितना फसे हुए रहते है, फँसाव कही कुछ नही, पर अपने विकल्पोंमे फंसे रहते है। और, फिर जब मरण हो जाय तब फुरसत तो मिलेगी ना ? यहाँके कामोंसे तो फुरसत मिल जायगी, पर अगले भवमे जाकर वहाँ क्या करना है ? इसपर भी तो कुछ विचार करना चाहिए। वहाँ भी तो समय न मिलेगा। तो ज्ञान ही हम आपका वैभव है। इस ज्ञानको ही सर्वप्रिय और हितकारी समझ कर अन्यकी उपेक्षा करनी चाहिए। ज्ञानको ही महत्त्व देना है, उस ज्ञानके लिए ही अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्योछावर करना है। यदि ज्ञान पा लिया तो समझो कि सब कुछ पा लिया और एक ज्ञान ही न पाया तो समझो कि कुछ नही पाया। तो हमारा हितकारी यह श्रुतज्ञान है, जिसके दो भेद बताये गए है—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान और अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके दो भेद हैं—परार्थानुमान और आगम। जैसे अभी अनुमान ज्ञानकी बात बतायी थी कि कोई एक चीज निरखकर दूसरी चीजका ज्ञान करना अनुमान कहलाता है। यही अनुमान जब दूसरेके लिए बोला जाय, दूसरेके लिए जाना जाय तो बात अक्षरात्मक बन जाती है और तब यह परार्थानुमान कहलाता है। और, आगम भी अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। जो आप्त आत्मा है उनके द्वारा जो निरूपित शास्त्र है उनका ज्ञान ही तो श्रुतज्ञान है। आप्तके मायने क्या है ? आप्तका शुद्ध अर्थ है पहुंचे हुए। आप्तका ज्ञान मायने पहुचे हुएका ज्ञान। जो सर्वत्र पहुच चुके हैं, जिनका ज्ञान निर्मल हो गया है वे अरहत आप्त है। वे आप्त क्यो कहलाते है ? इसलिए कि वे सर्वत्र पहुचे है। कही भी उनकी कमजोरी नही है। ज्ञानपर पूर्ण अधिकार है। ऐसे आप्त पुरुषोके द्वारा, सशरीर भगवानके द्वारा प्ररूपित जो शास्त्र है, उनके ज्ञानको आगम कहते है। आगम मायने मोटे रूपसे समझिये शास्त्र। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चार प्रकारके वेदोमे विभक्त जो कुछ ज्ञान है वे सब श्रुतज्ञान कहलाते है। यहा तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञानका वर्णन हुआ। ये ज्ञान कुछ हम आपमे है और उनको उत्पन्न करनेकी हम आपमे बराबर योग्यता है। उन ज्ञानोसे हमे वस्तुका परिचय मिलता है।

प्रसन्नताका साधन ज्ञान—वस्तुका जहाँ यथार्थ ज्ञान है वहाँ ही आनन्द है। किसी बालकसे किसीने गणितका एक प्रश्न पूछा– बतलावो १५×६ = कितने होते है ? तो जब तक वह बता नही पाता तब तक उसके अन्दर बडे विचार चलते है, उसकी बडी घवडाहटसी रहती है। लज्जा, भय आदिकी बाते भी आ सकती हैं, किन्तु जब पहाडा पढकर १५×६

उसे खेलकी चीजे प्रिय हो जाती है। अब उसे माँ की गोद प्रिय नही रहती। माँ कितना ही जबरदस्ती गोदमे रखना चाहे, पर वह बालक उस माँ से छुटाकर खेलने भाग जाना चाहता है। तो उसे प्रिय हो गए खेल। वही बालक जब कुछ और बडा हुआ तो उसे स्कूल प्यारा हो गया। झट अपना बस्ता उठाया और स्कूल चल दिया। अब उसे खेल भी प्रिय न रहे। कुछ और बडा हुआ तो उसे परीक्षामे पास होना प्रिय हो गया। चाहे जिस ढगसे पास हो पर पास होना चाहिए। और बडा हुआ तो उसे डिग्री प्रिय हो गई। डिग्रीके बाद कुछ और बडा होनेपर स्त्री प्रिय हो गई। फिर धन प्यारा हो गया, बच्चे प्यारे हो गए। तो ज्यो ज्यो वह बडा होता जाता है त्यो त्यो प्यार बदलता जाता है? किसी स्थितिमे कुछ प्यारा है, आगे चलकर कुछ और प्यारा हो जाता है। वही पुरुष जब ४०-५० वर्षका हो गया, मान लो दफ्तरमे वह बैठा हुआ था। घरसे फोन आया तो वह तुरन्त घबडाकर घर भागा। पहिले तो रास्तेमे मिलने वाले लोगोसे कुछ बातें करके जाया करता था, परन्तु अब उसे खडा होनेकी भी फुरसत नही। बडी जल्दी-२ मे घर पहुचा। वहा जाकर देखा कि घर मे आग लग गई है। घरके अन्दरसे धन, स्त्री, पुत्रादिकको निकाला, आग बढ गई। अतमे एक बच्चा घरके अन्दर ही रह गया। उसे घरके अन्दर जानेकी हिम्मत न हुई तो दूसरोसे कहता है, भैया हमारे बच्चेको निकाल दो, हम तुम्हे २० हजार रुपये देंगे।

अब देखिये—उसे अपने प्राण प्यारे हो गए। इसी प्रकरणमे कदाचित उसके वैराग्य जग जाय, वह साधु हो जाय, आत्मध्यानमे रत हो जाय तो उस समय चाहे कोई शत्रु अथवा कोई क्रूर जानवर प्राण लेने भी जावे तो क्या वह साधु अपने प्राणोकी रक्षा करनेकी बात सोचेगा? वह तो अपने नेत्र बन्द किए हुए आत्मध्यानमे लीन है। कोई पूछे कि क्यो भाई आत्मध्यानमे लीन हो? जरा एक मिनटको इस ध्यानको छोडकर सामने खडे प्राण लेने वाले शत्रुको हटा दो, बादमे निश्चित होकर ध्यान करो। तो वह साधु मानो जवाब देता है, (जवाब तो नहीं देता पर मान लो) कि मैं क्यो अपने आत्मध्यानको छोडकर इस विकल्पमे आऊँ? यो सोचकर वह साधु प्राणोकी भी परवाह न करके अपने ध्यानको भग नही करता। वह समझ गया कि यह देह तो विनाशीक चीज है। जीव तो जीव है। जब मेरा ज्ञानोपयोग एक ज्ञानस्वभावके चिन्तनमे लग गया तो अब मैं अन्यत्र नही जाना चाहता। मानो यह उत्तर है उस साधुका। लो अब उसे क्या प्यारा रहा? ज्ञान। अब उसे अपने प्राण भी प्यारे नही रहे। तो ज्ञानसे बढकर और कोई हित और प्रिय चीज नही होती। तो समझिये कि हित प्रिय और सर्वोत्कृष्ट वैभव वाली चीज है ज्ञान। जिस ज्ञानके लिए मोही जीव कुछ महत्त्व नही देते, और ज्ञानसम्पादनकी बात तो

फाल्तू समयकी बात समझते है। अजी हमको समय नही मिलता, बडे फसे है। कहाँसे ज्ञान सम्पादन करे ? ज्ञानकी बात सोचनेका अवकाश कहाँसे लायें ?

ज्ञानको महत्त्व देनेकी आवश्यकता—देखिये लोग कितना फसे हुए रहते है, फँसाव कही कुछ नही, पर अपने विकल्पोमे फंसे रहते है। और, फिर जब मरण हो जाय तब फुरसत तो मिलेगी ना ? यहाँके कामोसे तो फुरसत मिल जायगी, पर अगले भवमे जाकर वहाँ क्या करना है ? इसपर भी तो कुछ विचार करना चाहिए। वहाँ भी तो समय न मिलेगा। तो ज्ञान ही हम आपका वैभव है। इस ज्ञानको ही सर्वप्रिय और हितकारी समझ कर अन्यकी उपेक्षा करनी चाहिए। ज्ञानको ही महत्त्व देना है, उस ज्ञानके लिए ही अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्यौछावर करना है। यदि ज्ञान पा लिया तो समझो कि सब कुछ पा लिया और एक ज्ञान ही न पाया तो समझो कि कुछ नही पाया। तो हमारा हितकारी यह श्रुतज्ञान है, जिसके दो भेद बताये गए है—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान और अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके दो भेद हैं—परार्थानुमान और आगम। जैसे अभी अनुमान ज्ञानकी बात बतायी थी कि कोई एक चीज निरखकर दूसरी चीजका ज्ञान करना अनुमान कहलाता है। यही अनुमान जब दूसरेके लिए बोला जाय, दूसरेके लिए जाना जाय तो बात अक्षरात्मक बन जाती है और तब यह परार्थानुमान कहलाता है। और, आगम भी अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। जो आप्त आत्मा है उनके द्वारा जो निरूपित शास्त्र है उनका ज्ञान ही तो श्रुतज्ञान है। आप्तके मायने क्या है ? आप्तका शुद्ध अर्थ है पहुंचे हुए। आप्तका ज्ञान मायने पहुंचे हुएका ज्ञान। जो सर्वत्र पहुच चुके है, जिनका ज्ञान निर्मल हो गया है वे अरहत आप्त है। वे आप्त क्यो कहलाते है ? इसलिए कि वे सर्वत्र पहुचे है। कही भी उनकी कमजोरी नही है। ज्ञानपर पूर्ण अधिकार है। ऐसे आप्त पुरुषोके द्वारा, सशरीर भगवानके द्वारा प्ररूपित जो शास्त्र हैं, उनके ज्ञानको आगम कहते है। आगम मायने मोटे रूपसे समझिये शास्त्र। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चार प्रकारके वेदोमे विभक्त जो कुछ ज्ञान हैं वे सब श्रुतज्ञान कहलाते है। यहा तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्ययज्ञान और केवलज्ञानका वर्णन हुआ। ये ज्ञान कुछ हम आपमे है और उनको उत्पन्न करनेकी हम आपमे बराबर योग्यता है। उन ज्ञानोसे हमे वस्तुका परिचय मिलता है।

प्रसन्नताका साधन ज्ञान—वस्तुका जहाँ यथार्थ ज्ञान है वहाँ ही आनन्द है। किसी बालकसे किसीने गणितका एक प्रश्न पूछा— बतलावो १५×६ = कितने होते है ? तो जब तक वह बता नही पाता तब तक उसके अन्दर बडे विचार चलते है, उसको बडी घबडाहटसी रहती है। लज्जा, भय आदिकी बाते भी आ सकती है, किन्तु जब पहाडा पढकर १५ × ६

= ६० उत्तर दे दिया तहाँ झट उसकी मुख मुद्रामे प्रसन्नता छा जाती है। तो उसकी वह प्रसन्नता किस बातकी है ? किसीने न उसे पैसा दिया, न लड्डू खानेको दिया, न उसका सत्कार कर दिया। तो उसकी वह प्रसन्नता है अज्ञाननिवृत्तिकी। जो उत्तर नही आ रहा था उसका सही ज्ञान हो गया, इस बातकी उसे प्रसन्नता है। यह तो एक लौकिक बात है, परमार्थत यह पूर्ण सत्य बात है कि जहाँ हमारा ज्ञान पूर्ण सही होगा, निर्मल होगा, वहा हमे आनन्द अवश्य है। यदि आनन्दकी कमी है तो यह निर्णय रखना चाहिए कि अभी हमारे अन्दर ज्ञानकी कमी है। हमारे ज्ञानमे दोष आ रहा है। तब ज्ञानका दोष ढूँढे और दोषको दूर करने जैसा अपना भीतरी भाव बनायें तो तत्काल सकट मिट सकते हैं। इन्ही ५ ज्ञानो की बात चलनेके पश्चात् यह प्रश्न होता है कि कितना ज्ञान तो सही कहलाता है और कितना ज्ञान मिथ्या कहलाता है ? तो देखिये—मन.पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तो सदा सम्यक् होते है और अवधिज्ञान मिथ्यादृष्टियोके हो तो वह कुअवधि होता है, मतिज्ञान व श्रुतज्ञान भी मिथ्यादृष्टियोके हो तो वे कुमति, कुश्रुत आदि कहे जाते है। सम्यग्दृष्टियोंके हो तो वे सम्यक्मतिज्ञान और सम्यक्श्रुतज्ञान कहलाते हैं। अब इस प्रसगमे एक यह बात समझना है कि स्वानुभव, जिसका कि वर्णन शास्त्रोमे बहुत आता है, स्वका अनुभव, आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव। यह स्वानुभव कैसे ज्ञानमे आता है ? और, इसकी क्या पद्धति होती है ? यह बहुत जानकारीका विषय है। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

सम्यग्दृष्टिकी निजभूमिका--स्वानुभवका किस ज्ञानमे अन्तर्भाव है इसका वर्णन करने से पहिले यह बताया जाता है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये सम्यक् होते है, मिथ्या होते हैं, इसका वर्णन किया है। मतिज्ञानसे जैसे वह जान लिया किसीने कि यह चौकी है, यह पुस्तक है, तो मिथ्यादृष्टिने भी ऐसा ही जाना कि यह चौकी है, पुस्तक है, फिर उसमे सम्यक् और विपर्ययका अन्तर क्या आया ? पहिली बात यह समझना है। उसका समाधान यह है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टिने भी सब समझा कि यह चौकी है, सम्यग्दृष्टिने भी चौकीको चौकी ही जान लिया, चौकी क्या द्रव्य है, यह किस चीजसे बनी है, इसमे क्या गुण है इन सब बातोका ज्ञान नही है मिथ्यादृष्टिके। सम्यग्दृष्टिको प्रतिबोध है। क्या वजह है कि बडी विडम्बना, अनर्थ, आपत्ति, उपसर्ग, कष्ट सब कुछ आनेपर भी सम्यग्दृष्टि धीर रहता है। उसका कारण यह है कि स्वरूप भेदाभेद और कारणके विषयमे सम्यदृष्टिको सच्चा बोध है, वैभव नष्ट हुआ तो हुआ, इष्टवियोग हुआ तो हुआ, कुछ आपत्ति उपसर्ग आये तो आये, क्या है ? ये सब बाह्यपदार्थ हैं और इनका कारण यह ही है, इनकी बात इनमे ही उत्पन्न होती है, ये मुझसे अत्यन्त निराले है, मैं अपने स्वरूपमे ही अभिन्न हूँ। यह सब प्रकाश इस सम्यग्दृष्टिके बना हुआ है, इस कारण उसको इस स्थितिमे अधीरता नही रहती। मिथ्यादृष्टि

को अधीरता हो जाती है। वह जो निरख रहा है उस पर्यायको, उस ही को सर्वस्व समझ रहा है और भेदाभेदका निर्णय नही है तो परपदार्थसे अपना हित मानता है, अपने आपके हितधामका पता नही है, ऐसी स्थितिमे रहने वाला मिथ्यादृष्टि भी यदि चौकीको चौकी ही जाने तो इससे उसे कोई शान्तिका आधार तो न मिल जायगा। पदार्थके सम्बधमे स्वरूप भेदाभेद और कारणका यथार्थ ज्ञान न हो तो भी शान्ति नही प्राप्त हो सकती। यह चौकी अनेक परमाणुओका पुञ्ज है, उन परमाणुओके प्रतिसमय परिणमन होते है अतएव ये सब मुझसे अत्यन्त निराले है इनका मैं कर्ता नही, भोक्ता नही, इनसे मेरेमे कुछ होता नही। ये जड है, मैं चैतन हू। यह सब प्रतीति भी तो पडी हुई है इस कारणसे सम्यग्दृष्टिका मतिज्ञान, श्रुतज्ञान खोटा कहलाता है। जहा कुमति, कुश्रुत ज्ञान है वहा तो स्वानुभवका अवकाश ही नही है।

स्वानुभवका निर्देशन--स्वानुभवका अर्थ क्या है ? स्वका अनुभव। अनुभवका अर्थ क्या है ? परिज्ञान। वह परिज्ञान भी इस ढगका कि जिस परिज्ञानसे परिज्ञानका वास्तविक फल भी तुरन्त मिलता जाय। जिसे कहते है एक चित्त होकर एक उपयोगसे केवलज्ञानमे ही रहना। ऐसे परिज्ञानका नाम है अनुभव। और स्वका अर्थ है आत्मा, सही आत्मा। मिला नही, पर्यायरूप नही, किन्तु जो शुद्ध है, सहज है, शाश्वत हैं, ऐसे निज आत्माके अनुभवको स्वानुभव कहते है। मुझमे सत्य क्या है ? जो सत् हो उसे सत्य कहते हैं। मेरे सत्मे, मेरे अस्तित्त्वमे, मेरे ही कारण मेरे ही सत्त्व होनेसे जो कुछ हू वह मेरा तत्त्व है। वह क्या है ? सहज ज्ञानस्वरूप चैतन्यभाव। एक ऐसा ज्ञानप्रकाश जो एक सामान्य है, उसका बोध होना है तो अति सुगम, मगर कठिन बना रखा है। कठिन बननेका कारण यह है कि अनादिकालसे मोहवासनाके ऐसे सस्कार लगे है कि बाह्यकी ओर दृष्टि है। जो पहिले जमाना था पुराण पुरुषोंका उस समयकी स्थिति और आजकी स्थितिमे कितना अन्तर है ? यह अन्तर भी मोह लगाव, अज्ञानवृद्धिके कारण हुआ है। पहिले समयमे घर भी था, रहते थे, ज्यो ही उम्र अधिक हुई, घर छोडा, त्यागी हो गए, साधु हो गए और अपनी आत्मसाधनामे लग गए। क्या उनका घर बिगड गया ? उनके जो उत्तराधिकारी पुत्रादिक थे क्या उन्होने सम्हाला नही ? अरे ऐसी ऐसी स्थितियोके भी लोग कि स्त्रीके गर्भमे बच्चा था, पहिला ही गर्भ था और विरक्त होकर चल दिए। उनको विश्वास था कि मैं दूसरेका करने वाला नही। दूसरे तो उतने ही पर है जैसे कि जगतके सभी जीव पर है। आज यहाँ रोना इसलिए पडता है कि बूढे भी हो गए, पर जिम्मेदारी और भी बढा ली, लगाव फंसाव और अधिक बढ गया, व्यवसाय भी और अधिक बढानेकी बात सोच रहे, तनिक भी फुरसत नही। चिंतायें बहुत, शोक बहुत और शरीरमे शक्ति नही, दिमाग भी उतना चलता नही,

लडके लोग कुछ करे तो उनके करनेमे भी बाधा देते। अपने दिमागसे जो समझमे आया उस तरहका वहाँ करना देखना चाहते है, ये सब विडम्बनायें बनाते है, और मोह तजा होता, कुछ अपने आपमे आत्मबल बढाया होता, घर द्वार आदि सबको छोडकर किसी दिन जाना तो होगा ही। यदि विवेकपूर्वक १०-५ वर्ष पहिले ये भी झगडे छोडकर अकेलेपनका आनन्द लिया होता तो ये सब बाधायें न होती। तो स्वका अनुभव करने के लिए पात्रता जगायें, उसके लिए क्या कर्तव्य है उसपर भी तो कुछ विचार करें। जैसे चलते आये, जैसी परिग्रहमे वासना बनी है, तृष्णा लालसा बनी है, उनमे किसीमे अन्तर नही आया, धर्म का लाभ भी नही मिला। रोज शास्त्र पढते रहे, शास्त्र सुनने मंदिरमे भी आते हैं, उससे संतोष मत करो, स्वका अनुभव न जगे, ऐसी स्थिति न मिले तब तक सतोषका काम ही नही। तो स्वका अनुभव जगनेके लिए पात्रता आयगी, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ और आदिको कम करनेसे। तो करना क्या है? शाश्वत अर्थात् सदाकाल रहने वाला, सत्य अपने ही सत्मे अपने ही सत्त्वके कारण रहने वाला जो एक चैतन्यभाव है उसका स्वरूप है कि रूपका ही प्रकाश रहे, उस रूपका ही ज्ञान रहे, वहा होगा क्या? किसी परका ख्याल नही, किसी परका उपयोग नही, किसी परका अवकाश नही, ऐसे एक निज आनन्दधाम कल्याण-धाम, सत्य सहज ज्ञानस्वरूपका उपयोग रहे, अनुभवन रहे उसे स्वानुभव कहते हैं।

स्वानुभवका भवन—स्वानुभव किस ज्ञानमे आता है यह बात पीछे कही जायगी, किन्तु स्वानुभवका स्वरूप तो पहिले समझ लो। स्वानुभवका स्वरूप तो वस्तुत अनुभव हुए बिना नही समझा जा सकता है। वचनोसे स्वानुभवका ज्ञान नही किया जा सकता, क्योंकि वचन किसी विकल्पकी ओर ले जाते है, किसी एक धर्मकी ओर ले जाते है। उस वचन योगके कालमे कुछ अन्य प्रकारके योग श्रम चलते रहते है, पर स्वानुभव तो धीरेसे, समता से, धैर्यसे और जैसे कि मौका मिल रहा, उसकी गैल मिल रही, ज्ञानप्रकाशकी ओर उपयोग चल रहा तो ऐसा चलनेमे और उसी तरहका साम्यभाव रखकर उसमे और आगे बढना, ये सब स्थितियाँ उस स्वानुभवकी पात्रता लाती है। जहाँ केवल एक ज्ञानप्रकाशका ही अनुभव है, दूसरे पदार्थका उपयोग नही उसे स्वानुभव कहते है। जिस जीवको सम्यग्दर्शन होता है वह सम्यग्दर्शन स्वानुभवपूर्वक ही होता है। जैसे बताया गया है कि सम्यक्त्व तो रहता है सागरो पर्यन्त, पर स्वानुभव होता हैं कभी कभी अन्तर्मुहूर्तको। तो स्वानुभव व्याप्त है, सम्यक्त्व व्यापक है। सम्यक्त्व रहता है बहुत काल, स्वानुभव होता है कभी कभी। तो स्वानुभव हो रहा हो उस समयमे भी सम्यक्त्व है, स्वानुभव है उस समयमे भी सम्यक्त्व है, लेकिन सम्यक्त्वका प्रथम समय स्वानुभवसहित ही होता है। वहाँ यह बात नही कि स्वानुभव न हो और सम्यग्दर्शन हो जाय। स्वानुभव होनेके बाद जो सम्यक्त्व जगा, स्वानुभवमे जो

सम्यक्त्व जगा वह सम्यक्त्व रहेगा बहुत काल और स्वानुभव न रहे, मगर प्रथम बारमे जब सम्यक्त्व होगा तो स्वकी अनुभूति सहित ही होगा। क्या जाना सम्यक्त्वमे ? किसकी प्रतीति की ? प्रतीति तो अनुभवके बाद होती है। आपने कभी देखा हो श्रवणबेलगोलकी मूर्तिको तो आप अब भी प्रतीति कर रहे है, उसे आप यहाँ आँखोसे देख नही रहे हैं, लेकिन प्रतीति बराबर बनी है, तो प्रतीति कबसे बनी ? जबसे उस मूर्तिके दर्शन किया। तो मूर्तिके दर्शनके समय साक्षात् देखा ना तो उस साक्षात् दर्शनपूर्वक प्रतीति बनी। प्रत्येक स्मृति भी बनती है तो अनुभूतिपूर्वक बनती है। किसी चीजको देखा, सुना, चखा तब उसकी स्मृति बनती है। तो सम्यक्त्व है प्रतीति और स्वानुभव है अनुभूति। एक बार अनुभूति हुए बिना उसकी प्रतीति नही हो सकती। तो स्वानुभवके लिए हमे कैसी पात्रता चाहिए ? भेदविज्ञानका अभ्यास करे और बाह्यपदार्थोसे लगाव रखनेकी वासना मिटावे, बाह्यपदार्थोसे लगाव रखनेसे अपना कुछ भी हित न होगा।

विभावका लगाव तोड़कर स्वभावकी रुचिकी उपकारिता—दुनियामे देखो सैकडो आये, चले गए। सब अपनी करामात दिखाकर चले गए। और, हम आप सब भी क्या करते हैं ? करते हैं विकल्प और विकल्प मचाकर सक्लेश करते है, दु खी होते है, जीवन दु खमे बिताया, सक्लेश किया और आगेका जीवन भी दु खमय हो इसकी रजिस्ट्री कर लिया। तब फिर इस भवको छोडकर चला गया। यही काम करते चले आये है, इसके अतिरिक्त और काम क्या है ? नाम ले लेकर बताते जाइये, वैभव देख देखकर खुश होते हैं, लालचका रग बडा गहरा बना रखा है। देखो—जब किसी अच्छे कार्यके लिए उपदेश दिया जाय तो सबसे अधिक लोभकषायको भग करनेकी बात कही जाती है। क्यो कही जाती है ? लोभका बहुत बडा रग है। क्रोध तो प्राय हरदम नही रहता, मौका आया तो क्रोध हो गया। मान भी हरदम नही रहता, मायाचार उससे थोडा और देर तक रहता है, लेकिन लोभका रग तो चौबीसो घटे चिपका रहता है। घरमे, मदिरमे या अन्य किसी भी स्थानमे सर्वत्र लोभकषाय चलता रहता है, इसीलिए सम्भव है कि अगर लोभत्यागकी बात कहे तो कुछ बात बुरी भी लगती हो, क्योकि लोभके रंगमे जब रंग चढा हुआ है तो उसके विपरीत बात करें सो बात खटकेगी, लेकिन कुछ भी आत्महितकी यदि वाञ्छा हो तो इस रगको तो मिटाना ही पड़ेगा। मिटेगा, पर एक मिटनेका ढग मरकर होता है, और एक मिटनेका ढग ज्ञानपूर्वक, त्यागपूर्वक पहिले करनेसे होता है। अब लोभ किन ढगमे है उसका, निर्णय कर लीजिए। स्वानुभवकी पात्रता जगानेके लिए सच्चे दिलसे भेदविज्ञानका अभ्यास करें। जैसे कोई चीज बनाते हैं तो उसका प्रयोग भी करते जाते है। मान लो पेन्सिल बनाते है चाकूसे। जब उस पेन्सिल

की धार कुछ मोटी होती है तो उसे पत्थर आदिक पर रगडकर उसकी धारको रगडते है, फिर पेन्सिल चलाकर उसका प्रयोग करते है, यह देखनेके लिए कि अभी ठीक हुई या नही। यदि ठीक नही हुई तो फिर उसे चाकूसे छीलकर पत्थरपर रगडते है, फिर उसका प्रयोग करते है। तो उसका प्रयोग करते जाते हैं। यो ही समझिये कि हम अपने जीवनमे प्रयोग करनेका एक अपना स्वभाव बनाये। क्रोध न करना। प्रयोगरूप दें उसको। क्रोधका वातावरण आये और फिर क्रोध न जगे। अब क्रोधके वातावरण नही आते तो आप क्रोधका कोई वातावरण बना लें, दूसरे लोग नाराज हो या कुछ भी हो, और अपने न लगे, इसका आपकी परीक्षा कर लीजिए। यो ही किया करो। मानका बुरा वातावरण देखिये। लोभ मेरा दूर हुआ है इसकी परीक्षा करिये। त्याग कीजिए, सब कुछ छोडकर जाइये। अथवा जिनको यही समझा कि ये मेरे हैं उनको अगर कोई कष्ट हो, उनके लिए खर्च कर डालो। ये लोभ त्यागकी परीक्षायें है। आपको उससे यह परिचय मिलेगा कि मेरे लोभका रग कम हुआ कि नही। कुछ कीजिए तो सही। छूटना तो है ही, मगर कुछ करें और इस दुर्लभ नरजन्मका लाभ उठा लें तो यह बडी अच्छी बात है।

दुर्लभ नररत्नके सदुपयोगकी ओर दृष्टि——अहो, ससारमे रुलते रुलते कितना काल व्यतीत हो गया ? जिसे कहेगे अनन्तकाल। कितने ही जन्ममरण किए। उस जन्मरणकी परम्परामे पडे हुए आज बडी मुश्किलसे यह नरजन्म पाया है। कोई पूर्वभवमे बहुत अच्छा पुण्यकर्म किया होगा जिससे आज यह दुर्लभ मानव जीवन पाया है। मनुष्य होकर यदि कुछ धर्मकी ओर आयें, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोहादिको कम करके आगे चलें तब तो मैंने लाभ पाया और यदि ऐसा न किया तो जैसे अनन्त जन्ममरण किए वैसे ही यह मानव जीवन भी गया। इस मानवजीवनका सदुपयोग है स्वानुभवका वातावरण बनाना। कैसे स्वका अनुभव जगे ? तीन लोक तीन कालके ससारी जीवोका सारा सुख मिलाओ वह भी स्वानुभवके आनन्दके बराबर नही। उसकी तो कोई तुलना ही नही। आखिर आनन्द ही तो चाहिए। जिस विधिसे मिले, जो आनन्द स्वाधीन हो, निर्विघ्न हो उस आनन्दको पावे। वह आनन्द मिलेगा स्वके अनुभवमे। यह मैं केवल शुद्ध ज्ञानमात्र हू। शुद्धके मायने केवल जाननमात्र हू, जिसमे रागद्वेष मोह, विकल्प, विचार, वितर्क कुछ नही बसे है। केवल जानन क्या ? केवल प्रकाश। जैसे नीला लट्टू लगा दिया तो प्रकाश नीला हो गया। अरे इसमे जो नीलापन है वह विकार है, और जो शुद्ध प्रकाश है वह खुद प्रकाश है। अब हम उस नीले प्रकाशमे इस भेदका रहस्य पानेमे असमर्थ हैं। नीलत्व है विकार और प्रकाशत्व है एक शुद्ध चीज, यह भेद आप आखोसे न परख सकेंगे, ज्ञानसे ही परख सकेंगे। कोई

सफेद लट्टू लगा दिया तो सफेद, जिसपर कुछ रग जैसा ही सफेद रहता है। प्रकाश बहुत सफेद हो गया तो वहा जो सफेदी है वह है विकार और जो प्रकाश है वह है एक बिजली की निजी चीज। तो ऐसे ही हमारे ज्ञानमे जितने ज्ञान चल रहे है उन ज्ञानोमे विकार कितना पडा हुआ है, और शुद्ध ज्ञान क्या है ? उस शुद्ध ज्ञानकी ओर दृष्टि नही। उसका जो बोध है वह एक सहज शुद्ध बोध है। उसका परिचय नही पाया चीजमे। भोजनका, धन वैभवका, स्त्री पुत्रादिक परिजनोका, इज्जत आदिकका तो बहुत-वहुत परिचय बनाया जो कि देखे हुए स्वप्नकी तरह नि सार, एक बरबादीके ही कारण है, लेकिन अपने आपमे नित्य अन्त प्रकाशवान जो एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, उसको नही जान पाया, क्योकि इसने कषायोके लगावसे उस प्रकाशको दबा दिया। वह इसके उपयोगमे नही आ पाता। तो ऐसे सत्य सहज ज्ञानस्वभावका अनुभव करनेको स्वानुभव कहते है।

स्वानुभवके आनन्दकी वचनागोचरता—स्वानुभवके समय क्या होता है, इस बातका वर्णन नही किया जा सकता है। यो तो वर्णन किसी भी प्रत्यक्षमे जाने हुए पदार्थका नही हो पाता। यह भी तो प्रत्यक्ष है स्वानुभव। मानो मिश्री खाया तो उसमे कितना मिठास है, इसको कोई वचनोसे बताये तो बता न सकेगा, कि कैसी मिठास है ? हाँ वह अनुमान बनायेगा कि गन्नेसे भी मीठा, गुडसे भी मीठा, शक्करसे भी मीठा इस मिश्रीका मिठास है, क्योकि जितना-जितना उसके विकार हटते रहते है उतना उतना ही उसका मिठास बढता रहता है। यो अनुमान करके अपेक्षा लगाकर उसके आनन्दकी बात तो कोई बता देगा लेकिन वास्तविक अनुभव नही हो सकता कि मिश्रीमे मिठास कैसा है ? उसका उपाय तो मिश्रीकी एक डली मुखमे रखकर समझ लेना है। यो ही स्वानुभवकी बातको अनुमानसे भले ही बता दिया जाय। वह स्वानुभव क्या है ? समस्त इन्द्र, तीनो लोकके पुण्यशाली जीव उन सबका सांसारिक सुख मिला लिया, और इतने ही नही, जितने भी सांसारिक सुख भविष्यमे होते रहेगे उन सबको मिला लो, तिसपर भी उस सुखसे अधिक आनन्द है स्वानुभवमे। पर इन बातोसे उस अनुभवकी बात समझमे नही आती। उसका उपाय तो यही है कि खुदकी तैयारी की जाय। क्रोध, मान, माया, लोभ, मोहादिकसे उपेक्षा कीजिये, इनका लगाव तोडिये और इनका लगाव तोडकर एक स्वके प्रकाशके मैदानमे आ जाइये, बाहरके ख्याल छोड दीजिए। मानो मैं इस मनुष्यभवमे हू ही नही, न था, न होऊंगा, कुछ भी विचार न लाकर एक गुप्त ही गुप्त इस मनुष्यभवमे पाये हुए समागमोसे लाभ लूट लीजिए। इस स्वका अनुभव अपने आपकी तैयारी बिना नही हो सकता। अब दूसरे यह परख होगी कि ज्ञान और चारित्रका कितना निकट सम्बन्ध है ? तैयारी करना यह चारित्रका ही तो एक रूप है। बाह्य विकल्प हटाना, कषायोको दूर करना, अपने उपयोग

को केन्द्रमे लाना यह सयमका रूप है । ये सब अतरङ्गकी बाते है । तो अन्तरङ्गकी इस क्रिया द्वारा, उसके उपयोग द्वारा हम स्वका अनुभव कर पानेमे समर्थ हैं, तो यो समझिये कि जैसे मिश्रीका स्वाद केवल बातोसे नही मिलता, वह तो खानेसे मिलता है ऐसे ही स्वका अनुभव भी बाह्यज्ञानोसे नही मिलता, किन्तु अन्त क्रियाके प्रयोग द्वारा मिलता है । अब ऐसे ही स्वानुभवकी बात कहेगे कि स्वानुभव नामक ज्ञानपरिणमन किस ज्ञानमे शामिल होता है. मतिज्ञानमे, श्रुतज्ञानमे, अथवा अवधि आदिक ज्ञानोमे ।

स्वानुभवकी दशामे चूंकि कोई विकल्प नही है तो वहाँ मनका आश्रय नही रहता, ऐसा ध्यानमे रहता है । यद्यपि उस स्वानुभवकी स्थितिमे आनेसे पहिले जो भिन्न था वह लनसे उत्पन्न हुआ था । ऐसा न हो सकेगा कि उससे पहिलेका प्रथम कोई विशिष्ट मानसिक न हो और स्वानुभूति अब तो इस दृष्टिसे चूंकि वह ज्ञान एक मनसे उत्पन्न हुआ था । जो ही ज्ञान अब मनका आश्रय छोडकर स्वके अनुभवमे आया है, इस दृष्टिसे उसे मनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान कह सकते है, पर परमार्थत जिस कालमे सहज शुद्ध शाश्वत ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो रहा है, उस काल उसे मनसे उत्पन्न हुवा नही कह सकते, क्योकि मन तो विकल्पका ही उत्पादक है । विकल्परहित अवस्थाका उत्पादक मन नही है ऐसी स्थितिमे चूंकि निर्विकल्पताका साधर्म पाया जा रहा है तब मति और श्रुत इन दो ज्ञानोमे से किस ज्ञानकी निकटता है और किस ज्ञानकी धारा है ? इसपर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह मतिज्ञानकी धारा है । स्वानुभवके लिए जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह केवल उत्पत्तिमे उसमे मन निमित्त है, किन्तु उत्पन्न होनेके बाद वही ज्ञान अतीन्द्रिय चैतन्यस्वभावके अनुभव रूप होता है । तो उस ही ज्ञानको अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं ।

अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष । स्वानुभव तो स्वय अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है लेकिन उसके पूर्ववर्ती ज्ञान अनीन्द्रियप्रत्यक्ष है । इसका ज्ञान मतिज्ञानमे किया जा सकता है । यद्यपि स्वानुभव उत्पन्न होनेके लिए श्रुतज्ञान और मतिज्ञान ये दोनो पूर्वापर साधक होते है । श्रुतज्ञानसे वस्तुस्वरूप जो जाना उस ही चिन्तनकी धारामे विकल्परहित होकर स्वानुभव होता है । मतिज्ञानसे जो जाना उस ही धारामे निर्विकल्प होकर यह स्वानुभव होता है फिर भी चूंकि श्रुतज्ञान सविकल्प ज्ञान है । श्रुतज्ञानमे विशेष विकल्प नही है ऐसे ही शेष चार ज्ञानोमे भी नही है । तो निर्विकल्पता प्राप्त होनेसे एकदम पहिले शेष मतिज्ञानका रूप आता है । और उसके ही अनन्तर यह स्वानुभवकी स्थिति उत्पन्न होती है । स्वानुभव है अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष । यह चीज चल रही है प्रमाणके सम्बधमे । वस्तुके स्वरूपको जाननेका उपाय है लक्षण प्रमाणनय और निक्षेप । उसमे से प्रमाणकी बात चल रही है । प्रमाण ५ प्रकारके कहे गए है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान । हम आपको यहाँ मतिज्ञान है । तो मतिज्ञानके क्या क्या प्रकार हैं, इसका

वर्णन किया है। पर एक यह विशिष्ट प्रकार है स्वानुभवका, जिसमे इन मतिज्ञान, श्रुतज्ञानकी बात कहकर भी मतिज्ञान श्रुतज्ञानसे निराला इनका रूप है और स्वानुभव एक ऐसा प्रबल प्रमाण है कि अन्य प्रमाणोंमे किसी अपेक्षा किसी समय कुछ कभी कमी भी आ सकती है, पर स्वानुभवकी प्रमाणतामे कभी भी कमी नही आ सकती। कहते भी है लोग कि यह तो अपने हृदयसे माना गया है। यह तो एक अनुभूत बात है। देखी बात गलत हो जाय, सुनी बात गलत हो जाय, पर हृदयमे उतरी हुई अनुभवकी बात गलत नही हो पाती। पर होना चाहिए वह अनुभूति। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे कि सुनी हुई बहुतसी बातें गलत भी हो जाती है, एकने दूसरेको सुनाया, दूसरेने तीसरेको और शब्दोमे सुनाया, तीसरेने चौथेको और शब्दोमे सुनाया। जो मूल बात है उससे कहो उल्टी ही बात सुननेमे आ जाय। तो कानों सुनी बात प्रमाणभूत नही होती, अथवा आँखो देखी बात भी प्रमाणभूत नही होती। इसके भी अनेकों दृष्टान्त मिलेगे कि दिखनेमे कुछ आया है और वहाँ परिणाम और घटना है और कुछ, पर अपने अनुभवमे उतरी हुई बात पूर्णतया प्रमाण होती है। उसे अब कोई भी भ्रम मे नही डाल सकता। यो वस्तुके स्वरूपको जाननेका उपाय प्रमाण है, इस विषयका वर्णन हुआ।

वस्तुपरिचयके उपायोंमें नयनामक उपाय--अब वस्तुके स्वरूपका परिचय कराने वाला तीसरा उपाय है नय। नयोका विशेष विवरण जैन दर्शनमे ही पाया जाता है। कारण यह है कि जैन दर्शन अनेकान्तात्मक वस्तुकी प्रसिद्धि करता है। मायने कोई लोग कहते हैं कि जो वस्तु है वह कभी परिणमती नही, ध्रुव है, नित्य है, लेकिन यहा दिखने मे तो यह नही आ रहा। जो भी पदार्थ है वह प्रतिसमय परिणमता रहता है। उसमे परिणमन पाया जाता है। परिणमे बिना वस्तु रह ही नही सकती। उसका अस्तित्व भी नही रह सकता। क्या है वह वस्तु? उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक वस्तुका स्वरूप है, और कोई माने कि वस्तु तो एक समयमे होती है, दूसरे समयमे नष्ट हो जाती है तो ऐसी वस्तु फिर है क्या? कही असत्से सत् बनता है? और जो सत् है वह किस रूपमे नष्ट होगा, कैसे समूल नष्ट होगा? तो वस्तुका ध्रौव्य भी स्वरूप है। तो वस्तुमे ये अनेकस्वरूप पाये जाते है उनका वर्णन जैन शासनमे है। तब उनको समझानेके लिए नयप्रक्रिया चाहिए। किसी अपेक्षासे कही हुई बात किसी अन्य अपेक्षासे मान ले तो वस्तुका स्वरूप सही न हो सका। जिस अपेक्षासे जो धर्म है उस अपेक्षा से उस धर्मको बतावे तभी तो वस्तुकी बात सही बनेगी। उसीको प्रसिद्ध करने वाला नय है। नय केवल एक धर्मको ग्रहण करता है अन्य धर्मोंका निषेध करता है ऐसी बात नही है। यदि नय अन्य धर्मोका निषेध करता हुआ अपने धर्मका प्रतिपादन करता है। तो वह नय नही, किन्तु एकान्त है, कुनय है।

नय तो प्रमाणसे ग्रहण किए हुए पदार्थका अभिप्रायवश प्रयोजनवश उसमे

से एक देश जानता है अथवा जो बताता है उसे नय कहते हैं। इसे यदि सीधे शब्दोमे कहे तो जानने वालेके अभिप्रायको नय कहते है। इन दोनो लक्षणोमे अन्तर कुछ नही है, पर एक कहनेका ढग है। और, जो लक्षण कहा था उसके प्रमाणसे जाने हुए पदाथमे प्रयोजनवश अभिप्रायवश एक देश धर्मको ग्रहण करना सो नय है। तो वहा नयके विषयभूत पदार्थका वर्णन किया। वह पदार्थकी ओरसे कथन है। और दूसरा जो लक्षण कहा तो उस पदार्थके सम्बन्धमे जो ज्ञान हुआ उस ज्ञानकी ओरसे कथन है। बात तो दोनो ही बोली गईं—पदार्थ और ज्ञान। जब जान रहे है तो उसका सम्बन्ध उसका विषय, उसका प्रसग पदार्थसे भी है, नयसे भी है। तो पदार्थकी ओरसे कहनेपर नयका लक्षण यह बना कि प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थमे भी अभिप्रायवश एकदेशधर्मका ग्रहण करना सो नय है और जब ज्ञाताके ज्ञानकी ओरसे बात कही गई तो कहे गए ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते हैं। नय ऐसे अभिप्राय कई प्रकारके हो सकते हैं। जिन्हे किसी सख्यामे नही बाँधा जा सकता, लेकिन जाति अपेक्षासे उन अभिप्रायोकी सख्या नही बनायी गई है, तो वे जातियाँ भी अनेक ढगोसे बनी। जैसे मनुष्योकी वर्णोको अपेक्षासे चार जातिया हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। धर्मकी अपेक्षा, सिद्धान्तकी अपेक्षा इनकी ५–७ जातिया हैं। नैयायिक, मीमासक, साख्य, जैन, बौद्ध, चार्वाक आदिक। आखिर इनमेसे किसी न किसी सिद्धान्तके अनुयायी तो सभी लोग हैं, चाहे वे इस बातको समझ पाये हो या नही। देशकी अपेक्षासे भी कई जातिया है, भाषाकी अपेक्षा अन्य प्रकारकी जातिया हैं। तो इसी तरह नयोकी भी भिन्न-भिन्न ढगसे अनेक जातिया बनती है।

नयोंके सैद्धान्तिक मूल व उत्तर प्रकार—नयोकी अनेक जातियोमे से एक सैद्धान्तिक विधिमे इनकी जातियाँ कहे तो ७ होती हैं—नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनम, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय। और इनका मूल उत्पादक है द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय। देखिये—सब नयोका अपना-अपना अलग-अलग प्रभाव है। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय एक ऐसा विस्तृत रूप है कि जितने प्रकारकी नयकी जातिया बतायी गईं सबमे इनका उपयोग है। द्रव्यार्थिकनय अभेद और सामान्यको ग्रहण करता है। पर्यायार्थिक नय भेद और विशेषको ग्रहण करता है। हम आप जो कुछ भी शब्द कहेगे वे या तो सामान्य रूपसे होगे या विशेषरूपसे होगे। इसका उल्लघन करके हम आपका ज्ञान नही बनता है। तो जो सामान्य और अभेदका विषय करे वह है द्रव्यार्थिकनय और जो विशेष अथवा भेद का ग्रहण करे वह है पर्यायार्थिक नय। इन ७ नयोमे द्रव्यार्थिकनय है तीन—नैगमनय, सग्रहनय और व्यवहारनय, और पर्यायार्थिकनय है ४, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय। इनका लक्षण बतायेंगे, और इनका जानना बहुत आवश्यक है। लोग जो कुछ कठिन बात जंचती है उसके जाननेके लिए उत्सुक नही होते और कायर बन जाते

है और उसके समझनेमे अपना उपयोग भी नही लगाते, लेकिन जैनआगमका सारा रहस्य तो नयपरिज्ञानपर निर्भर है। यदि नयोका वास्तविक परिज्ञान नही है तो वे वस्तुस्वरूपके विवरणमे वढ ही नही सकते। वढना तो क्या ज्ञानमे आ ही नही सकते। इसलिए नयोका परिज्ञान कर लेना अत्यन्त आवश्यक है, अगर उस ओर अपना उपयोग लगाया और समझना चाहा कि समझें तो सही कि वास्तविकता क्या है, तो सव ज्ञानमे आ सकता है। इन नयोका लक्षण जव वतायेगे तव वहुत स्पष्ट समझमे आयेगा कि अभी तो जातियोकी छाँट कर रहे है कि नयोकी जातियाँ कितनी तरहसे कायम की जाये? जैसे यहाँ मनुष्योकी जातियाँ देश, धर्म, मजहव, भाषा, वर्ण आदिकसे अनेक प्रकार छाँट दी जाती है इसी प्रकार नयोकी जातियाँ भी कितनी प्रकारसे हो सकती है। यह छटनी की जा रही है।

बुद्धिनय, शब्दनय व अर्थनयकी पद्धति—देखिये—एक पद्धति होती है बुद्धि शब्दार्थ पद्धति। जानेंगे तो एक तो जानना हुआ और उस जाननेमे जो शब्द अन्तरमे डाला जायेगा या स्पष्टरूपसे वोला जायगा वह हुआ शब्द और एक जाना गया किसी पदार्थको तो जाननेके प्रसगमे हम आपको तीनसे सम्वन्ध रहता है—बुद्धि, शब्द और ज्ञानसे। वल्कि देखो तो लोकव्यवहारका भी समस्त परिचय इन तीनसे सम्वन्धित है—बुद्धि, शब्द और अर्थ। जैसे कहा—घर, तो वतलावो घर मायने क्या है? वह घर तीन वातोसे सम्वन्ध रखता है। बुद्धिघर, शब्दघर और अर्थघर। अर्थघर तो वह है जो ईंटोसे उठा हुआ जैसा का तैसा खडा हुआ है। और घ र ऐसे दो शब्द वोले जाये अथवा कागजपर लिख दिए जाये तो वह हुआ शब्दघर। लेकिन उस घरके सम्बन्धमे जो कुछ परिचय किया जाय वह हुआ बुद्धिघर। तो आप यहा यह वतायें कि आप किस घरसे प्रेम करते हैं? क्या अर्थघरसे प्रेम करते है? अर्थघर तो अत्यन्त भिन्न चीज है. और प्रेम आपका चारित्र गुणका उपयोग है। वह राग पर्याय है। तो प्रेम पर्याय आत्माका आत्मामे ही रह सकेगा, परपदार्थमे न पहुंचेगा। तो अर्थघरसे कोई प्रेम कर नही सकता। करना चाहे तो भी कर नही सकते क्योकि वस्तुस्वरूपका कभी भी उल्लघन नही होता। तो अर्थघरसे तो कोई प्रेम कर ही नही सकता। शब्दघरसे भी कौन प्रेम करे? केवल घ और र इन शब्दोसे किसे प्रीति है? खैर अव रहा बुद्धिघर। बुद्धिघरके मायने ज्ञानमे विकल्पमे जो कुछ वात समाई हुई है वस्तुत इन बुद्धिघरसे ही लोग प्रीति करते हैं। अपने आपके विकल्पोमे ही राग उत्पन्न होता है पर वस्तुमे हम आपकी परिणति नही पहुंचती। तो हर वातमें, हर एक परिचयमे इन ३ वातोका सम्वन्ध है। बुद्धि, शब्द और अर्थ। इस दृष्टिसे नयके तीन भेद है—ज्ञाननय, शब्दनय और अर्थनय। बुद्धिमें जो वात आये उसका नाम है ज्ञाननय, शब्दमे जो वात दिखाये उसका नाम है शब्दनय और जिन अर्थका प्रकाश हुआ है वह

है अर्थनय ।

नयोंके मुख्य सैद्धान्तिक प्रकार—अन्य प्रकारसे भी नयोकी जातियाँ बना करती हैं। लेकिन इसे विस्तारमे न बढाकर अब मूल बातपर आयें। हम आपके जितने भी परिचय चलते है वे सब परिचय भेद और अभेदके आधारपर चलते हैं। जहाँ अभेद दृष्टिमे है और जो ज्ञान किया जा रहा है वह तो है द्रव्यार्थिकनय और जहाँ भेद अभिप्रायमे है और फिर जो ज्ञान किया जा रहा है वह है पर्यायार्थिकनय। इसको शब्दोकी ओरसे कहा जाय तो द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है उसे कहते हैं द्रव्यार्थिकनय और पर्याय ही जिसका प्रयोजन है उसे कहते हैं पर्यायार्थिकनय। जैसे जाना—घी, यह द्रव्यार्थिकनयकी बात है और जाना मनुष्य, देव, नारकी, तिर्यञ्च तो यह पर्यायार्थिकनयकी बात है। अब इनके भेद जो ७ कहे गए थे उन ७ भेदोको क्रमसे परखिये और ये ७ जिस क्रमसे कहे गए है यह अदाज करते जाइये कि पहिले नयमे जो कुछ कहा उस उसमे भी और अश करके सग्रहनयमे कहा। संग्रहनयमे जो कुछ कहा उसके भी और अश करके व्यवहारनयमे कहा। इस तरह उत्तरोत्तर अंश हो होकर, भेद डाल डालकर इनका वर्णन चलेगा। इस पद्धतिसे इन नयोका स्वरूप जानेंगे तो यह स्वरूप बहुत सुगमतासे समझमे आयगा।

नैगमनय—पहिले कहते है नैगमनय। नैगमनयका अर्थ है कि कोई भेद न करके द्रव्यपर्याय भेद अभेद सत् असत् सबका ज्ञान हो एक रूपमे तो वह नैगमनय है, सबसे बडा नय है। इसके विस्तार वाला कोई नही है। यद्यपि समझमे ऐसा आता कि सग्रहनय सबसे बडा है क्योकि वह सबका सग्रह करता है। जो जीव है सबका संग्रह होगा। संग्रहनय बना लेकिन नैगमनय सग्रहनयसे भी बडा है। सत् कह दिया तो जितने भी पदार्थ सत् हैं उन सबका ग्रहण हो गया लेकिन नैगमनय इससे भी बडा है। क्या वे सत् और असत् दोनोको समझते हैं ? इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण देते हैं कि जैसे कोई रसोईघरमे लकडियाँ ही धर रहा है, अथवा कोयला ही जला रहा है। उससे कोई पूछता है कि भाई क्या कर रहे हो ? तो वह कहता है कि चावल पका रहे हैं। तो अब देखिये कि असत् और सत् दोनो ज्ञानमे आ गए। जो कर रहा है वह तो ज्ञानमे है ही और जो नही कर रहा वह भी उसके ज्ञान मे है। तो सग्रहनयने केवल सत्को ग्रहण किया किन्तु नैगमनयने सत् और असत् दोनोका ग्रहण किया। तो नैगमनयका विषय सबसे बडा है। कोई पुरुष एक पाषाण लाया, मानो उसमे कोई प्रतिमा बनानी थी। कोई पूछता है कि भाई क्या लाये ? तो वह कहता है कि अजी मैं बाहुबलीकी प्रतिमा लाया हू। प्रतिमा कहाँ है ? वह तो अभी बनानी है। लेकिन जिस पाषाणको लाया है उसमे उसने यह संकल्प किया है कि इसमे बाहुबलि स्वामीकी मूर्ति बनेगी। तो बाहुबलिकी मूर्ति असत् है और पाषाण सत् है लेकिन उस पाषाणको बाहुबलि

की मूर्ति कह देना यह सत् और असत् दोनोमे शामिल कर दिया, तो संग्रहनय ज्यादहसे ज्यादह सत्को ही विषय करता है लेकिन नैगमनयने सत् और असत् दोनोको विषय किया। इस कारण नैगमनयका लक्षण यो कहा करते हैं कि संकल्पमे होने वाले ज्ञानको नैगमनय कहते हैं। चूकि पाषण लाने वालेके संकल्पमे यह ज्ञान आया कि यह मूर्ति है तो वह ज्ञान नैगमनय बन गया। अब इन वाक्योके बोधसे आप यह परखते जायेंगे कि हम कौनसा ज्ञान किस नयसे करते है ? और इसे कोई कहे कि तुम बड़ा झूठ बोलते, लाये तो पत्थर हो और कहते हो कि हम मूर्ति लाये है। तो उसका उत्तर दिया जा सकता है कि नैगमनयकी दृष्टिसे हम सत्य कह रहे है। और आपको नयका परिज्ञान नही है तो आप उसके दबावको सह लेंगे, हाँ भाई मालूम हो गया। और जिसे नयका परिचय है वह स्पष्ट बोल देगा कि हम गलत नही बोल रहे हैं, यह नैगमनयकी दृष्टिसे सही है। तो नैगमनय द्रव्य, पर्याय, सत् असत्, भेद अभेद दोनोको विषय करता है, इसलिए सब नयोसे इसका विषय महान है।

नैगमनयके प्रकार—नैगमनयके तीन भेद है—भूत नैगमनयके भी तीन भेद है—भूत नैगमनय, भावी नैगमनय और वर्तमान नैगमनय। भूतकालकी बातको इस समयके सम्बन्धसे कहना भूत नैगमनय है। जैसे किसीने कहा आज दीवालीके दिन महावीर स्वामी मोक्ष गए। अब महावीर स्वामी तो मोक्ष गए थें करीव ढाई हजार वर्ष पहिले, मगर दीवालीकी सदृशतासे आज दीवालीके दिन उस घटनाका प्रयोग करना भूत नैगमनय है। भावी नैगमनय—भावी कालमे जो अवस्था होनेको हो उसे वर्तमानमे जोडना। जैसे अरहंत सिद्ध भगवान ही है। जो आज अरहत है वे सिद्ध अवश्य होगे। तो सिद्ध भगवानका अरहंत भगवानकी अवस्थामे ही कहना सो भावी नैगम है। वर्तमान नैगम – वर्तमानकी ही बात को वर्तमानमे कहना। केवल वर्तमानमें थोडे ही समयका पर्यायका अन्तर है। जैसे कहा कि भात पकता है तो जब पक रहा है तब तो भात है नही, भात तो पकी हुई अवस्थाका नाम है, लेकिन उसके सिलसिलेमे अभी कुछ देरमे ही तो उसकी पक्व अवस्था होनेको है तो उसका यहा भेद हैं। इन तीन नैगमोमे यह बात विचारने की है कि उसमे सत् और असत्का समन्वय किया गया है। पहिले की दीवाली आज तो नही है, आजकी दीवाली आज है तो इसमे सत् असत्का समन्वय है। अरहत भगवान भी सिद्ध नही है पर कह दिया गया कि अरहत ही सिद्ध हैं, तो सत् और असत्का यह समन्वय हुआ। जैसे भात पकता है यह कहा गया तो भात पक चुके उसका नाम है भात। वह भात तो अभी है नही, इसलिये असत् है, लेकिन यहा सत् और असत्का समन्वय किया गया है।

संग्रहनयका वर्णन--अब संग्रहनयकी बात बतलाते है। जो सत्का, द्रव्यका, अभेद का ग्रहण करे उसे सग्रहनय कहते है। नैगमनय सत् असत् भेद अभेद, द्रव्य पर्यायका समन्वय किया था एक सकल्पमे लेकिन उसमे भी छटनी करके असत्, भेद और पर्यायको छोड दिया। जो सत् अभेद और द्रव्यका ग्रहण करे उसे संग्रहनय कहते हैं। सग्रहनयमे स्थूलरूप से यह बात समझ लेना है कि यह बहुतका सगह करता है। सग्रहनयके दो भेद हैं—परसग्रहनय और अपरसग्रहनय। जो ऐसा संग्रह हो, सर्वस्व हो, जिसका और आगे सग्रह न हो, सम्पूर्णका संग्रहरूप ज्ञान हो वह परसंग्रहनय है। और परसग्रनयसे जो ग्रहण किया था उसे व्यवहारनयसे भेद कर दें तो उन भेदोमे से किसी एक भेदको कहा, जिसमे उसके प्रभेदोका सग्रह किया जाय, इस तरहसे संग्रह जाननेको अपरसग्रह कहते हैं। जैसे सत् कहा तो यह परसग्रहका उदाहरण है, । सत्मे सम्पूर्ण विश्व आ गया। अब सत्के व्यवहारनयसे भेद किया। सत् ६ प्रकारके है--जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अब व्यवहारनयसे भेद होनेके बाद उनमेसे एक पदार्थका ग्रहण कर लिया जावे और उस जीवका सग्रह बनावे, मायने कितने प्रकारके जीव है, ससारी, मुक्त सभी जीवोका सग्रह हो जाय, इस तरह संग्रहकी बात करनेको अपरसग्रह कहते हैं। नयोका जब वर्णन किया जाता है तो वर्णन करने वाला किस दृष्टिसे, क्या वर्णन कर रहा है, इसका परिचय पाना आवश्यक है। उसीके लिए नयोका लक्षण कहा जा रहा है।

व्यवहारनयका वर्णन---तीसरा नय है व्यवहारनय। सग्रहनयसे ग्रहण किये गये पदार्थको भेद रूपसे जनाने वाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं। जैसे द्रव्य कहा था तो वह तो सग्रहनयका विषय है, क्योकि उसमे सभी द्रव्योकी बात आ गई। अब उस द्रव्यमे से भेद करना कि ये ६ द्रव्य है—जीव, पुद्गल आदिक, तो यह व्यवहारनयका विषय है। इस व्यवहारनयमे और अपरसग्रहनयमे यह फर्क है कि अपरसग्रह तो सग्रहकी दृष्टि रखकर बोलते है और व्यवहारनय भेद करके भेदको बोलते हैं। अब सग्रहनयकी तरह व्यवहारनयके भी दो भेद हैं—एक परसग्रहभेदक व्यवहारनय और दूसरा—अपरसग्रहभेदक व्यवहारनय। परसग्रहमे जिस एक विशाल संग्रहको किया था उसमे भी भेद डाल दिया तो वह परसग्रहभेदक व्यवहार है। जैसे द्रव्यके ६ भेद है--जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तो यह हुआ परसंग्रहभेदक व्यवहारनय। अब इनमे से एक जीवका ग्रहण किया और उसके भेद बताये कि जीव दो प्रकारके है--ससारी और मुक्त। तो यह हुआ अपरसग्रहभेदक व्यवहार।

ऋजुसूत्रनयका वर्णन---चौथे नयका नाम है ऋजुसूत्रनय। वर्तमान पर्यायको ग्रहण करने वाले नयका नाम है ऋजुसूत्रनय। ऋजु नाम है सरलका। सरल होता है वर्तमान।

वर्तमानको जो ग्रहण करे वह ऋजुसूत्रनय है। इन सबका वर्णन सुनते समय यह भी दृष्टि चलती जाय कि पूर्वनयसे इस नयका अंश करके एक अंशको जाना। जिस नैगमनयमे सत् असत्का समन्वय किया था वह सबसे बड़ा विस्तारका विषय है। अब संग्रहनयने सत् असत् में से असत्को छोडकर सत्को ही ग्रहण किया। तो नैगमनयसे संग्रहनय सूक्ष्म विषय है। अब उस संग्रहमे से भेद करे तो व्यवहारनय है। तो सग्रहनयसे इसका विषय सूक्ष्म हुआ। अब व्यवहारनयसे तो भेद करके उसे अभेद रूपसे ही जाना गया था। अब उस समस्तमे से एक पर्याय मात्रका ही ग्रहण करे सो ऋजुसूत्रनय है। व्यवहारनयमे पर्यायदृष्टि न थी, द्रव्य पर्याय सबका ही समन्वय था। एक दृष्टि यह थी कि संग्रहनयसे ग्रहण किए गए अभेद करना। अब ऋजुसूत्रनयमे एक पर्यायको ही ग्रहण किया गया। अत ऋजुसूत्रनयका व्यवहारनयसे सूक्ष्म विषय है। ऋजुसूत्रनय इसी कारण पर्यायार्थिकनय कहलाता है। इसने पर्यायका विषय किया। इससे पहिले जो तीन नय थे—नैगम, सग्रह और व्यवहार, वे द्रव्यानय कहलाते थे। पर्यायका भेद न करके सामान्यतया वस्तुका ही ग्रहण करता था। और, अब ऋजुसूत्रनयसे आगे जितने भी नय आयेंगे वे अब पर्यायार्थिकनय होते हैं। ऋजुसूत्रनयके कितने भेद है ? दो भेद है—स्थूल और सूक्ष्म। ऋजुसूत्रनय पर्यायको ही ग्रहण करता है, अगर इस तरहसे पर्यायको ग्रहण करे, जो अनेक समय रहता है, अगर उस सदृश आकारके कारण जब तक रहे तब तक उसका वर्तमान रूप कहते है। याने जो व्यञ्जनपर्यायको ग्रहण करे अथवा साधारणतया एक परिणमन को ग्रहण करे उसे स्थूल ऋजुसूत्रनय कहते है। जैसे—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। मनुष्य रहते है १०० वर्ष, देव रहते है हजार वर्ष। वह सब एक वर्तमान पर्याय है ऐसे स्थूलतया वर्तमान पर्यायको जानने वाला नय स्थूल ऋजुसूत्रनय कहलाता है। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय वर्तमान समयमात्र गुणपर्यायको ग्रहण करता है, व्यञ्जनपर्याय वर्तमान समयमात्रसे ग्रहणमे नही आता। वह तो एक आकार है, अनेक समय रहे, पर गुणपर्याय एक समय भी होती इसलिए सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयमे गुणपर्याय का ग्रहण होता है। जैसे एक समयकी रागपरिणतिको अथवा एक समयकी ज्ञानपरिणति को जाने, यहा एक बात विशेपतया समझना है कि एक समयकी रागपरिणति होती तो है मगर उससे राग परिणाम नही बन पाता। वह अन्तर्मुहूर्तके रागपरिणमनोमे जीवका राग बनता है, जिस रागसे व्यवहार होता है, पालन पोपण प्रेम आदिक व्यवहार हो, ऐसा राग अनेक समयोका मिलकर हो पाता है। लेकिन हो फिर भी जो परिणमन अन्तर्मुहूर्त तक बराबर चलता है वह एक एक समयका हो होकर ही तो चलता है। एक समयकी ज्ञानपरिणतिका समाचार यह है कि एक समयके ज्ञानके द्वारा भी पदार्थ जाना जा सकता है और एक समयके ज्ञानोपयोगमे जाननका व्यवहार नही भी होता है। छद्मस्थ जीवोके एक

समयके ज्ञानपरिणमनसे जितना व्यवहार नही बन पाता, उनके अन्तर्मुहूर्तका उपयोग हो उससे जानन व्यवहार वनता है। परन्तु एक ज्ञानी जीवके एक-एक समयके केवलज्ञान परिणमनसे समस्त विश्व जाननेमे आता रहता है। तो जो वर्तमान समयमात्र गुण पर्यायको ग्रहण करे ऐसे आशयका नाम है सूक्ष्मऋजुसूत्रनय।

शब्दनयका वर्णन—अब ५ वाँ नय है शब्दनय। ऋजुसूत्रनय वर्तमानपर्यायिको ग्रहण किए था, अब उसमेसे ही कुछ छाँट करके कोई अश ग्रहण करे शब्दनय तो वर्तमान पर्याय को ऋजुसूत्रनयने जाना था, मगर लिङ्गादिकके भेदसे उसमे भेद नही किया जा रहा था। अब यह शब्दनय लिङ्गादिकके भेद से उस पर्यायका भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे स्त्रीके तीन शब्द हैं--दार, कलत्र और भार्या। ऋजुसूत्रनयमे उस स्त्रीभवको बतायेंगे तो किसी भी शब्दसे बता दें, उसमे कोई भेद न आयगा, लेकिन शब्दनय दार शब्दसे स्त्रीभवका अर्थ दूसरा करेगा, कलत्र शब्दका दूसरा अर्थ होगा, और भार्या शब्दका अन्य अर्थ होगा। दार उसे कहते है जो भाई भाईका झगडा कराकर अलग करा दे। तो दार शब्दसे कुछ विशिष्ट अर्थ वाली स्त्रीका बोध हुआ। कलत्र उसे कहते हैं जो पति अथवा पुत्रके शरीरकी रक्षा करे। कल मायने शरीरके है और त्र मायने त्राण अर्थात् रक्षा करनेके है। तो कलत्र शब्द कहकर किसी विशिष्ट प्रकारकी स्त्रीका बोध हुआ। भार्याका अर्थ है तो गृहभारको स्वय चलाये। तो वर्तमान ऋजुसूत्रनयने उस स्त्रीको किसी शब्दसे कहा, वहाँ अन्तर नही पडा। पर्याय-सामान्य बताया गया, लेकिन शब्दनयने ऋजुसूत्रनयके विषयमे भी भेद कर दिया। एक भिन्न-भिन्न रूपसे ग्रहण किया। यहाँ यह बात जानना आवश्यक है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान समय मात्रको ग्रहण करता है। तो अब उससे और कालभेद तो बन नही सकता था। कालका भेद तो ऋजुसूत्रनयमे आया, तो इसके आगे जो भेद चल सकेंगे वे शब्दकी दृष्टिसे चल सकेंगे, कालकी दृष्टिसे नही। क्योकि ऋजुसूत्रनयने स्वय ही एक समयकी पर्यायको ग्रहण किया। अर्थात् शब्दनयको और इसके आगे कहे जाने वाले समभिरूढनय और एवभूतनयको शब्दनय मे ही गर्भित किया है।

समभिरूढनयका वर्णन—अब छठवाँ है समभिरूढनय। शब्दनयने एक शब्दसे अर्थका ग्रहण किया था, अब उसमे और भी भेद करना है तो कैसे भेद होगा ? वह भेद होगा कि एक शब्दके अनेक अर्थ हुए और उनमेसे जो रूढ अर्थ हुआ उसीको उस शब्दसे ग्रहण करना समभिरूढनय है। वहाँ जितने भी शब्द बोले जाते हैं उन शब्दोके अर्थ अनेक होते ही है। जैसे घट बोला—तो घटका शब्दार्थ यह है--जो घडा जाय सो घट। तो क्या घडा ही घडा जाता है ? अनेक चीजें घडी जाती हैं। गहने भी घडे जाते है और भी मसालेके खिलौने वगैरह घडे जाते हैं, लेकिन घडा शब्दका अर्थ मिट्टीके घड़ेमे रूढ हो गया। तो प्राय सभी

शब्द अनेक अर्थके बोधक होते है लेकिन उन अर्थोंमे से किसी रूढ अर्थको ही ग्रहण करे उसे कहते है समभिरूढनय। समका अर्थ है भली प्रकार, अभिका अर्थ है सर्व ओरसे और रूढ का अर्थ है प्रसिद्ध होना। तो जो अर्थ प्रसिद्ध हो उस प्रसिद्ध अर्थमे ही शब्दको लगाये तो समभिरूढनय होता है। जैसे गौ शब्दके अनेक अर्थ हैं—गाय पशु, किरण, पृथ्वी आदिक, लेकिन रूढ अर्थ है गाय पशुका। तो गाय पशुका ही ज्ञान होगा गौ शब्द कहकर तो यह समभिरूढनयका विषय हुआ।

एवंभूतनयका वर्णन—अंतिम नय है एवंभूतनय। यह समभिरूढनयसे भी अधिक सूक्ष्म विषय वाला है। समभिरूढनयने यह किया था कि एक शब्दके अनेक अर्थ है, उनमेसे बाकी अर्थको छोडकर जो एक प्रसिद्ध अर्थ है उस ही अर्थमे उस शब्दको लगाया था, अब उसके भी और अंश करते है तो एवभूतनयसे करेंगे। समभिरूढनयसे जान तो गए थे उस शब्दके द्वारा प्रसिद्ध अर्थ और बाकी अर्थोको छोड दिया, लेकिन अब एवभूतनय उस शब्दसे उस रूढ अर्थको भी तब कहेगा जब शब्दसे जो काम बताया गया है उस कामको कर रहा हुआ अर्थ हो। जैसे गो का अर्थ है जाने वाला तो अब जा रही हुई गायमे उस समय एवं-भूतनयसे गो प्रयुक्त हो सकता है, अन्य क्रिया करती हुई गायमे नही। अथवा जैसे पुजारी कहा तो जिस समय वह मंदिरमे हो, पूजा करनेमे हो उसी समय पुजारी कहा जाय तो वह एवभूतनयका विषय है। अन्य कार्य करते हुए अगर उसे पुजारी कह दें तो वह एवभूतनय का विषय नही रहा। अब यहाँ यह बात परखिये—पूर्व पूर्व नयसे उत्तर नय सूक्ष्म विषय वाले होते जाते हैं। पर्यायार्थिकनय ऋजुसूत्रनयने एक वर्तमान पर्यायको ग्रहण किया, फिर शब्दनयने शब्दभेदसे उसमे भेद डाला, फिर समभिरूढनयने उसमे भेद डाला, उस भेदक शब्दके अनेक अर्थोमे से एक अर्थको ग्रहण कराया और एवंभूतनयने उस क्रिया करते हुएकी हालतमे ही उस शब्दका, उस अर्थका ज्ञान कराया।

नयोंके सम्बन्धमें स्फुट प्रकाश—यहा सैद्धान्तिक दृष्टिसे ७ भेद कहे गए हैं—इनमे ३ तो द्रव्यार्थिकनय है और ४ पर्यायार्थिकनय है। इनकी छटनी इस तरह भी की जा सकती है कि इन ७ नयोमे एक तो ज्ञाननय है, क्योकि वहां केवल संकल्प और ज्ञान तक ही सकेत है। सकल्पमे आया, ज्ञानमे आया, उस बातको कहा, क्योकि वहा सत् और असत्का भेद अथवा समन्वय किया गया ना। अब संग्रहनय, व्यवहारनय और ऋजुसूत्रनय इन तीन नयोका केवल अर्थकी मुख्यतासे वर्णन किया। सग्रह और व्यवहारने द्रव्यको विषय किया, वह भी अर्थ है और ऋजुसूत्रनयने पर्यायको ग्रहण किया, वह भी अर्थ है। अब शेष बचे तीन नयोने शब्दकी मुख्यतासे वर्णन किया। अत यह शब्दनय कहलाता है। जिस आशयमे शब्दकी मुख्यतासे ग्रहण हो उसे शब्दनय कहते है। यह शब्दनय एक सामान्य शब्द है।

७ नयोमे जो शब्दनय कहा गया है उसका ग्रहण न करना, यह शब्दनय एक अलग चीज है। शब्दनयमें तीन नय गर्भित होते है—शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय। इस प्रकार ज्ञान, अर्थ और शब्दकी दृष्टिसे ७ नयोके तीन भेद हैं। इसे पहिले बताया था कि बुद्धि शब्दार्थ पद्धतिसे नयके तीन प्रकार हैं। उसका इस कथनमे समन्वय है। वह यद्यपि एक सामान्यतया बताया था, इन ७ नयोमे घटित करके न था और यह ७ नयोमे घटित करते हुए हो रहा है। पर होता ही है ऐसी विधिसे ज्ञानके जिस ज्ञानमे शब्दकी भी योजना होती है, ज्ञान तो हो ही रहा है। पदार्थकी बात कही ही जाती है, तो यो तीन प्रकारके नय हुए—ज्ञाननय, शब्दनय और अर्थनय। नय शब्दका अर्थ यह है कि जो ले जाये उसे नय कहते है। किसी ज्ञानकी ओर ले जाये उसे नय कहते हैं। तो ले जाने वाली बात कोई एक ढगसे होती है। किसी स्थानसे उठाकर किसी स्थानपर ले जाया गया तो वह एकदेश ज्ञान है। यद्यपि नयोमे यह बात पायी ही जाती है कि प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमे से ही एक अशको ग्रहण करे उसे ही नय कहते है। लेकिन इसने साक्षात् एकदेश ही तो ग्रहण किया और एकदेश ग्रहण करनेकी बात ले जानेमे प्रयुक्त होती है। इसलिए नय शब्दमे जो अर्थ भरा है कि जो ले जावे उस अर्थकी दृष्टिसे भी नय शब्दका यह सब लक्षण किया जाना युक्त बैठता है।

अध्यात्मपद्धतिसे नयोंके वर्णनमें निश्चयनयके प्रसिद्ध प्रकार—अब अध्यात्मपद्धतिसे नयोका वर्णन करते हैं। नयके मूल भेद दो है—निश्चयनय और व्यवहारनय। निश्चयनय कहते है वस्तुके अभेद अथवा अन्तरङ्ग विषयकी मुख्यतासे अथवा एक वस्तुकी दृष्टिसे जो अभिप्राय बनता है उसका नाम निश्चयनय है। निश्चयनयका मतलब समझना चाहिए अभेदकी ओर दृष्टिमे होना। और व्यवहारनयका मतलब है भेदकी ओर दृष्टिका होना। इस जीवने अब तक भेद भेदकी दृष्टि तो की और वह भी भेदकी दृष्टि है ऐसा समझकर नही, किन्तु यही सब कुछ है, इतना ही है, पूरा है आदिक मिथ्या धारणा की। इसने अभेद का अब तक कोई भाव ही नही बनाया। मैं अपने आपमे अभेदसे कैसा हू इस ओर इसकी दृष्टि भी नही गयी। निश्चयनयका जब विशेषरूपसे वर्णन होगा तब अभेद दृष्टिकी बात ग्रहण कर जाय, इसमे भी अभेद बताया गया है। निश्चयनय भी यद्यपि अनेक प्रकारोमे कहा जायगा। मगर उसमे जो भेद अश है उसे छोडना और अभेदकी ओर जो ढलाव है उसे ग्रहण करना। निश्चयनयके मुख्यतया ३ भेद है—परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय। निश्चयनयकी पद्धति यह है कि एक वस्तुका एक ही बातमे वर्णन होना यह निश्चयनयकी पद्धति है। तो जब कभी हम आत्माको रागी निरखते हैं अथवा आत्मा रागी है, राग परिणति है आदिक जब हम निरखते है तो वह अशुद्ध निश्चयनय है।

क्योकि अशुद्धको देखा अतएव अशुद्ध है। और एकको ही देखा अत निश्चय है। यदि इसही रागको हम इस विधिसे जाने कि कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर आत्मामे यह राग हुआ है तो यह व्यवहारनयमे तकिये अथवा कर्मोदयसे यह राग हुआ है व्यवहारनय हो गया। जहा दो वस्तुओंका जिक्र आया, दो पर दृष्टि जाय, वहाँ व्यवहारनय होता है। एक को ही देखकर अशुद्ध देखे इसही का नाम है अशुद्ध निश्चयनय। एकको ही देखे, किन्तु शुद्ध दशामे देखे तो उसका नाम है शुद्ध निश्चयनय। जैसे भगवान केवली अरहंत सिद्ध वीतराग प्रभु केवलज्ञानी हैं, वे अपने ही स्वभावकी परिणतिसे केवली हुए है। यह है शुद्ध निश्चय-नय। इसी बातको यदि इस तरह कहा जाय कि केवल ज्ञानावरणका क्षय होने से प्रभुके केवलज्ञान हुआ है तो यह व्यवहारनय बन गया, क्योकि यहा दो की दृष्टि की गई, दो का जिक्र हुआ। तो शुद्ध निश्चयनयमे देखना शुद्ध दशासे, लेकिन एक को ही देखना, एकसे ही देखना, वह होता है शुद्ध निश्चयनय। परमशुद्ध निश्चयनय है एकको ही देखना, यह तो निश्चयकी बात है, किन्तु परम देखना, जो शाश्वत तत्त्व है, सहज सिद्ध है उस तत्त्वको ही देखना, क्योकि परम चीज वही है। सर्वोत्कृष्ट तत्त्व, जिसको कि दृष्टिमे लेनेसे हमारा भला हो जायगा वह तत्त्व है, यही शाश्वत सहज सिद्ध स्वत शुद्ध ज्ञायक स्वरूप। तो इस गुणपर्यायके भेदसे रहित केवल अनादि अनन्त स्वभावको ही देखना यह है परम शुद्ध निश्चयनय। अब ऐसा कुछ थोडा जब कभी देखेंगे तो इसका प्रभाव तुरन्त विदित होगा कि यह परमशुद्ध निश्चयनयका दर्शन कितने विकल्पोसे हटाकर कितने अनर्थसे दूर करके आत्मा को आनन्दमे स्थापित करता है। तो निश्चयनयके इस प्रकारके तीन भेद हमारे बहुत बहुत काममे आयेंगे।

गल्पवाद छोड़कर नयवादके परिज्ञानके लिये अनुरोध---लोग तो कुछ धर्मकी धुनमे जब आते है तो जब चाहे यह पूछने लगते है कि भाई सोनगढका सिद्धान्त क्या है? पंडितो का सिद्धान्त क्या है? आपकी उसमें धारणा क्या है? फलाने स्वामी कैसे है? फलानेका अध्यात्मसिद्धान्त कैसा है? उनकी यह पूछताछ केवल इतना जाननेके लिए है कि इसमे किसकी जीत है और किसकी हार है? इससे आगे मतलब नही है, क्योकि इसके आगे यदि कुछ हितकी दृष्टिका भाव हो तो नयके स्वरूप जाननेमे उन्हे रुचि रखनी चाहिए। यह विषय कठिन है, यह तो दूसरोंके लिए है, इसकी धारणा करके इस विषयसे तो दूर रहना चाहते, कुछ भी अपने आपमे पौरुष नही जगाना चाहते। कुछ अपना ज्ञान बढ़े, कुछ भीतरमे ज्ञान के लिए श्रम भी बढे, इससे तो दूर रहते है, इसकी ओरसे सुकुमाल बनते है और बाहरी बातोमे, बडी बडी समस्यायें सुलझानेमे और अन्य व्यावहारिक कार्योमे वे बडे शूर बनते है, फिर पूछते कि अमुकका सिद्धान्त क्या है, अमुक कैसे है? यह पूछना अनर्थ है और यदि

कोई इसके उत्तरमे पडता है तो वह भी अनर्थ है। जो मार्ग है, जो तत्त्व है, जो स्वरूप है उसकी ओर लगना चाहिए ना, उसकी ओर लगकर स्वय यह निर्णय करें कि वस्तुका स्वरूप क्या है ? तो यह नयोका जो प्रकरण चल रहा है यह बहुत उपकारी प्रकरण है। इसकी समझ बन जानेपर जीवनभर कृतार्थ हो जायगा। वह तत्त्व नजर आयगा जिस तत्त्व के आये बिना तीन लोकका वैभव पाना भी बेकार है। बतलाओ वैभवकी प्राप्तिसे इस जीव को मिलना क्या है ? केवल विकल्प बनाता है, विकल्पोमे मौज मानता है और अपनेको बहुत बडा मानकर ऐंठमे बना रहता है। तो बाहरी वैभव मिला तो क्या मिला ? बल्कि वैभव तो तृष्णा तथा क्रोधादिकके बढ जानेमे कारण होनेसे अनर्थरूप ही है। लेकिन उन वैभवोसे तो प्रीति नही है। तो ऐसी दृष्टि वाले जन अपना हित क्या कर सकेंगे ? ऐसे श्रेष्ठ नररत्नको पाकर दो बातोकी प्रधानता होनी चाहिए। एक तो वैभवमे तृष्णा न हो और दूसरे ज्ञानसम्पादनमे रुचि जगे। कोई कहे कि बस महाराज, इन दो बातोकी हमे छुट्टी दे दो, बाकी और धर्मके लिए बताओ हम क्या करे ? तो भाई यदि ये दो कार्य नही कर सकते तो फिर मनमे जो आये सो करो। वे सब बाते तो केवल दिल बहलाने मात्रके लिए है। ज्ञान और वैराग्य ये दो ही आत्माकी उन्नतिके कारण हैं। जरा नयोके प्रकरणमे जिनकी रुचि हो वे सुने और जानें कि ओह ! आचार्य सतोका हम लोगोपर कितना बडा उपकार है, जिसका ऋण चुकानेका हम आपके पास कोई साधन ही नही है। ऐसा प्रकाश दिया, ऐसा मार्ग दिया कि जिस मार्गसे चलकर हम सदाके लिए ससारसकटोसे मुक्त हो जायेंगे। यहाँ निश्चयनयके वर्णनमे तीन प्रकारके नय बताये जा रहे हैं—परमशुद्ध निश्चय-नय, शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय।

अब निश्चयनयको दो प्रकारोमे निरखिये—द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय पर्यायार्थिक-हेतुक निश्चयनय। जो निश्चयनय द्रव्यार्थिकके विषयकी ओर ले जा रहा, पर पद्धति है निश्चयनयकी वह है द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय। एक वस्तुको देखना यह है निश्चयनयकी पद्धति। दूसरा है पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय। पद्धति तो निश्चयनयकी है, मगर पर्यायके विषयको देख रहा है। मूल बात इसमे भी यही दो आयी—जो एकको ही देखे सो तो निश्चय-नय है और जो दो को देखे, एकका दूसरेपर प्रभाव है, निमित्त है, सम्बध है इस तरहसे जो द्वैतकी बात करे सो वह है व्यवहारनय। यह निश्चयनय कितना उपयोगी है, इसकी उपयो-गिताका थोडा परिचय पाया कुछ अन्य दार्शनिकोने तो वे इस निश्चयनयके भी इतने एक हठी बन गए कि वहाँ अद्वैतवाद उत्पन्न हो गया और यहाँ तक निर्णय कर लिया कि बस तत्त्व यही है और अपरिणामी है। जिसमे रच भी परिणमन न हो ऐसा यह अद्वैत तत्त्व है। तो यहाँ यह जानना चाहिए कि वस्तुका जो स्वरूप है वह न केवल निश्चयनयका विषयभूत है,

न केवल व्यवहारनयका विषयभूत है, किन्तु सापेक्ष दोनो नयोका विषयभूत है, और परमार्थत अवक्तव्य है, दोनो नयोसे परे है ।

ॐ शब्दके आकारमें नयवादकी प्रथम उपयोगिताका परिज्ञान—संतजन ॐ शब्द लिखते हैं, ॐ का ध्यान करते हैं ना, तो इस ॐ शब्दका आकार यो है—पहिले ३ का अंक बना और ३ के केन्द्रसे एक डडा निकला, फिर उस डडेके ऊपर एक बिन्दु रखा, उसके ऊपर अर्द्धचन्द्र बनाया, उसके भीतर शून्य रखा, इस तरह ॐ को बनाते है । तो इस ॐ के आकार मे भी यह बात विदित होती है कि ३ का अंक बताता है व्यवहारनयको । ३ मायने बहुत । जिसमे बहुत मोड हो वह तो है व्यवहारनयकी बात, और यह डडाके बादका शून्य बताता है निश्चयनय । जैसे निश्चयमे आदि, मध्य, अन्त नही है, केवल एक अखण्ड दृष्टिमे है, इसी प्रकार शून्यमे भी आदि, मध्य, अन्त नही होता है, एक सम होता है, यो निश्चय व्यवहार ये दोनो ही अलग-अलग हो गए । डडाको जोडा तो वह है प्रमाणकी चीज । अर्थात् निश्चयनय अलग पडा रहे तो वह भी एकान्त, व्यवहारनय अलग पडा रहे वह भी एकान्त, किन्तु इन दोनोको प्रमाणसे जोडा जाय तो निश्चयनयकी भी उपयोगिता है और व्यवहारनयकी भी उपयोगिता है । यह नीचेका आकार बताता है परिज्ञानका उपाय । प्रमाण, निश्चयनय, व्यवहारनय इनसे वस्तुके स्वरूपका परिचय होता है । अब आत्मतत्त्व, अनात्मत्तत्व सबका इन नयोसे निर्णय करनेके बाद निर्णय कर चुकने वाले ज्ञानी पुरुष आगेके लिए जिज्ञासु बनते है । जान गए । जितना जो कुछ जाना गया और जितना श्रम करके जानते है उतना जानने मे भी सतुष्ट नही होता । जानकर फिर आगे जाननेकी इच्छा करते है । ऐसा कौनसा जानना है जिस जाननेमे सन्तोष पडा हुआ है ? फिर उससे आगे जाननेकी इच्छा न हो । ऐसा जानना केवल दो प्रकारमे समझाया जा सकता है । एक तो है स्वानुभव, दूसरा है केवलज्ञान । ये दो जाननेके साधन ऐसे हैं कि जिस जाननमे इतना सतोष है कि एक भी आकुलता नही रहती और अन्य जिज्ञासा भी नही होती । केवलज्ञान परिपूर्ण ज्ञान है इस कारण उसमे आकुलता नही, न आगे जाननेकी इच्छा है । स्वानुभव ही एक निर्विकल्प ज्ञान है और एक आनन्दका अनुभव कराता हुआ ज्ञान है । वहाँ भी आकुलता नही और उससे आगे जाननेकी भी वहाँ जिज्ञासा नही होती है । जब व्यवहारनय, निश्चयनय और प्रमाणसे वस्तुस्वरूपको जान लिया तो अब यह ज्ञानी जीव ऐसे ज्ञानमे जानना चाहता है जहाँ कि इसे सतोष मिले और वहाँसे बढने घटनेका विकल्प न हो । ऐसा ज्ञान अभी तो मिला नही । वह ज्ञान है केवलज्ञान । लेकिन स्वानुभव ही तो अभी हो सकता है तो यह जीव स्वानुभवके कालमे पहुचता है । जिसमे एक अर्द्धचन्द्रकी कला दिखाई गई है वह स्वानुभव कलाका प्रतीक है । यह कला नीचे लिखे गए ॐ को छू नही रही । तब यह स्वानुभव की कला व्यवहार, निश्चय और प्रमाणके विकल्पसे परे है । उस स्वानुभवकी

कलामे यह ज्ञानी जीव पहुंचा। वहाँ पहुचकर क्या अनुभव हुआ और उस स्वानुभवका क्या फल मिला ? यह बात बताता है वह शून्य। जहाँ शून्य है, विधिमे क्या है, वह तो अनुभवमे है, पर है कैसा वह ? जहाँ रागादिक विकार नही, कोई कर्म, शरीर आदिक पर-पदार्थका सयोग नही, केवल एक अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्यस्वभावका प्रकाश है और ऐसा स्वानुभव यही है उस निर्विकार शुद्ध सिद्धपदकी प्राप्तिका उपाय। तो इस ॐ शब्दसे भी हमे मार्ग दृष्टगत होता है। ॐ शब्दका प्राय सभी दार्शनिकोने बहुत महत्त्व माना है। ॐ का शाब्दिक अर्थ ॐ का ध्यान भी करना है। जब ॐ कोई कहे तो उसपर ॐ शब्द रखकर दृष्टि लगाना है। ॐ शब्दको यदि एक मोटी और हल्की ध्वनिमे बोला जाय तो उससे शरीर मे रोमाच होता है, बाह्य विकल्प भी दूर होते हैं। ॐ शब्दकी बडी महिमा बतायी गई है। ॐ शब्दमे सभीने अपने इष्ट तत्त्वका समावेश किया है। ऐसे अब ॐ शब्दसे भी हमे यह मार्ग विदित होता है। तो पहिले नयोका स्वरूप परखे, प्रमाणसे पूर्णतया निर्णय करें, इसके बाद प्रमाण और नयके विकल्पोसे परे होकर स्वानुभवमे आयें और उस स्वानुभवके बलसे अनुभव करें शरीररहित, विकाररहित, कषायरहित एक शुद्ध चैतन्यस्वभावका। यही उपाय है उस शुद्ध चैतन्यकी प्राप्तिका।

परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय—यहाँ निश्चयनयके भेदोमे द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयकी बात चल रही है। प्रथम इसके १० भेदोमे बताया गया है परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय। इसका अर्थ है कि वस्तुका जो परमभाव है पारिणामिक सहज स्वभाव है, जो वस्तुमे अनादिसे अनन्त काल तक एक समान स्वरूप रहता है ऐसे शुद्ध निज सत्त्वको ग्रहण करने वाले नयको परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जैसा कहा कि आत्मा चैतन्यभावी है। चैतन्य ही है स्वभाव सर्वस्व जिसका, ऐसा है यह आत्मा। आत्माको एक चैतन्यस्वभावमात्र निरखनेमे आत्माका परमभाव ग्रहणमे आया। अपने अपने बारेमे लोग अपना सत्त्व निर्णय किए हुए ही हैं। मैं फलानेचद हू, फलाने लाल हू, मोटा हूँ, दुर्बल हू, सबल हू, निर्बल हू, धनिक हू, निर्धन हू, पडित हूँ, मूर्ख हू, इतने परिवार वाला हू ऐसी इज्जत वाला हू आदिक। पर सभीका यह एक कूडे कचड़ेका जैसा अनुभव है, ये कोई सारभूत बातें नही हैं। लोग व्यर्थ ही अपनेको बडा समझकर अहकारमे बने रहते हैं, मगर यह तो सब ससारमे भ्रमण करते रहनेकी ही निशानी है। इस जीवने अपने आपके चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव नही किया। अनुभवकी बात तो जाने दो, इसकी चर्चा करने तककी भी रुचि नही की। होनी चाहिए ऐसी बात कि जो बडी दिलचस्प हो, सभी लोग समझ जायें। बहुतसे लोग तो समझ जायें, पर खुदकी समझसे क्या मतलब ? बहुतसे लोग समझ गए, जान गए, बहुतोने कह दिया बहुत अच्छा। बस उससे ही निर्णय किया कि हाँ व्याख्यान तो यह ठीक है, पर अपने आपके बारेमे कुछ भी निर्णय नही किया जा सका कि मेरा हित

किसमे है, मैंने क्या ग्रहण किया, मुझे क्या मिला ? जो मिला सो मिला ही। लेकिन कभी इस बातकी प्राप्तिकी ओर दृष्टि भी नही की कि मुझे ऐसी चीज मिले जो कभी मेरेसे अलग न हो। वह परमतत्त्व है अपना ही शुद्ध चैतन्यस्वभाव। उसकी प्राप्तिके लिए यदि तन, मन, धन, वचन सर्वस्व भी न्यौछावर करना पडे तब भी समझो कि मेरा गया कुछ नही है, मैंने पाया ही सब कुछ है। वह तो एक ऐसी चीज प्राप्त कर ली कि जिस चीजकी कोई उपमा ही नही दी जा सकती। लेकिन खेद है कि उस चैतन्यस्वभावकी प्राप्तिके लिए किसीको कुछ जिज्ञासा तक भी नही है। तो यह है परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय। निश्चयनयके इन भेदो मे सर्वप्रथम यह भेद रखा गया है।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय––दूसरा द्रव्यार्थिकनय निश्चयनय है भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिकनय। जिस ज्ञानमे भेदकल्पना नही होती है और अभेद वस्तुके ग्रहण करनेकी बात आती है ऐसे आश्रयको भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते है। जैसे द्रव्य अपने गुणपर्यायोसे अभिन्न है। देख लो मैं क्या हू, इसका सही निर्णय इस नयसे हो रहा है। मैं अपने गुणपर्यायोसे अभिन्न हू। जो मुझमे शक्ति है वह कभी मुझसे अलग नही होती। उस शक्तिसे, उस गुणसे मैं अभिन्न हूँ, और जो मेरी परिणति है, परिणमन है, जो कुछ भी मेरा बर्तन हो रहा है उससे भी मैं अभिन्न हू। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ मैं नही हू। मै अपने गुणपर्यायोसे अभिन्न हू। यदि यह निर्णय हो जाय तो इस जीवकी बहुतसी आकुलताएँ दूर हो जाये, घर वैभवसे मै अभिन्न नही, इनसे तो मै अत्यन्त निराला हू। धन वैभवसे भी मैं अभिन्न नही, इन सबसे मैं अत्यन्त निराला हू। मैं तो अपने ही गुणपर्यायोसे अभिन्न हू। इस मैकी परखमे यह जीव भिन्न पदार्थोंकी ममता से दूर होता है और अपने आपमे शाश्वत रहने वाला जो परमभाव है उसका ग्रहण करने मे उद्यमी हो जाता है। यो शुद्ध द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयके भेदोमे इन भेदोका वर्णन किया।

स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय––द्रव्यार्थिक हेतुक निश्चयनयके भेदो मे तीसरा भेद कहा गया है स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। जो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मुख्यतासे वस्तुधर्मको ग्रहण करे ऐसे नयका नाम है स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। देखिये–प्रयोगमे बहुतसे लोग कहा ही करते है कि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, कालकी अपेक्षासे है, पर यह किस जातिका आशय है इसका पता बहुत कम है। यह कहलाता है स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। इसने अपने ही स्वरूपसे अस्तित्व बताया और अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिकको ग्रहण करा कर बताया है, इस कारण यह निश्चयनय है और द्रव्यार्थिकनय है।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय—अब चौथा नय है परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। परवस्तुके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे जो वस्तु धर्मको ग्रहण करे उस नयको परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय कहते है। जैसे प्राय लोग कहते ही है नयोके जानकार कि वस्तु अपने स्वरूप चतुष्टयसे है और पररूप चतुष्टयसे नही है। जैसे बैंच अपने स्वरूपसे है, चटाईके स्वरूपसे नही है। यदि बैंच चटाईके स्वरूपसे हो जाय तो यह बैंच ही न रही। और बैंच अपने स्वरूपसे न रहे तो कुछ रहा ही नही। तो इस वस्तुमे यह स्वभाव है कि वह अपने आपसे सहित है, परसे सहित नही है। तो परपदार्थकी अपेक्षासे वस्तु सद्भूत नही है यह कौनसा नय है ? उस नयकी वात यहाँ कह रहे है। बैंचमे चटाई वगैरह परपदार्थोका अस्तित्व नही है तो यहा कोई एक शका कर सकता है कि यह तो पराश्रित कथन है, याने पररूपका नास्तित्व तो परमे है, उस बैन्चमे कैसे कह दिया ? तो बात ऐसी नही है, उन परपदार्थोके द्रव्य, क्षेत्र काल, भावका नास्तित्व उनमे नही है, किन्तु इस बैन्चमे है। इस बैन्चमे अन्य पदार्थोका नास्तित्व है तो इस नास्तित्वका आधारभूत पदार्थ बैंच कहलाया। जैसे बैंचमे अपने स्वरूपका अस्तित्वरूप धर्म है ऐसे ही इनमे परपदार्थोका नास्तित्वरूप धर्म है। तो परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे वस्तुमे धर्मका ग्रहण कराये ऐसे नयका नाम है परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। सप्तभङ्गीके भङ्गोका प्रारम्भ यहीसे होता है। जैसे कोई धर्म बताये तो वह अपने स्वरूपसे है, पररूपसे नही है। मूल बात यहाँसे चलती है फिर इसके पश्चात् क्रमसे अगर देखा जाय तो दो बातें है—अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नही। इन दो बातोसे एक साथ जाना जाय तो अवक्तव्य है। अव यो ४ भङ्ग हो गए। इन चार भङ्गोमे पहिला दूसरा और चौथा यह तो एकाकी स्वरूप भङ्ग है। किसी का किसीसे मिलाव नही है, पर तीसरा भङ्ग स्याद अस्ति नास्ति यह मिलाजुला है, अब मिले-जुले भङ्गमे जो अश मिला है वह दुबारा न मिलाया जायगा। कोई कहे कि ५ वाँ भङ्ग ऐसा भी बना लो कि स्याद अस्ति स्याद अस्ति नास्ति, क्योकि अस्तिपना एक बार मिल गया तो दुबारा न मिलाया जायगा। ५ वाँ भङ्ग बनेगा स्याद अस्ति अवक्तव्य। इसमे कोई पुनरुक्त नही हुआ। छठवाँ भङ्ग बन गया स्यादनास्ति अवक्तव्य और ७ वाँ भङ्ग बन गया स्याद-अस्तिनास्ति अवक्तव्य। तो इन ७ भगोमे जो पहिले दो भग कहे है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे परखा गया। दूसरे भगकी बात परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे परखा गया।

अन्वयद्रव्यार्थिक नय—अब इस निश्चयनके १० भेदोमे से ५ वाँ भेद कहते हैं। इसका नाम है अन्वयद्रव्यार्थिकनय। गुण और पर्यायोमे अन्वयरूपसे रहने वाले याने एक धारामे तन्मयतासे रहने वाले, द्रव्यके ग्रहण करने वाले नयको अन्वयद्रव्यार्थिकनय कहते हैं। इसका भी लोग प्रयोग बहुत करते हैं। जैसे कहते है कि द्रव्य, गुण, पर्याय स्वभाव

वाले है। कह तो दिया और समझाते है कि गुण और पर्यायका स्वभाव प्रत्येक द्रव्यमे है। कोई पदार्थ है तो उसकी कोई न कोई परिणति भी अवश्य है और परिणति है तो उस परिणमनकी शक्ति भी उसमे अवश्य है। अब इन दो बातोमे से किसको मना करोगे ? क्या यह मना किया जा सकता कि पदार्थका कोई परिणमन नही होता अथवा क्या यह मना किया जा सकता कि पदार्थमे परिणमन की शक्ति नही है। कुछ भी मना नही किया जा सकता। तब यह कहना ही होगा कि पदार्थ गुणपर्याय स्वभाव वाला है। कह दिया पर इस आशयका नाम क्या है ? उसका यहा वर्णन किया जा रहा है कि इस प्रकारके गुण-पर्यायोमे अन्वय रूपसे रहने वाले द्रव्यकी ओर जो ले जाय ऐसी दृष्टिका नाम है अन्वय-द्रव्यार्थिकनय।

उत्पादव्ययध्रौव्यताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय--अब द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयमे छठे नयकी बात कह रहे है, इसका नाम है द्रव्यादि व्ययध्रौव्यसत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनय। इस आशयमे क्या ग्रहण किया गया ? केवल सत्ताकी दृष्टिसे वस्तुका अर्थ धर्म ग्रहण किया गया। याने उत्पाद और व्ययकी दृष्टि गौण करके केवल सत्त्वको ही निरखना। देखिये—पदार्थमे उत्पादव्ययध्रौव्य तीनो अश हैं। पदार्थ प्रतिसमय उत्पन्न होता रहता है अर्थात् अपनी नवीन अवस्था बनाता है और पुरानी अवस्थाको विलीन करता है, फिर भी वह ध्रुव रहता ही है। तो यह सत्त्वका स्वभाव है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना सत्ताका स्वरूप नही बनता। कोई सत्त्व तो माने और उस पदार्थका उत्पाद व्यय न माने तो सत् तो नही ठहर सकता। कोई उत्पाद व्यय तो माने पर ध्रौव्य न माने तो भी सत्त्व न रहेगा। देखनेमे स्पष्ट आ रहा है कि जो भी पदार्थ है उसका स्वरूप हर समय रहता है। हाँ उसकी पर्याय बदलती रहती है। देखिये—ये बाते जैनशासनमे बडी मुख्यतासे और प्राथमिकतासे कही गई है। भगवानकी दिव्यध्वनिमे प्रथम वर्णन इस उत्पादव्ययध्रौव्यसे होता है। ऐसा कुछ शास्त्रकारोका अभिप्राय है। और उस दिव्यध्वनिमे अथवा जो अङ्गपूर्व की रचना होती है उसमे जगह जगह अनेक स्थलोपर उत्पादव्ययध्रौव्यका पुट दिया गया है। समयसारमे जहाँ कुन्दकुन्दस्वामीने शुरूमे यह कहा कि अपने वैभवके द्वारा मैं आत्मतत्त्वको दिखाऊँगा। परन्तु यदि दिखा सकूँ तो मान लेना और न दिखा सकूँ तो छल ग्रहण न करना। इस गाथाकी व्याख्यामे श्री अमृतचन्द्र सूरिने जब श्री कुन्दकुन्दस्वामीके वैभवका वर्णन किया तो सबसे पहिले यह बताया कि स्यात् पद करके चिन्ह जिन आगमका, सकल आगमका उनका बडा अभ्यास है। इस पदमे उन्होने दर्शाया है कि यदि स्यात्पदकी मुद्रा लगी है तब तो वह कथन प्रमाणभूत है और यदि स्यात्पदकी मुद्रा नही लगी है तो वह प्रमाणभूत नही है। जैसे कुछ व्यापारी लोग अपना ट्रेडमार्क रखते हैं। वे ग्राहकोसे बता देते है कि देखो—

जिस चीज पर हमारी यह मुद्रा लगी हो वह चीज तो असली है और जिसपर यह मुद्रा न लगी हो उस चीजकी हम गारन्टी नही ले सकते। इसी प्रकार समस्त कथनोमे स्यात्‌की मुद्रा लगी हो तो वह कथन प्रमाणभूत है। तो पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यमय है, लेकिन नयोका काम यह है कि किसी समय, किसी धर्मका प्रधानतासे निहारना। नयोमे हठ नही होती। यद्यपि एक धर्मको नय बताता है फिर भी हठ नही है। अगर बतावे तो वह नय नही वह कुनय है। जैन धर्मकी पद्धतिका एक मार्मिक वर्णन नयोसे चलता है। और इन नयोके परिज्ञानमे हम यदि थोडा भी उपयोग लगायें तो हम सब समझ सकते हैं। बोलते तो रहते है बहुत कि द्रव्य नित्य है। यह एक द्रव्यार्थिकनयका प्रयोग है। जीव नित्य है, सदा रहने वाला है। पदार्थ अविनाशी है, नित्य है, किन्तु यहाँ यह पता नही होता सब लोगोको कि ये यहाँ किस नयसे बात कर रहे हैं ? जिस नयसे यह कहा जाता है कि द्रव्य नित्य है उस नयका नाम है—उत्पादव्ययध्रौव्य सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय याने द्रव्यमे शुद्धताको ग्रहण किया है और ऐसी शुद्धताको ग्रहण किया कि यद्यपि द्रव्यमे उत्पाद व्यय प्रति समय चलता है, किन्तु वह है विनाशीक धर्म, वह है परिवर्तनीय। तो उनको गौण करके केवल शुद्ध सत्ताको यहाँ ग्रहण किया है। परिवर्तन होता रहता है इससे यह अर्थ न लेना कि उत्पाद व्यय भी कभी मिट जायगा। उत्पाद और व्यय सामान्य तो पदार्थमे निरन्तर रहते हैं किन्तु उसको गौण करके शुद्ध सत्त्वको दृष्टिमे लेकर जो वर्णन किया गया वह है इस नयका विषय।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक नय—अब द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनयका ७ वा भेद बतलाते हैं। इसका नाम है—कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय। इस नयका भी प्रयोग हम बहुत बार करते है। पर यह जाने बिना कि यह किस नयका प्रयोग है, किसी प्रकारके मर्मको और उसके वास्तविक लाभको नही उठा पाते। यहाँ कर्मोपाधिकी अपेक्षा न रखकर अशुद्ध द्रव्यको देखनेकी बात कही गई है। देखिये—जब कर्म उपाधिकी अपेक्षा न रखे और उस समय जो कुछ कहा गया वह शुद्ध ही होना चाहिए। लेकिन यहाँ शुद्ध अशुद्ध से मतलब परिणतियोसे नही है किन्तु उस परिणतिमे रहने वाले द्रव्यको दृष्टिमे रखकर जिसे कहते हैं ससारी जीव सिद्ध समान शुद्ध आत्मा है। तो यहाँ कह रहे हैं ससारी जीव को, मगर ससार, ससारपर्याय, इसकी मुख्यता करके बात नही है। संसारी जीव ऐसा कहकर एक जीवद्रव्यको मुख्यतासे लिया और उसे कहते हैं कि यह सिद्ध समान शुद्ध आत्मा है। मैं वह हू जो हैं भगवान। यह किस नयका विषय है ? यह इसी नयका विषय है, मैं हू ससारी जीव। तो मैं अपने आपको यद्यपि ससारी पर्यायमे हू तो भी उस पर्यायरूप अपनेको न निरखकर एक जीवद्रव्यके नातेसे देख रहा हू। तब कह सकता हू ना कि मैं वह

हू जो है भगवान अथवा मम स्वरूप है सिद्ध समान। यह सब कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्ध-द्रव्यार्थिकनय है अथवा इसमे न अशुद्ध बोलो, न शुद्ध, कर्मोपाधि निरपेक्षद्रव्यार्थिकनय ही कह दीजिए। पर इतना कहनेसे सिद्धके जीवका भी उदाहरण लिया जा सकता है। पर लेना है यहाँ संसारी जीव को, अतएव यहाँ अशुद्ध शब्द बोला गया है। हम आप ऐसा ध्यान भी करते है, दूसरोको समझाते भी है कि देखो हम आप सब सिद्धके समान शुद्ध आत्मा है, पर ऐसा जिनको नयका पता हो कि किस नयमे यह बात कही जा रही है तो एक करेन्ट की तरह एकदम अबाधगतिसे हम अन्त प्रवेश कर जायेगे। यहाँ कर्मोकी उपाधि की अपेक्षा न रखकर अपनेको तक रहे है। जब उपाधिकी अपेक्षा न रखे तो तका क्या ? द्रव्य तका। उस दृष्टिसे यह वर्णन है कि संसारी जीव सिद्ध समान शुद्ध आत्मा है।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय—अब इस प्रकरणमे ८ वाँ भेद बतलाते है—कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय। इसका अर्थ है कि कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखकर अशुद्ध द्रव्य भी दिखता। कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय—देखिये–प्रत्येक नयोके जो कोई स्वाध्यायमे रुचि रखने वाले है, करते रहते है। जैसे कहा कि कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले क्रोधादिकभाव रूप आत्मा है। आत्माने जब क्रोध किया तो वह आत्मा उस समय क्रोध वाला तो है और वह क्रोध हुआ है कर्मोके उदयके निमित्तसे। इतनी दृष्टि रख करके जो यह कथन किया गया है उसमे भी बताया तो द्रव्यको है, बताया तो आत्माको है, प्रधानतासे कथन तो द्रव्यका किया गया है मगर कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखकर अशुद्ध द्रव्यका वर्णन किया है। देखिये निश्चयनयमे सामान्यतया द्रव्यकी ओर झुकाव है, प्रधानता उसकी है। कथनमे एक बात प्रधान होती है और एक गौण। जहाँ द्रव्यकी बात प्रधान होती है वह द्रव्यार्थिकनय है और जहा पर्यायकी बात प्रधान होती है वह पर्यायार्थिकनय है। जैन शासनमे स्याद्वादको सिद्ध करने पर इसका मर्म विदित होता है और कितनी दृष्टियाँ इसके सामने आ जाती है। देखो—मेढकके चोटी तो नही होती, लेकिन कोई यह कह बैठे कि मेढककी चोटी। तो यह बात असत् है, अभावरूप है, इसका अस्तित्व नही है। वह जबान पर उठ ही नही सकता। लो अब इस दृष्टिसे निर्णय करे कि मेढककी चोटी कैसे ? तो सुनो मेढककी चोटी बताये कैसे होती है ? कोई जीव पूर्वभवमे मेढक पर्यायमे था, तो मेढक पर्याय मे तो चोटी न थी, लेकिन वही मेढकका जीव मरकर मान लो कोई स्त्री हो गया वही जीव। तो स्त्रीके तो चोटी पायी जाती है। आशयकी बात है कि मेढक शब्द कहकर तो लिया उस भवमे रहने वाला जीव। और उस जीवको तो उस निगाहमे पकडे आया और यहाँ तक लम्बा पकडकर आया कि स्त्रीके भव तक भी मेढककी सुध रही। और वहा चोटी है, तो मेढककी चोटी कहा जा सकता है। दृष्टान्त दिया जाता है नास्तित्व बतानेमे, असत्

बतानेमे कि जैसे खरगोशके सीग कही होते तो नही। अगर खरगोशके सीग सर्वथा ही असत्‌रूपसे होवें तो मुखपर यह बात आ ही नही सकती थी। तो किस रूपसे यह बात बनी ? बात उस रूपसे बनी कि सीग तो होते ही है दुनिया मे। खरगोश भी होते हैं। अब जो सीग गाय, भैंस, आदिकके मस्तकमे तो सम्बधी रूपसे है, वही सीग खरगोशके मस्तकमे तो असम्बधी रूप है। तो स्याद्वादमे ऐसी सूक्ष्मतासे वर्णन चलता है कि जिससे पदके वाच्य का बहुत मर्मके साथ परिज्ञान होता है। यहाँ क्रोधादिक भावमय आत्माका उदाहरण लिया। क्रोध परप्रधान है किन्तु आत्मा परप्रधान है, इस कारण यह द्रव्यार्थिकनय है लेकिन कर्मोपाधिकी अपेक्षासे वर्णन है सो कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय--अब भेदकल्पनासापेक्ष द्रव्यार्थिकनयका स्वरूप कहते हैं भेदरूप कल्पना करके वस्तु धर्मके ग्रहण करने वाले नयको भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहते है। प्रयोग तो बहुत करते है धर्मचर्चा करने वाले, पर वह प्रयोग है नयकी अपेक्षासे। इसका भी परिज्ञान हो तो उस प्रयोगके प्रकाश, प्रयोगके प्रयोजन, प्रयोग के फल सबका कितना विशिष्ट ज्ञान मिलेगा और उससे अधिक लाभ है। कहा करते हैं कि आत्माके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक गुण हैं, बात ठीक भी है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्दगुण आत्माको छोडकर अन्यत्र नही होते। ये गुण आत्माके हैं, पर यहा यह निरखिये कि यह किस दृष्टिसे ज्ञान किया गया ? सर्वथा ऐसा ही तो नही कह सकते कि आत्माके ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक गुण हैं, क्योकि एक दृष्टि ऐसी है कि जो यह कहते हैं कि आत्माके ज्ञान, दर्शन आदिक गुण नही हैं। यह सब समझानेके लिए कहा जाता है। आत्मा तो स्वय जैसा है सो अपने स्वरूप रूप है। वह भी सत्य है, यह भी सत्य है, अर्थात् आत्माके ज्ञान, दर्शन, आदिक गुण है यह किस दृष्टिसे कथन है ? वह दृष्टि यही है कि भेदकी कल्पनाकी अपेक्षा रखकर द्रव्यादिक वर्णन हो वह है एक दृष्टि। देखिये--इसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा है तो क्या आत्माके ज्ञान दर्शन आदिक जो सहज गुण है वे अशुद्ध है ? अशुद्ध नही हैं, किन्तु आत्माके कह दिए गए। अभिन्न अखण्ड आत्मामे भेदकी बात कह देनेको भी अशुद्ध कहते हैं। इस शुद्ध अशुद्धका कहाँ किस प्रकरणमे क्या अर्थ है, ऐसा ज्ञान जिनको स्पष्ट नही है उनकी अध्यात्मवादमे गति नही हो सकती। शुद्धता, अशुद्धता इन शब्दोका ठीक पर्यायवाची शब्द है केवलपना, यही है पवित्रता। कही किसी चीजको लगाकर साफ कर देना, धो देना यह अर्थ पवित्रताका नही है, किन्तु उसमे कुछ न जोडना यह पवित्रता है। कुछ जोड देनेसे पवित्रता खतम हो जाती है। तो एक यहाँ नई बात बतला रहे हैं कि कुछ तोड लेनेसे भी पवित्रता खतम हो जाती है। लोग प्राय ऐसा तो समझते हैं कि कोई चीज जोड देनेसे उसकी शुद्धता खतम हो जाती है, मगर यह पता नही कि कुछ तोड देनेसे भी शुद्धता खतम हो जाती

है । जैसे दूधमे पानी मिला दिया तो अब उसमे पवित्रता न रही, केवल न रहा, शुद्ध न रहा, उसमे दूसरी चीज मिल गई, चाहे बहुत शुद्ध अठपहरा पानी भी मिल जाय तो भी वह दूध अशुद्ध है । यह द्रव्यार्थिकनयका वर्णन है पर्यायार्थिकका नही । एक द्रव्यमे दूसरा द्रव्य मिल जानेको अशुद्ध कहते हैं ।

जैसे दूधमे पानी मिला दिया तो वह दूध अशुद्ध हो गया और क्यो जी, दूधमेसे मक्खन निकाल लिया गया हो, जैसे कि आजकल मशीनोसे उसका मक्खन निकाल लिया जाता है । मक्खन निकाल लेनेसे दूध सपरेटा रह जाता है, क्या उस दूधको आप पवित्र कहेगे ? तो यहाँ यह बतला रहे हैं कि किसी चीजमे कुछ जोड़ दो तो भी वह चीज़ अशुद्ध और उसे तोड दो तो भी अशुद्ध । यो ही समझिये कि आत्मामे कषाय, कर्म, शरीर कुछ भी जोड दो । आत्माका शुद्धस्वरूप है सहज चैतन्य मात्र, उसमे कुछ जोडनेकी बात लगाया तो भी अशुद्ध है । आत्मा है चैतन्यमात्र । अब उसमेसे तोड रहे है–आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, यह कथन आत्माके स्वरूपको तोडने वाला ही तो कथन है––क्योकि जो कहा गया उसे पूरा आत्मा नही कहा जाता, और यही तोड कहलाया कि जिसमे पूरी चीज न हो । तो आत्माके ज्ञानादिक गुणोको अलग बताये यही उसकी तोड है और इसी कारण यह अशुद्ध द्रव्यार्थिक है और भेद कल्पना इसमे की ही गई है । तो यो भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्य कुनय हुआ ।

उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय––अब १० वाँ प्रकार है उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय । यह सब वर्णन चल रहा है निश्चयनयका । निश्चयनयकी मुख्य मर्यादा यह है कि एक वस्तुको ही करना, दो द्रव्यकी बात न करना । एक वस्तुके कथनमे जितने प्रकार हो सकते है उन प्रकारोका वर्णन इस निश्चयनयके १० भेदोमे किया है । उत्पादव्यय की अपेक्षा रखकर द्रव्यको देखनेका नाम उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है । जैसे द्रव्य एक ही कालमे उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है । देखिये—इसमे कोई मिलानकी बात नही कही गई, फिर भी इसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा है । इसका कारण है तोड़ । तोड और जोड दोनो अशुद्ध हैं । जोडसे अशुद्ध तो व्यवहारनय होता है और तोडसे अशुद्ध निश्चयनयमे भी चलता है और व्यवहारनयमे भी चलता है । जहाँ द्रव्यार्थिकनय दृष्टि ही है, द्रव्य ही प्रयोजन है, पर्यायको नही निरखा और फिर भी तोडरूप कथन है तो भी अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है । बात क्या यह सत्य नही है कि प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है ? बिल्कुल सत्य है, कोई पदार्थ ऐसा नही कि जिसमे उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनोमे से एक ही अश हो, दो न हो अथवा दो हो, एक न हो । तीनो होगे तब सत्ताका स्वरूप बनेगा । तब वह पदार्थ सत् है । इस मर्मकी जिन्होने उपेक्षा की वे दार्शनिक किसी एक सतोषप्रद तत्त्वमे नही ठहर

पाये। वस्तु प्रतिसमय उत्पादव्ययध्रौव्य वाली है। ऐसा भी नही है कि अभी यह वस्तु उत्पन्न हो रही तो नष्ट नही हो रही। नष्ट होगी बादमे ऐसा नही है। उस ही कालमे उत्पन्न है, उस ही कालमे विनष्ट है, उस ही कालमे ध्रुव है। जैसे एक घडा फूटकर खपरिया रूपमे बन गया तो जिस कालमे खपरियाँ बनी उसी कालमे घट फूटा और उसी कालमे मिट्टी भी बराबर है। एक ही कालमे उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनो पाये जाते हैं। खपरिया होनेका नाम उत्पाद, घडा न होनेका नाम व्यय और मिट्टीरूपमे रहनेका नाम ध्रौव्य है। यो एक ही कालमे पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होता है। बात यद्यपि सत्य है पर जैसा है वैसा निहारते जावो। उसे कहो मत। उसमे विकल्प न करो। तब हुआ सच्चा ज्ञान याने ज्ञानका जो प्रयोजन है उसको सार्थक बना रहे हो और जहाँ कुछ कहा, विकल्प किया, भेद किया वहाँ हो गया अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय। बहुत स्वादिष्ट कोई चीज है, उसका पूरा आनन्द तो बिना बोलेचाले बस खाते रहनेमे है। जहा खा भी रहे है और कुछ बातें भी कर रहे हैं, चाहे उसी चीजकी बात क्यो न कर रहे हो कि इसमे खूब हलुवा, शक्कर, घी आदिक हैं, तो आप उस आनन्दमे कमी कर रहे है। बोलो मत और खूब निश्चित होकर खाते जावो तो वहाँ मौज भी मिलेगा। यह लौकिक जनोकी दृष्टिसे बात कह रहे हैं। पर परमार्थ मे भी यही पद्धति देखो कि वस्तुका जो हमने स्वरूप समझा है, बस जाननहार रहे, विकल्प न करे, निरूपण न करें, केवल ज्ञाताद्रष्टा रहे तब तो हमने सच्चे ज्ञानका प्रयोजन निभाया, और जहाँ विकल्प किया, निरूपण किया, वहाँ कमी आयी, वही अशुद्धता है। तो इन १० भेदोमे यह कह रहे है कि द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। इस कथनमे उत्पादव्ययकी अपेक्षा लेकर तोडकी बात कहा है, पर कहा है द्रव्यको ही प्रयोजनमे रखकर, परिणतिको नही, अतएव यह उत्पादव्ययध्रौव्य सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। यहाँ तक निश्चयनयमे द्रव्यार्थिक हेतुक निश्चयनयके प्रकार बताये।

अनादिनित्य पर्यायार्थिक नामक पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय—अब इस ही निश्चयनयका जो दूसरा भेद है पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनय याने जिस दृष्टिमे पर्याय आयी है। पर्याय प्रयोजनमे है और फिर भी एक वस्तुकी ही बात कही जा रही है। इस सीमा का उल्लघन नही, ऐसे अभिप्रायका नाम है पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनय। इसके ६ भेद हैं। देखो—यद्यपि नयोका प्रकरण कठिन है लेकिन अत्यन्त उपकारी है। प्रकरण सुना भी न जाय, केवल सरल-सरल सुनकर निकाल दिया करते थे, उस स्थितिसे ज्यादह हानिमे तो रहोगे नही। और कुछ उपयोग लगाकर सुनोगे तो इसकी बात समझमे आयगी। बतला यह रहे हैं कि इस पद्धतिसे जानकारी करनेकी बात कि जिसमे वस्तुकी अवस्था तो निगाह

मे हो, लेकिन एक वस्तुके सम्बन्धमे ही सब कुछ बात देखी जा रही हो उस आशयसे वैसा कैसा ज्ञान बनता है ? पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयका प्रथम भेद है अनादि नित्य पर्यायार्थिक पर्यायको अनादि और अनित्य नही बताया गया है क्योकि कोई भी पर्याय अनादिसे नही होती है। वह तो समय-समयमे एक पर्याय होती है। इसी प्रकार पर्याय कोई नित्य नही होती। फिर भी हम पर्यायोको स्थूलदृष्टिसे अनादि नित्य भी देख सकते है। जैसे–चन्द्र सूर्य अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगे। अब यह बतलाओ कि चन्द्र और सूर्य द्रव्य है कि पर्यायें ? द्रव्य तो परमाणु है। चन्द्र और सूर्य जो ये विमान है ये द्रव्य नहीं है। यह उन परमाणुवोका एक प्रकार बना, आकार बना, अवस्था बनी, ऐसा स्कध हुआ वह है चन्द्र सूर्य, लेकिन यह बात क्या गलत है कि ये चन्द्रसूर्य अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहेगे ? गलत तो नही है। भला कल्पनामे यह बात ला सकते हो क्या कि किस दिनसे ये सूर्य चन्द्र बने होगे ? यह बात कुछ समझमे तो नही आती। तो ये सूर्य और चन्द्र सदासे चले आये है और सदा रहेगे, यह बात सत्य है। पर्यायकी बात कह रहे हैं और ये नित्य भी दिख रहे है। तो स्थूल दृष्टिसे पर्यायोका अनादि और नित्य देखनेमे आया कि नही ? अब इनके प्रति समयमे जो परिणमन चल रहे है वे अगर दृष्टिमे न लिए गए तो स्थूलदृष्टिसे पर्याय को अनादि नित्य देखकर फिर एक वस्तुका निर्धारण करनेका नाम है अनादि नित्य पर्यायार्थिकनय।

सादिनित्य पर्यायार्थिकनामक पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय––पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयका दूसरा भेद है––सादिनित्यपर्यायार्थिकनय। देखिये—पर्यायको सादि देखा जा रहा और उस ही पर्याय को नित्य समझा जा रहा याने ऐसी दृष्टि किसी पर्यायके सम्बन्धमे कि जिसमे यह बोध पडा हुआ है कि यह पर्याय किसी समसे हुई है लेकिन अनन्तकाल तक रहेगी। इस तरहकी निगरानीसे देखनेको सादि नित्य कहते है। जैसे प्रयोग किया कि सिद्ध पर्याय नित्य है। देखो—नयोका निर्णय आशयसे होता है। वे ही शब्द यदि पर्यायके आशयमे ढलकर चल रहे हैं तो पर्यायार्थिकनय है, और वे ही शब्द यदि द्रव्यके आशयमे ढलकर चल रहे है तो वह द्रव्यार्थिकनय है। इस कारण शब्दोको सुनकर नयोका पूरा विवेचन नही किया जा सकता। शब्दोको देखना और शब्दोके आशय को भी समझना–इन दो बातोपर दृष्टि दी जाती है। अभी कह रहे है सादि पर्यायकी बात। क्या कोई भी जीव सिद्ध अनादिसे है ? जो भी सिद्ध हुए है वे पहिले ससारी थे। कर्मोसे मुक्त होनेका नाम ही तो सिद्ध है। तो आप यह मनमे बात ला सकते है कि जो सबसे पहिले सिद्ध हुए होगे वे भी ससारी थे, तब तो कोई जमाना ऐसा भी रहा होगा जिस समय कोई भी सिद्ध भगवान न रहे हो ? यह बात नही कह सकते। यह बात भी नही कह सकते कि

ऐसा भी कोई समय नही जिस समय कोई भी सिद्ध न था और सारे ही सिद्ध पहिले संसारी थे। बात तो अचम्भे जैसी लगती होगी, पर कुछ और विवेकपूर्वक सोचनेसे समस्या हल हो जायगी। अच्छा आप यह बतलाओ कि सिद्ध अनादिसे हो रहे है या किसी दिनसे ? तो उत्तर यह होगा कि सिद्ध अनादिसे ही हो रहे है। अनादिसे सिद्ध होते आ रहे हैं। और प्रत्येक सिद्ध ससारी था तो इसका अर्थ यह हुआ कि अनादिसे ही ससार चला आ रहा है और अनादिसे ही सिद्ध होते चले आ रहे हैं।

एक बात। यह तो एक व्यक्तित, बात कही गई। पर एक मोटेरूपमे अगर यह निर्णय रखें कि दुनियामे दो ही चीजें है—ससार और मोक्ष। जीवोपर ध्यान न दें, तो यह व्यक्तिस कह सकते कि ससार मोक्षसे ८ वर्ष जेठा है, क्योकि कोई भी जीव मुक्त हो तो मनुष्य होना ही पडेगा और ८ वर्षसे पहिले उसकी मुक्ति हो ही नही सकती। जल्दी-जल्दी ही सम्यक्त्व हो, सयम हो तो कुछ अधिक ८ वर्ष होता है। मोटे रूपसे ऐसा कह देते है, पर उसके विवरणमे जायेंगे कि क्या पहिले कोई सिद्ध ऐसा था जिससे पहिले और कोई न था ? यदि कहो कि ससारी जीव था, तब तो यह बात न बन पायगी, क्योकि सिद्ध अनादिसे हो रहे है। लोग तो इतनी सी बातको बहुत अचम्भेमे कहते है कि भाई, ईश्वरकी माया किसीने नही परखी। कोई कैसे बन गया, कोई कैसे। मगर यह अचम्भा देखो कि संसारका स्वरूप, मोक्षका स्वरूप, सिद्ध होना अनादिसे होना, और फिर भी संसारपूर्वक होना, इस मायाको कौन सुलझायगा ? तो वस्तुस्वरूपकी माया किसीने नही पहिचाना। यहाँ प्रयोग करके समझाया जा रहा है कि सिद्धपर्याय नित्य है, यह कथन सादि नित्यपर्यायार्थिकनय नामका पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयकी दृष्टिमें किया गया है। लिया गया पर्यायको, मगर इस ढगसे लिया गया कि जिसको एक वस्तुमे ही निरखा और वह भी शाश्वत रूपसे निरखा। इस प्रकार पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयके भेदोमे सादिनित्यपर्यायार्थिकनयका विवरण किया गया।

सत्तागौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय—अब पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयके तृतीय भेदका वर्णन करते है। इसका नाम है सत्तागौणउत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय। जहा सत्ताके ध्रौव्यकी दृष्टि तो गौणकी जाय और उत्पादव्ययकी मुख्यताकी जाय ऐसे आशयमे क्षणवर्ती पर्यायको देखना सो सत्तागौणउत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय है। जैसे कहना कि द्रव्यकी पर्याये समय समयमे नष्ट होती रहती है। यहा निरशपर दृष्टि गई है। निरशताका दर्शन या तो महाविस्तारमें होता है या अतिसक्षेप मे होता है। जहा द्रव्यको देखा तो द्रव्य तो सर्वगुण पर्यायोका पिण्ड है उस दृष्टिसे द्रव्यकी अखण्डता बहुत विस्तृत समझी गई है। यह है द्रव्यत्वके नातेसे द्रव्यकी अखण्डता। अब

द्रव्यमे जो प्रतिसमय परिणमन होते है उन परिणमोपर प्रधानतया दृष्टि दी जाय तो प्रत्येक परिणमन क्षणवर्ती है और एक परिणमनका दूसरे परिणमनमे अन्वय नही है, अतएव सभी परिणमन परस्पर अन्वयव्यतिरेकी है। इस निगाहसे देखा गया तो प्रत्येक समयका एक-एक परिणमन निरंश है और उस परिणमनको दृष्टिमे लेकर इस नयकी बात कही जा रही है कि इसमे ध्रौव्यका तो गौण किया गया और उत्पादव्ययकी अपेक्षा रखी गई ऐसा दृष्टिमे अनित्य, किन्तु शुद्ध पर्यायपर दृष्टि दी गई है। अनित्य तो यो है कि वे पर्यायें अगले समयमे नही रहती। उनको शुद्ध यो कहा है कि यहाँ पर्यायार्थिकनयमे केवल वर्तमान समयकी पर्यायपर ही दृष्टि है, अन्य पर दृष्टि ही नही है। तब अशुद्धताका कथन न होगा।

सत्तासापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय—अब सत्तासापेक्षअनित्यअशुद्ध पर्यायार्थिकनयका स्वरूप कहते है। यह इस पर्यायार्थिक हेतुक निश्चयनयका चतुर्थ प्रकार है। सत्ताकी अपेक्षासे पर्यायके देखनेको सत्तासापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते है ? जैसे कहना कि पर्याय उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। यहाँ एक पर्यायसामान्यको देखा गया। किसी व्यक्तिकी पर्यायपर दृष्टि नही है। अतएव यह किसी अंगमे निश्चयनयकी सीमामे ही है। पर यहाँ सत्ता सापेक्षका दर्शन किया जा रहा है। तब यह कथन हुआ कि उत्पादव्यय-ध्रौव्यमय पर्याय है। पर्याय उत्पादरूप है, यह तो सर्वजन विदित है। व्ययरूप है यह भी विदित है, किन्तु वह ध्रौव्यरूप कैसे है, यह एक शका जग सकती है। उत्तरमे इतनी दृष्टि देनी है कि यहाँ पर्याय सामान्यकी बात है। क्या कभी कोई पदार्थ पर्यायरहित होता है ? नही होता। तो पर्याय सदा ही तो रही, इस कारण पर्याय भी ध्रौव्य है। यो पर्यायका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य दिखाना यह है सत्तासापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय। चूंकि इसमे कोई अपेक्षा रखकर यह निरखा गया है इस कारण इसमे अशुद्धता है और पर्यायको ही देखा है अतएव पर्यायार्थिकनय है। और किसी दूसरेको या प्रभावको नही देखा जा रहा है अतएव यह निश्चयनयकी सीमामे है।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय—अब कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनयका स्वरूप कहते है। ऐसा आशय कि जहाँ कर्म उपाधिकी अपेक्षा नही रखी जाती, केवल परिणमनको ग्रहण किया जा रहा है ऐसे आशयको कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते है। जैसे कहना कि सिद्धपर्यायके समान शुद्ध ससारी पर्याय है। यहाँ केवल परिणमनपर दृष्टि दी गई है। ससारी जीवके भी परिणमन चल रहे हैं। उन परिणमनोको हम विशेष रूपसे भी देख सकते है। और, वहाँ हम सामान्य परिणमन रूपसे भी देख सकते है। पदार्थके नातेसे परिणमन होना प्रत्येक पदार्थका धर्म है। संसारी जीव भी एक पदार्थ है और इस पदार्थके नातेसे उसमे भी परिणमन चलते हैं। तो इस

नाते से जो परिणमन होना है वह शाश्वत है और परिणमनका कोई परिवर्तन नही होता कि आज तो परिणमन है और कल नही है, इस निगाहसे ससारी जीवको परिणमन सामान्यसे देखा गया है और परिणमन सामान्य समस्त पदार्थोमे होता है, सब जीवोमे होता है, सिद्धभगवन्तोमे भी होता है। तो ऐसे शुद्ध परिणमनको निगाहमे रखकर यह कहना कि सिद्धपर्यायके समान शुद्ध संसारी पर्याय है। यहाँ शुद्धपरिणमनका अर्थ निर्विकार परिणमन न लेना, तथा परिणमनकी अवस्था विशेप न लेना। क्या परिणमन है, किसरूप परिणमन है, ये सब जरा भी ग्रहण न करना, किन्तु पदार्थके नाते से चूकि परिणमन होता ही है इसलिए परिणमन सामान्यको लेना है। अब निरखिये— यह परिणमन सामान्य कर्मोपाधिकी अपेक्षा नही रखता। परिणमन भी अनित्य है। परिणमन विशेष जैसे अन्य समयमे नही रहता। सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो यह परिणमन सामान्य भी है जो कि द्रव्यत्व गुणके कारण निरन्तर रहता है ऐसा परिणमन भी समय समयवर्ती है। यो यह अनित्य हो गया। और किसी की अपेक्षा न रखकर मात्र परिणमन की बात कही गई है। इस कारण यह शुद्ध हुआ। यो कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायका वर्णन करने वाला यह ५ वाँ पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनय हुआ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय—अब कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनयका स्वरूप कहते है। जहाँ कर्मकी उपाधिकी अपेक्षा हो और अनित्य अशुद्ध पर्यायका ग्रहण हो, उस आशयको कर्मोपाधि सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते हैं। जैसे कहना कि संसारी जीवोके जन्म मरण होता है। यहाँ कर्मउपाधिकी अपेक्षा तो स्पष्ट ही है। जन्म और मरण कर्मोपाधिकी अपेक्षा बिना नही होते। जब आयुकर्मका उदय होता है उसको जन्म कहते है और जब आयुकर्मका क्षय होता है तो उसको मरण कहते हैं। ऐसे जन्ममरण कर्मोपाधिकी अपेक्षा रखते है तथा ये अनित्य है। जन्म सदा नही रह सकता। इसका विनाश होता है। भले ही जन्मकी परम्परा अनेक जीवोमे अनन्तकाल तक रहेगी लेकिन वस्तुत जन्म अनित्य ही है और मरण भी अनित्य है। तथा ये सब अशुद्ध परिणमन हैं। उनका परिज्ञान, वर्णन करनेको कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय कहते है। इस तरह इस एक सिद्धान्तपद्धतिमे द्रव्यार्थिकहेतुक निश्चयनय और पर्यायार्थिक-हेतुक निश्चयनयका वर्णन किया।

उक्त सोलह प्रकारोंको निश्चयनय संज्ञा दिये जानेका कारण—यहाँ पर एक शका हो सकती है कि पर्यायार्थिकहेतुक निश्चयनयका जो यह वर्णन किया अथवा अन्तर भी समझा कि भेदका जो वर्णन किया उनमे अनेक वर्णन विशेष और पर्यायदृष्टिसे भी हैं, फिर उनका नाम निश्चयनय क्यो दिया गया है ? समाधानमे यह समझना चाहिए कि हाँ, यद्यपि निश्चय-

नयका विषय एक अखण्ड है और निश्चयनयका यह सब विशेष भी अखण्ड है, लेकिन जहाँ एक वस्तुका वर्णन हो तो वह भी निश्चयनय कहलाता है और भावरूप पर्यायपर दृष्टि हो जाय तो वह व्यवहार हो जाता है। तो अभी जितने भी वर्णन किए है, १० प्रकारके द्रव्यार्थिक हेतुक निश्चयनय, इन सभी नयोमे भेदरूप अभिप्रायकी दृष्टि नही रखी गई है, इस कारण ये सब प्रकार निश्चयनयके माने गए है।

अध्यात्मपद्धतिमें कथित व्यवहारनयका वर्णन—अब अध्यात्मपद्धतिमे जो व्यवहार कहा गया था उस व्यवहारनयका वर्णन करते है। व्यवहारनय कहते किसे है? जो वस्तुके भेदविशेष अथवा बहिरग विषयकी मुख्यता से अथवा अनेक वस्तुओके सम्बधरूप दृष्टिसे जो अभिप्राय बनता है उसे व्यवहारनय कहते हैं। व्यवहारका अर्थ भेद करना है--वि, अवहरण, जहा विशेष हरण है, टुकडे करना है, किसी अखण्ड धामसे कुछ हरण करना है वह सब व्यवहार कहलाता है। सिद्धान्त पद्धतिमे भी व्यवहारनय आया था और उसे द्रव्यार्थिकनयमे गर्भित किया था, वहा उसका केवल भेद करना ही अभिप्राय है और यहा भेदपर, विशेषपर, बहिरग विषयपर, अनेक वस्तुओके सम्बधपर, अन्य वस्तुके निमित्तसे होने वाले प्रभावपर दृष्टि दी गई है, इसी कारण यह व्यवहारनय अध्यात्मपद्धतिका व्यवहार है। व्यवहारनयके चार भेद है--पहिले तो यो दो भेद समझना कि कोई व्यवहारनय तो सद्भूत होता है, जैसा है, जो वास्तविकता है उसका कथन करता है, पर करता है पर्याय और भेद का। अतएव वह सद्भूत व्यवहारनय कहलाता है। कोई व्यवहारनय असत्का वर्णन करता है, मिथ्या, जो उस वस्तुमे स्वयं नही होते उनका वर्णन करने वाला असद्भूत व्यवहारनय है। ये दोनो प्रकारके व्यवहारनय मोटेरूपको जब रखते है तब ये उपचरित हो जाते है। जब ये निरपेक्षरूपसे वर्णनमे या निरूपणमे आते है तो ये अनुपचरित हो आते है। तब व्यवहारनय ४ प्रकारके तो हुए--उपचरित असद्भूतव्यवहारनय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय, उपचरित सद्भूतव्यवहारनय, अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय।

उपचरित असद्भूतव्यवहारनय--उपचरित असद्भूतव्यवहारनयका स्वरूप है कि किसी द्रव्यके निमित्तसे हुआ परिणमन विशेष किसी अन्य द्रव्यको कहे सो असद्भूतव्यवहार नय है। और यही असद्भूत व्यवहार जब परकी अपेक्षासे व्यवहारमे आता है तब इसे उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे जो क्रोध स्थूल है, समझमे आता है, नाक, भौ मुखकी मुद्रा निरखकर स्पष्ट विदित हो जाते है, ऐसे क्रोधके सम्बन्धमे कहना कि यह क्रोध आत्माका है। अब यहाँ देखिये कि यह क्रोध आत्माका असली भाव नही है, आत्माका स्वरूप भी नही है। किन्तु कर्मोदयके निमित्तसे यह क्रोधभाव उत्पन्न होता है, इस कारण यह असद्भूतव्यवहार है। अब इस असद्भूतव्यवहारका चिन्ह विशेष निरखकर वर्णन

किया गया, अतएव उपचरित असद्भूतव्यवहार है। इसे पौद्गलिक कर्म विपाक कह सकते हैं। ये आत्माके सत्त्वमे, आत्माके स्वभावसे प्रकट नही हुए है। यदि कर्मोदयका निमित्त न होता तो ये क्रोधादिक भाव उत्पन्न न हो सकते थे। इस कारण यह सब विपाक पौद्गलिक कर्मका है। केवल जीवमे क्रोधादिक विभाव नही होते। इस कारण क्रोधादिकको जीवके बताना असत्य है अर्थात् सद्भूत आत्मामे निष्पन्न नही होता है, फिर भी जीवके कहना यह तो असद्भूत है। और उसे आत्मामे जोडा गया यह व्यवहार है। और क्रोधादिकको क्रोधादिक समझकर स्थूल रूपसे उनको ग्रहण करना, फिर उन्हे जीवके बतलाना यह उपचरित है। यो उपचरित असद्भूतव्यवहारनय हुआ। देखिये-भावोका, विभावोका, तथ्यका, अतथ्य का सबका वर्णन आत्माके हितके लिए होता है। इस नियसे हम आत्महितके लिए क्या शिक्षा ग्रहण करे ? इससे हमे यह शिक्षा मिलती है कि ये क्रोधादिक विभाव आत्माके स्वरूप नही हैं। क्रोध जीवका है ऐसा कथन उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है, इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि क्रोध जीवका नही है। जैसे कोई कहे कि घर इस पुरुषका है, यह कथन मिथ्या अभिप्रायसे है। तो इसका अर्थ क्या हुआ कि घर उसका है, यह बात बिल्कुल झूठ है। यह पद्धति तो नयके द्वारा वर्णन करनेकी है, पर निष्कर्ष कुछ और निकलता है तो यहाँ उपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे क्या ग्रहण करना कि ये विभाव आत्माके नही हैं, तो ये क्रोधादिक कषायें असद्भूत है।

अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय--अब देखिये—कुछ कषायें तो विदित हो जाती हैं और कुछ कषायें विदित नही होती। जैसे कोई मनुष्य सो रहा है तो उसके क्या कषायें नही चल रही हैं ? देखने वाले लोग तो स्थूल रूपसे यह कहते हैं कि यह तो सो रहा है, यह तो कुछ भी कषाय नही कर रहा, और सोता हुआ मनुष्य भी अपने आपमे यह नही जान पा रहा है कि मैं कषाय कर रहा हू लेकिन क्या वह कषाय नही कर रहा ? नही कर रहा तब तो उसे सिद्ध भगवान कहो, कारण कि कषायरहित भगवान होते है और सोते हुएमे भी कषायरहित कहा जा रहा है, पर ऐसा तो नही है। उसमे भी निरन्तर कषायें चल रही है, किन्तु कषायोका उपचार नही बन पा रहा है। तो यह एक स्थूल दृष्टिकी बात कही, लेकिन अनुपचरितमे ऐसी कषायका दृष्टान्त न लेना, यह भी उपचरित है, किन्तु जो योगी है, उच्च पुरुष है, ध्यानमग्न है अथवा कोई आत्मचिन्तनमे है ऐसे पुरुषके अन्दर भी कषायें चल रही है। वे कषायें बुद्धिगत नही है। उन कषायोको आत्माकी कहना सो यह है अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय। चूकि कषायें ही बताई गई हैं अतएव कषाये असद्भूत है और उनको आत्मामे जोड़ा गया है अतएव यह असद्भूतव्यवहार है, किन्तु इनका स्थूलरूपसे ग्रहण नहीं हो पा रहा। आगमके बलपर अथवा बुद्धिके बलपर इन कषायोको

कहा जा रहा है इस कारण यह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। इसमे भी हमको यह शिक्षा लेना चाहिए कि चाहे कषाय स्थूल हो अथवा सूक्ष्म हो, कषायभाव ही असद्भूत है, वे जीवका स्वरूप नही है। जो जीवका स्वरूप नही है उसे जीवका स्वरूप माननेपर तो कषायोका परिहार कभी नही हो सकता। जो पुरुष जिस चीज को अपनी मान लेता है वह उस चीजको हटानेका भाव भी न करेगा और जो समझता है कि यह मेरा नही है, यह मुझे छोड़ना ही पडेगा, उस पदार्थमे यह मेरा है, यह भाव नहीं बनता।

जैसे जब कोई लोग किसी बडे समारोहमे पहुंचनेके लिए किसीसे उत्तम वस्त्र अथवा कोई गहना उधार ले लेता है और उसे पहिनकर चलता है तो उसकी श्रद्धामे यह बना हुआ है कि ये वस्त्र, यह गहना तो हमें देना ही पडेगा, उसके चित्तमे निरन्तर यह भाव रहता है कि ये मेरे नही हैं। और जो मांगा हुआ नही है, लोकव्यवहारनयमे खुदका वस्त्र, खुदका गहना है, उसे पहिननेमे उसे ममता है और यह बुद्धि है कि इसे कोई ले ही नही सकता। यह तो मेरा ही है। तो वह उसमे भेद न डाल सकेगा। तो जिसके निर्णयमे यह बात बनी हुई है कि ये कषायभाव कर्मके उदयके विपाक हैं, मेरे स्वरूप नही है। मेरेमे तो ये कलंक है, मुझसे विपरीत है, ऐसा भाव जो रखेगा वह श्रद्धासे इन कषायोसे ही अलग रहकर इन कषायोके परिहारका उद्यम करेगा। तो यो उपचरित असद्भूतव्यवहारनय और अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय नामके दो व्यवहारनयोका वर्णन किया।

उपचरित सद्भूतव्यवहारनय—अब व्यवहारनयके उपचरित सद्भूतव्यवहारनय और अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय इन दो प्रकारोके विषयकी बात कह रहे है। उसी वस्तु का गुण उसी वस्तुमे बताना यह सद्भूतव्यवहार है। सद्भूतका अर्थ है मौजूदरूप। जो जिस वस्तुमे है उसी वस्तुमे बतानेको सद्भूतका व्यवहार कहते हैं। परन्तु यह सद्भूतका व्यवहार जब परकी अपेक्षासे होता है तब इसे उपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते है, जैसे कहा—आत्मा स्व परका ज्ञाता है, तो स्व परका ज्ञाता होना आत्माका धर्म है, गुण है और उस गुणको आत्मामे ही बताया है, पर स्व परका नाम लेकर बतानेमे बहुत स्पष्ट समझ आयी है और आत्माका वह ज्ञातृत्व गुणगुणी आत्मासे भेद करता हुआ कहा गया है। और साथ ही पदार्थोंका आलम्बन लेकर उपचार किया है। आत्माका ज्ञातृत्व गुण आत्माका ही है और उसे आत्माका ही बताया गया है। यह तो हुआ सद्भूतपना। जिसका जो धर्म है उसको उसमे ही बताना सो सद्भूतपना है, और ज्ञातृत्व गुणका गुणी आत्मासे भेद किया, अतएव व्यवहार है। और स्व एव परपदार्थका आलम्बन बताकर उपचार किया इसलिए उपचरित है।

उपचरित सद्भूत, व्यवहारनयके लक्षणके परिज्ञानसे शिक्षा—यहा यह शिक्षा लेना

चाहिए कि आत्मामे ज्ञातापन तो स्वय ही है, क्योकि यह सद्भूत गुण है, किसी परपदार्थके कारण नही है। क्योकि ज्ञातृत्व परपदार्थका धर्म नही है। पदार्थ तो उसका विषयभूत है, स्व और पर आत्माके ज्ञानमे विषयभूत हुए है। तो पदार्थके कारण ज्ञातृत्वपना नही है लेकिन उनका नाम लेकर, आलम्बन लेकर उपचार किया गया है। तो उपचरित तत्त्वका लक्ष्य न करना चाहिए। जिन पदार्थोंका उपचार करके आत्माका ज्ञातृत्वधर्म बताया है उन पदार्थोंका लक्ष्य नही करना है, किन्तु जिसका सद्भूत गुण है उस पदार्थका लक्ष्य करना है। नयका प्रयोग भी किसी न किसी शिक्षाके लिए होता है। चाहे वह किसी प्रकारका नय हो। यो तो अब आगे एक प्रसगमे उपचरितोपचारनय भी बताया जायगा याने अत्यन्त भिन्न बातका जिसका कि कुछ प्रसग ही नही उसका सम्बध जोडना, यह उपचरितोपचार है। जिससे यह शिक्षा ली जायगी कि ऐसा जोड करना, ऐसा बताना यह मिथ्या हैं। यह उसका भाव है। तो नयोके प्रयोगमे कोई न कोई शिक्षा अवश्य ही बसी हुई है। तो यहा शिक्षा यह लेना है कि ज्ञातापन तो स्वय ही है, पदार्थोके कारण नही। पदार्थ तो मात्र विषयभूत हैं और उनका इसी कारण उपचार किया गया है। तो उपचरित तत्त्वका लक्ष्य न करना, किन्तु जिस आत्माका सद्भूत गुण है ज्ञातृत्व उस आत्माका लक्ष्य करना है।

अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय—अब अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयकी बात सुनो। इसमे भी बताया तो गया है सद्भूत गुण। जिस पदार्थमे जो गुण है वह गुण उस ही पदार्थमे बताया है। यह तो है सद्भूत भूतपना और उसका व्यवहार किया गया है। व्यवहार जितने होते हैं वे भेदपूर्वक ही हो पाते है। वह व्यवहारनय तो कहलाता है, परतु इसमे किसी परका या पदार्थका आलम्बन लेकर उपचार नही किया गया है अतएव अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है। जैसे कहा कि ज्ञान जीवका गुण है। यद्यपि ज्ञानमे अनेक ज्ञेय प्रतिभात होते हैं, और यहाँ उन ज्ञेयोका नाम लेकर स्पष्ट कहा जा सकता था कि परपदार्थों का ज्ञान करना या स्वपरका ज्ञान करना, लेकिन यहाँ आलम्बन और विशेष दोनोकी अपेक्षा नही रखी गई। किसी पदार्थका ज्ञान यहाँ भी नही कहा गया तो यह प्रयोग आलम्बन रहित है। और किसी प्रकारका ज्ञान ऐसा विशेष भी नही कहा गया, इस कारण यह प्रयोग विशेषकी अपेक्षासे रहित है, इसी कारण यह अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय है। यहाँ यह जिज्ञासा हो रही होगी कि इस अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयमे और निश्चयनय मे, इन दोनोमे अन्तर क्या हुआ ? ज्ञान जीवका गुण है, यह भी तो निश्चयनयका कथन है और ज्ञान जीवका गुण है यह उदाहरण दिया जा रहा है यहाँ अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नयके लिए। तो क्या अन्तर रहा ? बात सत्य है, अन्तर कुछ नही है। परन्तु तत्त्वका प्ररूपण व्यवहारनयसे ही होता है। तो प्ररूपणकी अपेक्षा इसे व्यवहारनयमे शामिल किया

है। विषय तो निश्चयनयके समान है। ज्ञान जीवका गुण है। इसमे दो पदार्थोका आलम्बन नही और न किसीका प्रभाव दिखाया गया है। अतएव निश्चयनय है, परन्तु प्ररूपण करने वाला व्यवहारनय ही होता है।

प्रकारान्तरसे व्यवहारनयके भेदोंमें शुद्ध सद्भूतव्यवहार—उक्त प्रकारसे व्यवहार-नयके चार भेद बताये गए है—उपचरित असद्भूतव्यवहारनय, अनुपचरित असद्भूतव्यव-हारनय, उपचरित सद्भूतव्यवहारनय, अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय। अब व्यवहारनयके ५ प्रकार भी किए जा सकते है, उनका वर्णन करेंगे। वे ५ प्रकार हो सकते है ये—शुद्ध सद्भूतव्यवहार, अशुद्ध सद्भूतव्यवहार, स्वजात्य सद्भूतव्यवहार, विजात्य सद्भूतव्यवहार एव स्वजाति विजात्य सद्भूतव्यवहार। शुद्ध सद्भूतव्यवहारनयका यह तात्पर्य है कि शुद्ध गुण शुद्ध गुणीमे या शुद्ध पर्याय शुद्ध पर्यायीमे भेद कहना, यह शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है। शुद्ध सद्भूत ही यहां बताया गया है।

जैसे कहना कि चेतनद्रव्यमे चैतन्य है तो यहा चेतन द्रव्य भी शुद्ध गुणी है और चैतन्य शुद्ध गुण है। शुद्ध गुणको शुद्ध गुणीमे ही कहा गया है, मगर भेद कहकर बताया है ना, चेतनमे चैतन्य है। कोई पृथक् चीज तो नही है। जैसे घड़ेमे चना है। तो घडा पृथक् है, चने पृथक् है। तो ऐसे पृथक्भूत दो पदार्थोका ही तो आधार-आधेयरूपसे व्यवहार होता है। लेकिन ये चेतन चैतन्य पृथक्भूत दो आधार नही है, दो पदार्थ नही है, लेकिन फिर भी उनका आधार-आधेयरूपमे वर्णन करना यह एक भेदपद्धतिका व्यवहार है। इस कारण इसको व्यवहारनयमे कहा गया है। वहा चेतनद्रव्यमे चैतन्य है। इस तरहकी निरख निश्च-नय जैसी ही है। एक वस्तुका गुण उस ही वस्तुमे कहना यही तो निश्चयनयकी सीमा है। उस सीमामे यह उदाहरण भी शुद्ध निश्चयनयका है। लेकिन कथनकी पद्धतिपर दृष्टि देकर कहा जा रहा है यह कि यह शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय है। यह तो हुआ शुद्ध गुण शुद्ध गुणीमे भेद बतानेका दृष्टान्त। अब सुनो शुद्ध पर्याय और शुद्धपर्यायीमे भेद कहनेका दृष्टान्त। जैसे कहा आत्माकी स्वाभाविक पर्याय शुद्ध पर्याय है, देखिये—कितना शुद्ध ढगसे वर्णन है। आत्मा भी शुद्ध, उसकी स्वाभाविक पर्याय जो कही जा रही है वह भी शुद्ध और स्वाभाविक पर्याय शुद्ध दशामे ही प्रकट होती है। उस शुद्ध पर्यायका भी स्मरण किया जा रहा है। तो यो यह सब शुद्धका ही कथन है। पर आत्माकी स्वाभाविक पर्याय, यो सम्बन्ध जोड कर भेद पद्धतिका कथन कर दिया गया है। सम्बन्ध वहा ही जोडा जाता है जहा भेद प्रदर्शित है। जैसे देवदत्तका घर। देवदत्तकी आत्माका शरीर आदिक जो भी उदाहरण है, प्रयोग है वे भेदको सिद्ध करते हैं। मैं जुदा हूँ, शरीर जुदा है। तभी तो कहा गया—उसका शरीर। देवदत्त जुदा है, घर जुदा है। फिर सम्बन्ध बताया हे देवदत्तका घर। तो

जहा भेद होता है वहा ही सम्बन्धका कथन होता है। भेदमे तो तादात्म्यरूपका वर्णन होगा। तो यद्यपि यहा शुद्ध पर्यायकी बात कह रहे है और शुद्ध पर्यायीमे ही बता रहे हैं लेकिन भेदपद्धतिसूचक सम्बन्ध वाक्यमे कहा जा रहा है, सो वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार-नय है।

अशुद्ध सद्भूतव्यवहार—अब अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनयका स्वरूप बताते हैं। अशुद्ध गुण, अशुद्ध गुणीका अशुद्ध पर्याय, अशुद्ध पर्यायीका भेद बताना अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय है। इस आशयमे जो जिसका बताया जायगा वह उसका गुण है। इस कारणसे तो यह सद्भूतव्यवहार है, लेकिन उस गुणको अशुद्ध रूपमे कहा जायगा, इस कारण अशुद्ध सद्-भूतव्यवहार है। जैसे यह कहना कि अज्ञानी जीवके भाव अज्ञानरूप हैं, ऐसा देखा जाता है। भाव भी अज्ञानरूप है, और जिस आत्मामे ये अज्ञानरूप भाव उठ रहे हैं वह आत्मा अज्ञानी ही तो कहा जायगा। यह बात सत्य है। अज्ञानी जीवके भाव अज्ञानरूप है, लेकिन अशुद्ध गुणगुणीका यहाँ भेद कथन किया गया है, या अशुद्ध पर्यायीमे भेदपद्धतिसे वर्णन किया है। इस कारण यह अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है। यो अशुद्ध व शुद्ध दो प्रकार होते है सद्भूतव्यवहारके।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहार—अब असद्भूतव्यवहारका वर्णन सुनिये—चूंकि असद्भूत है किसी उपचारको लेकर, सम्बधको लेकर कथन करना अथवा जो वास्तवमे सद्भूत नही है, उस पदार्थमे नही है, उसमे बताना सो सब असद्भूतव्यवहार है। इस व्यवहारमे जिनका सम्बध किसी पदार्थसे कहा जाता है, वे पदार्थ होते हैं ३ प्रकारके। एक तो अपनी जाति का, दूसरा अन्य जातिका और तीसरा मिले हुए स्वजातिमे और विजातिमे पाया गया। यो ३ आधार होनेसे, तीन प्रकारके अवलम्बन होनेसे असद्भूत व्यवहार तीन प्रकारके हो जाया करते हैं। जिनमे प्रथम है स्वजातित्यसद्भूत व्यवहार। असद्भूतव्यवहारका अर्थ यह है कि जैसी बात तो नही है, जैसा कि कह रहे है, पर प्रयोजनवश किसी सम्बधके कारण कह रहे है, इस कारण वह असद्भूतव्यवहार है, पर उसको अपनी जातिके द्रव्यमे ही कहना सो स्वजात्य सद्भूतव्यवहार है। जैसे प्रयोग किया कि परमाणु बहुप्रदेशी है तो यद्यपि परमाणु बहुप्रदेशी नही होता, परमाणुके एक ही प्रदेशमे हैं। अविभागी निरश पर-माणु होते हैं, अथवा कहिये ऐसा द्रव्य, ऐसा पुद्गल, जिसका कि और भाग होता ही नही है, और वस्तुत किसी भी सत् पुद्गलके भाग नही होते। प्रत्येक द्रव्य अखण्ड होता है, जीव भी अखण्ड है, लेकिन अखण्ड एक जीवमे प्रदेश बहुत हैं। ऐसे जीवको बहुप्रदेशी कहना यह असद्भूत बात नही है, लेकिन परमाणु जो कि अखण्ड ही होता है वह एकप्रदेशी ही है। अब परमार्थत एकप्रदेशी परमाणुका स्कंध चूंकि बहुप्रदेशी होता है और स्कधोमे पर-

माणु ही तो है। तो परमाणुको बहुप्रदेशी कहना यह स्वजात्य सद्भूतव्यवहारनय है।

विजात्य सद्भूतव्यवहार—जब किसी असद्भूत तत्त्वका व्यवहार अन्य जातिमे किया जाता है तब वह विजात्य सद्भूतव्यवहारनय कहलाता है। विजातीय परद्रव्यके सम्बधसे उपचरित धर्मको कहना विजात्य सद्भूतव्यवहारनय है। जैसे--प्रयोग किया--मतिज्ञान मूर्त है तो यहा चूंकि मतिज्ञान बहिरग मूर्तद्रव्यके कारणसे उत्पन्न होता है। मूर्तद्रव्य है कर्म। ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम हो, जिसमे कि कुछ तो अनुदय है, कुछ उदय है, ऐसे मूर्तद्रव्य के कारण ही तो यह मतिज्ञान उत्पन्न होता है तथा मूर्त इन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न होता है तो इस मतिज्ञानको मूर्त कह देना यह विजात्यसद्भूत व्यवहार है। मतिज्ञान मूर्तकर्मद्रव्य के उदयके निमित्तसे उत्पन्न होता है, मूर्तद्रव्यका विषय लेकर उत्पन्न होता है अथवा मूर्त इन्द्रियके द्वारा मनके अवलम्बनसे उत्पन्न होता है, इतना मूर्तद्रव्यका सम्बध है मतिज्ञानकी निष्पत्तिके प्रसगमे, इस कारण मतिज्ञानको मूर्त कह देना, यह है विजात्य सद्भूतव्यवहार। इससे यह शिक्षा लेना है, यह अपनी मान्यता बनाना है कि मतिज्ञान वस्तुत मूर्त नही है, किन्तु आत्माके ज्ञानगुणका एक इस तरीकेमें विकास है। ज्ञान तो ज्ञान है, मतिज्ञानमे भी जितना ज्ञानत्व है वह ज्ञान है। तो वस्तुतः मतिज्ञान मूर्त नही है, लेकिन यहाँ सम्बंधसे उपचरित कथन किया है कि मतिज्ञान मूर्त है। सो यह कथन विजात्य सद्भूतव्यवहारनय से होता है।

स्वजातिविजात्य सद्भूतव्यवहार—अब स्वजातिविजात्य सद्भूतव्यवहारनयका स्वरूप कहते है। स्वजाति और विजाति दोनोमे असद्भूतके कथन करनेको स्वजातिविजात्य सद्भूतव्यवहार कहते हैं। जैसे कहा कि जीव व अजीव दोनो ज्ञान है, ज्ञानके विषय होनेसे तो यहा जीव और अजीव ये दोनो ज्ञान तो नही है फिर भी इन्हे ज्ञान कहना असद्भूत कहलाया, लेकिन ज्ञानके विषयभूत होनेसे उपचार करके यह कथन किया है, इस कारण यह स्वजातिविजात्य सद्भूतव्यवहार कहलाया। अब इस प्रसगमे यह कोई जिज्ञासा कर सकता है कि फिर पुत्र, पैसा, देश, नगर आदिक ये मेरे है यह भी तो व्यवहार होता है। यह व्यवहार किसमे गर्भित किया जायगा? उसका उत्तर यह है कि यह व्यवहार तो है, परन्तु उपचारमात्र है, मिथ्या है, इसमे सम्बंध रच भी नही है। यहाँ तो ज्ञान विज्ञानकी चर्चा चल रही है, इस चर्चामे ऐसे झूठे उपचारकी प्रतिष्ठा नही है, ये असत्य कल्पनायें है। तो असत्य कल्पनाओका वर्णन करना इस ज्ञानके वातावरणमे निरर्थक समझा जाता है। फिर भी यदि कोई हठ करे कि हमको तो बताओ ही। चाहे असत्य कल्पना है फिर भी आखिर आशय तो है कुछ। वह कौनसा आशय है? तो उस आशयको अगर किसी शब्द भाषामे कहना चाहोगे तो उसका नाम पड़ेगा उपचरित असद्भूतव्यवहार। असद्भूत है

और साथमे उपचरित है जैसे यहा वस्त्र, देश आदि मेरे है ऐसा कोई कहे तो यह झूठा कथन है, किसी प्रकारका सम्बध नही है, फिर भी व्यवहार किया गया है। तो इसको उपचरित असद्भूतव्यवहार कहेंगे। तो स्वजाति, विजाति और स्वजातिविजाति इन तीनको साथ लगायें याने अभी जो तीनोका वर्णन किया है, उपचरित सज्ञासे युक्त होकर यह व्यवहार भी बताया जा सकता है, इस तरह उपचरित असद्भूत व्यवहारके भी ये तीन प्रकार माने जायेंगे—स्वजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार, विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार और स्वजातिविजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार। जैसे कहा कि पुत्र, स्त्री, बधु मेरे हैं तो पुत्र, स्त्री आदिक सजातीय है। यह कहने वाला चेतन है, जिनको अपना माना जा रहा है वे भी चेतन है। इस चैतन्यताके नातेसे सब स्वजातीय है। तो स्वजातीय परवस्तुओमे अपना सम्बध बताना सो स्वजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार है। असत्य है अतएव असद्भूत है और बिल्कुल भिन्न है, कोई सम्बध ही नही है, फिर भी मोहवश कल्पना की गई है, इस कारण यह उपचरित है। जब अचेतन पदार्थोंसे अपना सम्बध बताया गया तो यह विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार होगा। जो परवस्तु विजातीय है, अचेतन है उनमे अपना सम्बध बताया। तो विजातिका उपचार करके असद्भूतका व्यवहार किया गया है। जैसे वस्त्र, मकान आदि मेरे हैं, तो ये मकान, वस्त्र आदि अचेतन है और कल्पना करने वाला पुरुष चेतन है तो जिनसे सम्बध जोडा है इस मोही पुरुषने, वे पदार्थ विजातीय हैं। उन विजातीय परवस्तुओ को अपना माननेकी कल्पना की है, इस कारण यह विजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार है। अब जो पदार्थ स्वजाति और विजातिसे मिले हुए हैं उनमे कोई स्वजाति है, कोई विजाति है और उनके समूहका नाम उससे प्रकट किया गया है ऐसे समूहमे अपना सम्बध बतानेको स्वजातिविजात्युपचरित असद्भूतव्यवहार कहते है। जैसे कहना कि देश, नगर मेरा है तो देश क्या चीज है? बहुतसे परिजनोका, बन्धुवोका (चेतनका), मकान आदिक अचेतन गावोका जो समूह है सो देश है। नगर भी मकान, मनुष्य, पशु, आदिक सभीके समूहका नाम है। तो नगर कहनेमे स्वजाति और विजाति दोनो पदार्थ आ गए। अब उसे कहना कि मेरा है, यह स्वजाति और विजाति पदार्थोंमे उपचारसे असद्भूतका व्यवहार किया गया है।

नयोंके प्रकारोंकी निष्पत्तिका मूल आधार भेदनय व अभेदनय—यहाँ तक सभी पद्धतियोसे नयोका सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। इसका वर्णन करनेके बाद एक जिज्ञासा यह होती है कि नयोका विस्तार जो पहिले किया सक्षेपमे उसे मूलत समझना चाहे तो ये सभी नय किसमे गर्भित होगे? ऐसी सक्षिप्त दृष्टियाँ कितनी हो सकती हैं? इस जिज्ञासाका समाधान यह है कि सब नय भेद और अभेद इन दो प्रकारोमे गर्भित होते है। किसी भी

पद्धतिसे, किसी भी प्रकारसे कोई भी नय बोला जाय, या तो वह भेदकी प्रधानतासे कथन करने वाला होगा या अभेदकी प्रधानतासे कथन करने वाला होगा। तो वे नय या तो अभेदनय होगे या भेदनय। वैसे तो नयोके विस्तारकी बात यह है कि जितना कुछ अब तक बताया गया उतना ही नयका विस्तार नही है किन्तु जितने वचन हो सकते हैं, जितने अभिप्राय हो सकते है उतने ही नय जानना चाहिए। यो प्रयोजनवश और और प्रकारसे भी नय समझ लेना चाहिए। तो नय कितने है ? जितनी दृष्टियाँ है, लेकिन कितने ही नय हो, उन सब नयोमे यह कला अवश्य है कि कोई नय तो भेदकी प्रधानतासे कथन करने वाला है और कोई नय अभेदकी प्रधानतासे कथन करने वाला है।

अब यह जिज्ञासा होती है कि इन नयोको किसीने भेदनयमे और किसीने अभेदनय मे गर्भित किया, लेकिन जो उपचरित असद्भूतव्यवहार है यह भी किसी नयमे शामिल हो सकता है। यह भेदनय कहलायेगा या अभेदनय ? वैसे तो अभेदनय जैसे लगता है कि है तो बिल्कुल भिन्न चीजे और उनका अपनेसे अभेद कर डाला तो यह तो बहुत बढिया निश्चयनय होगा। तो यह उपचरितव्यवहार क्या ऐसे शुद्ध नयोमे भी जा सकेगा या किसी अन्य नयमे ? समाधान इसका यह है कि ये तो सब उपचरितनय है। ये नय न तो भेदनय मे आते है, न अभेदनयमे। या यो कह लीजिये कि ये तो कोई नय ही नही है। निश्चयनय मे तो क्या, अभेदनयमे तो क्या ? ये तो व्यवहारनय भी नही है। ये तो झूठे नय, मिथ्या कल्पनाये, उपचार आदिक नामोसे कहे जा सकते है। इसलिए न तो ये भेदनय है और न अभेदनय हैं। नयोमे जिनका कि कोई सम्बध है, निमित्तनैमित्तिक, आधार-आधेय भाव हो अथवा गुणपर्यायका कथन हो, अभेदमे भेद किया जा रहा हो, ऐसी बातें हो तो वहां नय की खोज करना चाहिए कि यह किस नयमे गर्भित होता है ? लेकिन जो मिथ्या है, मोहकी उद्दण्डता है, जिनसे कुछ सम्बध नहीं है, जबरदस्तीकी मान्यता है कि मकान मेरा है, स्त्री, पुत्रादिक मेरे हैं तो यह तो मोहमयी कल्पना है। यह किस नयमे कहा जायगा ? अगर नाम ही रखना है तो रख लीजिए मिथ्यानय, कुनय, मोहनय आदिक, इन शब्दोसे कह लीजिए अथवा कह लीजिये यह उपचरितोपचरित असद्भूतव्यवहार है, यह वस्तुत नय नही है। नय तो मूलमे दो है—अभेदनय और भेदनय अथवा निश्चयनय और व्यवहारनय अथवा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। कभी किसी तत्त्वका वर्णन सक्षेपरूपसे किया जाय और कभी उस तत्त्वका वर्णन विशेषरूपमे किया जाय तो सक्षेपरूपमे किए गए वर्णनको द्रव्यार्थिकनयके आशयकी बात कही जायगी। विस्तारमे कहे गए वर्णनको पर्यायार्थिकनयकी बात कही जायगी, वहाँ इन शब्दोका अर्थ भिन्न हो जायगा। द्रव्य जैसे अभेद होता है तो सक्षेप भी एक दृष्टिमे अभेद होता है। पर्याय जैसे भिन्न-भिन्न हो गए तो विस्तारका कथन भी

भिन्न भिन्न रूपसे किया जाता है। इस समानताके कारण संक्षेप कथनको द्रव्यार्थिकनयका कथन कहा गया है और विस्तारकथनको पर्यायार्थिकनयके आशयसे कथन किया गया है। तो यहाँ भी अभेद और भेदकी बात आयी इसलिए यह सिद्धान्त जानना चाहिए कि नयोकी निष्पत्ति भेद और अभेदकी प्रधानतापर निर्भर है।

नयोंके परिज्ञानका लाभ—नयोका वर्णन करनेके वाद अब यह जिज्ञासा की जा रही है कि नयोके परिज्ञानसे लाभ क्या है ? किसलिए नयोकी बात जानना चाहिए, क्योंकि नयवादका ज्ञान एक गहन बनकी तरह दुरूह है, कठिनतासे विचार विहार करने योग्य है, इसी लिए सतोने यह बताया है कि यह नयचक्र है। जो इसको संभालकर प्रयोग करना जानता है वह तो पार पा जायगा और जो इसकी सभाल नही जानता तो जैसे किसी चक्र से अपना सिर ही कट जाय इसी तरहकी बात यह होगी कि मेरे इस भ्रमरूप नयके प्रयोग से मेरी स्वयं बरबादी हो जायगी। इसलिए इस नयचक्रका बडा कठिन परिचय बताया गया है। जो पार पा लेगा वह सकटोसे पार हो जायगा और जो पार न पा सका, किसी भ्रममे अटक गया वह स्वयं अपने आपको बरबाद कर लेगा। तो नयके परिज्ञानका कितना विशिष्ट प्रयोजन है ? इसी प्रयोजनको बताते है कि नयके परिज्ञानसे लाभ यह है कि ज्ञानी ने भेदनयसे और अभेदनयसे वस्तुके तथ्योको जान लिया है, गुण पर्याय क्या है, वस्तु स्वय अपने आपमे क्या है ? उसकी अखण्डता उसके विस्तार, सब कुछ ज्ञानमे आ गए है। अब यह ज्ञानी भेदनयको गौण कर देता है, जिसमे विकल्प बहुत हैं, जिसमे बहुत ढोपे हैं ऐसे भेदनयको गौण करते है और अभेदनयको मुख्य बताते है। नयोके परिज्ञानसे सबसे पहिले प्रगतिमे कदम यह उठाई जाती है। वस्तुका परिज्ञान किया भेदनयने और अभेदनयने। अब उसकी यह कदम है कि भेदनयको गौण करके अभेदनयकी मुख्यता करेंगे। तो अभेदनयसे जैसा कि निश्चयनयका विषय बताया गया है उस विषयके परिचयमे लगेगा। अब नयसे वस्तुके ध्रुव अचलस्वभावको निरखेगा, भेदकी बात गौण करेगा। गुणभेद, पर्यायभेद इन सबको गौण करके अब यह अभेदनयमे आया है। अब इसके बाद उसका अगला कदम यह होता है कि अभेदनयको भी गौण कर देता है और इस अभेदनयसे भी परे जो एक अनुभव मात्रकी स्थिति होती है उस स्थितिमे पहुचता है। हितके लिए करना क्या है ? पहिले वस्तुओका नाना प्रकारसे परिज्ञान करना है, फिर वस्तुके अखण्ड सद्भूत स्वरूपमे पहुचना है, फिर अपने निर्विकल्प स्वमे आना है। इन तीन बातोका प्रयोजन है। सो भेदनयसे पहिले वस्तुओको भिन्न-भिन्न रूपसे बडे विस्तारमे जाना है, फिर इसके पश्चात् अभेदनयकी मुख्यता से वस्तुके अखण्ड स्वरूपको जाना है। अब इस अभेदनय और निश्चयनयके विकल्पको भी तोडकर केवल निर्विकल्प ज्ञानस्वभाव मात्र निजके अनुभवमे आना है। तो इस अनुभव तक

पहुंचनेपर जीवका कल्याण है। कर्मोंसे, जन्ममरणसे, संकटोसे छुटकारा मिलेगा उसे। यही आत्माका सर्वोच्च वैभव है, यही मंगलमय समाधि है। इसके लाभका उपाय बनानेमे कोई चलेगा तो सर्वप्रथम यह उपाय बनाना होगा कि नयोके द्वारा वस्तुका सही-सही परिज्ञान कर लें। सो इन नयोके परिज्ञानका लाभ यह है कि यह अन्तमे नयोके विकल्पसे परे होकर शाश्वत आनन्दमय मगलमय समाधिको प्राप्त होता है, याने ऐसे अपने अनुभवमे आ जाता है कि जिसमे सर्व संकट समाप्त हो जाते है, और जो आत्माका सर्वोच्च वैभव है, सर्वोच्च पुरुषार्थ है, उसे प्राप्त कर लेता है। तब यह समझिये कि नयोका परिज्ञान करना इस जीव को कितना अधिक लाभकारी है? इसी कारण आत्मतत्त्वका और आनन्दका यथार्थस्वरूप समझनेके लिए लक्षण प्रमाणका वर्णन करनेके वाद नयोका कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

वस्तुपरिचयके उपायभूत निक्षेपका वर्णन—आनन्दके लाभके लिए आनंद और आनन्द जिसे पाना है उसके स्वरूपका जानना आवश्यक है। तो यहाँ मुख्य बात चल रही थी कि आत्माका स्वरूप जानना है। तो स्वरूप जाननेका तरीका क्या है? उनका तरीका लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप तथा निर्देश आदिक अनुयोग है। जिनमे से लक्षण, प्रमाण और नय इन तीन तरीकोका वर्णन किया, अब चौथा उपाय जो निक्षेप है उसका बर्णन करते है। पदार्थका ज्ञान निक्षेप द्वारा होता है। निक्षेप किसे कहते है, यह बात निक्षेप शब्दमे जो उपसर्ग लगा है और धातु है उससे ही बोध हो जाता है। तो निक्षेपमे दो शब्द हैं-नि और क्षेप। नि का अर्थ है भली प्रकार, न्याय नीति अनुसार, लोक व्यवहारके अनुसार। क्षेपका अर्थ है रख देना अर्थात् दूसरेके चित्तकी बात जमा देना, जिसका भावार्थ हुआ लोकव्यवहार करना। लोकव्यवहार करनेको निक्षेप कहते है। यहा यह जिज्ञासा की जा सकती है कि यदि व्यवहारका नाम ही निक्षेप है तो यह जाननेका उपाय कैसे बना? व्यवहारकी बात है निक्षेप। जानने की बात कहाँ आयी, उसका समाधान यो करना चाहिए कि जानना भी तो व्यवहारकी बात है। जाननेके बिना व्यवहार बनता नही। तो जहाँ व्यवहारकी बात कह दी जाय, लोकव्यवहार करनेको निक्षेप कहते है, उसका अर्थ यही है कि निक्षेप जाननेका उपाय है। निक्षेपका अर्थ है नि मायने निश्चयमे, क्षेप मायने पहुचा दे, जो किसी निश्चयमे पहुचा दे उसे निक्षेप कहते हैं।

नामनिक्षेप एवं स्थापनानिक्षेप—निक्षेपके चार भेद है—नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप। नामनिक्षेपका अर्थ यह है कि नामके आधारसे किसी निश्चय मे पहुँचा देना, किसी वस्तुका कुछ भी नाम रख देना, बस यही है नामनिशेप। नामनिक्षेप मे नामकी प्रधानता है और लोकव्यवहार चलानेके लिए नामकी सर्वप्रथम आवश्यकता होती

है। मानो किसी मनुष्यका कुछ नाम ही न रखा जाय तो क्या काम चलेगा ? न व्यापार, न व्यवहार, न बोलना, न रिश्ता सम्बध, न एक दूसरेमे कुछ कह सकना, कोई भी व्यवहार न बनेगा। तो व्यवहार करनेके लिए नामकी सर्वप्रथम आवश्यकता होती है। स्थापना निक्षेप कहते है किसी पदार्थमे अन्य पदार्थके सकल्प करनेको, अर्थात् स्थापना करनेको। जैसे प्रतिमामे अरहंतकी स्थापना करना, तीर्थंकरकी स्थापना करना, अथवा शतरजकी गोटोमे हाथी, घोडा आदिकी स्थापना करना, यह सब स्थापनानिक्षेप है। स्थापनाके विषयभूत पदार्थ दो प्रकारके होते है—तदाकार और अतदाकार। जिसकी स्थापना की जा रही है उसका आकार भी मिल जाय, जिसमे कि स्थापना करना है तो उसे तदाकार स्थापना कहते हैं और जिसकी स्थापना करना है उसका आकार न मिले, भिन्न आकार हो फिर भी उसमें स्थापना सो अतदाकार स्थापना है। जैसे प्रतिमामे तीर्थंकरकी स्थापना करना यह तदाकार स्थापना है, क्योकि हाथ, पैर, आसन, मुद्रा, मुख सब उन प्रभुकी तरह बनाया जाता है। तो उस आकारकी समानता होनेसे मूर्तिमे प्रभुकी स्थापना करना तदाकार स्थापना है, और जहाँ आकार तो नही बनाया, जैसे कोई पत्थर ही रख दिया और किसी देवताकी स्थापना कर दी तो यह अतदाकार स्थापना है अथवा शतरजकी गोट, वे तो काठ आदिककी बनी हुई है, उनमे कोई मनुष्यका आकार तो नही है, फिर भी बादशाह, वजीर आदिककी स्थापना करना यह अतदाकार स्थापना है। अब यहाँ एक विशेष इस बातकी चर्चा करते हैं कि नामनिक्षेपमे भी नाम रखा गया और स्थापनानिक्षेपमे भी नाम रखा गया। जैसे प्रतिमा मे ये आदिनाथ है, ये शान्तिनाथ है, यो नाम रखा गया, अथवा शतरजकी गोटोमे यह बादशाह है, यह वजीर है यो नाम रखा गया, तब इन दोनो निक्षेपोमे अन्तर क्या है ? सुनो—नामनिक्षेपमे भी नाम बोला जाता है किन्तु वहाँ पूज्य अपूज्य बुद्धि नही होती, सम्मान अपमानकी बुद्धि नही है। वहा केवल नामको बताकर चीजका सकेत करते हैं कि यह है अमुक चीज, किन्तु स्थापनानिक्षेपमे पूज्य अपूज्य, मान अपमानकी बुद्धि होती है। जैसे प्रतिविम्ब मे अरहतकी स्थापना की तो पूज्य बुद्धि हो गई। यह भगवत है, इस तरहकी उनमे स्थापना करनेसे एक सत्कार और पूज्यताकी बुद्धि आ जाती है, और जो स्थाप्य पदार्थ है जैसे कि लोग रामलीलाओमे एक रावणकी मूर्ति बनाते है, उसमे अपमानकी बुद्धि होती है। तो स्थापनामे पूज्य अपूज्यसी बुद्धि चलती है, किन्तु नामनिक्षेपमे पूज्यता अथवा अपूज्यताकी बुद्धि नही होती। यह है नाम और स्थापनानिक्षेपमे अन्तर।

द्रव्यनिक्षेप एवं भावनिक्षेप—अब तीसरा निक्षेप है द्रव्यनिक्षेप। भूत या भविष्यकी पर्यायको वर्तमानमे कहना यह द्रव्यनिक्षेप है। द्रव्य चूँकि शाश्वत होता है, उसकी समानता लेकर निक्षेपमे यह लक्ष्य बनाया है कि आगे पीछेकी बातको वर्तमानमे कह देना सो द्रव्य-

निक्षेप है। जैसे कोई पुरुष पहिले कोतवाल था, अब कोतवाल नही रहा, पृथक् कर दिया गया या रिटायर हो गया, अब उस पदपर नही है, फिर भी उसे कोतवाल कहना यह द्रव्य-निक्षेप है। था, ऐसा निश्चय किया गया हो वह द्रव्यनिक्षेप है, जैसे राजपुत्रको युवराज पद दे दिया गया तो इसका अर्थ है कि अब वह राजा होगा, सो उसे नजरमे लेकर अभीसे राजा कह देना सो द्रव्यनिक्षेप है। व्यवहार जैसे नामनिक्षेपके आश्रयसे होता है। नाम-निक्षेपका अवलम्बन न हो तो कोई व्यवहार ही नही चल सकता। क्या नाम लेना है, किसे बुलाना है, कौनसा नाम लेकर चीज धरना उठाना है, क्या खाना पीना है, क्या स्मरण करना है, ये सब नाम रखे बिना लोकव्यवहार चल ही नही सकता। ऐसे ही स्थापनाके बिना भी नही चलता। और यहाँ समझिये—द्रव्यनिक्षेपके बिना भी व्यवहार न चल सकेगा। ये व्यवहार होते हैं और उन व्यवहारोमे रहस्य बताया जाता है, यही व्यवहारका फल है। तो द्रव्यनिक्षेपका अर्थ यह है कि भूत अथवा भविष्यकी पर्यायोको वर्तमानमे कहना यह है द्रव्यनिक्षेप। अब भावनिक्षेपका स्वरूप कहते है। वर्तमान समयकी पर्यायको वर्तमान मे कहना, जो हो रहा है, जो भवन है उस हो रहेको हो रहेके समयमे कहना, यह है भाव-निक्षेप। जैसे कोई पुरुष जब भी कोतवाल हो तब कहना कि यह कोतवाल है यह भावनिक्षेप की बात है। व्यवहारमे यह परख लोगोको सुगम रीतिसे बनी ही रहती है कि यह वर्तमान की बात वर्तमानमे कही जा रही है, यह भूत भविष्य पर्यायकी बात वर्तमान रूपसे कही जा रही है। बोलमे यद्यपि ऐसा ही कह दिया कि जो कोतवाल था अब नही है। उसे भी कहते है कि कोतवाल साहब बैठिये, और जो इस समय कोतवाली पदपर है उसे भी यो ही कहते है लेकिन कहने और सुनने वाले पुरुष, परखने वाले पुरुष द्रव्यनिक्षेप, भावनिक्षेपके अन्तर को जानते हैं। चाहे वे कोई इन शब्दोको न बोलें, पर इन शब्दो द्वारा जो वाच्य होते हैं उसे परख लेते हैं। यो भावनिक्षेपकी बात कही है कि वर्तमानमे जो है उसे वर्तमानमे ही कहना, ये ४ निक्षेप जो अभी बताये गए है और जिनका उपयोग व्यवहार कहा गया है वह सब एक लौकिक पद्धतिमे कहा गया है।

वस्तुपरिज्ञानमें चारों निक्षेपोंके योजनकी अनिवार्य विधि——अब इन निक्षेपोका एक ही वस्तुमे, वस्तुस्वरूपमे या अध्यात्मविधिमे किस प्रकार व्यवहार होता है, परिचय होता है यह बात अब बतलाते हैं। यो प्रत्येक ज्ञानोमे कुछ भी ज्ञान किया गया हो, वहाँ ये चार पद्धतियाँ आ ही जाती है। सर्वतत्त्वोका ज्ञाता अनुभवी जीव जब कुछ भी व्यवहार करनेको होता है तो व्यवहार करनेसे उसकी चार पद्धतिया बन जाती हैं, जैसे जब व्यवहार करेगा तब कुछ भी शब्द प्रयोग तो होगा ही, अन्त हो और बाहर हो, मुखसे बोलकर हो मगर शब्द बोलनेका प्रयास सबसे पहिले होता है, जो जाना उसके बारेमे उसका कुछ नाम पहिले

बोधमे आता है। तो बोधमे आनेके बाद इस नामसे जो कुछ कहा गया है वह यह पदार्थ है, यह भी भावमे पडा हुआ है। यहाँ अन्यमे अन्यकी स्थापनाकी बात नही कही जा रही है, किन्तु इस नामके द्वारा यह पदार्थ समझना चाहिए ऐसी स्थापनाकी बात कही जा रही है। जैसे चौकी कहा तो चौकी नाम हुआ और 'चौकी' इस नामके द्वारा ऐसे पाये जाने वाले इस तख्तका ज्ञान कर लेना चाहिए, ऐसी बात आ जाती है। तो नामनिक्षेपके बाद स्थापनानिक्षेप हुआ। अब परख लीजिए। जिस कालमे ज्ञान हुआ और ज्ञान होनेके बाद जब व्यवहार करने लगा, दूसरेको समझाने लगा तब समझाना तो हुआ बादमे और ज्ञान हुआ उसको पहिले। किसी भी पदार्थका परिज्ञान होना और दूसरोको समझाना इन दोनोमे समयभेद है। पहिले ज्ञान हुआ, पीछे समझानेका यत्न हुआ। तो अब देखिये—जिस चीज को समझाया और जो बात बतायी गई वह बात उस कालमे तो अब न रही। जैसे कि कुछ क्षणिकवादी लोग कहते हैं कि जब चीज उत्पन्न होती है तब तो वह कही नही जाती और जब कही जाती है तब वह वस्तु नही रहती। तब यो ही समझ लीजिए इस द्रव्य-निक्षेपमे, जिस चीजका व्यवहार किया, जिसका वर्णन किया, उसका ज्ञान पहिले हो चुका था। तो भूतकी बातको इसने वर्तमानमे कहा अतएव यह द्रव्यनिक्षेप हुआ। अथवा जान लिया। अब जाननेके बाद उसका व्यवहार आगे होगा। अब वह अर्थ प्रयोगमे आने ही वाला होनेको है तो यह द्रव्यनिक्षेप हुआ। और जब उस प्रयोगमे लग रहे, वर्णनमे अर्थ आ रहा तो उस समयका व्यवहार भावनिक्षेप हुआ।

पदार्थपरिचयमें चारों निक्षेपोंकी अनिवार्यता—निक्षेपोकी विधिमे पहिले तो लोक पद्धति की। विधिसे निक्षेपका वर्णन किया गया था कि किस प्रकार नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेपकी योजना बनती है। यहाँ यह बतला रहे हैं कि ये चारोके चारो प्रत्येक परिचयमे आवश्यक ही होते हैं। ऐसा वहाँ भङ्ग नही है कि चलो नामनिक्षेप हो गया, द्रव्य या भावनिक्षेप और करलें। स्थापनानिक्षेप तो कही जरूरी हुआ तो बनाया, न जरूरी हुआ तो न बनाया, तो ऐसा नही है। प्रत्येक परिचयमे चारो ही निक्षेप आ जाया करते है। जब कुछ भी जाननेको होता है तो अन्त या बाहरमे उस जातिका शब्द बनता है जिसका एकान्त करके शब्दाद्वैतवादियोने एक सिद्धान्त ही अलग बना लिया कि सारा जगत शब्दमय है। चूंकि ज्ञान होता है ना, तो जिस पदार्थका ज्ञान हुआ उसके नामका शब्द तो साथ ही उठ बैठा। तो ज्ञान भी देखो शब्दमय हुआ और यहाँ पदार्थ भी शब्दमय दिख रहा। किन्तु जब भीत कहा तो यह भीत पदार्थ समझमे आया। तो इसका अस्तित्व उस भीत शब्दमे भर गया। तो यह भी शब्दमय है, ज्ञान भी शब्दमय है। सब कुछ शब्द-मय बताया गया, लेकिन वह सिद्धान्त युक्त नही है। शब्द तो उसके परिज्ञानका एक साधन

है। तो परिज्ञानमे सर्वप्रथम नाम आता है। तो व्यवहारमे नामनिक्षेप समाया हुआ है ना? नामके साथ फिर यह बोध होता कि यह है यह चीज। जिसका नाम रखा गया वह यह है। इस नामके द्वारा वाच्य यह है, इस तरहके नाम द्वारा उसकी स्थापना बनी। तो स्थापना भी परिचयमे आ ही गई है, स्थापनाको भी आना ही पडा। उस स्थापनाके विना आगेका व्यवहार रुक जाता है। फिर स्थापनासे वस्तुका परिचय हुआ तो इस परिचयके वाद अब यह प्रयोगमे आने ही वाला है तो परिचय और प्रयोग इनमे अभी अन्तर हो गया। तो यहाँ कालभेदका अभेद करके बात कही गई। तो यह द्रव्यनिक्षेपकी पद्धति हुई। फिर जब व्यवहार कर रहे है उस ही समयकी बात उस ही समय कहनेका पौरुष कर रहे है, वहाँ भावनिक्षेप हुआ। तब देखो कि किसी भी पदार्थको जाननेकी पद्धतिमे चार निक्षेप आ ही जाते है।

प्रयोग्य निक्षेपोंके क्रमकी प्राकृतिकता—निक्षेपोंके सम्बधमे इतना और विचार कर लीजिए कि चार निक्षेपोका काल क्या क्रमसे है अथवा एक साथ है अथवा व्यवहार क्रमसे होता है या एक साथ होता है। तो जब इसपर विचार करेंगे तो वस्तुत तो यह सिद्ध होगा किसी पदार्थके व्यवहारमे ये चार निक्षेप क्रमसे आते है और इसी क्रमसे आते है। पहिले नाम, फिर स्थापना, फिर द्रव्य, फिर भाव। लेकिन हम लोगोके जो ज्ञान चलते रहते है, वे इतना अभ्यस्त हैं, उनकी कला इतनी जल्दी है कि हम इन निक्षेपोकी इतनी जल्दी होने वाली वृत्तिको हम नही जान पाते है। चौकी, चटाई आदिक ये सब व्यवहार बन गए लेकिन नामस्थापना द्रव्यभावके परिचयपूर्वक हुई है। यह ज्ञात नही होता लेकिन होता है विधिसे ही ज्ञान। लेकिन विधिके निक्षेपकी बात कुछ अलग है। वहाँ यह नियम नही कि चार ही निक्षेप कहे जायें। जिसका जिससे प्रयोजन है, लेकिन वह सब है केवल एक लौकिक लोक-व्यवहार। यह वस्तुस्वरूपके परिचय वाले व्यवहारकी बात कही जा रही है। यहाँ ये चार निक्षेप क्रमसे आते है और इसी क्रमसे आते हैं। यो निक्षेपके द्वारा वस्तुका परिचय होता है।

सत् और संख्यासे वस्तुपरिचय—अब वस्तुके परिचयके लिए अन्य अनुयोगोका विचार करते हैं। तत्त्वार्थ सूत्रमे प्रथम अध्यायमे दो सूत्र आये हैं।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च।
निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानत।

जिनका अर्थ यह है कि सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शके समय कालान्तर भाव और अल्प बहुत्वसे वस्तुका परिचय होता है। जैसे किसी तत्त्वकी जानकारी करना है तो उस तत्त्वका पहिले अस्तित्व जानना होगा। क्या उसका स्वरूप है, असाधारण धर्म है, उस साधारण

धर्ममे उसका सत्त्व परखा जाता है। जैसे मानो एक सम्यक्त्वका बोध करना है तो सम्यक्त्व तो भाव है वह अलगसे सत् पदार्थ नही है, किन्तु सम्यक्त्व पर्यायमे तन्मय जो जीव है वही इस प्रसगका सत् है। अर्थात् सम्यक्त्वमे जो विशेषतायें है, जो स्वरूप है, उस स्वरूप का वर्णन करनेसे सम्यक्त्वके प्रसगके सत्का बोध होता है। जहाँ यथार्थ वस्तुका श्रद्धान है, आत्माके सहज स्वरूपका श्रद्धान है वह सम्यक्त्व कहलाता है। तो सम्यक्त्व कहो या सम्यग्दृष्टि कहो, दोनोमे कोई भेद नही है, क्योकि सम्यक्त्वके वारेमे जो कुछ वर्णन होगा या जो जानकारी बनेगी वह कभी सम्यक्त्वके स्वरूपसे, कभी सम्यक्त्वके स्वामीकी विशेषतासे दृष्टि बनेगी, इस कारण इस परिचयके प्रसगमे गुणगुणीमे भेद हो जाता है। तब सम्यक्त्व क्या हुआ ? मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत अतस्तत्वका श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। अव उस की सख्या कितनी है ? किसी भी पदार्थका अस्तित्व जाननेके बाद वह पदार्थ कितने प्रकारो मे पाया जाता है, जब यो सख्याका निर्णय होता है अथवा उसकी वास्तविक सख्याका निर्णय होता है तो उसका परिचय स्पष्ट होता है। सम्यग्दर्शन तीन प्रकारके हैं—उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व। सम्यग्दृष्टिकी सख्या कितनी है ? यह सख्या गिनतीमे न आयगी, फिर भी ससारमे सम्यग्दृष्टि उपशम सम्यक्त्वके स्वामी कम है, उससे अधिक क्षायकसम्यक्त्वके स्वामी है, उसमे अधिक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि हैं। और वैसे सख्या इनकी अनगिनते है।

क्षेत्र और स्पर्शनसे वस्तुपरिचय—जब समझ लिया कि सम्यक्त्व यह है और उनके अधिकारी जीवोकी सख्या यह है तब यह जिज्ञासा होने लगती है कि उस सम्यक्त्वका क्षेत्र कितना है, याने सम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमे पाये जाते हैं ? सो व्यापक दृष्टिसे तो यह उत्तर है कि समस्त लोकाकाशमे पाये जाते हैं, लेकिन त्रस नालीसे बाहर त्रस जीव नही रहते तो वहाँ स्थावर मात्र रहते हैं और उनके सम्यक्त्व होता नही। यो केवल त्रस नालीमे पाये जाते हैं, लेकिन किसी सम्यग्दृष्टिके कोई समुद्घात हो, उसके शासनमे वह सारे लोकमे भी प्राप्त होते हैं, इस दृष्टिसे सम्यग्दर्शनकी दृष्टिसे सर्व लोकमे है। क्षेत्र उनका अलग है। त्रस नालीके अन्दर ही पाये जाते है। फिर उनको सम्यग्दर्शनोके स्वामीका विवरण जानेसे परिचय विशेष होता है। उपशम सम्यक्त्वके स्वामी कैसे जीव होते हैं—पहिली बात, जब सम्यक्त्व उत्पन्न होता है तो उसके लिए बताया कि वह गर्भित हो, ज्ञानोपयोगी हो, उसको सम्यक्त्व होता है। वैसे सम्मूर्छन जन्म वालोको सम्यक्त्व हो जाता है, लेकिन वह क्षयोपशम सम्यक्त्व जैसा ही प्रकार हुआ करता है। तो सम्यग्दर्शनमे उपशम सम्यक्त्वके स्वामी चारो गतिमे है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके भी स्वामी चारो गतियोमे हैं, पर क्षायक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति केवल मनुष्यभवमे होती है। जब हम स्वामीका वर्णन समझते हैं तो

क्षेत्र स्पर्शनका ज्ञान बडी सुगमतासे होता है। भूत, भविष्य और वर्तमानमे सम्यग्दृष्टि जीव समुद्घाता आदिक किन्ही भी परिस्थितियोमे जहाँ तक फैल सकते है वह सब उनका स्पर्शन कहलाता है। यह वस्तुके विशेष परिचयमे काम आता है।

काल और अन्तरसे वस्तुका परिचय—सम्यग्दर्शनका काल कितना है ? तो उपशम सम्यक्त्वका काल तो अन्तर्मुहूर्त है, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका काल अधिकसे अधिक ६६ सागर है। संसारमे रहते हुए क्षायक सम्यक्त्व कुछ अधिक ३३ सागर और यह क्षायक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके बाद अनन्त काल तक रहता है। सम्यग्दर्शनका परिचय अन्तरसे भी जाना जाता है। किसी जीवको सम्यक्त्व हुआ और फिर मिट गया, बादमे फिर सम्यक्त्व हुआ तो ऐसा बीचका अन्तर्काल कितना हो सकता है ? उस अन्तरके समझनेसे भी सम्यक्त्वके बारेमे काफी परिचय मिल जाता है। जैसे उपशम सम्यक्त्व एक बार उत्पन्न होनेके बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके बाद दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ, इसमे अन्तरपल्लके असंख्यातवे भाग प्रमाण पडता है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका अन्तर जघन्न अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तो कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन हो सकता है। ऐसे ही उपशम सम्यक्त्वका भी उत्कृष्ट अन्तर अर्द्धपुद्गल परिवर्तन हो सकता है। क्षायक सम्यक्त्वमे अन्तर नही हुआ करता, क्योकि क्षायिक सम्यक्त्व होनेके बाद फिर कभी मिटता नही है। तो यो अन्तर जाननेसे भी सम्यग्दर्शनका परिचय प्राप्त होता है।

भाव व अल्प बहुत्वसे वस्तुका परिचय—अब इनके भावको अगर देखें तो उपशम सम्यक्त्वमे औपशमिक भाव है, क्योकि यह सम्यक्त्व सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियोके दबनेसे होता है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व क्षायोपशमिक भाव है, जिसका उदय भी हो, उपशम भी हो, उदयाभावी क्षय भी हो वहाँ क्षायकसम्यक्त्वको क्षायकभाव कहते है क्योकि यह ७ प्रकृतियोके क्षयसे होता है। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, इन ७ प्रकृतियोके क्षयसे क्षायक सम्यक्त्व होता है, अतएव यह क्षायक भाव है। तो भावोके द्वारसे भी हम सम्यक्त्वका परिचय कर लेते है। अब परिचयका इस प्रसगमे एक उपाय और है—अल्पबहु। उपशम सम्यग्दृष्टि जीव थोडे है। यद्यपि ये बहुत होते है लेकिन इनका सचय नही हो पाता, क्योकि काल इनका थोडा है। तो सचय अधिक समय तक न हो सकनेसे ये जीव कम है। क्षायक सम्यग्दृष्टि जीव हैं। तो ऐसे इस उपाय से भी किसी तत्त्वका परिचय प्राप्त होता है।

निर्देश, स्वामित्व व साधन अनुयोगसे वस्तुपरिचय—अब दूसरे सूत्रमे जो अनुयोग बताये है उनकी अपेक्षासे परिचय सुनो। निर्देश—किसी भी तत्त्वको जाननेके लिए उसका नाम रखना और उसका स्वरूप समझना यह प्रथम आवश्यक है। जैसे किसी भी तत्त्वका

नाम भी न जाने, जिसका लक्षण स्वरूप भी न जानें, जिसपर हम दृष्टि बना सके कि इसका वर्णन करना है तो हम परिचय ही क्या पायेंगे ? इस कारण निर्देश प्रथम आवश्यक है। जैसे सम्यक्त्वके बारेमे निर्देश किया—सम्यग्दर्शन। अब इसका परिचय पानेके लिए कुछ और भी तरीके है—जैसे स्वामीका जानना। उपशम सम्यक्त्वके स्वामी चारो गतिके जीव हैं। लेकिन उसमे जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है, उसके स्वामी केवल मनुष्य हैं। यद्यपि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पैदा होनेके बाद वही मनुष्य अंतिम समय मरकर देवगतिमे जाय और उस उपशमका काल शेष हो तो देवोकी अपर्याप्त अवस्थामे भी सम्यक्त्व मिल गया, मगर बहुलतासे द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके अधिकारी केवल मनुष्य ही होते है। क्षायक सम्यक्त्वके स्वामी तो जितने भी अनन्त सिद्ध भगवन्त हैं वे सब क्षायक सम्यग्दृष्टि हैं और संसारमे भी क्षायक सम्यग्दृष्टि पाये जाते है, इसलिए सबसे अधिक सख्या क्षायिक सम्यग्दृष्टियोकी है। अब सम्यग्दर्शन उत्पन्न कैसे होता है, इसके साधनका परिज्ञान करें, उससे भी विशिष्ट परिचय होता है। सम्यक्त्वके साधन है मुख्य तो अन्तरङ्गमे, बाह्य साधन हैं सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम होना, और बाह्य आश्रय है—किसीको तीव्र वेदना हो, उससे भी सम्यक्त्व जग जाय, किसीको प्रभुमूर्तिके दर्शनसे, किसीको जातिस्मरणसे, किसीको उपदेशसे, यो अनेक निमित्त पाकर जीवको सम्यक्त्व होता है, मगर ये सब बाह्य बातें विषय मे आ जाती हैं। उपादान दृष्टिमे जो आत्माकी सम्यग्दर्शनकी ओर तैयारी होती है, बोध होता है वह उनकी योग्यता उनका उपादान कारण कहलाता है। तो साधनोके परिज्ञानसे भी वस्तुका विशिष्ट परिचय होता है।

अधिकरण, स्थिति व विधानके परिचयसे वस्तुका परिज्ञान—अधिकरणके ज्ञानसे भी वस्तुका परिचय होता है। इन सम्यग्दर्शनोके अधिकरण क्या हैं ? किस क्षेत्रमे, किस आधारमे यह सम्यग्दर्शन होता है, उन आधारोका, शरीरका, उस क्षेत्रका वर्णन करनेसे भी सम्यग्दर्शनका परिचय होता है। सम्यग्दर्शनकी स्थितियाँ क्या हैं ? उपशम सम्यक्त्वकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त है, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी स्थिति याने लगातार बना रहे उसे स्थिति कहते हैं। वह ६६ सागर है। क्षायक सम्यक्त्वकी स्थिति ससारकी अवस्थामे कुछ अधिक ३३ सागर है और जीवकी अपेक्षासे इसकी कोई सीमा नही है। यह अनन्तकाल तक सदा रहेगा। तो यो स्थितिके परिज्ञानसे भी वस्तुका परिचय होता है।

अब परिचयका एक अंतिम उपाय है प्रकार। पदार्थ कितने प्रकारके होते हैं ? उन सब प्रकारोके परिज्ञानसे विवक्षित वस्तुके परिचयकी स्पष्टता हो जाती है। जैसे सम्यक्त्वके बारे मे प्रकार। सम्यक्त्व होते है तीन प्रकारसे—उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायक सम्यक्त्व। उपशम सम्यक्त्व दो प्रकारके होते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। पूर्व और उत्तर परिस्थितियोके परिज्ञानसे भले प्रकार हो जाता है। तो

विधानोसे भी वस्तुका परिचय होता है। लोकव्यवहारमे भी हम किसी भी चीजको जाने तो वहाँ भी इतने अनुयोग जाननेसे उसका विशिष्ट परिचय होता है। जैसे एक घडी एक विचार के लिए ली, तो घडी यह तो निर्देश हो गया और जो समय बताती है वह घडी है। और उस घडीका स्वामी कौन है ? तो निश्चयसे घडीका कोई मालिक नही है। जिन धातुवोसे घडी बनी है वह धातु ही उसका मालिक है, जो धातु उस घडीसे अलग न होगी, पर व्यवहारसे उस घडीका मालिक कोई पुरुष है तो मालिकका ज्ञान होनेसे घडीके सम्बधमे कुछ परिचय विशेष हुआ ना, तो स्वामित्व अनुयोगके जाननेसे भी वस्तुका परिचय विशेष मिलता है। यह घडी किन साधनोसे बनी, किस धातुसे बनी और इसमे किन-किन धातुवोका समावेश है ? उन साधनोके ज्ञानसे भी घडीका ज्ञान होता है, तव ही तो उस आधारसे वस्तुका मूल्य आँका जाता है। यह घडी कहाँ रहती है, किस जगह रखी रहती है, उन अधिकरणो के परिज्ञानसे भी घडीके बारेमे परिचय स्पष्ट रहता है। फिर घडी कितने दिनकी टिकाऊ है, लोग उसकी गारन्टी भी देते है कि यह घडी इतने वर्ष तक चलेगी। तो घडी कितनी टिकाऊ है, कब तक चलेगी, ऐसा बोध होनेसे उस घडीके सम्बंवमे स्पष्ट परिचय हो जाता है। अव प्रकारसे भी घडीका बहुत ज्ञान होता है। कितनी तरहकी घडी होती है—टेबुलपर रखी जाने वाली, भीतपर चिपका देने वाली, कलाईपर बाँधने वाली, जेबमे रखी जाने वाली आदि। और वह घडी कहाँकी बनी है ? यो अनेक दृष्टियोंसे इसके अनेक प्रकार होते हैं। तो निर्देप स्वामी, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान आदि इनसे भी वस्तुका परिचय होता है। यहाँ प्रकरण यह चल रहा था कि हमे चाहिए आनन्द। तो उसका उपाय क्या है ? आनन्दका स्वरूप समझना और जिसे आनन्द चाहिए उसका स्वरूप समझ लेना। तो स्वरूप समझनेके लिए यह उपाय वताया गया है—नय, प्रमाण, लक्षण, निक्षेप और ये अनेक स्फुट अनुयोग द्वार। इन सबके प्रयोगसे हमे वस्तुका आत्माका परिचय पा लेना चाहिए।

॥अध्यात्मसहस्री प्रवचन प्रथम भाग समाप्त ॥

अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग

गुणमुखेन वस्तुका परिचय—इस ग्रन्थके पहिले परिच्छेदमे आनन्द पानेका उपाय बताते हुए यह बात स्थापित की थी कि आनन्दका उपाय पानेके लिए आनन्दका और आत्मा का स्वरूप जानना आवश्यक है। जब आत्माका स्वरूप जानना आवश्यक है, जब आत्मा का स्वरूप जाननेका प्रसग चला तो वहाँ सामान्य रूपसे पदार्थका सक्षिप्त स्वरूप बताया गया। पदार्थमे साधारण और असाधारण गुण कहे गए। तो अब उन ही असाधारण गुणो के सम्बधमे इस परिच्छेदमे वर्णन किया जा रहा है। गुण कहते किसे हैं ? पहिले तो यह समझना चाहिए। गुण कहते हैं उसे जो वस्तुमे शाश्वत तन्मय हो और वस्तुका तिर्यक अश हो अर्थात् सदैव रहने वाला पदार्थका परिकल्पित अश। जैसे जीव कहा तो यह तो द्रव्य हुआ। अब इस जीवको तन्मय समझने वाले अशोका जो वर्णन होगा कि जिसमे जानने देखनेकी शक्ति है, आनन्दकी शक्ति है, विश्वासकी शक्ति है वह जीव है। तो यो जीवमे शक्ति भेद करना और उन शक्तियोके द्वारा जीवको निरखना, यह कहलाया गुणके द्वारा पदार्थकी पहिचान। यहाँ मुख्य प्रसग यह चल रहा है कि पदार्थका परिचय करना चाहिए। आत्मा की पहिचान होना चाहिए। तो परिचयका उपाय तो यही है कि आत्माकी शक्तियोका परिचय किया जाय। तो उन्ही शक्तियोका नाम गुण है। ये सब गुण जीवमे शाश्वत तन्मय हैं, जो जीवके बताये गये हैं। इन गुणोके परिणमन होते है जिनकी बात आगे कही जायगी। इस समय इस आत्माको इस तरह निरखिये कि आत्मा एक अवक्तव्य पदार्थ है और उसका जब हम परिचय करनेके लिए चलेंगे तो भेद करके ही परिचय पा सकेंगे। तो उस अभेद अखण्ड आत्माका परिचय इस तरह दिया जाता है कि आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, आनन्द है, श्रद्धान है। यह गुणमुखेन परिचय हुआ। उस ही परिचयके लिए नास्तित्व आदिक भी बताये जाते है।

नास्तित्व आदि प्रतियोगी धर्मोंके सम्बन्धमें विचार—नास्तित्व आदिके सम्बधमे यह जिज्ञासा हो सकती है कि गुणोका परिचय यह बताया है कि जो पदार्थमे शाश्वत तन्मय हो, और जिसके अविभाग परिच्छेद हो अर्थात् परिणमन हो वह गुण रहता है, तो क्या इसी प्रकार नास्तित्वादिक धर्मोमे भी ये दो लक्षण है कि वे पदार्थमे तन्मय हो और उनका अविभाग प्रतिच्छेद हो ? ऐसी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है, जब कि यह सीमा कर दी गई

कि गुण कहते ही उसे है कि जो पदार्थमे शाश्वत तन्मय हो और अविभाग प्रतिच्छेद वाला हो। अविभाग प्रतिच्छेदका मतलब है परिणमन। जिससे यह ज्ञात होता है कि यह इसका शुद्ध परिणमन है, उत्कृष्ट परिणमन है, अशुद्ध परिणमन है। यह अविभाग प्रतिच्छेदोसे ही जाना जाता है। जैसे ज्ञानगुणके अविभाग प्रतिच्छेद जिनके कम विकसित है उनके कम ज्ञान है, जिनके पूर्ण विकसित है उनके सम्पूर्ण ज्ञान है। इन अविभाग प्रतिच्छेदोसे ही इन दृश्यमान पदार्थोमे यह समझा जाता है कि यह हल्का नीला है, यह गहरा नीला है। तो जैसे नीला रग रूप गुणकी पर्याय है और उसमे भी यदि उस रूप गुणके अविभाग प्रतिच्छेदमे कम विकसित है तो उसे कहेगे कि यह हल्का नीला, हल्का पीला आदिक है। विशेष विकसित है तो कहेगे कि इसका अविभाग प्रतिच्छेद अधिक है और पूर्ण विकसित है, उत्कृष्ट गहरा रग है तो ऐसे ही प्रत्येक पदार्थोमे जो भी गुण होते है उनका अविभाग प्रतिच्छेद होता है। इस न्यायसे क्या नास्तित्व आदिक गुणोमे भी अविभाग प्रतिच्छेद होता है और क्या वह पदार्थमे शाश्वत तन्मय रहा करता है ? ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसका उत्तर यो होगा कि नास्तित्व आदिक जो गुण है ये प्रतियोगी गुण है। प्रतियोगी तत्त्व वस्तुत गुण नही कहलाते किन्तु धर्म कहलाते है।

धर्म और गुणमें व्यापक व व्याप्य रूपताका मर्म—धर्म सभी गुण नही होते पर गुण धर्म होते है। धर्म व्यापक चीज है और गुण व्याप्य चीज है। जो धर्म गुण स्वरूप होते है उनका तो अविभाग प्रतिच्छेद है और वह पदार्थमे तन्मय रूपसे है, किन्तु जो प्रतियोगी धर्म है, प्रतिजीवी गुण है याने अभावस्वरूप धर्म है उनके अविभागप्रतिच्छेद नही होते, क्योकि वे तो अभावरूप धर्म है और वह अभाव जिस गुणके सद्भावरूप है उसकी तन्मयता है पदार्थ से और उसके सम्बन्धसे अभावके नास्तित्वकी तन्मयता कही जा सकती है। जैसे घटमे पट आदिकका नास्तित्व है तो यह नास्तित्व घटके स्वरूपके अस्तित्वरूप है। सो जैसे अस्तित्वकी घटमे तन्मयता है इसी प्रकार परके नास्तित्वकी भी तन्मयता है। पर अस्तित्व पृथक् हो, नास्तित्व पृथक् हो और फिर ये दोनो तन्मय हो यो नही कहा जा सकता। तो नास्तित्व आदिक धर्म ये धर्म कहलाते है, गुण नही कहलाते। और नास्तित्व आदिक धर्म ये किसीके सद्भावरूप होते है। इस कारण नास्तित्वकी तन्मयता पदार्थमे है तो सही पर वह किसी अस्तित्वरूप होकर तन्मय है। हा नास्तित्व की हानि वृद्धिया नही होती है। जैसे घटमे पररूपका नास्तित्व है तो क्या यो कहा जायगा कि इस नास्तित्व की डिग्रियाँ इस घटमे कम है और इसमे ज्यादह ? प्रत्येक पदार्थ पररूपकी अपेक्षासे पूर्णतया नास्ति होता है। तो यो धर्म और गुणमे अन्तर जानना चाहिए।

गुणोंके कार्यका दर्शन—गुणके सम्बन्धमे इतना जाननेके बाद अब यह समझिये

कि गुणका कोई कार्य होता है या नही ? गुणोकी अवस्था व्यक्ति प्रगट रूपता होती है। गुण वस्तुके अश है, इस अपेक्षासे वे सत् है और सत्की परिणति प्रतिसमय कुछ न कुछ होती ही है। तो जब एक अखण्ड द्रव्यको अखण्डरूपसे निरखते हुए परिणति देखते है तो परिणति भी अखण्ड विदित होती है। और जब उस वस्तुके अंशको निरखते हैं तो परिणति भी अशरूप दिखेगी। जैसे जीवमे ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक शक्तियोको देखा तो अब यो भी दिखेगा कि ज्ञानशक्तिके परिणमन तो ज्ञान है, मति श्रुत आदिक और दर्शन शक्तिके परिणमन है चक्षुदर्शन आदिक। आनन्द शक्तिके परिणमन हैं सुख दु ख आनन्द, तो गुण वस्तुके अश है इस अपेक्षासे वे भी सत् है। एक अखण्ड सत्के अश है। तो परिणति उनकी भी प्रति समय कुछ न कुछ होती है। बस परिणति कहो, कार्य कहो एक ही बात है। पदार्थका जो परिणमन सो अन्यका कार्य। यो ही गुणोका जो परिणमन सो गुणोका कार्य है। वस्तुत परिणमनके सिवाय और कुछ कार्य होता ही नही है, पर किसी निमित्तसे किसी पदार्थमे कुछ परिणमन हुआ तो उन दोनोका नाम लेकर उपचारसे कार्य कहते है, पर वस्तुत प्रत्येक द्रव्यका अपना अपना परिणमन ही उसका कार्य कहलाता है। जैसे एक कारीगरने ईंटे जमाकर भीत बनाया तो कहा यो जाता है कि कारीगरने भीतका निर्माण किया, किन्तु वास्तविक बात यह है कि कारीगर मायने कारीगरका यदि आत्मा कहेगे तो इस कारीगरने अपने आपमे विकल्प भाव परिणाम बनाया और कारीगर मायने यदि शरीर लोगे तो उसने अपने हाथ पैर चलाया। ईंटोमे कुछ भी नही किया, किन्तु उस विकल्पका निमित्त पाकर उसने हाथ पैर आदिककी क्रियाका संयोगका निमित्त पाकर उन ईंटोमे परिणमन हुआ और वे भीतरूप बन गए। यह उपचारसे कहा जाता है कि कारीगरने भीत बनाया। वस्तुत ईंटने ईंटका अपना परिणमनरूप कार्य किया। कारीगरने अपनेमे अपने भावरूप परिणमनका कार्य किया। तो परिणमन होनेका नाम कार्य है। तो गुणोका भी प्रतिसमय परिणमन होता है, इस दृष्टिसे गुणोके परिणमनको गुणोका कार्य कहते हैं।

जीवके दर्शन गुणका कार्य—सक्षेपमे गुण और परिणमनकी बात जानकर अब यह समझिये विशेष रूपसे कि जीवमे जो दर्शन ज्ञान श्रद्धा चारित्र आनन्द आदिक गुण बताये गए है उनका कार्य क्या है ? देखिये कार्य जाननेके लिए स्वरूप भी समझना होगा। जो गुण जिस स्वरूप वाला है उस स्वरूपके अनुसार उस गुणकी परिणति होती है। तो स्वरूप समझिये दर्शनका स्वरूप है सामान्य प्रतिभास। इसमे किसी भी पदार्थका विकल्प नही है, किसी भी पदार्थका जानन भी नही है। तब यह दर्शन आत्माका सोन्मुख प्रतिभास है। स्वयकी ओर उन्मुख होकर जो प्रतिभास होता है, जिसमे किसी भी प्रकारका जानन विकल्प नही है ऐसे प्रतिभासको दर्शन कहते हैं। जैसे शीघ्र समझनेके लिए यो कल्पना करो कि

कोई पुरुष अभी पुस्तकको जान रहा था, अब पुस्तकका जानना छोडकर चौकीको जाननेके लिए तैयार हुआ तो उस प्रसंगमें ऐसी स्थिति बनती है कि चौकीके जाननेका कार्य तो छोड दिया याने उपयोग तो छोड दिया और अभी चौकीके जाननेका उपयोग नही बना सका, ऐसी बीचकी स्थितिमे जो एक प्रतिभास मात्र स्थिति रहती है, जिसमे न चौकी आयी, न पुस्तक आयी, ऐसे सामान्य प्रतिभासको दर्शन कहते है। यहाँ यह बात विशेषतया समझिये‌गा कि ज्ञान गुण जीवमे शाश्वत है तो ज्ञान गुणका परिणमन भी निरन्तर है। तो इस नीतिसे ज्ञान गुणका परिणमन तो रहेगा प्रति समय, पर छद्‌मस्थ जीवोके उपयोग क्रमश होते है। जब ज्ञानमे उपयोग है तब दर्शनमे नही है, जव दर्शनमे उपयोग है तब ज्ञानमे नही है। तो उपयोगकी दृष्टिके यह क्रम है, परतु परिणमनकी दृष्टिसे यह क्रम नही है कि पहिले दर्शनका परिणमन हो, फिर ज्ञान गुणका परिणमन हो। तो उपयोगकी अपेक्षासे ही यहां दर्शनका स्वरूप बताया जा रहा है। कोई मनुष्य पुस्तकको जान रहा था। अब पुस्तकका जानना छोडकर चौकीको जानने चला तो पुस्तकको जाननेका विकल्प तो छूटा। चौकीका जानन उपयोग नही हुआ। इस बीचमे जो सामान्य प्रतिभास होता है उसका नाम दर्शन है।

दर्शन परिणमन होनेपर भी दर्शनविषयका मोहियोंके उपयोगमें अग्रहण---दर्शनका विषय ग्रहणमे यह जीव नही लेता। न ले ग्रहणमे, किन्तु दर्शनका परिणमन और दर्शनका उपयोग सभी जीवोके हो रहा है। उस हो रहे दर्शनके योगमे दर्शन को यदि यह जीव ग्रहण कर ले, समझ ले तो इसका सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्व हो जायगा, पर दर्शनका परिणमन, दर्शनका उपयोग होता ही रहता है, लेकिन उसे आत्मरूपसे या अनुभवन के रूपसे ग्रहण नही कर पाता। दर्शनकी इस व्याख्यामे आप जान गए होगे कि यह ऐसा सामान्य प्रतिभास है जिसे न सम्यक् कहा जा सकता, न मिथ्या कहा जा सकता। और तब यह सिद्ध होता है कि दर्शनगुण सब जीवोमे है तो उसका परिणमन भी सब जीवोमे है, और यहाँ तो यह भी बताया गया कि दर्शन और ज्ञानका उपयोग भी सब जीवोमे है, चाहे वह बहिरात्मा क्यो न हो, पर हाँ इतनी विशेष बात है कि जो दर्शनके इस विषयको याने दर्शनमे जो ग्रहण किया गया उस तत्त्वको, जो आत्मरूपसे श्रद्धा करता है वह अन्तरात्मा है, और दर्शन होकर भी दर्शनके विषयको अपने लक्ष्यमे जो नही ले सकता है वह बहिरात्मा है। और यही आत्माका अंत वैभव जब परखा जाता है तब विषादकी बात यही उपस्थित होती है कि सर्व रत्न होकर भी, वैभव ऋद्धि समृद्धि होकर भी यह जीव उसे नही जान पा रहा और पदार्थोंसे आनन्दकी अभिलाषा करके भिखारी वन रहा है। जैसे कोई पुरष जिसके घरमे धन गडा हुआ है, लेकिन उसे इसका पता नही है तो घरमे विशेष

धन होनेपर भी वह तो दरिद्र है, भिखारी है। अनुभव तो दरिद्रताका करता है। हाँ है उसके घरमे धन। कभी बुद्धि जगे, कोई प्रसंग बने तो खोदनेसे वहाँ धन प्राप्त हो जायगा। यो ही जानो कि इस जीवमे यह दर्शनगुण दर्शन सामान्य प्रतिभास है, जिसमे आकुलता नही, विकल्प नही, क्षोभ नही। ऐसे विशुद्ध स्वरूपका ज्ञान नही है जीवको। अतएव यह अपनेको दरिद्र बनाये हुए है। बाह्यपदार्थ इसके समागममे रहे कैसे ? वे तो बाह्य ही हैं। कदाचित् पुण्यके उदयमे कुछ बाह्यपदार्थ समागममे भी आ गए तो उनका विश्वास ही क्या है कि ये पदार्थ सदा साथ रहेगे। कुछ दिन साथ भी रहे तो उन दिनोमे भी इन बाह्य समागमोने शान्तिसे, चैनसे न रहने दिया। वहाँ भी विविध आकुलतायें इसके होती रही। तो यह जीव अपने आपमें दर्शन सामान्य प्रतिभास जैसे विशुद्ध भवन हो रहे है, फिर भी परिज्ञान न होनेसे यह आशा करके भिखारी बन रहा है। तो दर्शनगुण इस जीवमे है जिसका स्वरूप और कार्य सामान्य प्रतिभास है। यद्यपि सिद्धान्तमे दर्शनके चार भेद किए गए हैं— चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। पर यह नाम उपचारसे निमित्त सम्बध से किया गया है। चक्षुइन्द्रियजन्य ज्ञानसे पहिले जो दर्शन होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। उस दर्शनमे चक्षुका सम्बध नही है। आँखोसे देखनेका नाम चक्षुदर्शन नही है। वह तो चाक्षुस ज्ञान है। उस चाक्षुस ज्ञानसे पहिले जो सामान्य प्रतिभास हो या कहो—जिस दर्शन के बाद चाक्षुस ज्ञान होता है उपचारसे उसे हम चक्षुदर्शन कहते है। तो दर्शनमे स्वत सही रूपसे कोई भेद नही है। यह उपचारसे भेद किया गया है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनको भी समझिये। चक्षुइन्द्रियको छोडकर बाकी इन्द्रिय और मनसे जो ज्ञान किया जाता है उस ज्ञानसे पहिले होने वाले दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते है। यहाँ पर भी किसी स्पर्शन आदिक इन्द्रियका कार्य नही है दर्शन। वह तो निर्विकल्प है, सामान्य प्रतिभासरूप है। वह यत्न जिस ज्ञानके लिए होता है उस ज्ञानकी जो विशेषता है उस ही नामसे इस दर्शनको पुकारने लगते है।

दर्शनमें ज्ञानके अर्थ होने वाली यत्नरूपता—अब यहाँ दर्शनके सम्बधमे एक दूसरा तथ्य भी प्रकट होता है। दर्शन है ज्ञानके लिए होने वाला यत्न। एक ज्ञानको छोडकर जब हम दूसरे पदार्थका ज्ञान करनेके लिए चलते हैं तो यह दर्शन नवीन ज्ञानकी प्राप्तिका यत्न बनता है। और यद्यपि दर्शन और ज्ञानकी पद्धतिमे अन्तर है और मुकाबलेमे उल्टीसी बात है कि ज्ञान तो होता है विकास और परके उन्मुखरूपसे अपने विस्तारको फैलाता हुआ, और दर्शन होता है स्वके उन्मुख केन्द्रमे समाये जानेकी पद्धतिसे, लेकिन यह दर्शन ज्ञानकी निष्पत्तिका यत्न है। जैसे जब बालक लोग ऊँची कूद करते है तो तीन-चार फिट ऊपर डोरी बाँध देते हैं। कूदने वालेकी यह पद्धति होती है कि जिस जगहसे उठकर वह कूदेगा उस जगहपर नीचे वह गडनेका यत्न करेगा और जितना नीचेकी ओर गडाव होगा उतना

उसका उठाव और कूदना बनेगा। तो वह नीचेका गडाव ऊँचे उठनेका प्रयत्न है। ऐसे ही द्रव्योका, परपदार्थोका, वस्तुओका जाननेका यह यत्न है--दर्शन। इससे एक शकाका भी समाधान बन जाता। कोई यह तर्क करे कि जिस वस्तुका जानना छूटा, जिसे कि हम चक्षुसे जान रहे थे। उसके बाद हम स्पर्शनइन्द्रियसे चौकीको जानने लगे तो दर्शन तो भीतमे रहा। उस दर्शनको अचक्षुदर्शन कहते है। नवीन ज्ञान चूंकि अचक्षुसे होगा इस कारण अचक्षुदर्शन है। तो यह प्रश्न होता कि जिस ज्ञानको छोडकर चले उसके नामपर दर्शनका नाम क्यो नही रखा गया ? तो उसका समाधान इसमे ही प्रविष्ट है कि दर्शन होता है नवीन ज्ञानको उत्पन्न करनेका यत्न। इस कारण नवीन ज्ञानके नाम पर ही दर्शनका नाम होता है।

जीवके ज्ञानगुणका कार्य--वस्तु है और वह निरन्तर परिणमती रहती है, इतना मात्र मर्म है पदार्थका। अब वस्तु है इसको जब भेददृष्टिसे देखते है तो अनेक शक्त्यात्मक प्रतीत होती है, क्योकि परिणमन अनेक प्रकारसे देखा जाता है। तो जब वस्तु निरन्तर परिणमती है तो इसका अर्थ है कि वस्तुमे जितनी भी शक्तियाँ हैं उन सब शक्तियोका निरन्तर परिणमन होता है। तब यहाँ यह ज्ञातव्य है कि किस शक्तिका क्या कार्य है ? कार्य कहो अथवा परिणमन कहो या होना कहो, सबका मतलब यहाँ एक है। कार्य शब्द तो लोकव्यवहारकी दृष्टिसे है। वस्तुत करना किसीका नाम नही है, क्योंकि एक पदार्थ दूसरे पदार्थमे कुछ कर सकता नही है क्योकि भिन्न २ अस्तित्व है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही प्रदेशोमे कुछ परिणमन करेगा तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नही करता। इसका कारण दो द्रव्योके प्रसगमे तो कार्य शब्दका कोई मतलब नही रहा। अब एक द्रव्यके होनेकी बातमे देखिये—कोई द्रव्य है और वह प्रकृतिसे अपने सत्त्वके ही कारण निरन्तर परिणमता रहता है तो एक पदार्थने एकमे कार्य किया। तो कार्य शब्द उपचारसे माना गया है, फिर भी चूंकि जो शब्द लोकव्यवहारमे प्रसिद्ध हो जाता है उसको अलग हटाया नही जा सकता, तब क्रिया ढूंढना इसका अर्थ है परिणमन ढूंढना। पदार्थकी शक्तियोके क्या क्या परिणमन होते है यह इस प्रकरणमे कहा जा रहा है। यहाँ दर्शनगुणका कार्य तो बताया गया था, अब ज्ञानगुणके कार्यकी जिज्ञासा हो रही है। ज्ञानगुणका कार्य क्या है ? जानन ज्ञानगुणका कार्य है। ज्ञानशक्तिका परिणमन जानन है। जानन अर्थात् ज्ञेयका प्रतिभास होना, जाननका क्या तात्पर्य है ? सो शब्दोमे कहा गया कि सबके अनुभवमे है कि ज्ञानका कार्य इस प्रकार जानन होना है। ऐसा जानन जो कि जानना मात्र है वह है ज्ञानशक्तिका कार्य। कितना विशुद्ध कार्य यहाँ कह रहे हैं। चाहे कोई भी जीव हो। ज्ञानका कार्य क्या है ? जब यह पूछा जायगा तो उत्तर होगा—यह सिर्फ जानन। उसके साथ जो रागद्वेष लगे हैं अथवा कोई विकल्प लगे है वे सब ज्ञानगुणके कार्य नही है। जैसे विजलीका कार्य क्या है ? प्रकाश

करना। अब लट्टू के सम्बंधसे हरा पीला आदिक प्रकाश हो रहा है, पर प्रकाशमे जो विशुद्ध प्रकाश है याने हरा पीला आदिककी अपेक्षा विना बिजलीकी शक्तिके प्रभावमे जो कुछ भी कार्य है प्रकाश, वह प्रकाश सर्वत्र है, चाहे वैसे ही लट्टू का प्रकाश हो रहा हो। ऐसे ही ज्ञान मे जो जानन है वह जानन भेदरहित है, जाननमात्र है। उसमे न विकार है, न शुभ अशुभपना है। इसी कारण ज्ञान न स्वरूपसे सम्यक् है और न मिथ्या है। स्वरूपसे जो जाननमात्र है। सम्यक् होना और मिथ्या होना यह तो नैमित्तिक प्रभाव है, सासारिक असर है। जब मिथ्यात्व भाव रहता है तब तो ज्ञान मिथ्या कहलाता है और जब सम्यक्त्व भाव रहता है तब ज्ञान सम्यक् कहलाता है।

ज्ञानके प्रकार——ज्ञानके जो परिणमन है उन परिणमनोको अनेक दृष्टियोसे अनेक भागोमे बताया जा सकता है। फिर भी जो एक आचार्यसम्मत प्रसिद्ध दृष्टि है उसकी अपेक्षासे ज्ञानके प्रकार ५ होते हैं। ज्ञानशक्तिका जो विकास होता है वह विकास कही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे हुआ और कही ज्ञानावरणके क्षयसे होता है। तो क्षयोपशममे अविधता होती है, अतएव क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ ज्ञान नाना जातियोमे हो सकता है और ज्ञानावरणके क्षयसे होने वाला ज्ञान केवल एक निज विशुद्ध स्वरूप ही होगा। तब ज्ञानके परिणमन ५ है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। मति, श्रुत, अवधि मिथ्यात्वका सम्बध पाकर कुमति, कुश्रुत और कुअवधि कहलाते हैं। तो आत्मामे मुख्य धर्म हुआ ज्ञान। ज्ञानशक्तिसे आत्माकी पहिचान होती है अथवा निरख लीजिए कि आत्मा ज्ञानमात्र है। ज्ञान हो, चैतन्य हो तब ही वहाँ चारित्र, श्रद्धा अथवा अन्य साधारण, असाधारण धर्मोकी अवस्था सोची जा सकती है। उस ज्ञानशक्तिका कार्य है जानना। वह जानना निमित्त भेदसे ८ प्रकारसे होता है। सम्यग्दृष्टिके ५ ज्ञान और मिथ्यादृष्टिके कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन ज्ञान होते है। ज्ञानके उत्पन्न होनेकी विविध पद्धतियाँ हैं। कही इन्द्रिय और मनके निमित्तसे जान पाते हैं वह है मतिज्ञान। कही मनकी प्रधानता आश्रयसे समझ पाते हैं वह है श्रुतज्ञान। कही इन्द्रिय मनकी सहायता बिना कुछ सीमामे नियमित रूपी पदार्थोंको जान पाते है——वह भूत और भविष्य तथा क्षेत्रोकी सीमा लिए हुए है। उसे कहते हैं अवधिज्ञान। और जो सीमा लिए हुए दूसरेके मनमे आये हुए विचारको पदार्थोंको जान लेता है वह है मन पर्ययज्ञान। जहाँ केवल सर्व ज्ञानावरणका विनाश हो जाता है, केवल आत्मविकास रह जाता है उस समय जो ज्ञानपरिणति है उसे कहते हैं केवलज्ञान और मति, श्रुत, अवधि मिथ्यात्वके सम्बधमे कहलाते हैं कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान। इन सब ज्ञानोमे जो जाननपरिणति है वह है ज्ञानका कार्य।

दर्शन और ज्ञानका अन्तर व अन्तरपरिचायक स्वरूप——यहाँ तक दर्शन और ज्ञानके

कार्य बताये गए । इन दोनोके स्वरूप और कार्यको सुनकर यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि दर्शन और ज्ञानके अन्तर क्या है ? तो इसका अन्तर संक्षिप्त रूपसे यो कहना चाहिए कि अन्तर्मुख चित्प्रकाशको दर्शन कहते है और बहिर्मुख चित्प्रकाशको ज्ञान कहते है । जो प्रतिभास स्व अत अभिमुख हो रहा है कि स्वके बारेमे भी विकल्प नही उठाया जाता है, जहाँ कोई विकल्प नही उठता वहाँ आश्रय स्व ही होता है । पर इस स्वमे भी उस तत्त्वका प्रतिभास हो रहा है । जहा ज्ञेयाकार रूपसे स्वका विकल्प नही है ऐसे अन्तर्मुख चित्प्रकाश को दर्शन कहते है ।

बहिर्मुख चित्प्रकाश जानने वाला यह आत्मा है और जान रहा है खुदमे ही मिला करके । इतने पर भी यह जो खुदमे जानन उपयोग हो रहा है यह बहिर्मुख पद्धतिसे हो रहा है । लो परको जाना तब तो बहिर्मुख रूपसे चित्प्रकाश होता ही है, किन्तु जब स्वको भी जाना तो जाननका नाता ऐसा है कि जहाँ बहिर्मुख पद्धति हो ही जाती है । तो यो अन्तर्मुख चित्प्रकाश का नाम दर्शन है और बहिर्मुख चित्प्रकाशका नाम ज्ञान है । यो दर्शन और ज्ञानका विषय सुनकर यह विचार उठना प्रासंगिक है—तो क्या एक अन्तरसे हम यह समझें कि दर्शनका विषय तो आत्मा ही है और ज्ञानका विषय बाह्यपदार्थ ही है ? ऐसा विचार उठना एक विवेक मार्गसे होता है, क्योकि दर्शनमे है अन्तर्मुखता और ज्ञानमे है बहिर्मुखता । तो इस विधिसे जब हम समन्वय करते है तो वहाँ यह बात विदित होती है कि एक अपेक्षासे तो ज्ञानका विषय आत्मा व बाह्यपदार्थ है, चाहे आत्माको जाना अथवा बाह्यपदार्थको जाना, जाना बहिर्मुखताकी पद्धतिसे, क्योकि जाननेकी प्रक्रिया ही ऐसी है कि वह अपेक्षाकृत बहिर्मुख पद्धतिमे रहती है । यद्यपि बहिर्मुखके अन्य भी अर्थ हो सकते है और ऐसा बहिर्मुख होना जो मिथ्यात्वमे ही सम्भव है, उस बहिर्मुखताकी बात नही कह रहे । निर्विकल्पतासे हटकर ज्ञेयाकार ग्रहण रूप विकल्प होना यह है बहिर्मुखता । तो आत्मा भी बहिर्मुख पद्धतिसे जाना जाय अथवा बाह्यपदार्थ बहिर्मुख पद्धतिसे जाने जायें, वह सब ज्ञान कहलाता है ।

दर्शनका विषय आत्मा या आत्मा एवं बाह्य पदार्थ—दर्शनमे चूंकि अन्तर्मुखता है, इस कारण उसका विषय आत्मा ही हो सकेगा । दर्शनके सम्बन्धमे यद्यपि ऐसा भी कथन है कि पदार्थोमे भेद न करके, पदार्थोका आकार ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं । तो पदार्थोका सामान्यग्रहण दर्शन कहलाता है । ऐसे विवेचनमे भी अर्थ यही आया कि आत्माका जो अन्तर्मुख चित्प्रकाश है वह है दर्शन । देखिये जब किसी भी बाह्य पदार्थका आकार कल्पनामे न लिया और बाह्य पदार्थमे कोई भेद न किया तव इस दृष्टा की क्या पद्धति होती है कि उसके लक्ष्यमे बाह्यपदार्थ नही रहते, क्योकि आकार ग्रहण नही कर रहा । तो बाह्यपदार्थ जब इसके लक्ष्यमे न रहा तो आत्मा तो ज्ञान दर्शन दोनोका

का वास्तविक आधार है, ज्ञान दर्शन शक्तियाँ तो आत्माकी अभेद शक्तियाँ है। तो वाह्य पदार्थ छूट गए उपयोगमे, लेकिन यह स्व कहा जाय ? यह तो है ही। तव जहा वाह्य पदार्थका आकार ग्रहण न किया गया वहाँ विपय वना यह स्व आत्मा। तो एक दृष्टिसे यह कहा जायगा कि ज्ञानका विपय आत्मा व वाह्यपदार्थ दोनो होते है और दर्शनका विषय आत्मा होता है। पर एक दृष्टिसे निरखा जाता है कि वाह्य पदार्थोंका सामान्य ग्रहण भी दर्शन वताया गया है। तो वहाँ यह विदित होगा कि ज्ञानका भी विषय आत्मा व वाह्य दोनो पदार्थ हैं और दर्शनका का भी वाह्य आत्मा और वाह्य दोनो पदार्थ है।

ज्ञान और दर्शनके स्वरूपके परिचयमें दो दृष्टियोंका आलम्बन——उक्त प्रकारसे दो दृष्टियोसे ज्ञान एव दर्शनके वारेमे दो वातें विदित होने पर अव यह जिज्ञासा होती है कि पहिली दृष्टिसे क्या भाव निरखा जाता है जिस दृष्टिमे ज्ञानका विषय आत्मा व वाह्यपदार्थ है और दर्शनका विषय आत्मा है। वहा परखा क्या गया ? क्या भाव उसका हुआ ? भाव यह है कि भेददृष्टिसे प्रतिभास होनेका नाम ज्ञान है और अभेददृष्टिसे प्रतिभास होनेका नाम दर्शन है। सो इस नीतिके अनुसरणमे यह बात तो प्रकट ही है कि वाह्यका प्रतिभास तो भेददृष्टिसे ही होता है क्योकि जानने वाला यह आत्मा है और जाननेमे जो आया ज्ञेय पदार्थ वह पर है। तो यह उपादान उन परविपयोको अभेदरूपसे वैसे ग्रहण करेगा ? तो वाह्य पदार्थोका प्रतिभास तो भेददृष्टिसे ही होता है। यही बात उस पहिली दृष्टिसे कही गई। ज्ञान और दर्शनके स्वरूपकी वात है। अब दर्शनकी वात देखो तो अभेद दृष्टिमे प्रतिभास होनेका नाम दर्शन है। देखिये——आत्माको जाना ज्ञानने भी, लेकिन आत्मामे ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र आदिक गुण ही आत्माकी पर्याय देखे गए तो वहा भी वह आत्माका प्रतिभास भेददृष्टिसे हुआ। हाँ गुणपर्यायोका भेद न करके, आत्मामे आत्मतत्त्वका भेद न करके क्रिया कारक आदिक भेदोका सम्बन्ध करके जब केवल अभेद आत्माका सामान्यतया प्रतिभास होता है तो वहा दर्शन है और उसका विषय आत्मा ही पडा। यह भाव हुआ इस सामान्य का कि ज्ञानका विषय आत्मा व बाह्य पदार्थ दोनो होते है और दर्शनका विषय आत्मा होता है। अब उस दृष्टिसे परखिये-जिस दृष्टिमे यह निरखा गया कि ज्ञानका भी विषय बाह्य व आत्मा दोनो है तथा दर्शनका भी विषय बाह्य व आत्मा दोनो है। उसमे ज्ञान तो स्वपर प्रकाशक है ही, यह अनेक ग्रन्थोमे सहमत है, स्व और परका व्यवसाय करने वाला ज्ञान होता है, यह पहिली दृष्टिमे भी कह दिया गया और दर्शन स्वपरप्रकाशक हैं यह भी कह दिया। अब यहा यह देखिये कि दर्शनने कैसे स्वका प्रतिभास किया ? ज्ञानको जो प्रतिभास किया ऐसे प्रतिभासमे रहने वाले आत्माको दर्शन ने प्रतिभासा तो इसका अर्थ यह हुआ कि स्व और परका प्रकाश करने वाले ज्ञानसे तन्मय आत्माको दर्शन ने प्रतिभासा, सो स्व और

परका प्रतिभास लिया। जैसे कोई मनुष्य बाहर अगल बगल पीछे दृष्टि फैलाकर निरखता है तो उसे पीछेकी सब घटनाये जाननेमे आ रही है। कौन खडा है, किस तरह प्रवृत्ति कर रहा है ? और वह मानो किसी दर्पणको लिए हुए ही बैठा हो, जरा भी गर्दन न भुकाता हो तो वहा केवल दर्पणको देख रहा है पर देखा क्या ? पीछे खडे हुए सब लडके भी दिखे। तो यहां पद्धतिसे देखिये कि आखो ने साक्षात् उन लडकोको नही देखा किन्तु उन लडकोंका जिसमे प्रतिभास है ऐसे दर्पणने देखा तो इस देखनेमे दर्पण और वे समस्त लडके सब प्रतिभासमे आये। तो इस दर्पणको देखने वाले पुरुषका विषय क्या हुआ ? दर्पण भी और वे बाह्य पदार्थ भी। तो यो ही जीव दर्शनशक्तिके द्वारा स्वका प्रतिभास करता है तो वह स्व कैसा है जैसे कि वह दर्पण कैसा था ? गेद आदिककी फोटोसे सहित। तो इसी प्रकार यह आत्मा कैसा है ? ज्ञान द्वारा जो जो कुछ हमने जाना, जो यह ज्ञेयाकार हुआ उनसे तन्मय यह आत्मा है जिस दर्शनने प्रतिभासा। तो अब इस दृष्टिसे यह समाधान मिलता है कि दर्शनने प्रतिभास किया। स्व और पर दोनोका प्रतिभास किया, लेकिन ज्ञानके प्रतिभास की पद्धति न्यारी है और दर्शनके प्रतिभासकी पद्धति न्यारी है। इस दिशामे यह कहना युक्त हो गया कि ज्ञान भी स्व और परका प्रकाश करता है और दर्शन भी स्व और परका प्रतिभास करता है। यो ज्ञान और दर्शन दोनो गुण जो आत्मामे प्रधान है उनका कार्य बताया गया।

आत्मीय श्रद्धा शक्ति--आत्मामे श्रद्धा शक्ति भी होती है, अर्थात् यह जीव किसी न किसी तत्त्वमे हितरूप श्रद्धा बनाये रहता है। चाहे किसी जीवमे यह श्रद्धा व्यक्तरूपसे न विदित हो, फिर भी जहाँ वह रम रहा है वहाँकी उसे श्रद्धा है और उस श्रद्धाके बलपर ही उस तत्त्वमे वह रम रहा है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीवमे श्रद्धाशक्ति होती है, उस श्रद्धागुणका कार्य क्या है, सो सुनो। अपने आपके बारेमे या अपनी पर्यायमे कही रुचि प्रतीति होना यह श्रद्धा गुणका कार्य है, चाहे कोई मिथ्यादृष्टि भी जीव है उसे भी अपने बारेमे श्रद्धा है। अपनेको सुखी दुखी जाति कुल वाला, अमुक नाम वाला या जिस किसी भी शरीरमे रह रहा है उस पर्याय मात्र किसी भी प्रकार अपने आपकी श्रद्धा बनाये हुए है। सम्यग्दृष्टि जीव जिसे अपने आपमे जिसका कि सत्त्व है स्वयमे सत्त्वमात्र अपने आपकी श्रद्धा बनाये हुए है। जब तक अपनी किसी पर्यायमे रुचि रहती है, हितका विश्वास रहता है तब तक तो समझिये कि वह श्रद्धा गुणका विपरीत परिणमन है और जब परभावसे हटकर अनादि अनन्त अखण्ड चैतन्यमय निज आत्मतत्त्वमे रुचि अथवा प्रतीति व हितका विश्वास हो जाता है तब समझिये कि वह श्रद्धा गुणका स्वभावपरिणमन है। श्रद्धा गुणके स्वभावपरिणमन को सम्यग्दर्शन कहते है और श्रद्धा गुणके विपरीत परिणमनको मिथ्यादर्शन कहते है। ग्रन्थों

मे इसका नाम सम्यक्त्व गुण दिया है और उस सम्यक्त्व गुणके दो प्रकारके परिणमन हैं-- एक सम्यक्त्व रूप परिणमम दूसरा मिथ्यात्वरूप परिणमन । जब सम्यक्त्व गुण अपने सही स्वाभाविक परिणमनमे होता है तो उसे सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व आदिक नामोसे कहा जाता है । उसही सम्यक्त्व गुणका जब विपरीत परिणमन है तो उसका नाम मिथ्यात्व अथवा मिथ्यादर्शन है और जब मिश्र परिणमन है, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणमन है, जिसे न केवल सम्यक्त्व कह सकेंगे और न मिथ्यात्व कह सकेंगे, उसे कहते है सम्यग्मिथ्यात्व । और जब किसी जीवके सम्यग्दर्शन तो छूट गया और मिथ्यादर्शन नही हो पाया ऐसी कोई अवस्था होती है उस अवस्थामे यद्यपि परिणाम तो अयथार्थ ही है, लेकिन वहा सासादन रूप परिणमन कहते है ।

श्रद्धा गुणका सम्यक् परिणमन होनेपर ज्ञानादि गुणोंकी समीचीनता—श्रद्धा गुण जब सम्यक् बन जाता है तब अर्थात् सम्यक्त्वके होने पर ज्ञानादिक गुण भी सम्यक् हो जाते है और जब श्रद्धा गुणका विपरीत परिणमन रहता है तब ज्ञानादिक गुण विपरीत हो जाते है । जहाँ श्रद्धा होती है उस ही ओर जीवकी लगन हो जाती है । मोही जीव जो धन वैभव परिजन यश आदिकमे लीन हो रहे हैं उसका कारण ही यह है कि उनका हित-विश्वास इन ही परपदार्थोमें है । वे यह समझते है कि धन वैभव आदिक होनेसे ही हमारी उच्चता है और जो योगी साधुजन आत्मतत्त्वमे ही लीन रहते हैं, करोडोकी सम्पदा त्याग कर बडे बडे राज्य वैभव छोडकर बनमे एकान्तमे निर्ग्रन्थ होकर अकेले खुश रहा करते हैं, जिनके चित्तमे प्रसन्नता बनी रहती है वे कहाँ रमण करते हैं ? अपने आत्मामे । और ऐसा आत्मरमण अथवा प्रसन्नताका कारण है अपने आपके अन्त स्वरूपका यथार्थ भान होना । तो जैसी श्रद्धा होती है उस ही प्रकारकी परिणति और मग्नता होती है । तो श्रद्धा शक्ति भी जीवके निरन्तर है ।

आत्माके चारित्र गुणका कार्य—चारित्र शक्ति भी जीवके निरन्तर है । उस चारित्र गुणका कार्य है किसी न किसी ओर झुके रहना । जब चारित्र गुणका विभावरूप परिणमन रहता है, चारित्रगुण विपरीत परिणम रहा है तब तो रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायोमे चारित्र गुणका कार्य है । कार्यके मायने परिणमन । चारित्र गुण ही इस समय रागादिकरूप परिणम रहा है । और जब चारित्र गुण स्वभावरूप परिणमता तब वह जीव शान्त शुद्ध विषय कषायरहित अतस्तत्त्वमे स्थिर रहता है, यह चारित्रगुणका स्वाभाविक परिणमन है । इसे अगर सक्षेपमे कहे तो चारित्रगुणका स्वाभाविक परिणमन है कषायरहित हो जाना । आत्मा एक अखण्ड पदार्थ है । उसको समझनेके लिए आत्माके जो परिणमन हैं उन परिणमनोके अनुसार इसमे शक्तियोकी छाँट की जा रही है । परिणमन

है स्थूलतत्त्व और शक्ति है सूक्ष्मतत्त्व। स्थूल लिङ्गके द्वारा सूक्ष्मतत्त्वका परिचय किया जाता है। तो जैसे जैसे परिणमन जीवमे पाये जाते है और वे परिणमन इकहरे हैं। तो उनके आधारभूत शक्ति एक है। जैसे रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये परिणमन एक समयमे कोई एक हुआ तो मालूम हुआ कि ये किसी शक्तिके परिणमन है, जिस शक्तिमे यह परिणमन भी हुआ और ऐसे ऐसे अन्य परिणमन भी होते है। तो इस विकासको निरखकर आत्मा की शक्तिका परिचय किया जा रहा है।

जीव आनन्द गुणके कार्य—आत्मामे सुख दुःख आनन्द भी पाये जाते है, जिस बात को इस ग्रन्थके प्रारम्भमे ही बताया गया। जीवोको सुख पानेकी अभिलाषा अधिक रहती है और वे सुख पानेका उपाय करते हैं। उन्हे यह विदित नही है कि जैसे दुःख क्षणिक है, पराधीन है, इसी प्रकार सुख भी क्षणिक है और पराधीन है। दुःख जैसे आत्माकी विकृत अवस्था है इसी प्रकार सुख भी आत्माकी विकृत अवस्था है। सुख दुःख दोनोसे रहित एक शुद्ध आनन्द परिणमन होता है वह है जीवका शुद्ध परिणमन। इन विकासोकी ओरसे जब शक्तिका परिचय किया जाना है तो फिर शक्ति विदित होती है। जीवमे आनन्द नामक गुण है। जितने गुण होते है वे पदार्थके स्वरूप कहलाते है। गुण शाश्वत तन्मय है अथवा द्रव्यसे अलग चीज नही हैं। द्रव्यको अखण्ड रूपसे जाना वह द्रव्य है और द्रव्यको खण्ड करके याने बुद्धिमे उसके तिर्यक् अश कल्पनायें करके जब जाना भावकी दृष्टिसे तो वह गुण कहलाता है। आत्मामे आनन्द नामका गुण है जिस गुणका परिणमन है आनन्द सुख व दुःख। सुख और दुःख तो विकृत परिणमन है, हेय तत्त्व है और आनन्द आत्माका विशुद्ध परिणमन है।

जीवकी क्रियावती शक्तिका कार्य—आत्मामे कोई भी प्राणी जब यहांसे किसी दूसरे नगरको जाता है तो शरीर जा रहा है, यह भी विदित हो रहा है और आत्मा भी साथ जा रहा है। उसमे क्रिया होती है। यही बैठे हुए हाथ पैर हिलाना अथवा कोई क्रिया करना उसमे भी आत्मप्रदेशमे क्रिया होती है। तो उस क्रियाकी आधारभूत इच्छा भी एक शक्ति है जिसका नाम है क्रियावती शक्ति। सीधा टेढा गोल अटपट किसी भी प्रकार गमन होना यह क्रियावती शक्तिका कार्य है। क्रियावती शक्तिका शुद्ध कार्य तो यो समझिये कि निष्क्रियता है, पर उसमे निकट शुद्ध क्रिया है ऊर्द्धगमन। जब कर्मक्षय होनेपर जीवकी ऊर्द्धगति होती है, एकदम ७ राजू ऊपर जाकर सिद्ध लोकमे विराजमान हो जाता है, या ऊर्द्धगमन क्रियावती शक्तिका शुद्ध गमनरूप परिणमन है। ससारी जीव भी कर्मप्रेरित होकर कभी ऊर्द्धगमन करते हैं। जैसे स्वर्गमे जन्म लेना या ऊपरके त्रस स्थावरमे जन्म लेना। इसमे भी ऊपर गया वह जीव, लेकिन उसका वह ऊर्द्धगमन शुद्ध गमनरूप परिणमन नही है। जैसे कोई जीव नरक जाय तो वह सीधा नीचे गमन करता है? कर्मप्रेरित होकर, इसी तरह

लेने वाला ससारी प्राणी ऊर्द्धगमन करता है वह भी कर्मप्रेरणासे होता है। उसे स्वाभाविक परिणमन न कहेगे। और परमार्थत तो सदा रहने वाला निष्क्रिय परिणमन क्रियावती शक्तिका एक विशुद्ध परिणाम है।

जीवकी योगशक्तिका कार्य—जीवमे क्रिया न करते हुए अथवा क्रिया करते हुए प्रदेशके परिस्पद होनेकी भी शक्ति है। न भी गमन करे, एक ही जगह बैठा है, फिर भी प्रदेश परिस्पद होता है। गमन करते हुएमे भी होता है। इस वृत्ति परिस्पंदोके आधारभूत शक्तिका नाम है योगशक्ति। इस योगशक्तिके दो प्रकारके परिणमन है। शुद्ध स्वाभाविक परिणमन तो है परिस्पद रहित रहना, पूर्ण स्थिर रहना और विभावपरिणमन है प्रदेश परिस्पद। अयोग अवस्था १४ वें गुणस्थान एव सिद्ध अवस्थामे रहती है। गमन करते हुए भी अयोग रहे, एक जगह रहते हुए भी अयोग रहे, गमन करते हुए भी योग रहे और एक जगह रहकर भी योग रहे, ये सब विकल्प बन सकते है। १४ वे गुणस्थान वाला जीव एक ही जगह है लेकिन योगरहित है। सिद्ध भगवान अनन्त कालके लिए एक ही जगह स्थित रहते है और योगरहित है। सिद्ध होनेके लिए जो गमन होता है १४ वें गुणस्थानके अन्तमे एक समयमे ७ राजू प्रमाण गमन कर जाता है, उस समय क्रियावती शक्तिका शुद्ध गमन परिणमन होता रहता है लेकिन योगरहित अवस्था है। यहाँ ससारी जीवोमे कोई जीव गमन कर रहा हो तब भी योग है और एक जगह स्थिरतासे स्थित हो तो भी वहाँ योग है। योगशक्ति नाम है आत्मप्रदेशोमे परिस्पद कर देनेकी शक्तिका। यो आत्मामे जितनी शक्तियाँ है उन सब शक्तियोके निरन्तर परिणमन होते हैं। कोई भी गुण परिणमन शून्य नही होता। जिन गुणोका परिणमन स्वाभाविक हो रहा है, उन परिणमनोमे अनेक गुणोके परिणमनमें यह विदित नही हो पाता कि परिणम क्या रहा है यह, लेकिन शान्त होना स्थिर होना, निष्क्रिय होना, परिस्पदरहित होना यह भी तो परिणमन है, चाहे स्वाभाविक परिणमन हो अथवा विभावरूप परिणमन हो, परिणमन प्रत्येक गुणका निरन्तर होता रहता है। जैसे दर्शनगुण और ज्ञानगुणमे उपयोग छद्मस्थ जीवोके कहाँ एकमे होगा? और इसी कारण बताया गया है कि जब ज्ञानोपयोग है तब दर्शनोपयोग नही, जब दर्शनो-पयोग है तब ज्ञानोपयोग नही। तो भले ही उपयोग न हो, कोई एक ही हो, लेकिन ज्ञान और दर्शन शक्तिका परिणमन जीवमे निरन्तर हो रहा है। तो जितनी भी शक्तिया हैं वे सब शक्तियाँ निरन्तर परिणमती हैं, तब समझना चाहिए कि द्रव्य तो है वह समग्र आत्मा और गुणपर्याय वाला है, शाश्वत है, उस शाश्वत आत्मामे जो शाश्वत ही रहे ऐसा भेद है, वह गुण कहलाता है और जो विनाशीक हो ऐसा भेद पर्याय कहलाता है।

पुद्गल द्रव्यकी शक्तियां और उनके कार्य—गुणोके सम्बन्धमे कुछ और विशेष

जानकारी करनेके लिए एक पुद्गल द्रव्यका उदाहरण लीजिए। पुद्गल द्रव्यमे गुण मुख्यतया ४ माने गए है--रूप, रस, गंध, स्पर्श। शब्दको गुण नही कहा है, क्योकि शब्द पुद्गल मे निरन्तर नही होता। जब दो पदार्थोंका सयोग अथवा वियोग होता है तब ऐसा ही निमित्त पाकर वहाँ शब्दकी उत्पत्ति होती है। जैसे रूप पुद्गलमे निरन्तर रहता है। कोई सा भी रूप हो वह है रूपकी पर्याय, पर काला, पीला आदिक रूप जिस रूपशक्तिके परिणमन हैं वह रूपशक्ति पुद्गलमे निरन्तर है, इसी प्रकार खट्टा मीठा आदिक रस जो व्यक्त होते है वह परिणमन है। उन परिणमनोके आधारभूत जो शक्ति है उसे रसशक्ति कहते है। गध दुर्गन्ध सुगध, कम सुगंध है, अधिक सुगध है, कम दुर्गन्ध है, अधिक दुर्गन्ध है यो नाना परिणमन जिस एक शक्तिके होते हैं उसका नाम है गधशक्ति। इसी प्रकार रूखा चिकना आदिक स्पर्श, ये परिणमन है। ये जिस शक्तिके परिणमन है उसका नाम है स्पर्शशक्ति। यो पुद्गल द्रव्यमे चार गुण कहे गए है। रूप गुण — जो चक्षुइन्द्रियसे जाना जाता है वह रूपगुणका कार्य है– जैसे काला, नीला, पीला, लाल, सफेद आदिक। एक आममे काला, नीले, हरा, पीला, लाल, सफेद आदिक ये परिणमन क्रमसे हो गए, पर जिस समय जब जो भी बदल हुई है उस बीच अन्तर नही आया। जब नीला आम हरा बन गया। छोटा आम वडा होने पर हरा हो जाता है तो नीलाका तो व्यय हुआ और हरेका उत्पाद हुआ, पर यह किसमें हुआ ? कौन बना बिगडा ? रूप गुण। वह रूपगुण चक्षुइन्द्रियसे तो नही जाना गया, चूँकि रूप शक्ति है, पर उसका जो व्यक्त रूप परिणमन है नीला पीला आदिक वह चक्षुइन्द्रियसे जाना जाता है। तो जो चक्षुइन्द्रियसे जाना गया है वह है रूप गुणका कार्य। रस गुण--इसका परिणमन है तीखा, मीठा, खट्टा, कडुवा, चरपरा आदिक। तो जो रसनाइन्द्रियसे जाना जाय वह कार्य है रसगुणका। इसके आधारभूत जो रस नामक शक्ति है वह शक्ति रसना इन्द्रियसे नही जानी जाती। वह तो मनके उपयोग द्वारा ज्ञानमे ही आती है। जो उसका व्यक्त परिणमन है वह रसनाइन्द्रिय द्वारा जाना जाता है। रस गुणका कार्य क्या हुआ ? जो भी रसनाइन्द्रिय द्वारा जाना गया। खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा आदिक होना ये सब रसगुणके कार्य है। इसी प्रकार गधगुणके कार्य वे हैं जो घ्राणइन्द्रिय द्वारा जाने जा रहे है। सुगंध दुर्गन्ध नाना प्रकारके फूलोमे सुगध, तैल आदिक मे सुगध अथवा मलिन वस्तुओमे दुर्गन्ध जो जानी जा रही है, ऐसा पाया गया सुगध दुर्गन्ध गध गुणका कार्य है। गधशक्ति घ्राणेन्द्रिय द्वारा नही जानी गई। वह तो सूक्ष्म है। उस शक्तिके जो व्यक्तरूप परिणमन होते है वे घ्राणइन्द्रियसे जानें गए। स्पर्शकी ८ पर्यायें है—ठडा, गर्म, रूखा, चिकना, कडा, नरम, हल्का, भारी।

स्पर्शके प्रकारोंमें मुख्यता व औपचारिकता--इनमेसे ४ परिणमन तो पुद्गलके स्वत

और प्रत्येक परमाणुमे भी पाये जाते है। रूखा, चिकना, ठडा गर्म। शेष चार परिणमन ये स्कधोमे ही पाये जाते है। जैसे कडा नरम होना। एक पुद्गल परमाणु न कडा रहता है, न नर्म रहता है। जब अनेक परमाणु मिलकर स्कध होते है, उन स्कधोमे ही कडा और नरमका भेद होता है। इसी तरह हल्का भारी। परमाणु स्वय निरपेक्ष है। न वह हल्का है, न भारी है। हल्का भारी सापेक्ष परिणमन है, वह स्कधोमे ही सम्भव है। यह स्पर्शन-इन्द्रिय द्वारा जाना जाता है, ये स्पर्श गुणके कार्य हैं। तो जैसे पुद्गलमे व्यक्त परिणमन और उनके आधारभूत शक्तियाँ ज्ञात होती है इसी तरह आत्मामे भी आत्माका व्यक्त परिणमन और आत्माके उन-उन व्यक्त परिणमनोके आधारभूत शक्ति विदित होती है। यो एक अखण्ड अवक्तव्य आत्मतत्त्व इन व्यक्त परिणमनोके आधारभूत शक्तियोके परिचयसे जान लिया जाता है। जिसको आनन्द चाहिए उसका स्वरूप क्या है, यही बात समझानेके लिए ये सब प्रयत्न किए जा रहे है। वह आत्मा गुण पर्याय वाला है और उसकी पर्यायें विनाशीक है। गुण शाश्वत है, इन सबका यहा परिचय दिया जाता है।

यहाँ एक शका होती है कि जैसे स्पर्शनइन्द्रियसे जाना गया स्पर्श पुद्गलके किसी गुणका कार्य है। रसनाइन्द्रियसे जाना गया खट्टा मीठा आदिक रस पुद्गलके किसी गुणका कार्य है। घ्राणइन्द्रियसे जाना गया सुगंध और दुर्गन्ध पुद्गलके किसी गुणका कार्य है और चक्षुइन्द्रियसे जाना गया काला नीला आदिक रूप पुद्गलके किसी गुणका कार्य है, इसी प्रकार श्रोत्र इन्द्रियसे जो जाना जाता है—क्या जाना जाता है? नाना प्रकारके शब्द, वे शब्द पुद्गलके गुणके कार्य क्यो नही बताये गए? इसका समाधान यह है कि यह बात तो सत्य है कि शब्द श्रोत्र इन्द्रियसे जाना जाता है लेकिन शब्द गुण नही है और न गुणका कार्य है, किन्तु वह द्रव्य पर्याय है। द्रव्य पर्याय उसे कहते है जो द्रव्यके प्रदेशके संयोग वियोग आकार आदिकसे सम्बध रखता है, इसी कारण यह गुण नही होता है किन्तु द्रव्यपर्याय होता है। पुद्गलके किसी सयोग वियोगकी स्थितिमें शब्दरूप पर्याय होती है। वह पर्याय किसकी है? भाषावर्गणाजातिकी, पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। यहाँ भी यह समझना चाहिए जैसे दो काठके टुकडे मिले, उनमे कुछ सघट्टन किया गया तो उस स्थितिमे भी जो शब्दरूप परिणमा है कोई, सो ये दोनो काठ नही परिणमे, किन्तु इन दोनो काठोके सघट्टनका निमित्त पाकर भाषावर्गणा-जातिके जो और पुद्गल द्रव्य थे उनका शब्दरूप परिणमन हुआ है। तो यह शब्द न गुण है, न गुणका कार्य है। गुण जो भी होता है वह त्रिकाल रहता है, चाहे वह किसी अवस्थामे रहे, चाहे शुद्ध अवस्थामे रहें अथवा अशुद्ध अवस्थामे। जो भी गुण है वह शाश्वत रहेगा, लेकिन शब्द शाश्वत नही रहता। भाषावर्गणा जातिके जो पुद्गल हैं सो वे इस जातिके तो अवश्य है, पर वहाँ भी शब्द सदा नही रहता। वहाँ भाषावर्गणा

जातिके पुद्गलमे ऐसी योग्यता है कि वे शब्दरूप परिणम जाते है, पर शब्द त्रिकाल नही रहता, इस कारण शब्द गुण नही है और न शब्द किसी गुणकी पर्याय है । हाँ श्रोत्रइन्द्रिय से जाना जा रहा है पर इन्द्रियसे जो कुछ जाना जाता है वस्तुत वह तो पर्याय है ।

अब उसमे यह प्रश्न होता है कि यह किसी गुणकी पर्याय है अथवा नही ? स्पर्शन आदिक इन्द्रियसे जो भी जाना गया है वह स्पर्शगुण नही है, किन्तु स्पर्श गुणकी पर्याय है । श्रोत्रइन्द्रियसे जो जाना गया वह शब्द भी पर्याय है । हाँ इतनी बात और है कि शब्द किसी गुणकी पर्याय नही है किन्तु प्रदेशवान द्रव्यकी पर्याय है । प्रकरण यह चल रहा है कि गुणों के कार्य क्या क्या होते है ? अब तक जीवद्रव्यके गुणोके कार्य बताये गए और पुद्गलके गुणोके कार्य बताये गए । अब शेष जो ६ द्रव्य है उन ६ द्रव्योके गुणोकी क्रिया बदलती है । तीसरा द्रव्य है धर्मद्रव्य । धर्मद्रव्य उसे कहते है जो जीव पुद्गलके गमनमे हेतुभूत हो । यद्यपि धर्मद्रव्य किसी जीवको प्रेरणा करके चलाता नही । किन्तु जीव या पुद्गल जब चल रहे की अवस्था धारण करते है तो उस समयमे निमित्त होता है । जैसे मछलीके चलनेमे जल निमित्त है, तो कही जल मछलीको जबरदस्ती नही चलाता है, किन्तु मछली जब चलना चाहे, जब अपने चलनेकी क्रिया बनाये तो वहाँ जल निमित्तभूत है सो स्पष्ट ही है । यदि जल न होता तो मछली चल न सकती थी, फिर भी जलने जबरदस्ती मछलीको नही चलाया । इसी प्रकार यदि धर्मद्रव्य न होता तो जीव और पुद्गलमे गमन न हो सकता था, फिर भी धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलको जबरदस्ती चलाता नही है । जब जीव और पुद्गल गमन करे तो उनके चलनेका निमित्त है धर्मद्रव्य । एक विशेष बात यह भी जाने । धर्मद्रव्य निष्क्रिय है, वह क्रियावान नही है, स्वय नही चलता । स्वय चलकर जीवको चलानेमे कारण नही होता । जैसे जल है वह स्वय नही चल रहा, वह तो भरा हुआ है और मछली चलना चाहे तो उसके लिए जल निमित्त है । यद्यपि दृष्टान्तमे जो जल बताया गया है, जल कभी चलता है पर वह चलनेकी स्थिति अलग है । चलनेके कारण मछली चल सकी हो ऐसी बात नही है । जल न चले तो भी मछली चलती है । दृष्टान्तमे यह बताना है कि जैसे मछलीके गमनका निमित्तभूत जल स्वयं नही चल रहा, चलकर मछली को चलानेमे निमित्त नही बन रहा, वह तो स्थित है, उसका निमित्त पाकर मछली अपना गमन कर रही है । यो ही धर्मद्रव्य निष्क्रिय है । उसमे क्रिया किसी प्रकार नही है, स्वयं नही चलता है धर्मद्रव्य, फिर भी जीव पुद्गलके चलनेमे धर्मद्रव्य निमित्त होता है, इस कारण धर्मद्रव्यका कार्य गतिहेतुत्व हुआ । जीवपुद्गल गमन करे तो उनके गमनमे कारण हुए, बस यह धर्मद्रव्यका कार्य है अथवा यो समझिये कि धर्मद्रव्यको जो कार्य बताया गया है वह आपेक्षिक धर्म है, यह गुण भी आपेक्षिक है । जीव और पुद्गलके गमनमे निमित्त

होना यह धर्मद्रव्यकी एक विशेषता है। इस ही विशेषताको लेकर गतिहेतुत्व द्रव्यका गुण बताया गया है। विशेषता तो है ही इस दृष्टिसे यह गुण उसमे है लेकिन दूसरे पदार्थका नाम लेकर जीव और पुद्गलके चलनेकी बात कहकर यहां स्वरूप दिखाया गया धर्मद्रव्यका, यो धर्मद्रव्यका गुण अपेक्षित होकर वर्णनमे आ रहा। पर धर्मद्रव्यमे यह एक असाधारण विशेषता है कि किसी अन्य द्रव्यमे नही पायी जाती कि जीव और पुद्गलके चलनेमे निमित्त होना। धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, उसमे रूप, रस, गंध, स्पर्श नही है। और यह लोकाकाशमे पूर्णतया व्याप्त है, ऐसा नही है कि इस लोकाकाशका कोई भी प्रदेश धर्मद्रव्यसे अस्पृष्य रहा हो। तो धर्मद्रव्य चूंकि लोकाकाशमे सर्वत्र व्यापक है और उसका जो अगुरुलघुत्वगुणके कारण परिणमन है वह परिणमन एक है, इस कारण धर्मद्रव्य अखण्ड एक द्रव्य है।

द्रव्यका चौथा प्रकार है अधर्मद्रव्य। अधर्मद्रव्यमे गुण है स्थितिहेतुत्व। उस गुण का कार्य क्या है? उसके सम्बन्धमे कहते हैं। स्थितिहेतुत्वका अर्थ है कि जीव और पुद्गल चलते हुए जब ठहरें तो उनका इस अवस्थितिमें निमित्त होता है। यह बात अधर्मद्रव्यमे पायी जाती है। एक ऐसी नीति बना लें कि किसी भी पदार्थमे यदि कोई विभिन्न कार्य हो रहा है, बदलकर कार्य हो रहा है तो वहा कोई परद्रव्य निमित्त अवश्य होता है, क्योकि जो बदल बदल कर कार्य होता है वह कार्य है आपेक्षिक विनाशीक परनिमित्तसे होने वाला। वहा दूसरा कोई द्रव्य निमित्त होता है तो जब जीव पुद्गल अभी चल रहे थे और चलते हुए अब वे ठहर रहे है तो ठहरना एक नया कार्य है और ठहर कर ठहरे ही रहे सो नही, फिर चल भी देते है। तो यह ठहरना एक विनाशीक अवस्थिति है। तो जब जीव पुद्गल चलकर ठहरता है तो वहा अधर्मद्रव्य निमित्त होता है। तो जीव पुद्गल जब ठहर रहे हो तो उनके ठहरनेमे अधर्मद्रव्य निमित्त होता है, यही अधर्मद्रव्यका कार्य है।

इस विषयको समझनेके लिए एक यह दृष्टान्त ले कि जैसे चलते हुए मुसाफिरको ठहरानेमे पेडकी छाया निमित्त रहती है तो वहाँ देखो वृक्ष चलकर स्वय नही ठहरा रहा। वह तो जहाँ है वहाँ ही है। और चलकर ठहरानेकी प्रेरणा करे वह वृक्ष सो भी बात नही है और एक जगह स्थित होकर भी वृक्ष मुसाफिरको ठहरानेकी प्रेरणा करे सो भी बात नही। जितने मुसाफिर रास्तेसे चल रहे है, क्या वह वृक्ष सभीको पकडकर रोक रहा है? नही। उन मुसाफिरोको ठहरनेकी इच्छा होती है और वे ठहरनेका यत्न करते है तो वहाँ वह वृक्ष निमित्त है। जैसे गर्मीके दिनोमे कोई मुसाफिर चल रहे हैं, उन्हे संताप हो रहा है। नीचेकी जमीनसे भी और ऊपरकी धूपसे भी, ऐसी स्थितिमें वे ठहरना चाहते है, पर यो ही कही मैदानमे ठहरते हुए न देखा होगा। वहाँसे तो भागनेकी कोशिश करते हैं। चलते हुएमे रास्तेमें कोई वृक्ष निकटमे ही मिल गया तो वहा वे मुसाफिर ठहर जाते हैं। चलते

हुए मुसाफिर जब ठहरनेका भाव करे, प्रत्यन करे तो उनके ठहरनेमे जैसे वृक्ष निमित्त होता है इसी प्रकार जब चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरते है तो उनके ठहरनेमे अधर्मद्रव्य निमित्त होता है। इस निमित्तको इस तरहसे पहिचान ले कि जैसे कोई धूपमे चलने वाले मुसाफिर यदि उन्हे वृक्षकी छाया मिल जाय तो वहाँ ही ठहरते है, धूपसे व्याकुल होकर धूपमे ही नही ठहरते, यदि वृक्ष न होता तो मुसाफिरोका ठहरना न बनता। यो ही समझिये कि यदि धर्म-द्रव्य न होता तो जीव पुद्गल ठहर नही सकते थे। दृष्टान्तमे भी इतनी बात जान लेनी चाहिए कि कोई मुसाफिर धूपसे व्याकुल होकर वृक्षके नीचे यदि ठहर रहा है तो उस ठहरने मे निमित्त तो अधर्मद्रव्य ही है। कही ऐसा नही है कि इस दृष्टान्तमे उनके ठहरनेमे निमित्त वृक्ष है, इसके आगे कुछ बात नही है। वहा भी निमित्त अधर्मद्रव्य है और वृक्ष आश्रयभूत है। ऐसे ही धर्मद्रव्यके दृष्टान्तमे भी समझना चाहिए कि मछलीके चलनेमे जल निमित्त है ऐसा कहा गया है। सो ऐसा नही है कि मछलीके चलनेमे जल निमित्त है, इसके आगे और कुछ नही है। उसके चलनेमे भी धर्मद्रव्य निमित्त है और जल एक आश्रयभूत है। धर्म अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाशमे तिलमे तैलकी तरह व्याप्त है। बीचमे कोई प्रदेश धर्म और अधर्म द्रव्यसे सूना हो जाय, ऐसा नही है। अब इसी धर्मद्रव्यके कार्यको एक निरपेक्ष दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होता है कि यह स्थिति हेतुत्वगुण अधर्मद्रव्यका जो बताया गया वह आपे-क्षिक धर्म है। किसी जीव पुद्गलका नाम लेकर, उसका सम्बन्ध बताकर कहा गया है, फिर भी यह विशेषता तो अधर्म द्रव्यमे है ही कि जीव पुद्गल जब ठहरे तो उनके ठहरनेमे ये निमित्त बने ऐसी विशेषता अधर्म द्रव्यमे है ही। इस कारण यह असाधारण गुण है। और इस असाधारण गुणका कार्य है जब जीव पुद्गल चलकर ठहरते है तो उन ठहरना वस्तुत अधर्मद्रव्यका कार्य अधर्मद्रव्यका अगुरुलघुत्व गुणके कारण जो सद्गुण हानि वृद्धिरूप परिण-मन चलता रहता है वह ही वास्तविक कार्य है, पर उसका व्यक्त रूप क्या है, इसके समझे बिना द्रव्यके विषयमे स्पष्ट जानकारी नही हो पाती, अतएव इस आपेक्षिक धर्मी द्वारा उसका कार्य बताया गया है।

५ वी जातिका द्रव्य कहा गया था आकाश द्रव्य। आकाश द्रव्यका असाधारण गुण है अवगाहनहेतुत्व। इस गुणका कार्य क्या है, इस सम्बन्धमे अब कुछ वर्णन करते हैं। आकाशका गुण बताया गया है कि समस्त द्रव्योके अवगाहनके हेतुभूत होता है, तो आकाशमें यह विशेषता है कि समस्त द्रव्योको अवगाह दे सके। यह असाधारण गुण है आकाशका, क्योकि यह विशेषता अन्य द्रव्यमे नही पायी जाती है। कभी ऐसा भी विदित होता है कि एक घडेमे राख भरी हैं, उसीमे पानी भर दिया गया, उसीमे कुछ सूइया डाल दी गईं। अब कोई यह शंका-कर सकता है कि देखो सूईंका अवगाह उस पानीमे हो गया, उस राखमें

हो गया, लेकिन वहाँ भी आकाश है और परमार्थत आकाशमे सबका अवगाह है। आकाश के जिन प्रदेशोमे राख रखी है उन्ही प्रदेशोमे पानी भी समा गया। यह राखकी विशेषता है कि उसका प्रतिबंध नही किया, मगर अवगाहन दिया आकाशने ही। तो आकाशद्रव्यका कार्य हुआ सब द्रव्योको अवगाह देना। यद्यपि समस्त द्रव्य अपने क्षेत्रकी अपेक्षासे अपने अपने स्वरूपमे ही हैं, अपने ही प्रदेशमे है, लेकिन परक्षेत्रकी अपेक्षासे देखा जाय तो वे सर्व-द्रव्य आकाशके प्रदेशके स्थानपर ही है।

जैसे आकाश प्रदेशी है इसी प्रकार जीव भी प्रदेशवान है। जीवमें भी निजके प्रदेश है। यह जीव भी तो स्वय अपने आपमे कोई विस्तार लिए हुए है। तो जीव अपने प्रदेशमे रह रहा है। परमार्थत तो यह बात है किन्तु जब परद्रव्यकी ओर दृष्टि देते है तो यह बात भी सिद्ध है कि यह जीवद्रव्य आकाशमे रह रहा है, ऐसे ही समस्त पदार्थ अपना अपना प्रदेश रख रहे है। जो एक प्रदेश पदार्थ है वह एक प्रदेशमे ही है, अपने स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे जो असख्यात प्रदेश है वे अपने ही उन असंख्यात प्रदेशोमे रह रहे है। जो अनन्तप्रदेशी है आकाश वह अपने अनन्त प्रदेशोमे रह रहा है। तो सभी पदार्थ स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे अपने अपने प्रदेशमे ही रहते है, फिर भी परक्षेत्रकी अपेक्षासे देखा जाय तो वे सभी पदार्थ आकाश के प्रदेशके स्थानपर हैं। आकाशको छोडकर अन्यत्र कही भी नही हैं। अभी तक जो धर्म-द्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य इन तीन अजीवोका वर्णन किया, जीव भी अमूर्तिक है और आगे जो कालद्रव्य कहा जायगा वह भी अमूर्त है, लेकिन अमूर्त होनेपर भी इन अमूर्त द्रव्योमे से सबसे अधिक परिचय हम आपको जीवद्रव्यका है। कारण यह है कि हम आप स्वयं जीव है, अपने आपपर अवस्थायें बीतती है, उनका अनुभव होता है इसलिए अपने आपका परिचय सुगम हो जाता है। तो अमूर्तद्रव्योमे अपेक्षाकृत स्पष्ट परिचय जीवद्रव्यका होता है, उसके बाद कुछ परिचय हो सकता है आकाशद्रव्य है। आकाशद्रव्य अमूर्त है, वह किसी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नही है, फिर भी सबकी प्रतीतिमे है कि यह आकाश है। है और उसे यह आसमान है, यह पोल है आदिक शब्दोसे लोग बता सकते है। उस आकाशद्रव्यका काम है स्थान देनेका। एक दृष्टिसे देखा जाय तो यह अवगाहनहेतुत्व भी अपेक्षक धर्म है। पर-द्रव्यका नाम लेकर जो जीव पुद्गल आदिक द्रव्योको अवगाह देवे, ऐसा सम्बध बनाकर आकाशका धर्म बताया गया है अतएव अपेक्षक है, फिर भी यह विशेषता आकाशमे ही पायी जाती है, अन्य पदार्थोमे नही, यह बात भी तो तथ्यसे अलग नही है, इस कारण अवगाहन हेतुत्वकी विशेषता आकाशद्रव्यमे है, इस कारण आकाशद्रव्यका असाधारण गुण अवगाहन हेतुत्व है।

अब छठवी जातिका द्रव्य बताया गया है कालद्रव्य। कालद्रव्यका गुण है परिणमन

हेतुत्व । इस परिणमनहेतुत्व गुणका कार्य क्या है सो सुनो । कालद्रव्य परिणमन हेतुकरूप है याने कालद्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, सभी द्रव्योके परिणमनमे निमित्त रूप है। इस कारण कालद्रव्यका कार्य परिणमनमे हेतुभूत होना है, यद्यपि परमार्थिकता यह है उपादान दृष्टिसे कि सभी द्रव्य अपने ही उपादानसे अपना परिणमन करते हैं, किसी अन्य पदार्थकी परिणतिसे कोई अन्य नही परिणमता । तो भी सभी द्रव्य जब परिणम रहे है तो वहाँ परिणमते हुए जीव पुद्गल आदिकके परिणमनमे कालद्रव्य निमित्त रूप है । कालद्रव्यके सम्बन्ध आदिक पर्यायका निमित्त पाकर जीवादिक द्रव्य परिणमन किया करते है । यह सब निमित्त होना उदासीन रूप है, इसमे प्रेरणा नही झलक रही । इस कारण कुछ ऐसा विचार होने लगता है कि इसमे निमित्त क्या होगा ? क्या किया कालने ? लेकिन मोटे रूपसे भी देख लो कि यदि समय न गुजरे तो परिणमन तो न होता ।

कोई बच्चा है और १०–१५ वर्ष बाद जवान होगा तो १०–१५ वर्षका समय गुजरना उसके जवान होनेमे निमित्तभूत है या नही ? यो मोटेरूपसे भी समझा जा सकता है । सूक्ष्मरूप तो यह है कि प्रत्येक निरंश समयका निमित्त पाकर प्रत्येक द्रव्य अपने निरंश एक समयका परिणमन करता रहता है । यह कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक अवस्थित है । काल बहुप्रदेशी नही होता और एक प्रदेशपर बहुत कालद्रव्य भी नही है । अपनेसे सम्बन्धित संसर्गके आये हुए पदार्थोंके परिणमनमे निमित्तभूत होते है किसी भी द्रव्यके परिणमनमे निमित्तभूत नही, किन्तु द्रव्यका परिणमन अन्य द्रव्यके परिणमनमे निमित्तभूत है । यहाँ एक यह बात विशेष समझना है कि आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी है । लोकाकाशके बाहर भी आकाश है । वहाँ कोई यह जिज्ञासा करे कि कालद्रव्य तो लोकमे ही पाये जाते है फिर अलोकमे रहने वाले आकाशका परिणमन कैसे होगा ? उत्तर यह है कि आकाश अखण्ड है; एक ही । किसी भी एक पदार्थके परिणमनके लिए निमित्तभूत पदार्थ होना चाहिए । परिणमन उसका फिर सबमे होगा । तो चूंकि आकाश अखण्ड है और लोकाकाशमे कालद्रव्य पाये जाते है, उन कालद्रव्योका निमित्त पाकर अर्थात् समय परिणमनका निमित्त पाकर आकाश परिणमन करता है, तो चूंकि वह अखण्ड है इस कारण उसमे यह बात न बनेगी कि इस लोकाकाशमे तो परिणमन करे और अलोकाकाशमे न करे । वस्तुत. आकाशके दो भाग नही है—लोकाकाश और अलोकाकाश । आकाश तो अविभक्त अखण्ड एक है । हम यह निरखकर कि जितने स्थानमे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और कालद्रव्य पाये जा रहे है वह तो लोकाकाश है, इससे बाहर अलोकाकाश है । यह उपचरित भेद है । आकाश तो वस्तुत अखण्ड है और कालद्रव्यके परिणमनका निमित्त

पाकर वह समस्त एक अखण्ड आकाश परिणमन करता है।

पूर्ववत् यहा भी यह विशेषता जानना है कि कालद्रव्य अन्य द्रव्योके परिणमनमे निमित्त हो रहा है तो यह कथन आपेक्षिक धर्मके माध्यमसे है। परपदार्थोका परिणमनका जो हेतु है सो कालद्रव्य है। यद्यपि आपेक्षिक दृष्टिमे यह कथन वना, फिर भी दो बातें यहा जाननी है—पहिली तो यह कि समस्त द्रव्योके परिणमनमे निमित्त हो सके ऐसी विशेपता कालमे ही है अन्यमे नही है। तो यो यह विशेषता कालमे ही तो पायी गई, सो यह एक असाधारण धर्म है। दूसरी बात यह है कि कालद्रव्य भी स्वय ही निरन्तर परिणमन करता रहता है सत् होनेसे। तो उस कालद्रव्यमे परिणमनका कारण निमित्तरूपसे यही कालद्रव्यका परिणमन है और उपादान भी यही है। तो यो कालका निमित्तभूतपनेका असाधारण गुण पाया जाता है और द्रव्य प्रत्येक साधारण और असाधारण धर्मसे युक्त होता है। कोई एक साधारण धर्ममे तन्मय हो, ऐसा नही अथवा साधारण धर्मसे तो रहित हो और असाधारण धर्मको लिए हुए हो, ऐसा भी नही है। अब कालद्रव्यके गुणका कार्य यहाँ बताया गया है कि समस्त द्रव्योके परिणमनमे हेतुभूत होना। यो इस परिच्छेदमे गुण और गुणीके कार्यका सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है।

सर्वप्रथम बात यह चली थी कि आनन्दका उपाय जाननेके लिए आनन्दके स्वरूपकी और आत्माके स्वरूपकी पहिचान कर लेना आवश्यक है। उसी सिल्सिलेमे यहाँ यह वर्णन किया जायगा कि आत्माका स्वरूप क्या है? आत्माका यथार्थ स्वरूप जो उसका सहज स्वभाव है, प्रत्येक वस्तुका यथार्थ स्वरूप वह है जो उसका सहज स्वभाव है। जबसे वस्तु है तबसे जो हो उसे सहज कहते है। सह जायते इति सहज। जो सत्त्वके साथ ही उत्पन्न हुआ हो वह सहज है, सत्त्व है अनादि। तो वह भाव भी अनादिसे है। यो अनादिसे आत्मामे तन्मय रहने वाला जो भाव है वह जीवका स्वरूप है। अब ऐसा भाव खोजिए क्या है? उन पदार्थोके नातेसे जो भाव सहज मिले वह जीवका स्वरूप है। यद्यपि पदार्थके नातेसे ६ साधारण धर्म भी सहज हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व, लेकिन उनका तो पदार्थपनेसे नाता है। जीव व्यक्तिसे नाता नही है। हालाकि वह जीव व्यक्ति उस पदार्थसे अलग नही है, पदार्थपना और जीवपना उसमे एक है; लेकिन पदार्थ तो जीवके अतिरिक्त अन्य भी होते है। इस व्याप्यव्यापक भावका भेद है, ऐसा भाव ऐसा सहज स्वभाव जो जीवमे ही पाया जाय, अन्य पदार्थोमे न पाया जाय वह भाव है जीवका स्वरूप। वह स्वरूप है चैतन्य भाव। सामान्य चैतन्य। ज्ञान दर्शन स्वरूप। वह जीवका यथार्थ स्वरूप है। यद्यपि जीवमे अनेक बातें हैं, विकार भी होते है और वे विभिन्न प्रकारके होते हैं, अनेक परिणमन होते है आकारकी दृष्टिसे और परिणमन पृथक्-पृथक् गुणोकी दृष्टि

से, और परिणमन लिया। यहाँ विभावपरिणमनकी तो बात ही क्या, कोईसा भी परिणमन परिणमनके नातेसे वह स्थायी नहीं है, अतएव परिणमन जीवका यथार्थस्वरूप नही है। परिणमन जीवमे है पर जीवका यथार्थस्वरूप जिसका लक्ष्य करके संसारके सकट टल जायेंगे। सब संकटोका मूल मोह मिथ्याभाव भी टल जायगा। वह स्वरूप है चैतन्यभाव। यदि अपने जीवनको सफल करना है तो एक यह निर्णय रखना होगा कि मेरा काम तो केवल अपने सहज ज्ञानमे ले लेना और उसमे ही तृप्त रहना, बस यही एकमात्र काम मेरा रह गया है, बाकी काम सब असार है।

उपलब्ध बुद्धिका आत्महितमें उपयोग करनेका अनुरोध—देखिये ज्ञान पाया है, विद्वत्ता पायी है, अच्छी बुद्धि पायी है तो उसकी सफलता ज्ञानमग्नतारूप कामके कर लेनेमे है। दुनियाको हम कुछ बता दें, दुनिया भी मेरे बारेमे कुछ समझ जाय, बहुतसे जन मेरा परिचय पा ले अथवा मेरेसे उनका कुछ लगाव बन जाय, स्नेह बने, ये सारी बातें उसके लिए बेकार है, क्योकि इतने बडे भारी लोकमे जो ३४३ घनराजू प्रमाण है, यह वर्तमान, यह क्षेत्र, ज्यादहसे ज्यादह जहाँ तक यश फैल सकता है वह भी सारा क्षेत्र क्या है? यह तो समुद्रके एक बिन्दुकी तरह है। फिर भी इस क्षेत्रका कोई विश्वास नही है। उस यशका भी विश्वास नही, उसमे भी हानि, वृद्धि और गुण उसके बदले अपयश भी। तो क्या सार रखा है यहाँ किन्ही अन्य कामोमे? उसके करने योग्य काम केवल अपने सहज चैतन्यस्वरूप का ज्ञानमे लेना, स्वानुभव करना, बस यही मात्र मेरा काम है जो कि सारभूत है, हितकारी है। अन्य काम तो उसके लिए काम ही कुछ नही है। यह निर्णय होना चाहिए। हम अपने निर्णयपर कितना अटल रह पाते है यह इसके बादकी बात है। अटल न रह पाये, ऐसा कुछ कारण है, तो इसके मायने यह नही हुआ कि निर्णय भी क्यो करे उसका, जिस बातपर अटल नही रह सकते। अटल रहनेका कारण निर्णय होगा। अटलके बाद निर्णय नही, किन्तु अटलताके लिये निर्णपना पहिले आयगा। तो यह निर्णय करना आवश्यक है कि मैं अपनेको समझ लूं कि मैं केवल एक सहज चैतन्यस्वभावी हू। यही मेरा सत्यस्वरूप है, मेरा सर्वस्व यही है, इसमे ही मेरा काम है, इसमे ही मेरा वैभव है। इतने तक ही मेरा सम्बंध है, इससे बाहर कुछ भी बात नही है, यह निर्णय होना चाहिए अटल और इस निर्णयमे लौकिक जनोके द्वारा मानी हुई कोई सम्पदा भी मिटे, उसमे खुश होना चाहिए।

आत्मयाथात्म्यपरिचयकी महिमा—जीवके यथार्थ स्वरूपके परिचयका कितना महत्व है? सारे संकटोसे दूर हो जानेका यही कारण बनता है। तो ज्ञात हुआ होगा आत्माका यथार्थ स्वरूप सहज चैतन्यभाव, जिसके सम्बन्धमे कुछ थोडी सी बात कही गई, लेकिन इतना सुनने और बोलनेके बाद भी अनेक लोगोके चित्तमे यह बात आती होगी कि

यह तो केवल बात ही बात कही गई हैं, केवल कहना मात्र है। उसका अभी स्पष्ट बोध तो हुआ नही कि आत्माका यथार्थ चैतन्यस्वभाव क्या है? तो भाई स्पष्ट बोध तो अनुरूप पुरुषार्थ करके उस चैतन्यस्वभावके अनुभव करनेमे होगा। जैसे कोई पुरुष किसी अच्छी मिठाईकी प्रशसा करे और हर तरहसे उसका स्वरूप समझाये, उसके खानेमे जो आनन्द आता उसका भी वर्णन करे तो उतना वर्णन सुननेके बाद भी उस श्रोताकी समझमे उस मिठाईका या भोज्य पदार्थका स्पष्ट ज्ञान कुछ नही हो पाया और बल्कि वह तरसने लगा और अपना एक क्लेश और बढा लिया। उसका स्पष्ट बोध कुछ नही हो पाया। कैसे हो स्पष्ट बोध? उसका तरीका यह है कि वह चीज उसे दे दे और वह खाये। खाकर स्पष्ट ज्ञान वह करेगा कि इसका यह रस है। तो ऐसा स्पष्ट ज्ञान कही बातोमे आ सकेगा? खाने का स्पष्ट ज्ञान कि कैसा रस है, उसका स्पष्ट परिचय क्या खाये बिना केवल बात बातके करनेसे आ जायेगा? यहाँ तो मान लिया जायेगा कि नही आ सकता। बस ऐसी ही बात यहाँ भी समझिये कि आत्माके उस सहज चैतन्यके स्वभावके अनुभवकी बात स्पष्ट परिचय अनुभवसे ही आ सकेगी, उस समता समाधि भावमे ही आ सकेगी। उसका अन्य उपाय नही है। अन्य उपाय तो उसकी तैयारीके लिए है। मैं अपने उस ज्ञानस्वभावको धीरेसे ज्ञानमे लूं, खडबड करके नही लिया जा सकता। उसका कोई अन्त रास्ता है जिसका न ओर है, न छोर है, ऐसे इस भीतरी रास्तेसे इस ज्ञानोपयोगको ले जाकर उस स्वानुभवको ग्रहण कर लें यह बात बातोसे न बनेगी। यह पौरषसाध्य है, फिर भी उस अनुभवका हम आगम करे अर्थात् शब्दो द्वारा, युक्तियो द्वारा हम अपनी समझ बनाये यह तो करना ही होगा और करते ही है। साथ ही हम उसका निगम बनायें तो अपने आपके ही कुछ प्रयोग से अपने ही उस भीतरी पौरुषसे उसके कुछ-कुछ स्वादका अदाजा करने लगें, यह तो करना ही होगा। यहाँ तीन बातें है आगम, निगम और अनुभव। आगम तो शाब्दबोधसे अधिक सम्बन्ध रखता है अथवा युक्तियोसे सम्बन्ध रख रहा है और निगम अपने आपके अन्तरङ्गमे उसका एक दृढ परिचय बने, उससे सम्बन्ध रखता है। और स्वानुभव तो एक रस हो करके एक जानन परिणमन हुआ उससे सम्बन्ध रखता है। तो हमे आगम और निगम करनेका तो काम है ही है। उसके बिना हम स्वानुभवमे पहुच न सकेगे। तो चूंकि ये सब बातें अपने चैतन्यस्वभावके जानने पर ही हो सकेंगी, अत उसके परिज्ञानका तो पौरुष करना ही चाहिए।

धर्मदर्शनपौरुष—देखिये यहाँके सर्वसमागम असार है, मेरे हितरूप नही है। उन सब समागमोंके बीच रहकर उनमे मौज मानना, यह तो अपने जीवनके अमूल्य क्षणोको व्यर्थ खोना है। लेकिन जब शक्ति नही है निरन्तर स्वानुभव कर सकनेकी तो इन

बेकार बातोमे से भी छटनी करनी पडती है कि कौनसी बात अधिक बेकार है और कौनसी बात कम बेकार है और कौनसी बाते हमे हितकारी तत्त्वकी ओर ले जानेकी पात्रता बनाये रख सकने वाली है ? बस इसी छंटनीके आधारपर लोकव्यवहारका धर्म चलता है। धर्म तो वास्तवमे यह समाधिभाव ही है, पर नही बनता है तो क्या करना ? वहाँ विवेककी आवश्यकता होती है। यहाँ आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है।

आत्माका स्वरूप है सहज चैतन्यस्वभाव। यह स्वभाव शाश्वत रहता है। जबसे जीव है तबसे ही जीवका स्वभाव है, जब तक जीव है तब तक जीवका स्वभाव है, अनादिसे है, अनादिसे ही यह चैतन्यस्वभाव है, जीव अनन्तकाल तक है, अनादिकाल तक ही यह चैतन्य स्वभाव है। यद्यपि आज भी और आजसे पहिले विभाव परिणमनमे ही यह जीव रह रहा, किन्तु चैतन्यस्वभाव शाश्वत रहा। जब विभाव परिणमन हो रहे है तब भी शाश्वत स्वभाव है, जब स्वभाव परिणमन होता है तब भी यह चैतन्यस्वभाव शाश्वत है। इसके मर्म तक जब पहुचते है तो एक दृष्टि कहती है कि इस स्वभावका तो परिणमन भी नही हुआ। जब उस वस्तुके सर्वस्वरूपकी ओर दृष्टि करते है तब दृष्टि कहती है कि परिणमन बिना कोई सत् ही नही होता। यह भी परिणम रहा है, गुणी विभावरूप परिणमा है तो कोई स्वभावरूप परिणमता है। यहाँ एक दृष्टान्त लीजिए। जैसे जलको अग्निके सम्बधसे गर्म कर लिया गया। गर्म कर लेने पर भी जब जलके स्वभावकी हम चर्चा करते है, दृष्टि करते है तो क्या कहा जायगा, क्या समझमे आयगा, क्या जलका गर्म होना स्वभाव है ? गर्म हुए जलमे भी जलके स्वभावकी दृष्टि करते है तो समझ यही बनती है कि स्वभाव तो इसका ठडा है। अब यह बतलावो कि जलका जो स्वभाव है वह गर्म हालतमे मिट गया कि है ? अब यहाँ दो दृष्टियोसे इसके उत्तर आ जाते है। एक दृष्टि आयी कि गर्म होनेपर भी जलका स्वभाव मिटना नही है, अतरङ्ग है। उससे कुछ बहिरङ्ग दृष्टि होनेपर जब सर्वतोमुखी निरीक्षण होता है तो कहा जायगा कि हाँ वह स्वभाव इस समय गर्मरूपमे व्यक्त हुआ है।

जाननेका प्रयोजन जानना ही रहनेमें आकुलतासे छुटकारा—अब क्या है काम ? सब कुछ जानकर सब दृष्टियोंसे सारे निर्णय करके जो एक वास्तविक है, बस उसको जान लीजिए। देखिये—जाननेका प्रयोजन जानना ही है और कुछ नही। जब लोग जाननेका प्रयोजन जाननेके अलावा और कुछ बनाते है तब वे आकुलतामे पड जाते हैं। जैसे घरके बच्चोको जाना तो जान करके उसका प्रयोजन क्या बना ? कोई उनका उद्धार, उत्थान, विकास, लोककी बात यह यो बने, यह धनी बन जाय, यह सुखमे रहे, यह मेरे काम आयगा आदिक विकल्प उठते है तो उन्होने जाननेका प्रयोजन जाननेके अलावा कुछ और बना डाला। वही कारण है कि उनके क्लेश रहता है। और जाननेका प्रयोजन यदि जानना मात्र रहे

तो वहाँ क्लेश नही। तो परमार्थपथमे निरखिये—हम अपने आत्माके इस यथार्थस्वरूपको जान रहे है। उस जाननेका प्रयोजन क्या है ? बस यह जानना ही रहे और कुछ नही। इसके ही निकट बाहरकी बात देखिये—जो जानने का इतना भी प्रयोजन बनायें कि जान करके अब समझावो दूसरोको, बस लो इतनेमे भी एक संकट तो आ ही गया। इतनेमे भी बाह्यमे तो यह झाँकने ही लगा। अपने आपसे तो कुछ च्युत ही हुआ। इतना तक भी प्रयोजन न होना चाहिए। अब ये बाते श्रद्धामे तो पूर्ण हैं किसी भी ज्ञानी सतके, परन्तु आचारमे, प्रयोगमे इतना नही कर पाते है।

कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं कि नही कर सकते कुछ, लेकिन उद्देश्य लक्ष्य श्रद्धा तो यथार्थमे यही होनी चाहिए। और होती है ज्ञानी संतके कि सब कुछ जाननेमे तो आयगा ही, इसे रोक नही सकते, क्योकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानका यही कार्य है कि इसमे ज्ञेयाकार हो, जानन बने, इस जाननको रोक नही सकते। जब विशुद्ध परिणति होती है, उत्कृष्ट विकास होता है तो सारा विश्व जाननेमे आता है, लेकिन सिद्ध भगवन्त भी सारे विश्वको जानते है, उनके जाननेका प्रयोजन बस जानना जानना है और कुछ नही। अरहतदेव जानते हैं सारे विश्वको, उस सबके जाननेका प्रयोजन क्या है ? जानन ही जानन। उनकी यह बात हमे स्पष्ट समझमे आती है क्योकि वे विकल्प नही करते, कही लगते नही, कुछ अन्य बात नही करते, लेकिन यहाँ हम आपको यह बात जरा मुश्किलसी बैठती है कि जाननेका प्रयोजन केवल जानना ही है।

विमोहित बुद्धिको त्यागकर जाननकार्यका प्रयोजन जाननमात्र ही रखनेका अनुरोध— कई लोग तो कहते हैं कि ऐसा जाननेका श्रम ही क्यो किया ? जाना और छोड दिया। न तो ग्रहण किया, न उसमे प्रतिक्रिया की, न कोई काम बनाया। यह तो बेवकूफी है। इतना जाना, इतना पढा लिखा, इतने विद्वान बने और इतने विद्वान बनकर भी क्या किया ? जानना ही रख रहा है। तो मोहियोको ऐसा लगेगा। जो जैसी आदतके लोग होते है उनको आदत ही सर्वत्र पसद है, लेकिन जाननेके अतिरिक्त अन्य कुछ अपना प्रयोजन बनानेमे आत्मा को कोई हित नही मिलता। हमे जानना है अपने यथार्थस्वरूपको और जानकर करना क्या है ? बस जानना है, और कुछ नही करना है। तब फिर दुनियामे हम किसलिए आये ? कहाँ आये है ? हम है, अपनेमे हैं, हममे इतना ही सत्त्व है। हम दुनियामे कैसे आये ? किसके लिए आये, किसके लिए नही आये ? तो कुछ यहाँ कर्तव्य भी नही किया। हाँ कुछ भी कर्तव्य नही। एक अन्त परमार्थ शान्तिके मार्गमे लगे हुए ज्ञानीका यह वृतान्त है। सब कुछ जाना, किसलिए जाना ? जाननेके लिए जाना। इस ही मे अलौकिक आनन्द है और उत्कृष्ट स्वरूप विकास है। यहाँसे चिगे वहाँ विकास नही है, वहाँ सत्य आनन्द नही है। यह

बात तो ऐसी हुई है कि खोदा पहाड और निकला चूहा। हाँ मोहियोके लिए ऐसी ही बात है, क्योकि उन्हे अपना कुछ इष्ट नही मिल रहा है। लेकिन जिनका भवितव्य अच्छा है, ससारसकटोसे छूट जानेका जिनका समय आया है, जिनका पूर्ण कल्याण होने वाला है उनकी स्थिति ऐसी ही है कि उनका जानना केवल जाननेके लिए ही हो रहा है, अन्य कोई प्रयोजन नही है। अन्य जिनका प्रयोजन है बस वे ही ये अनन्त जीव दिख रहे हैं। उनकी कोई कमी तो नही है। तो जिस स्वरूपको जाननेकी बात कही जा रही है और जिसको जानकर केवल जाननेका ही प्रयोजन बताया जा रहा वह स्वरूप इस आत्मामे अनादिसे है, अनन्तकाल तक है। विभावरूप परिणमे तब भी यही स्वरूप, स्वभावरूप परिणमे तब भी यही स्वरूप। ऐसे शाश्वत सहज चैतन्यस्वभावका आलम्बन लिया जाय तो वह आनन्द प्राप्त होगा, जिस आनन्दकी इस ग्रन्थमे चर्चा की गई है और जो आत्माके लिए हितस्वरूप है। इसको जानिये और जानते ही रहिये। यह सब सहजवृत्ति है। इसमे ही परमकल्याण है।

बाह्य समागमोंमें शान्तिकी असंभवता—हम आप सब जीव यह चाहते है कि पूर्णतया शान्ति रहे और उस शान्तिके लिए अनेक प्रयत्न करते है। पर यह निर्णय रखिये कि शांति हमको मिल सकती है तो हम अपने आपके स्वरूपको सही जाने, और उस आत्मस्वरूपके जाननेमे सन्तुष्ट रहा करे। शान्तिका उपायमात्र एक ही है। आप अनेक काम कर करके निर्णय करलें कि हमको इससे शान्ति मिली या नही। बचपनसे लेकर अब तक अनेक कार्य किए गये। जिस अवस्थामे जो कार्य करना था, किया और अब भी किये जा रहे हैं। जिनकी बहुत समयमे आशा रखते थे—बच्चे हुए, संतान हुए, उनके भी संतान हुए, दुकान, मकान भी बने, सारी बातें हुईं पर जहाँ शान्तिकी बात पूछी जाय कि मिला क्या तो उत्तर मिलता है कि कुछ नही मिला। भला बडे बड़े तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुष जिनकी भक्तिमे हम अपने जीवनको धन्य समझते है उन्होने सारा वैभव छोडकर एक आत्मस्वरूपकी ही आराधना की थी तब उनका कल्याण हुआ और इसी कारण हम आप आज उनकी पूजा करते हैं। तो निर्णय रखना होगा कि हम अपने आपमे रमण कर सकें तो शान्ति मिलेगी। बाह्य पदार्थोंमे दिल लगाने से वहाँ शान्ति कभी नही मिल सकती। और फिर इसकी साधनाके लिए यह भी निश्चय रखे कि जितने भी बाह्य समागम है वे सब भिन्न हैं और पर हैं, इनसे मेरा सम्बन्ध नही, और न इनसे कभी मेरा कल्याण हो सकता है।

पूजाविधानमें आत्मयाथात्म्यका संकेत—देखिये-भगवानकी पूजामे अथवा भगवानके गुणोकी पूजामे अथवा भगवानने जो उपाय किए उनकी पूजामे जब हम बोलते हैं–निःशंकित अङ्गको नमस्कार हो, निःकांक्षित अंगको नमस्कार हो, सम्यग्दर्शनके ८ अङ्गोको नमस्कार हो, सम्यग्ज्ञानके ८ अगोको नमस्कार हो और सम्यक्चारित्रके महाव्रत गुप्ति समितिरूप

१३ अङ्गोको नमस्कार हो। जो गृहस्थजन ऐसा पूजन करते हैं उनका आशय क्या है ? उत्कृष्ट कार्य तो यही अगका पालन है, पर हम नही कर पा रहे तो हमारी दृष्टि है उसके सत्कारके लिए। उसकी उत्कृष्टता समझनेके लिए हम उन अङ्गोको नमस्कार करते हैं। नमस्कार करनेमे यह आशय बना कि पूज्य तो यह भाव है, हमको तो ऐसा ही होना चाहिए, यह आशय बनता है। तो ये सब बातें हम आपको कब आयेंगी, जब धर्मपालनकी बात व्यवहारमे भी सब सफाई की बात, शुद्धताकी बात, सभीकी सभी बातें उसके अनायास आती हैं। ये अन्तर्वृत्तियां उसके प्रकट होती है जो अपने आपके स्वरूपको सही समझता है।

क्षमासे स्वपरहितका शान्त वातावरण—देखिये-क्षमा आत्माका महान गुण है, आत्मा भी तृप्त रहता है, वातावरण भी शान्त रहता है, दूसरे लोग भी प्रसन्न रहते है, क्षमाका भी वातावरण है, और उसके विपरीत क्रोधका वातावरण देख लो, खुद जलाभुना रहता है, दूसरे लोग भी हैरान हो जाते है, अशान्त वातावरण हो जाता है। क्रोधमे मिला क्या ? लौकिक लाभ भी नही है और पारमार्थिक लाभ भी नही है, जब कि क्षमामे लौकिक लाभ भी है और अपना पारमार्थिक लाभ भी है। किन्तु वास्तविक क्षमा तब ही हो सकती है जब यह दृष्टिमे आ रहा हो कि सब जीवोका स्वरूप मेरे ही स्वरूपके समान है। इतनी बात चित्तमे बैठे बिना ढगसे क्षमा नही आ सकती। सब जीवोका स्वरूप उसके समान है इस परिज्ञानसे क्षमाकी ही बात नही, सभी गुण आ जाते हैं, वैराग्य भी बढता है। जब देखते है ठेलोमे भैसा जुते हुए है, बडा बोझ लादे हुए है, कधोंसे खून भी निकल रहा है, हाकने वाला चाबुक मार रहा है, वे भैसे घुटने टेक टेक कर चलते है, तो देखिये उन भैसो को कितना कष्ट है ? किसे कष्ट है ? उस जीवको, जिसका स्वरूप मेरे स्वरूपके समान है। अब देखिये—कुटुम्बकी भांति विस्तार बन रहा है सब जीवोका। लोग राग करते है और राग करनेकी आदत पडी है। राग किए बिना रह नही पाते हैं। नही रह पाते तो ठीक है, खूब राग करो पर उस रागको सीमित न रखिये। उसे असीमितरूपसे बढा दीजिए। घरके उन ४–६ जीवोमे ही राग न रखिये, जगतके जितने भी जीव है सभीमे राग बढा दीजिए। (रागको छोड़नेकी बात नही कह रहे है, रागको ढगसे बढाने की बात कह रहे हैं) सब जीवोमे राग पहुच जाय, घरके दो चार जीवोमे ही क्या खासियत है ? जो यहाँ ही राग करके अपने आपके जीवनको निष्फल बनाया जा रहा है।

परमार्थ लाभकी ओर बढ़नेका अनुरोध—भैया ! बडी कठिनाईसे मनुष्य जीवन पाया और दुर्लभसे दुर्लभ जो जैनशासनका शरण है वह पाया, जहाँ अनेकान्तवाद और वस्तुपरिचयके उपाय ऐसे अनोखे है कि जिनके परिज्ञानसे अवश्य कल्याण होगा। इतनी दुर्लभ बातें पायी है तो क्या घरके दो चार जीवोमे ही राग करके, मोह करके और विषयोमे रुचि

बढ़ाकर इस जीवनको व्यर्थ खो देना ही विवेक है ? अब सम्हलना चाहिए। बाहरी समागम आये तो आयें, न आयें तो न आयें, साहस बनावे, भगवानका शरण ग्रहण करे, आत्मस्वरूपका शरण ग्रहण करे। वैभव कम हो गया तो उससे कुछ हानि नही है। आत्मस्वरूपका शरण ग्रहण करो, वैभव कम रहेगा उससे हानि नही। यह ५०—६० वर्षका जीवन तो धनिक बनकर भी व्यतीत हो सकता है और साधारण स्थितिमे रहकर भी व्यतीत हो सकता है। मिलता कुछ नही किसीको, पर प्रभुका शरण गह लें, आत्मस्वरूपका स्मरण बन जाय, यहाँ ही तृप्ति हो जाय तो उसको सब कुछ मिल जायेगा। इस ओर आये, यहा दृष्टि दे। वैभव तो मिले तो क्या, न मिले तो क्या ? पर इस लक्ष्मीकी ऐसी आदत है कि जितना इसकी उपेक्षा करो, जितना अपने धर्म और प्रभुकी ओर लगो उतना ही यह बढती है। इसे न चाहो तो बढती है और चाहो तो नही बढती है। अब बतलाओ धर्मकी ओर लगन रखने से और बाहरी समागमोको न चाहनेसे देखो लौकिक वैभव भी बढ रहा और अन्त लौकिक वैभव भी बढ रहा। दृष्टि बनाओ। मेरे लिए यह मेरा चित्स्वरूप ही सर्वस्व है। मैं स्वय ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हू, जो मुझमे है वही मेरा है। जो मेरेसे बाहर है वह त्रिकाल भी मेरा नही हो सकता। जहाँ अपना देह भी नही है वहाँ अन्य वैभव आदिक क्या अपने हो सकते है ? यो जानकर अब वैराग्यकी ओर आयें और साथ ही सर्व जीवोंका स्वरूप अपने समान मानकर सबमे एकरस बन जाये तो वहा सब छूटकर एक चैतन्यरस रहेगा, यह बात सब आत्माओका स्वरूप जान लेने पर सम्भव है। और उस ही आत्मामे उत्तम क्षमाका प्रवेश हो सकता है। जहाँ यह भेद डाला कि ये मेरे हैं, ये गैर है वहाँ क्षमा नही हुई।

क्षमासे स्वयंकी भलाई—क्षमा भी कौन किस पर करता है ? खुद खुदपर क्षमा करता है। हम दूसरोसे विरोध करें तो हम अपने आपका विरोध कर रहे, अपने आपकी बरबादी कर रहे, क्योंकि विकार हो रहा, कषाय हो रही, स्वयंके गुण जल भुन रहे है। हम विकार भाव छोड दे तो हमने अपने आपकी क्षमा कर ली। हम अपने आपके विश्राम और आनन्दमे आ गए। तो क्षमाका लाभ खुदको है। क्षमा भी वास्तवमें खुद खुद ही पर करता है। तो अपने आपपर दया करें और क्षमाभाव धारण करे। हम दूसरोंसे क्षमा-याचना की बात क्यो करते है ? इसी लिए कि उस निमित्तमे मेरी आपमे विरोधकी वासना न रहेगा। यदि किसीका किसीसे विरोध था और वह विरोधकी वासना न रही तो स्वभावमे वह उससे क्षमा मागेगा, प्रेम करेगा, स्नेह रखेगा। अगर इस ओरसे दिखता है तो उसके अन्दर वास्तविक क्षमा नहीं है। क्षमा शुद्ध हृदयसे करनी चाहिए जिनसे विरोध हो उनसे क्षमा लेना चाहिए। जिनसे प्रेम है, जो रिश्तेदार है, जो हमारे साथ दिनके व्यवहार

के मित्र है उन्हे तो खूब गलेसे लगाकर गोदमे उठाकर उछल उछलकर क्षमा माँगेगे और जिस किसीसे बहुत दिनोसे विरोध चला आ रहा है उस व्यक्तिसे मुख मोडे हैं तो वहाँ क्षमा की पात्रता आयी कहाँ ? बीचकी सारी शल्य निकालकर जिनसे हमारा विरोध जगा है उनको भी यह मानकर कि ये भी मेरे ही स्वरूपके समान है, ये भी एक चैतन्यस्वरूप वाले जीव है, जैसे घरमे रहने वाले अथवा मित्रजन जीवस्वरूप है इसी प्रकार ये है, विरोध कोई चीज नही, विरोध कोई किसीसे करता भी नही है। प्रत्येक प्राणी कर्म विपाकवश अपने अपने विषयोमे रहा करते है। अब जिनको विरोधी माना उनके प्रति भी स्वार्थमे अपनी ही शान्तिके लिए कोई कार्य किया था। हमने विरोधी समझा, अपने विषयोमे बाधा माना। यही तो बात रही। वास्तवमे कोई भी जीव मेरा शत्रु नही है, वह भी एक स्वतत्र पदार्थ है, मैं भी एक स्वतत्र पदार्थ हू। मेरा कौन विरोधी है ? कोई भी मेरा विरोधी नही। यो सब जीवोमे स्वरूपसाम्य देखकर सबको क्षमा करना, हिचक न लाना और ऐसी प्रवृत्ति करके तो देखिये—तब तो क्षमाकी सही पूजा है, और अपने चित्तमे कुछ भी निर्मलता न लायें तो क्षमा कहाँसे हुई ? ये सब बाते बनेगी अपने आपके शुद्धस्वरूपको समझनेसे।

क्षमाभावके लाभके लिये स्वरूपकी ओर आनेका अनुरोध—जरा स्वरूपकी ओर आइये। मेरा स्वरूप क्या है ? मेरा सहज चैतन्यभाव। एक चैतन्यभाव जो न पिण्ड है, न जिसकी शकल है, न रूप रग है, न पकडमे आ सकता है, एक चैतन्यभाव है। आकाश भी तो कोई द्रव्य होता। आकाश जिसका न पिण्ड है, न आकार है, न रूप रग है, न पकडमे आ सकता है, फिर भी है तो आकाश। वह अपना ही स्वरूप लिए हुए है, इसी प्रकार यह मैं आत्मा चैतन्यभावमात्र हू। यदि मैं इस चौकी भीत आदिककी तरह कोई पिण्ड रूप, आकाररूप होता तो मुझमे चेतना आ ही नही सकती। क्या चेतना ? तो मैं हू एक चैतन्य-भाव मात्र। अब समझ लीजिए। कोई सोचेगा कि यह तो हवासे भी पतला है। अरे हवा से तो कितना ही पतला यह जीव है। हवा तो मूर्तिक पदार्थ है जो कि छिड जाती है, रबड आदिकमे रोक भी ली जाती है। और यह आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म है, केवल एक चैतन्य प्रतिभास मात्र है। ऐसे इस आत्माका इस दुनियामे क्या रखा है ? इसका तो शरीर तक भी नही है, फिर धन दौलत कुटुम्बीजन, मित्र जन तो इसके होगे ही क्या ? यह सारा अज्ञान का अँधेरा है। अज्ञान अँधेरेमे रहना महापाप है। प्रकाशमे आयें और अपने आत्माका सच्चे कल्याणका लाभ लें। भावना यह रखिये कि मैं सबसे निराला अमूर्त चैतन्यमात्र, ज्ञानमात्र हू। देखिये यह जानन सबमे हो रहा है। जाननेका सब लोग स्वरूप जानते है। भला बतलाओ—जाननेकी शकल क्या है, जाननेका स्वरूप क्या है ? इसीपर ही विचार करिये—जैसे किसीने कहा कि मैं वहाँ जा रहा हू, तो जा रहेकी बात दिखती तो है कि पैर

के आगे पैर धरकर चला जा रहा, ऐसे ही जाननेकी बात बताओ ? जाननेका मतलब क्या है ? मैं जान रहा हू ? जरा उस जाननेको दिखा तो दीजिए। अहा, कैसा अलौकिक तत्त्व है ?

कल्पित विरुद्ध वातावरणमें भी स्वरूपनिश्चलताका कर्तव्य— (इस सभामे एक छोटा बालक गोदमे पडा हुआ रोने लगा, सब लोग भल्लाने लगे) देखिये—कहाँ तो क्षमाका प्रकरण था और कहाँ क्षोभका प्रकरण बीचमे आ गया, लेकिन क्षमाके गुणोपर दृष्टि देते हुए और क्षोभके कारणकी उपयोगिता समझते हुए जो कुछ क्षोभ भी आया है वह क्षमाके लिए और क्षमाके आदरके लिए आया है। वस्तुत कोई भी जीव किसीका विरोधी नही है। सभी जीवोके स्वरूपको अपने स्वरूपके समान समझो। देखिये—जैसे कहनेसे पेट नही भरता। खाने से पेट भरता है, यो ही केवल बातोसे कल्याण नही मिलता किन्तु प्रयोगसे कल्याण मिलता है। अपने स्वरूपको जानें और उसके समान सबको समझे और किसीसे विरोधभाव न रखे। उन विरोधभावोमे कोई तत्त्व नही रक्खा है। मान लो मरण हो गया, आगे न जाने कहाँ चले गए ? यहाँके विकार विरोध की बातें जो हुईं उनका फल क्या मिला ? अपने चित्तको शुद्ध बनाओ। दो ही तो काम है गृहस्थोके करनेके एक आजीविका का काम और एक उद्धारका काम। इनमे भी अपना उद्धार करनेका काम मुख्य है और आजीविकाका काम गौण है। आत्मउद्धारके और आजीविकाके उपायमे फर्क यही है कि आत्मउद्धारका काम तो संतोषसे पाला जा सकता है और आजीविकाके काममे उसका बडा नुक्सान है। धन अगर कम है तो क्या हुआ ? यदि संतोषधन है तो खुश रहा जा सकता है और अगर आत्माकी सुध न हो तो वहाँ कोई गुन्जाइश नही है कि अपने आपको शान्ति प्राप्त हो सके। ऐसे एक इस चैतन्यस्वरूपका लक्ष्य करने से, उसकी उपासना करनेसे क्षमा आदिक सभी गुण प्रकट हो जाते है। वह चैतन्यस्वरूप तो सदा अकेला है। उसे कहते हैं सहज परमात्मतत्त्व। कहते है ना कि भगवान घट-घटमे बसा है। प्रत्येक देहमे बसा है। वह देहमे क्या बसा ? सब जीवोमे परमात्मा बसा है। वह परमात्मा क्या ? जीवोका जो सहज स्वरूप है वही परमात्मस्वरूप है। एक बाँस पर रग चढा है, एक पर रग नही है, बाँसके रगको धोकर पूरी तरहसे निकाल दिया तो यह बाँस उस बाँस के समान शुद्ध तो हो गया, मगर ऐसा शुद्ध होना उस रंगे बाँसमे रगेके समयमे भी था या नही यह विचार करो। अगर न था तो शुद्ध हो नही सकता। मैली भी चीज है तो उसमे भी देख लीजिए—काठ पर बहुत कूडा चढा है, उस कूडा चढेकी हालतमे भी काठ अपने आपमे शुद्ध कूडारहित निर्मल है कि नही ? है। अगर नही है तो कूडा हटाये जानेपर भी वह काठकी चौकी साफ नही बन सकती थी। चौकीपर बहुत कूडा जम गया, इतने पर भी चौकी अपने आपमे बराबर सही है, शुद्ध है, साफ है। तब ही तो कूडा हटानेसे साफ

चौकी निकल आती है। ऐसी ही बात हम आप सब जीवोकी है। जो भी स्वरूप प्रकट होगा वह स्वरूप हम आपमे इस समय भी है, जब कि संसारकी बातोमे लग रहे हैं। स्वरूपको देखिये—अगर स्वरूपमे यह बात न हो तो कितने ही उपाय किए जाने पर भी वह परमात्मस्वरूप प्रकट नही हो सकता।

अन्तस्तत्त्वके निर्णय मनन रमणका कर्तव्य—अब कर्तव्य क्या है हम आप सबका ? आत्मस्वरूपका मनन और अध्ययन करे और तब तक मननका यह कोर्स जारी रखे जब तक कि पूर्ण न हो जाय। यह कोर्स पूर्ण तभी कहलायगा जब यह साफ दृष्टिमे आयगा कि सब जीव मेरे स्वरूपके समान है। यहा तो लोभका भूत इतना सवार है कि जो कुछ मेरे पास सम्पदा है वह घरके स्त्री पुत्रादिकके लिए ही है, और किसीके लिए तनिक भी नही है। अगर कही लगे तो उसे समझते हैं कि मैंने बेकार खर्च किया।

भला बतलाओ—वहा कुछ जीवस्वरूपकी समझ भी है क्या ? जहा यह दृष्टिमे आ जायगा कि सब जीवोका स्वरूप मेरे ही स्वरूपके समान है वहा गृहस्थीमे रहते हुए, गृहस्थी कुटुम्बकी जुम्मेदारीके नातेसे विशेषतया कुटुम्बियोपर खर्च करते रहे, मगर समय आनेपर दूसरोके उपकारमे भी खर्च करनेको पूरा दिन पडा हुआ है। और उसमे वह अपना विवेक और कर्तव्य समझिये। एक आत्मस्वरूपके जाननेपर सभी ऐब दूर हो जाते है और सभी गुण विकसित हो जाते हैं। इससे भैया जैनशासन पानेका खूब लाभ लूट लो। वह लाभ है ज्ञानका। ज्ञानकी प्राप्तिमे, ज्ञानकी वृद्धिमे खूब बढिये और जीवन सफल कीजिए। सब कुछ किया और एक ज्ञानलाभ न कर पाया, आत्मबोध न कर पाया तो कुछ भी नही किया। मरण करके ससारके इन्ही जीवो जैसा जन्म लेना होगा। सूकर, कुत्ता, गधा, भेड, बकरी, कीडा मकोडा आदिक ऐसे ही जन्म लेना होगा, फिर सोचिए, तब तो बेकार रही ना सारी बात। इन जीवोका जीवन क्या जीवन है ? ऐसी स्थितिसे बचना है तो निर्णय करे और साहस बनायें, सकल्प करे कि मुझे तो इस जन्ममरणके सकट से हटना है। यही काम करनेको मेरे सामने पडा हुआ है। उसके लिए आत्मबोधकी आवश्यकता है। ज्ञानसे ही प्रेम बढायें, ज्ञानके लिए ही अपना सर्वस्व न्यौछावर करें। ज्ञानकी ही रुचि बने तो हम अपने आपका कल्याण कर सकते हैं।

जीवका यथार्थ स्वरूप चैतन्यस्वभाव है। वह स्वभाव जीवमे अनादिसे है, अनन्त काल तक रहेगा। स्वभाव स्वके होनेका ही नाम है, अतएव स्वभाव स्वका सहज भाव है, अर्थात् जबसे वह स्व है तबसे ही वह स्वभाव है। प्रत्येक पदार्थ अनादिसे है, इस कारण स्वभाव भी अनादिसे है। चाहे पदार्थका विभावपरिणमन हो रहा हो तब भी स्वभाव है, स्वभावपरिणमन होता हो तब भी स्वभाव है। जैसे जीवका आज तक विभावपरिणमन

चल रहा है, ये विकाररूप परिणत होते रहते है। यहाँ भी जीवका सहज स्वभाव है। यहाँ तो कुछ लोगोको यह जचने लगता है कि विभावपरिणमनके समय, क्रोधादिक कषायोके समय सहज स्वभाव कैसे रहेगा? और वह उन्हे जंचता यों है कि बात यह है कि जब जीव का स्वभावपरिणमन होता है, वहाँ सहज स्वभावका परिचय शीघ्र नही हो पाता। जैसे जल जिस समय ठंडा है तो जलका स्वभाव ठंडा है, यह उस दशामे शीघ्र समझमे आता है। जब जल गर्म है तो गर्मकी हालतमे भी जलका स्वभाव तो ठडा ही है, लेकिन परिणमन चूँकि गर्म हो रहा है तो स्वभावका समझना कुछ कठिन होता है। तो युक्तियोसे, अनेक ढगो से समझाना पडता है कि जल यद्यपि इस समय गर्म है तो भी इसका स्वभाव ठडा है। इसी प्रकार विकारपरिणमनके समय समझाना पडता है कि जीवमे यद्यपि विकारपरिणमन हो रहा है ऐसा, फिर भी स्वभाव तो चैतन्यमात्र है, विकाररूप परिणमनेका स्वभाव नही है। यहाँ तक यह बात निर्णयमे आयी कि जीवका स्वभाव चैतन्य है और वह जीवमे शाश्वत रहता है। स्वभाव शाश्वत है, स्वत सिद्ध है, अनादि अनन्त है और स्वसहाय है, इसी कारण अखण्ड भी है।

अखण्ड आत्मतत्त्वमें विभावपरिणमन होनेके कारणकी जिज्ञासा व उसका समाधान – अखण्डस्वभावी जीवका परिचय पाकर जिज्ञासुके मनमे यह जिज्ञासा जगती है कि जीवका जब ऐसा स्वभाव है और अपने सत्त्वके कारण जीवमे यह चिद्रूपता शाश्वत है फिर वजह क्या है कि जीवमे असंगत परिणमन होता है, जीवके स्वरूपमे सगत नही बैठता, विपरीत है, विकाररूप है। ऐसा परिणमन होता क्यो है? इस सम्बधमे अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनो दृष्टियोंसे समाधान करना होगा। अन्तरङ्ग दृष्टिसे तो समाधान यह है कि जीवमे विकाररूप विभावरूप परिणमनेकी शक्ति है। इस कारण जीवमे असगत परिणमन होते है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य, इनमे कोई असगत परिणमन नही होता। उसका कारण है कि यह विभावरूप परिणमनेकी शक्ति नही रखता। तो जीवमे विभावशक्ति है, जैसे कि पुद्गलमे विभावशक्ति है। पुद्गलका भी अनेकाकार और व्यक्त ठडा गर्म आदिक अनेक परिवर्तनरूप न बनना चाहिए, क्योकि उसका भी कोई स्वभाव है और स्वभाव सदा एक रूप रहता है। लेकिन परिणमता है यह पुद्गल नानारूप। यह साव्यवहारिक प्रत्यक्षसे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। तो वहाँ भी कारण यह है कि उन अणुओ मे पुद्गलमे विभावशक्ति है। जीव और पुद्गल ही क्यो विपरीत रूप परिणमते है, इसका कारण है कि विपरीतरूप परिणमनेकी उनमे शक्ति है। तो जब कुछ और विशिष्ट स्थितियाँ रहती हैं तब जीवमे विभावशक्तिके कारण विभावरूप परिणमन होता है। विशिष्ट स्थितियो के मायने जो अनादिसे परम्परा चली आयी, कर्मोका उदय होना और नाना भवोमे. कषायो

मे जीवका रहना, जिससे कि उसके उपादानकी योग्यता भी विपरीत परिणमनकी है । इन सब स्थितियोमे यह जीव विकाररूप परिणमता है, क्योकि इसमे विभाव है ।

विभावशक्तिमय द्रव्योंका विश्लेषण--भैया ! ध्यानपूर्वक सुनिये बहुत हितकी बाते है ये सब । द्रव्य ६ जातिके होते है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । इन ६ जातिके ही पदार्थ है ऐसे जो विकाररूप परिणमते है जीव और पुद्गल, उसमे भी पुद्गल कितना ही आकाररूप परिणमे उससे पुद्गलका क्या अहित है ? लकडी जलकर खाक भी हो जाय, जो लकडी पुद्गल है, काठ है, अचित है वहाँ लकडीको क्या आकुलता है ? क्या अशान्ति है ? उस लकडीके कुछ इच्छा ही नही है । भस्म बन जाय तो ठीक, उसी रूप मे रहे तो ठीक, यहा कोई विपदा नही है । एक जीव है ऐसा है कि वह यदि विकाररूप परिणमे तो उसे विपदाये है । तो क्या विपदाये है, यह स्पष्ट समझमे आ रहा है । अगर क्रोध करता है तो कितना अशान्त रहता है, कैसी आकुलता जगती है, कैसा खुदगर्ज बन जाता है ? यह तो अनुभवमे आयी हुई बात है । घमड करता है । जीव तो एक चैतन्यभाव मात्र है, ऐसा भावमात्र है कि जिसकी दूसरे लोग पहिचान भी नही कर सकते । ऐसे ही चैतन्यभाव मात्र आत्माको बाहरसे क्या मिलता है ? निमित्त दृष्टिसे उत्तर हो तो बाहरसे क्या मिलेगा ? विपदायें, विडम्बनाये, क्लेश, बरबादी । पर इस स्वभावका जब परिचय नही है जीवको तो यह इन बाह्य प्राणियोमे जो कर्मप्रेरित हैं, मलिन हैं, इन प्राणियोमे अपने आपकी प्रतिष्ठा चाहता है । अरे इस लोकका विस्तार तो देखिये कितना बडा है ? इतने बडे क्षेत्रमे यदि किसीने झूठी प्रशसा कर दी तो उससे इस जीवको लाभ क्या मिला ? और वह प्रशसा भी क्या ? एक अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए, अपनी कषाय शान्त करनेके लिए किसीने कुछ शब्द बोल दिया और यह सुनने वाला अपनी प्रतिष्ठा समझकर ऐंठ जाता है, अरे यह तीन लोकका विस्तार कितना बडा है ? इतने बडे विस्तारमे थोडी सी जगहमे अगर नाम हो गया तो वह नाम भी क्या है ? वह भी मायारूप है । ३ काल कितना बडा है ? अनादि अनन्त । जिसका अन्त ही नही है । उसमे यह १०, २०, ५० वर्षका समय क्या कीमत रखता है ? कितने समयके लिए नाम और इतना समय भी क्या निरन्तर है ? किसीने दो चार माहमे कभी कुछ कह दिया । और जीवोमे भी देखो कितने जीव हैं ? अनन्त जीव है । उन अनन्त जीवोमे से अगर गिनेचुने कुछ लोगोने, जिनकी कि समुद्रके एक बूद बराबर भी गिनती नही है, ऐसे कुछ लोगोने कुछ कह दिया तो क्या ? तुझे तो यही चाहिए ना कि मेरी सब लोग प्रशसा करें, वे तो सब हैं अनन्त जीव, वे तो जानते ही नही । तो जीवोकी गणना भी जान लिया अनन्तानन्त । उनमे से कुछ जीवोने कुछ प्रशसात्मक बात कह दी तो क्या हुआ ? तो जब तक यह जीव अपने सही स्वरूपका

परिचय नही कर पाता तब तक यह व्याकुल है, मूढ है, ससारी है।

अन्तः वास्तविकताका अध्ययन—देखो—वास्तविकता जाननेके लिए सोत्साह उद्यत रहना चाहिए। जीवका पुनीत मंगलमय स्वरूप है, किन्तु विभावपरिणमन हो रहा है अनादिसे, विकारोमे चल रहा है तो यह क्यो हो रहा, उसका यह प्रसंग चल रहा है। तो इन कषायोमे कितना क्लेश है? मायाचार तो ऐसी बुरी कषाय है कि इस जीवको मिलता भी कुछ नही, लेकिन भीतरमे कुटिलता बनाये है, मनमे कुछ और है, बचनमे कुछ और है और करते कुछ और है, ऐसी कुटिलता जिनके अन्दर भरी है वे अशान्त ही रहा करते है। शान्ति पानेका उपाय न मिल पानेसे वे गरीब और दुःखी रहते है। जो मायाचारी हैं, कषायवान है, श्रद्धाहीन है, मिथ्यात्वग्रस्त है उनको गरीब कहा जा रहा है। वे बेचारे दुःखी है। लोभका रग तो बहुत ही बुरा है। वह चलते फिरते, बैठते, सोते जागते, हर स्थितियोने लोभके रगमे रगा रहा करता है। उसे परिग्रह ही एक सर्वस्व दिखता है। यह सब परिग्रह है तभी हमारा बडप्पन है, इज्जत है, जीवन है, ऐसा परिग्रहके साथ एकमेकपना चित्तमे कर रखा है, कषायोसे यह जीव कितना दुःखी है? विकारमे कष्ट ही कष्ट है। इस विकारसे हटनेकी भावना जगनी चाहिए। अन्य बातोको आदर न देना चाहिए। एक ही काम है इस जीवनमे करनेका। स्वानुभवका आलम्बन, स्वानुभवका अनुचरण और स्वभावकी प्रतीति। बस यही मात्र एक उपाय है—अपना जीवन सफल करनेका, अन्यथा तो जैसे अन्य जीव जीते है वैसे ही हम भी जी रहे हैं, पर इस जीवनसे लाभ कुछ न पाया।

सहजस्वभावी जीव पदार्थमें विभावशक्तिकी उपपत्ति—जीवके उस सहजस्वरूपकी बात चल रही है जिसका आलम्बन करनेसे जीवका कल्याण होता है, जीवका सहज स्वरूप है चैतन्यभाव। जिसमे आकुलता नही, आनन्द ही आनन्द बसा हुआ है उस स्वभावकी बात सुनकर जिज्ञासु प्रश्न कर रहा है कि आखिर इतना उत्तम स्वभाव होनेपर भी विकार होता क्यो है? समाधान दिया गया—विभावशक्तिके कारण। विभावशक्तिका अर्थ है—जिसके कारण किसी खास अवस्थाके द्रव्यके सम्बंधसे विपरीत परिणमन हो सके, उसका नाम विभावशक्ति है। विभावशक्ति और भावशक्ति—ये दो बातें एक स्थलमे आयी है। भावशक्तिके मायने पदार्थका परिणमन होता रहे ऐसी शक्ति। भावशक्ति धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्यमे है, जीवमे भी है, पुद्गलमे है, निरन्तर परिणमता है, ऐसी शक्तिको भावशक्ति कहते है। बस उसी भावशक्तिके ही चिन्तन क्षेत्रमे कितनी बातें जोडकी जोडी जा सकती है कि जीव और पुद्गलमे परिणमनेकी शक्ति है। अन्य द्रव्योसे विशेपता यह है कि विकाररूप परिणमनेकी इनमे ही शक्ति है। यो विभावशक्ति और भावशक्तिको अलग-अलग न देखकर एक ही शक्तिको देखा और उसमे एक विशेषता बोल करके। यह विभाव,

इस तरहसे विभावशक्तिका परिज्ञान करें। आपको इस शकाका समाधान अपने आप मिल जायगा कि सिद्धमे, शुद्ध परमात्मामे विभावशक्तिका परिणमन हुआ है या नही और विभावशक्ति उस समय भी है या नही ? यह समाधान यो हो जाता कि शक्ति वह है भावशक्ति, परिणमता रहना, पर एक विशेषता बतानेके लिए इस ही का नाम विभावशक्ति रख दिया। तब विभावशक्ति सदा है, नित्य है जीवमे। भावशक्ति नित्य है ना ? भावशक्तिसे विभावशक्ति को यहाँ जुदा नही समझना है। उस ही भावकी एक विशेषता है कि विभावरूप परिणमता है। देखिये—विभावरूप परिणम सकता था जो, उसमे भी विभावशक्ति कही जायगी, विभावरूप परिणाम रहा है जो, उसमे भी विभावशक्ति कही जायगी और विभावरूप परिणमता रहेगा जो, उसमे भी विभावशक्ति कही जायगी। जीवमे ऐसा है कि अभी विभावरूप न परिणमे, तो भविष्यमे विभावरूप न परिणमेगा, पर विभावशक्ति सदैव मानी जायगी। जैसे जीवमे ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति, श्रद्धाशक्ति आदिक अनन्त शक्तियाँ नित्य हैं इसी प्रकार विभावशक्ति भी नित्य है।

परमार्थदृष्टिसे एक स्वभावी पदार्थका एक समयमें एक परिणमन—यहाँ बात चल रही है इस जिज्ञासापर कि जब जीवके चैतन्यस्वभाव है तो उसका असगत परिणमन क्यो होता है ? इस सम्बधमे आश्चर्य तो यही हो जाता है कि जब जीवका स्वभाव चैतन्यमात्र है तो फिर ये विभावशक्ति आदिक कहाँसे आ गईं ? जब जीव चैतन्य भावमात्र है तो बस जो है सो है। वस्तु स्वभावमात्र होता है, तब इसमे विभावशक्ति आयी कहाँसे ? और यही क्या, ये अनन्त शक्तियाँ जो बतायी जाती है वे भी इसमे कहाँसे आयी ? जीवका स्वभाव है चैतन्यमात्र। अनेक शक्तियोका भेद आया कहाँसे ? वह है एक है, एक स्वभावरूप है, और एक परिणमन है। प्रति समय प्रत्येक पदार्थका, प्रत्येक जीवका एक ही परिणमन है। जैसे ५-७ चीजें मिलकर शर्बत बन जाता है, शक्कर, पानी, काली मिर्च, दूध, बादाम आदि मिलाकर ठडाई बना ली जाती है, तो वे सभी चीजें एक रूप होकर ठडाई बन गईं, उसका स्वाद भी एक है। यह स्वादकी बात तो स्थूलरूपसे एक कही जा रही है। वहाँ भी बडे सूक्ष्म स्कध जुदे-जुदे पडे हैं, मगर स्वाद लेने वाला तो एक स्वाद लेकर मौज मान रहा है। अगर स्वाद लेते समय भिन्न-भिन्न स्वादका परिचय हो तो उसमे मौज माननेकी बात नही आ सकती। जैसे वह स्वाद एक है, जैसे वह परिणमन एक है इसी प्रकार जीवका भी इस ससार अवस्थामे भी प्रति एक एक समयमे एक एक परिणमन है। भले ही जिनकी श्रद्धा बिगड जाती है, जिनका चारित्र बिगड जाता है, जिनके क्रोध जग रहा है, जिनके अज्ञान बसा हुआ है, उनका विचित्र परिणमन है, पर जैसा भी वह परिणमन एक है।

अवक्तव्य परमार्थ तत्त्वके प्रतिपादनमें भेदकथनकी समझ द्वारा जिज्ञासाका समाधान—

मेरे तो एक समयमे एक पर्याय है, एक बात है, बस जान लो, देख लो, बोल नही सकते, वचनके अगोचर है। तो वस्तुमे एक स्वभाव है, एक परिणमन है, एक बात है, वह अखण्ड है, उसमें ये अनन्त शक्तियाँ आयी कहाँसे ? यही पहिले एक अचम्भा है। अचम्भा है सो सही है। पदार्थ एक है, स्वभाव एक है, परिणमन एक है, वहाँ भेद नही है, वास्तविकता ऐसी ही है। पर समझना है, शान्तिका मार्ग बताना है, उसके लिए भेददृष्टि करनी होगी, समझानेके लिए उसमे शक्तिभेद, पर्यायभेद सब बताना होगा। भेदव्यवहार बिना तो बताओ निश्चयनयका विषय कितना है ? कह दो—आत्मा एक है, अखण्ड है। और अगर यही कहते रहोगे दिनभर तो लोग पागल मानने लगेगे। कितना विषय है ? समझानेके लिए भेद करना होगा। भेद करनेकी पद्धति दो भागोमें बँट गई—गुण और पर्याय, शक्ति और परिणमन। इस जीवको कोई अगर एक अस्तित्व आदिक साधारण धर्मोकी दृष्टिमे सारे विश्वको एक कह दें ऐसा भी कह सकते है, और अनेक दार्शनिकोने ऐसा कहा भी है। ब्रह्म एक सर्वव्यापक अपरिणामी है, लेकिन इस कथनसे बात तो कुछ नही बनती, समस्या हल नहीं होती। बताना ही पडेगा असाधारण धर्म। तो जीवको समझनेके लिए, अपनेको समझनेके लिए असाधारण धर्म कहना पडेगा। समस्त अचेतन पदार्थोंसे विलक्षण निज असाधारण स्वभाव है चैतन्यभाव। उस चैतन्यभावका, उस स्वभावका कोई नाम ही नही है। चैतन्य नाम भी जो हम दे रहे है सो वह भी एक विशेषण है। चैतन्य प्रतिभास एक विशेषताका प्रतिपादन करने वाला है। वस्तुका कोई नाम ही नही होता। प्रथम तो यह बात अटक गई कि नाम रखे बिना आगे बढा ही नही जा सकता। तो किसी मुख्य विशेषताके नामपर हम नाम रखते है फिर उस नामसे विशेष मानकर विशेषणोंका प्रतिपादन करते हैं। बस यो समझनेके लिए व्यवहारनयसे उस अखण्ड चैतन्य तत्त्वमे शक्तिभेद किया जाता है, तब इस चैतन्यस्वभावके अन्तर्गत अनेक शक्तियाँ है, उन्ही शक्तियोमे एक विभावशक्ति भी है। जीवमे विकाररूप परिणमनेकी शक्ति और वह शक्ति नित्य है। उसके कारण बाह्य-अनुकूल निमित्त मिलनेपर जीवमे विकारपरिणमन होता है लेकिन वह विकारपरिणमन जीवका स्वभाव नही है।

विभावशक्तिकी नित्यता माननेपर विभावका अभाव न हो सकनेकी जिज्ञासा व उसका समाधान—यहाँ चर्चा यह चल रही है कि जब जीवका स्वभाव विशुद्ध चैतन्यभावमात्र है तब फिर वहाँ विकारपरिणमन क्यों होने लगा ? इसका कारण बताया गया कि जीवकी अनेक शक्तियोकी भाँति एक विभावशक्ति भी है, जिस शक्तिके कारण अनुकूल निमित्त मिलनेपर विकारभाव होते ही चले आये हैं। और वह विभावशक्ति जीवकी शक्ति है अतएव नित्य है। इस चर्चाको सुनकर एक जिज्ञासा होती है कि जब विभावशक्ति नित्य है

तब तो उसमे विभावपरिणमन सदा ही होते रहना चाहिए। फिर मुक्तिका अवकाश कैसे मिलेगा ? जीवकी मुक्ति होना तो कठिन है, हो ही नहीं सकता। विभावशक्ति है जीवमे और वह माना गया, तो शक्ति तो अपना कार्य करेगी, विभावशक्ति विभावपरिणमन करती रहेगी, फिर उसको मुक्ति कहाँसे प्राप्त हो ? तो उसका समाधान यह है कि विभाव शक्तिके सम्बन्धमे ऐसा निश्चय रखिये कि परिणमनकी शक्ति तो एक है। सभी पदार्थोंमे परिणमन करनेकी शक्ति पायी जाती है। जीवमे भी परिणमन करनेकी शक्ति है। जिसका नाम है भावशक्ति। अब भावशक्तिके कारण परिणमन करते रहने वाले जीवकी एक यह विशेषता बताते है कि जीव पदार्थ विकाररूप भी परिणम सकता है। भावशक्तिसे तो यही सकेत मिला कि जीव पदार्थ परिणम सकता है क्योकि उसमे भावशक्ति है, किन्तु यह विशेषता अभी विदित नही हुई कि यह जीव विकाररूप भी परिणम सकता है। इस विशेषतासे भी एक साथ जाहिर करनेके लिए भेदशक्तिके नामसे पहिले वि शब्द जोड दिया, जिसका अर्थ है विभाव। लेकिन विभावशक्ति होने पर भी जीवका विभावपरिणमन उपाधि के सान्निध्यमे ही होता है। जब उपाधिमे नहीं रहता तब विभावपरिणमन भी नहीं रहता। अर्थात् कर्मोदयरूप निमित्त उपस्थित होने पर विभावशक्तिसे जीवमे विकार-परिणमन होता है और जब निमित्त नही रहता, कर्मक्षय हो जाता है तब विभावशक्तिका स्वभावपरिणमन होता हैं।

विभावशक्तिके स्वभाव और विभावपरिणमनके वाच्योंका स्पष्टीकरण—— यहाँ शब्द कथनके सामजस्यमे ऐसा कहना कुछ ठीक बैठेगा, ऐसी भावना रखकर शका हो सकती है कि विभावशक्तिका स्वभावपरिणमन तो विभाव कहा जाना चाहिए। विभावशक्तिका स्वभाव क्या हुआ ? विभाव करना। विभावशक्तिमे यही तो प्रकृति पड़ी है कि विभाव कर सके। तो शक्तिका स्वभावपरिणमन तो विभाव कहना चाहिए और विभावशक्तिका विपरीत परिणमन स्वभावपरिणमन कहा जाना चाहिए, किन्तु ऐसी बात नही है। शक्ति का सम्बन्ध है जीवसे। और शक्तियां जितनी होती है वे शुद्ध कही जाती हैं। शक्ति कोई भी अशुद्ध नही कहलाती, क्योकि अशुद्ध शक्ति हो तो उन शक्तियोके पिण्डको द्रव्य नही कहा जा सकता। इसलिए शक्तिमे शक्तिपनके नातेसे तो शुद्धता है और यो शुद्ध शक्तियो का स्वभावपरिणमन शुद्ध परिणमन कहलायेगा। तो विभावशक्ति भी विभाव करनेकी शक्ति है, यही तो अर्थ हुआ। तो शक्तिमे जो शक्तिपनका नाता है वह तो शुद्धसे सम्बन्ध रखता है। अब वह शक्ति है इसी किस्मकी कि विकाररूप वह परिणमन कर सके। तो अब विकाररूप जो परिणमन होना है वह है शुद्ध परिणमन। तो जब शक्तिका शुद्धपरिणमन कहा कि विवक्षा होगी तो सभी शक्तियोका शुद्ध परिणमन स्वभावपरिणमन

कहलायेगा। तो यो विभावशक्तिका शुद्ध स्थितिमे जो परिणमन है वह स्वभावपरिणमन होता है। परद्रव्यके निमित्त न होने पर निरपेक्षरूपसे शक्तिका जो परिणमन होता है वह शुद्ध परिणमन कहलाता है। यदि कर्मादिक कोई निमित्त नही है ऐसी स्थितिमे कोई भी परिणमन होगा तो वह स्वभावपरिणमन होगा। तो विभावशक्तिका ही निमित्तके अभाव मे शुद्ध परिणमन होता है।

परिणमनविधिकी जिज्ञासाका समाधान—परिणमनकी बात और चर्चा सुनकर अब यह जिज्ञासा होती है कि परिणमन क्या है, कैसे होता है, किस विधिसे होता है ? यह एक अलग ही विषय है। परिणमनके समयमे सर्व बातोका निरूपण करना, तो परिणमन सम्बधी सारे रहस्य जाननेके लिए सबसे पहिले यह जानना चाहिए कि परिणमनके कारण दो हुआ करते है। एक उपादान कारण और दूसरा निमित्त कारण। जो पदार्थ स्वय परिणाम रहा है, जिसमे परिणमन होता है, जो परिणमनको अपने निकट अपने आधारमे कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे ग्रहण करता है ऐसा पदार्थ कहलाता है उपादान कारण। और उपादान कारणमे होने वाले परिणमनसे जो स्नेह करता है, मित्रता करता है उसे कहते है निमित्त कारण। उपादान कारण अन्तरङ्ग कारण है और निमित्त कारण वहिरङ्ग कारण है। उपादान कारणके सम्बधमे भी दो बाते समझना है—एक तो ओघरूपता और दूसरा—समुचितरूपता। याने उपादान कारण दो तरहसे विदित किए जाते है—एक ओघ उपादान कारण, दूसरा समुचित उपादान कारण। जैसे मिट्टी घडेका कारण है, यो बात कहना यह ओघ उपादान कारण बताया। मिट्टीसे तुरन्त घडा नही बन जाता। जब मिट्टीकी पर्याय पिण्डरूप बनती है, जैसे कि मिट्टी सानकर उसका लोधा बनाकर एक चाकपर चढाया गया और चाकपर चढानेके बाद उसे कुछ लम्बा किया, कुछ बीचमे पोल करके, पसारा करके तो उसकी कुसूल पर्याय हो जाती है। उस कूसूल पर्यायके बाद घडा बन गया। तो घडा बननेसे पहिले जो पर्याय है उस पर्यायमे रहता हुआ द्रव्य कहलाता है समुचित उपादान कारण और एक वह द्रव्य सामान्य कहलाता है ओघ उपादान कारण। जैसे जीवके लिए कहा कि मुक्तिका उपादान कारण यह जीव स्वय है। अर्थात् स्वयं अपने उपादान कारणसे यह जीव अपनेमे मोक्ष अवस्था पायगा। तो उस मोक्षपरिणमनका समुचित उपादान कारण जीवमात्र नही, किन्तु मुक्तिसे पहिले जो १४ वॉ गुणस्थान है वह है मुक्तिका समुचित उपादान कारण। और ऐसी बात जीव ही कर सकता है, अन्य द्रव्य नही कर सकता है। ऐसी साधारण पात्रता जिससे जाहिर होती है ऐसे जीवको मुक्तिका अन्तरङ्ग उपादान कारण कहना, यह है ओघ वर्णन। ओघ वर्णनसे तो यह बात समझना चाहिए कि इस द्रव्यमे ही

ऐसी परिणति प्राप्त करनेकी योग्यता है, अन्य द्रव्यमे कभी भी नही । और समुचित उपादान कारणसे यह बात समझी जाती है कि जब जीव इस तरहकी अवस्था पा ले तब वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

उपादान और निमित्तका अर्थ—उपादान शब्दका अर्थ है—उप मायने अभिन्नरूप से और आदान मायने धारण करना । अर्थात् जो अभिन्नरूपसे धारण करे उसे उपादान कहते हैं अभिन्नरूपसे पर्यायका जहाँ धारण होता है उसे कहते हैं उपादान । चूंकि द्रव्य अपने अपने पर्यायके सम्बधमे पर्यायसे तन्मय होता है । इस कारण उपादान कारण वही कह-लाता जिम द्रव्यमे कार्य है, और निमित्त कारण वह कहलाता है कि जो कार्यसे तो भिन्न हो याने जिसमे कार्य बतानेकी चर्चा की जा रही है उस कार्यके कारणसे तो पृथक् हो, याने उपादानरूप तो नही है, पर जिसकी अनुपस्थितिमे यह कार्य न हो सके उन्हे निमित्त कहते है, हुआ क्या कि विकारपरिणमनके होने वाले किन्ही अन्य पदार्थोंमे स्नेह किया, मित्रता की, सहयोग हुआ उपस्थिति रूप, निजके कार्यके बननेरूप । ऐसा जिन-जिन पदार्थोंकी उप-स्थितिमे कार्य नही हो सकना वे पदार्थ सब निमित्त कारण कहलाते हैं । निमित्त शब्दका भी यही अर्थ है, निमित्त शब्दमे तीन बाते पडी हुई हैं—उपसर्ग, धातु और प्रत्यय । उप-सर्ग तो नि है, और धातु मि है, प्रत्यय कृदन्तका लगा हुआ है जिसका अर्थ है कि जो नियम से स्वीकार किया जाय उसे निमित्त कहते है । अथवा नियमसे जो स्वीकृत हो, स्नेह प्रभाव का विषय हो उसे निमित्त कहते है । जो अङ्गीकार किया जाय अथवा जो स्नेह करे वह निमित्त है । उपादानमे कार्य हो रहा, जैसे जल गर्म हो रहा, अब उस जलको गर्म होने रूप कार्यमे स्नेह कौन कर रहा ? इस कार्यका स्नेही कौन है ? अग्नि । तो अग्नि निमित्त कारण है । स्नेह दिखाने वाले उस कार्यमे समर्थन करने वाला, पुष्टि करने वाला उस कार्यका सहाय अन्य द्रव्य निमित्त कहलाता है ।

उपादानकारण व निमित्तकारणका निर्णय—जितने भी कार्य हो रहे है उन सब कार्योंमे यह निर्णय मिलेगा, इसका उपादान कारण क्या है और निमित्त कारण क्या है ? जैसे जल गर्म हुआ तो उपादान कारण जल है और निमित्त कारण आग है । वहाँ भेद क्या जमाना कि निमित्त कारण तो बाहर ही रहता है, जलमे भिडता नही है । अगर यह आग निमित्त जलमे भिडे तो आग स्वय नष्ट हो जाय । तो यह आग निमित्त बाहर ही रहती, अलग ही रहती, परन्तु जलमे स्वय ऐसी बात पायी जाती है कि वह अग्निका सन्निधान पाये तो वह अपनी शीत अवस्थाको छोडकर गर्म अवस्थामे आ जाता है । बस कार्योंकी यही पद्धति है सब जगह । जैसे जीवमे कषायभाव जगता है तो कषाय कार्य होने की विधि यह है कि उसका निमित्त कारण है कषाय प्रकृतिका उदय । अनन्तानुबधी,

अप्रत्याख्यानावरण आदिक क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाये प्रकृति बध है। तो कर्म-प्रकृतियोका उदय होनेपर जीव कषायभाव करता है। तो वहाँ हमे क्या शिक्षा लेना है कि यह कर्मोदय तो बाहर ही बाहर रहता है। आत्मामे भिडता नही, आत्मासे तन्मय होकर नही, आत्माके परिणमनको भी करता नही, किन्तु वह तो स्नेही है। मित्र कही एक हो जाया करते है ? वे तो अलग ही रहते है। तो यो ही ये कर्मोदय बाह्यमे है, बाह्यपदार्थ है, पद्धति यहाँ यह है कि जीवमे ही ऐसी कला पायी जाती है कि यह जीव ऐसे कर्मोदयका सन्निधान पाये तो वह कषायरूप परिणम जाता है। देखिये--इस पद्धतिमे उपादानकी स्व-तंत्रता, निमित्तकी स्वतत्रता और उपादान निमित्तमे परस्पर सम्बध निमित्तनैमित्तिक भाव सब कुछ यथार्थ सिद्ध होता है। यहाँ किसीके एकान्तका आग्रह नही बन पाता। निहारते जाइये सब वस्तुओको कि सभीमे ऐसी कला पायी जाती है कि वे अनुकूल निमित्तको पाकर अपनी परिणतिसे उस-उस रूप परिणम जाते है।

निमित्तनैमित्तिक भाव और परिणमनस्वातन्त्र्य दोनोंका विनिश्चय--यहा हमे अपने आपपर अपनी गल्तीपर विशेष ध्यान देनेकी बात है, तब हम अपने आपका सुधार करेंगे और अपना कल्याण कर सकेंगे। यदि निमित्ताधीन स्थितिया बनाये रहे, मै क्या कर सकता हू ? ये कर्म ही सब कुछ करते हैं। दुखी करें, सुखी करे अथवा मोक्ष दिलायें, यह सब कर्मोंकी ही कृपा है, कर्मोके ही अधिकारकी बात है। हम क्या कर सकते है, ऐसे निर्णयमे इस जीवने अपनी स्वतत्रतापर, अपने स्वरूपपर दृष्टि ही नही की। तो उसका उत्थान ही क्या हो सकेगा ? तो इस वर्णनसे जैसा कि अध्यात्मसूत्रमे एक सूत्र कहा है—"निमित्त प्राप्योपादान स्वप्रभाववत्" अर्थात् निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है। देखिये इसमे सब तत्त्व आ गए। जिनमे से किसी भी एक ,तत्त्वसे अगर मुख मोड लिया जाय तो सही परिज्ञान नही बन सकता है, न कल्याणका उपाय बन सकता है। यदि कोई ऐसी ही हठ करे कि निमित्त ही सब काम करता है तो अपने आपका सामर्थ्य स्वभावस्व-रूप विदित न होनेसे यह जीव अपनेमे कभी सन्तोष, विश्राम, तृप्ति प्राप्त नही कर सकता। और ऐसे स्वरूपका स्पर्श हुए बिना इसे कभी मुक्ति मिल ही नही सकती। यदि कोई यहाँ यह हठ करे कि जीव ही अपनी योग्यतासे अपने आपमे कषाय आदिके विकार कर रहा है तो इस आग्रहमे यह स्वभावकी बात बन जायगी, क्योकि निमित्त तो माना नही कि जब निमित्तका सन्निधान हो तव विकार होता है, न हो तो नही होता है, ऐसे निमित्तकी बात न माननेपर और केवल कषाय कार्यके होनेकी यही विधि माननेपर कि जीव अपनी योग्यता से अपनेमे कषाय करता है तो यह कषाय स्वभाव बन जायगा, और फिर इस कषाय कार्य का कभी भी अन्त न आ सकेगा, यह नष्ट न हो सकेगा। कहनेके लिए तो ऐसा कहने वाले

के मनमे यह निर्णय भी पडा रहता है कि निमित्तका सन्निधान पाकर यह कषाय करता है।

निर्णीत सर्वस्वके विवक्षित निश्चयमें समीचीनता--स्याद्वादमे जहाँ सप्तभगी दिखाई गई है वहाँ सर्वत्र एक भग बोला तो जा रहा है, लेकिन शेष भगोका निर्णय पडा हुआ है। शेष भगोका निर्णय रहे बिना एक भगका बोलना कुनय कहलाता है। तो केवल इसीको एक बोलकर, सुनकर उसका विरोध करे तो विरोध कर सकते है और फिर ऐसा विवाद कि कही समाप्ति नही हो सकती। हो रहा आजकल यही विवाद एक तत्त्वनिर्णयके क्षेत्रमे समझदारोके बीच। जैसे किसीने जो भी बात बोला, बस उसके अन्य अभिप्रायको न रखकर केवल उस वाक्यका ही अर्थ करके अन्य विवाद उपस्थित कर देना बस यही चीज चल रही है। यदि यह सोचकर चलें कि बात तो कही जायगी कोई भी एक, लेकिन कहने वाले के आशयमे दूसरी बात भी है या नही ? यदि नही है तो समझना चाहिए कि यह एकान्त है और आग्रह है। और अगर है तो कहनेमे एक बात आनेपर भी एकान्त न मान लेना चाहिए। नयोका स्वरूप ही यह बताया गया है कि प्रमाणसे ग्रहण किए गए अर्थके एक देशका वर्णन करना सो नय है। तो आशयसे अपराध और निरपराधताकी बात होती है। व्यवहारमे भी आशयको ही प्रधानता दी गई है। यदि किसी मित्रका आशय सही नही है, यह निर्णय हो गया तो वह मित्र नही रहा उसका। और मित्र द्वारा कोई बरबादी होनेपर भी, कोई नुकसान होनेपर भी यदि यह विदित रहता है कि इसका आशय तो भला ही करनेका था, तो इतना नुकसान सहते हुए भी द्वेष नही किया मित्रसे। तो ऐसे ही वचनालापमे एकान्त एक धर्मकी बात भी सुननेमे आये, लेकिन आशयके पारखी जब उस वक्ताके पूर्वापर भाषणसे या उसके पहिलेके कथनसे आशय विदित होता है कि यह अन्य धर्म, अन्य तत्त्वोका भी निर्णय रख रहा है तो उसे एकान्तका आग्रह नही है, कार्य होनेके प्रसगमे इन शब्दोसे पहिले अपना निर्णय बनावें कि निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है, यही विधि समस्त कार्योंकी है। इस सम्बंधमे आगे भी विदित होनेपर यह जीव अपना उद्धार करनेमे समर्थ होता है। इस कारण यह निर्णय कर लेना आवश्यक है और इसमे यदि कुछ बुद्धि लगानी पडे, कुछ श्रम और समय लगाना पड़े तो लगाना चाहिए। मनुष्य जीवनकी सफलता तत्त्वज्ञानसे ही है। थोथी, नि सार, दिलचस्प बातोसे कोई उद्धार की बात नही बन पायी है, इसलिए तत्त्वज्ञानके लिए उत्थानवान व उद्यमी बनना चाहिए।

परिणमनमें निमित्तकारणोंका विश्लेषण— परिणमनकी विधिका प्रसग चल रहा है। परिणमन, अवस्था, पर्याय, इसी भावसे कार्य होना, इन शब्दोसे लोग कहते है। कार्य होना तो कोई बात ही नही, कुछ चीज ही नही। कार्य नाम किसका ? प्रत्येक पदार्थ हैं और उनमे उनका परिणमन होता है। कार्य शब्द प्रचलित हुआ है निमित्त दृष्टिके भावमे। जैसे

कुम्हारके व्यापारके निमित्तसे घडा बन गया तो घडेको बताते हैं कि यह कुम्हारका कार्य है। किस निमित्तसे यह कार्य बना, इस कार्यके बननेमे कौन जीव निमित्त पडा, इस बातको आसानीसे बतानेके लिए कार्य शब्दसे व्यवहार हुआ। वस्तुत प्रत्येक पदार्थ है और उनका उनमे परिणमन होता है। कोई परिणमन कुछ निमित्त पाकर होते है और कोई बिना निमित्त पाये भी होते है। जैसे जो स्वाभाविक परिणमन है उनमे कालद्रव्यके सिवाय अन्य कुछ निमित्त नही। कालद्रव्य है और वह सर्वत्र साधारण निमित्त है। नैमित्तिक परिणमनमे भी कालद्रव्य निमित्त है और स्वभावपरिणमनमे भी कालद्रव्य निमित्त है। कालद्रव्य कही भी हटा हुआ नही रह पाता। इस कारण जिसमे उपस्थिति और अनुपस्थितिका कोई भेद ही नही है, तब उसे निमित्त भी क्या कहे विश्लेषणकी जानकारीके प्रसगमे ? तो स्वभाविक परिणमन निमित्त बिना होता है और वैभाविक परिणमन निमित्तकी उपस्थितिमे ही होना है। अब इसी बातको निश्चय दृष्टिसे देखा जाय तो यह विदित होगा कि सभी कार्य निमित्त बिना होते हैं। जैसे क्रोधप्रकृतिके उदयमे जीवमे क्रोध जगा। अब निश्चयदृष्टिसे देखनेकी पद्धति तो यह है कि केवल जीवको देखें। जीवमें जीवकी बात देखें। तो वहाँ जो हो रहा है जीवमे यह विदित किया गया और वह है अपने आपकी उस उत्पादशक्तिके कारण जो होना ही था, होता ही रहता है परिणमन।

निश्चयनयकी दृष्टिमें अद्वैतपना—देखिये–निश्चयनयकी दृष्टिमे सही परिणमन अपने आप होता है। वहाँ परकी दृष्टि ही नही होती। इसे कहते है अद्वैतदृष्टि। निश्चयदृष्टिमे अद्वैतदृष्टि होती है। केवल एकको देखना, दो को देखना ही नही। प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है, केवल अपने आपके रूपसे है, किसी अन्यके रूपसे नही है। इसी बातको जब निश्चयदृष्टिसे देखा तो सभी अद्वैत है। व्यवहार दृष्टिसे देखा तो वहा द्वैत दीखा। किसी पदार्थका अस्तित्व बतानेके लिए पररूपसे नास्तित्वकी बात कही जाय तो इस कथनमे भी द्वैतकी सिद्धि हुई, पर निश्चयकी दृष्टिमे सर्व पदार्थ अद्वैत हैं और उनके सभी कार्य उन उनकी अपने आपकी परिणतिसे योग्यतासे हुआ करते हैं, अत अद्वैतदृष्टिसे, निश्चयदृष्टिसे सभी कार्य निमित्त बिना होते हैं। एक तो वहाँ किसी दूसरेकी दृष्टि ही नही है, और फिर निर्णयमे भी जायें तो किसी अन्यकी परिणतिसे यहाँ परिणमन नही होता है। केवल स्वयंकी परिणतिसे सारे परिणमन होते है।

मोहकी दुःखरूपता—इस ससारमे दुख केवल मोहका है। दुखका और कोई आधार नही। पदार्थके नातेसे यह जीवद्रव्य अपने ज्ञानानन्दस्वरूप है। अपने स्वभावरूप है। इसका अपने आपमे अपने ढगसे उत्पादव्यय होता रहता है। इसका क्या मतलब किसी दूसरे जीवसे, किसी दूसरे पदार्थसे, लेकिन अब यह जीव अपने इस ज्ञानमे नही होता,

अज्ञानभावमे जाता, याने परदृष्टिमे जाता, परका ही अपने हितके लिए बडा महत्त्व समझता है, तब इसी कारण परकी उपासना, सेवा, अनुग्रह, परिणतिमे अपना उपयोग फसाये रहता है। पर जैसा सोचा है वैसा होना इसके आधीन तो नही है। परपदार्थोंका परिणमन उनके ही आधीन है। वहाँ जब जैसा निमित्त सन्निधान मिला, जैसा उपादान हुआ वैसा परिणमन होता रहता है। लेकिन मोहदृष्टिमे यह जीव परका सम्वध बनाता है और मनके अनुकूल उनमे परिणमन न देखकर दुखी होता है। तो मोहकी सारी परिणतियोमे यही पद्धति बनी हुई है।

ज्ञानसे ही मोहदुःखका नाश——मोहका विनाश हो तो जीवका भला हो। उसका विनाश कैसे हो, वह सब इस ज्ञानसे प्राप्त होगा। प्रत्येक पदार्थ निश्चयत अपनेमे अपने परिणमनसे ही अपना परिणमन करते है। अब निरखिये अपने आपमे कि मेरे द्रव्यका, मेरे सत्त्वका, मेरा किसी अन्य पदार्थसे कोई रच भी सम्बन्ध है क्या ? कल्पनासे तो यह सम्बन्ध बनाता है तो यह इसकी उद्दण्डता है, पर वस्तुत उसका किसी द्रव्यसे कोई सम्बन्ध है क्या ? निश्चय करके देख लीजिए। जिनको माना है कि यह मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, मेरा घर है आदिक, उन परपदार्थोंसे भी कोई सम्बन्ध नही, कोई वश नही, पर फसाव उनमे बहुत अधिक बना रखा है। जैसे मकडी खुद ही अपने मुखसे अपना जाल पूरती है और दुखी ही उसमे फसी हुई बैठी रहती है, इसी तरह यह मोही प्राणी भी खुदकी कल्पनाओसे एक मोहका जाल पूर लेता है और उनमे ही फसा रहता है। यह एक मोटी बातका ही दृष्टान्त दिया गया। वह मकडी जो खुदके ही मुखसे जाल पूरती है वह उस जालमे फसी है अथवा नही, यह तो अलग चीज है, पर देखनेमे तो यो ही लग रहा है कि उसने अपने ही मुखसे अपना जाल निकाला और उसमे फस गई। दृष्टान्तमे कुछ भी हो मगर दृष्टान्तमे यह बात पूर्णरूपसे है। ऐसे ही यह जीव अपने आपमे से परदृष्टिका जाल निकालता है और परदृष्टिका जाल पूरता है और उसमे कितना फंसाव बना लिया है ? परवस्तुवोसे स्नेह, लालच, इज्जत आदिक फसाव बना लिया है। वस्तुत यह जीव है अपने स्वरूपमात्र और अपने स्वरूपमे अपना परिणमन करता है, केवल इतनी ही बात है इसमे, यह बात जब विदित होगी तो यह मोह कलक मिटेगा। यह कलक खुदको खुद ही मिटाना पडेगा। इसमे दूसरा कोई मदद न दे सकेगा। जिनके आत्मकरुणा जगी है वे इस ओर उद्यम करते हैं और अपने पौरुषसे अपना काम बना लेते है। खुदका ही मनन, चिन्तन, ध्यान भावना अपने आपका उद्धार करनेमे समर्थ होगा। यह सब उपाय हमे ज्ञानके बलसे मिलेगा। उस ही ज्ञान की यहाँ चर्चा की जा रही है।

परिणमनका प्रयोजन सत्त्व बना रहना माननेमें मुक्तिके उपायका निश्चित लाभ——

यहाँ परिणमन निरखा जा रहा है कि प्रत्येक परिणमन पदार्थमे उसके अपने आपके सत्त्वके कारण हो रहा है। उस होनेका प्रयोजन क्या ? जिस पदार्थमें जो परिणमन हो रहा है उसका लाभ वही पदार्थ उठायेगा, दूसरा नही। उसका लाभ क्या ? उसका वास्तविक लाभ तो यही है कि उसका सत्त्व बना रहना। परिणमन न हो तो सत्त्व नही रह सकता। तो अपना सत्त्व कायम रखे रहना, बस इतना ही प्रयोजन है पदार्थमे जो परिणमन होता है उसका पुद्गलमे यह बात स्पष्ट है। अरे ये पुद्गल किसी भी रूप परिणम गए, जल गए, पल गए आदि तो ये सब परिणमन किसलिए हुए ? अपना सत्त्व रखनेके लिए।

अथवा उस सत्त्वकी ऐसी ही प्रकृति है कि उसमे उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीन बातें होती ही हैं। वहाँ प्रयोजनका कोई परिणमन ही नही है, और कोई समझना चाहे तो यही जानें कि ये परिणम रहे है तो अपने आपका सत्त्व रखनेके लिए परिणम रहे है, इससे आगे उनका क्या मतलब ? पुद्गलमे यह बात विशेषतया स्पष्ट समझ मे आ जाती है। यह पदार्थ जल गया, राख बन गया तो किसलिए राख बन गया ? बस अपना सत्त्व रहता है। इसके कायम रहनेकी विधि ही यह है कि वह पदार्थ परिणमन करता रहता है। पुद्गलमे यह बात भली प्रकार जान ली गई कि इसका परिणमन इसके सत्त्वके लिए है। बस यही बात तो सबमे है। मुझमे भी यही होना चाहिए, सो ऐसा ही हो रहा है, पर मानते नही। मेरा जो परिणमन हो रहा है वह किसके लिए ? अपने आपका सत्त्व बनाये रहनेके लिए, इससे आगे और कुछ प्रयोजन न होना चाहिए था, पर यह जीव इससे आगे अपना प्रयोजन सोचता है, क्योकि इसमे ज्ञान है ना। उसका दुरुपयोग कर रहा है। अपने परिणमनका प्रयोजन कुछ और सोच रहा है। यो बनेगा, यो मेरी बात बनेगी, यो हो जायगा, लोग यो मुझे समझ लेंगे, कितने ही इसने प्रयोजन समझ लिए हैं, बस यही भूल है और जिसके कारण यह जीव दुःखी रहता है।

परपरिणमनका विकल्प बनाये रहनेमें दुःखविनाशकी असंभवता—और भी सोचिये—यह दुःख कैसे मिटे ? इन पदार्थोका परिणमन करनेका विकल्प बनाये रहनेमे क्लेश नही मिट सकता। जैसे कोई जिन्दा मेढक तराजूमे रखकर तौलना चाहे तो वे न तौले जा सकेंगे, कारण कि वे चचल होते है, उछल जाते हैं। कुछ मेढक तराजू पर रखे जायेंगे, कुछ रखने के लिए तत्पर होंगे कि उनमेसे कुछ मेढक उछल जायेंगे, वे तौले न जा सकेंगे। इसी प्रकार परपदार्थोंके परिणमन करनेका विकल्प बनाकर अपनेको आराममे पा लेना मुश्किल है।

अब सत्य बातको निरखिये, अपने आपके तथ्यको देखिये—मैं हू और परिणमता रहता हू। उस परिणमनका प्रयोजन है उसका सत्त्व बना रहना, इसके आगे कोई प्रयोजन नही है। स्वरूपदृष्टि करके इसका निर्णय बना लीजिए। फिर इसका लाभ

भी स्वय ही पा लिया जायगा । तो जब निश्चय दृष्टिसे देखने चले तो यही मिलेगा कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे परिणमता है । कोई दूसरा पदार्थ उस परिणमनमे सहयोग नही दे रहा कि कोई दूसरा मिलकर भी कुछ परिणमन कर दे । सहयोग देनेका तो यही मतलब होता है कि कोई परिणमन यदि १०० डिग्री रूपमे है तो यह उपादान ८० प्रतिशत मे परिणम जाय और निमित्त २० प्रतिशतका परिणमन कर दे, पर ऐसा नही होता । पूरा पदार्थ उसकी ही शक्तिसे, उसके ही श्रमसे होता है, वह दूसरे निमित्तके सगसे नही होता । कही ऐसा भी विदित हो रहा हो–जैसे घड़ा बनानेमे कुम्हारको बडा श्रम करना पडता, पसीना भी आ जाता । खूब काम कर रहा है वह, लेकिन उस कुम्हारका परिश्रम, कुम्हारका काम, कुम्हारका प्रभाव कुम्हारमे ही हुआ । उस कुम्हारका निमित्त पाकर जो मिट्टीमे फैलावका परिणमन हुआ, घडारूप परिणमन हुआ वह मिट्टीके ही परिणमनसे होता है । उसमे कुम्हारका परिणमन मिला हुआ नही है । प्रत्येक पदार्थ निश्चयदृष्टिसे अपने आपमे अपना परिणमन करता है ।

निमित्तनैमित्तिक भाव होनेपर भी परिणमनस्वातन्त्र्यका दर्शन––हाँ अब जरा बाहर की ओर भाक कर विचार करिये–इन पदार्थोंका स्वभावसे तो यह परिणमन न था । हुआ विपरीत परिणमन । क्यो हुआ ? इसलिए कि पासमे ही दूसरा पदार्थ था, उस वातावरणमे वह पदार्थ प्रभावित हो गया, बस वह पदार्थ उस रूप परिणम गया तो इसमे यह कार्य बननेका, निमित्तका अगीकारपना था, बस इसी वजहसे इसका निमित्तमे उपचार किया गया है और व्यवहार यो बन बैठा कि देखो अमुक पदार्थने अमुक दूसरे पदार्थका यो काम किया है । वस्तुत प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपना ही काम करता है । कितनी ही विकट तेज लडाई हो रही हो और वहाँ दावपेचके प्रसग भी चल रहे है, दबाव प्रभाव सब कुछ चल रहे हैं, इतने पर भी जिस अवयवका, जिस हिस्सेका जो परिणमन हो रहा वह उसके परिणमनसे हो रहा है । बडे बडे इन्जन यत्र होते हैं, जैसे रेलका ही इन्जन उदाहरणमे ले लो । वह बडी तेजीसे चल रहा है । वहाँ ऐसा लगता है कि देखो इस इन्जनको आदमी चला रहा है । व्यवहारमे ऐसा कहा भी जाता है । और वह आदमी उस इजनके चलानेमे निमित्त है भी अवश्य । उस निमित्तकी उपस्थितिमे ये सब परिणमन बन रहे है, लेकिन निश्चयदृष्टि से देखो तो वह पुरुष तो केवल अपने आपमे अपने विकल्प कर रहा है । उस पुरषके द्वारा हस्तादिकका व्यापार किये जाने पर प्रत्येक पुर्जेमे परिणमन हो रहा है, पर वहाँ ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि अमुक पुर्जेका अमुक क्रियाका निमित्त पाकर अमुक चीज इस तरहसे परिणम जाय ।

दृष्टिके एकान्तमें तत्त्वनिर्णयसे च्युति––देखिये–दृष्टियाँ दो है–निश्चयदृष्टि और व्यव-

हरि दृष्टि अर्थात् स्वरूपदृष्टि और सर्वतोमुखी दृष्टि। दोनो ही बाते विदित होती है और दोनो से ही यथार्थ निर्णय हो पाता है और दोनो निर्णयोमे लाभ है। जो लोग एक अपने कल्याण का रास्ता निकालनेके लिए केवल निश्चयदृष्टिका ही आग्रह करते हैं और यही पसंद है, यो ही निरखा। प्रत्येक पदार्थ निमित्तके बिना अपने आपकी योग्यतासे परिणमन करता है। कोई उनसे पूछ ही बैठे कि बतलाओ—फिर निमित्त नाम है किसका ? जो कि शास्त्रोमे निमित्त शब्द दिया हैं। तो उनका उत्तर होता है कि अपनी योग्यतासे अपने आपमे परिणमन कर रहे हुए पदार्थके पास उस समय जो सामने मौजूद हो, उस पर निमित्तका आरोप किया जाता है। लेकिन आग्रहमे उत्तर न बनेगा। तब पुन प्रश्न होगा कि जब घडा बन रहा है उस समय तो अनेक पदार्थ मौजूद हैं। वहाँ गधा भी खडा है, बच्चे लोग भी खेल रहे है तो क्या वे सभी निमित्त बन जायेगे ? तब बोलना पडेगा कि नही। अनुकूल निमित्त उपस्थित होने पर जो उपस्थित हो उनमे निमित्तका उपचार किया जाता है। तो अनुकूल शब्दका अर्थ जब पूछा जाय तो कुछ भी कहा जायगा, आखिर निष्कर्ष यही निकलेगा कि योग्य निमित्तका सन्निधान पाकर उपादान अपने प्रभावसे प्रभावित होकर परिणत होता है। तब निश्चय एकान्तकी बात पूर्ण निर्णयमे नही आ सकती। कोई व्यवहार एकान्त करके यह कहे कि परिणमने वाले पदार्थ क्या करेंगे ? जिस निमित्तकी बरजोरी होगी वैसा परिणमना पडेगा। कुम्हार तो मिट्टीको सानकर चकापर धरकर फैलायेगा, घडा बनना ही पडेगा, तो उपादान बेचारा क्या करेगा ? सब कार्य निमित्त ही करता है, निमित्त ने ही किया। तो वह निमित्तभूत पदार्थ कितने क्षेत्रमे है, क्या है ? उसमेसे क्या किया ? क्या बतायें, क्या परिणमन किया ? और निमित्तने ही किया तो किसी अन्य पदार्थसे घडा क्यो नहीं बना लिया ? मिट्टीसे ही क्यो बन पाया ? कपडेसे बन जाय, पत्थरसे बन जाय, किसी आदमीका ही बना दे, अथवा किसी चीजकी भी क्या जरूरत है ? निमित्त बना दे, ऐसा फूंक लगा दे कि असत्का भी सत् बन जाय ? कोई उत्तर आयेगा क्या ? तो किसी एक आग्रहमे सही निर्णय नही आ पाता।

यथार्थ निर्णयके बाद निर्विकल्पतानुभवके निकट ले जाने वाली दृष्टिका आश्रयण— सही निर्णय करनेके बाद जिस किसी भी एक दृष्टिको हितकारी समझा, जो रुचिका विषय बना, अब उसकी प्रधानता लेकर उसमे रम जाय, यह बात उसके ही बन सकती है निशक होकर जो सब ओरसे निर्णय किए हुए है। निश्चय और व्यवहार दोनो दृष्टियोसे परिणमन के मर्मका जिसने परिचय पाया है वह निशक रह सकेगा, क्योकि ज्ञानप्रकाश उसने पूरा पाया। अब उसकी यह दृष्टि बनती है कि किसी परिणमनके विषयमे हम निमित्तपर दृष्टि डालते है, हमारा उपयोग स्थिर नही होता, रम नही पाता, यत्र तत्र भटकता है, हम अमीर

नही बन पाते । जब हम ऐसा निरखने लगते है कि यह है पदार्थ, यह अपने स्वरूपमे अपने परिणमनमे चला जा रहा है । ऐसा निरखता रहे तो थकान नही होती । विश्राम मिलता है, धीरता प्राप्त होती है, और निर्विकल्पके निकटका यह परिज्ञान है । लोग निश्चय दृष्टिकी प्रधानता करें और अपने आपका कल्याण करें, मगर ऐसी प्रधानता कर सकनेका अधिकार उन्हे ही है जो निश्चय और व्यवहार दोनों दृष्टियोसे यथार्थ निर्णय करके निःशल्य निःशंक होते है । ऐसे ज्ञानी पुरुष जिन्होने परिणमनका मर्म भली प्रकार निर्णीत किया है । तो कोई व्यवहारदृष्टिकी प्रधानतासे भी स्वरूपका स्पर्श कर लेते हैं । ये क्रोधादिक कषाये जगी हैं, ये कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जगी हैं । ये औपाधिक भाव है, ऐसा बनना जीवका स्वभाव नही है । जीवका स्वभाव तो चैतन्यमात्र है । ये क्रोधादिक भाव जीवके स्वभाव नही हैं, ऐसा परिज्ञान कौन दिला रहा है ? आखिर यह ज्ञान तो हितकारी है ना ? जीवके क्रोधादिक नही है । क्रोधादिक भाव जीवका स्वभाव नही है । यह शिक्षा व्यवहारनयसे दिलाया है । व्यवहारनय बताता है कि ये कषाये निमित्तसे हुई है, ये निमित्तके कार्य हैं, इनका स्वामी निमित्त है और वैसे भी देखो तो स्वामी तो जुदा ही हुआ करता है । पुस्तकका स्वामी कौन ? विद्यार्थी । इस चौकीका स्वामी कौन ? अमुक पुरुष । इस नौकरका स्वामी कौन ? अमुक आदमी । देखो ना, स्वामी अलग ही कोई हुआ करता है । एक ही कोई अद्वैत स्वामी नही । इस मकानका स्वामी मकान, ऐसा कहने वाला कोई कहाँ मिल रहा ? और ऐसा व्यवहार भी कहाँ चल रहा ? तो मालिक स्वामीका व्यवहार वहाँ होता है जहाँ दूसरा कोई हो ? इन क्रोधादिक कषायोका स्वामी कौन ? निमित्त कर्मोदय । लो इस व्यवहारदृष्टिने इस विभावको निमित्तके पास फेंक दिया । अब वहाँ देखें तो क्या रह गया ? स्वभाव । इस विभावदृष्टिको भी कषाय विकारमे लगा दिया । तो ज्ञानी पुरुषोके लिए सब जगह भला है, और एकान्तके आग्रही पुरुष तो मूलमें अन्धकारमें हैं, उनका ज्ञानप्रकाश सही नही है, फिर ये कैसे अपने प्रयोजन और उद्धारका मार्ग बना सकेंगे ? प्रधान पद्धति तो यह है कि निश्चय और व्यवहारसे परख करके व्यवहारनयका विरोध न कर, उसे गौण करके निश्चयनयका आलम्बन करके एक अद्वैत भावमे उतरे, पर यह बात वही कर पायगा जिसने प्रमाणसे सर्वतोमुखी निर्णय किया है ।

विभावपरिणमनके निमित्तोंकी चर्चा—परिणमनके प्रसगकी बात चल रही है कि पदार्थोंका परिणमन होता है तो उसमे निमित्त कितने पदार्थ तक हो सकते है ? तो देखिये—परिणमनमे कालद्रव्य तो साधारण निमित्त है, प्रत्येक पदार्थके परिणमनमे चाहे वहाँ स्वभावपरिणमन हो अथवा विभावपरिणमन हो, कालद्रव्य तो निमित्त होगा ही । अब विभावपरिणमनमे निमित्त कितने होते हैं, इसपर विचार करना आवश्यक है । स्वभावपरिणमनमे

कालद्रव्यके सिवाय अन्य कोई निमित्त नही होता, क्योकि यदि अन्य कोई पदार्थ निमित्त बन जाय तो वह परिणमन स्वभावरूप न रह पायगा, वह किसी विकार और विभावरूप रहेगा। तो स्वभावपरिणमनमे याने कोई पदार्थ सही स्वभावरूपसे परिणमे उसमे अन्य निमित्त नही हुआ करते। विभावपरिणमनमे अनेक निमित्त होते हैं। विभावपरिणमनका अर्थ है कि पदार्थका स्वभाव तो है और कुछ, बन रही है बात और कुछ।

जैसे आत्माका स्वभावपरिणमन तो है केवल अरहत सिद्ध जैसी वीतरागता व सकलज्ञताकी परिणति और विभावपरिणमन है कषाय, मोह, अज्ञान। यह स्वभावसे उल्टी बात है। तो स्वभावसे विपरीत परिणमन हुआ, किन्तु उस स्वभाववान द्रव्यमे सम्भव हुए विपरीत परिणमनको विभावपरिणमन कहते हैं। तो विभावपरिणमनमे अनेक द्रव्य निमित्त होते है। जैसे घटकार्य हो रहा है तो घटकार्यमे कुम्हार, चक्र, डडा, (जिससे घुमाया जाता है) आदि ऐसे अनेक कारण होते है अथवा जीवमे समझिये—जीवमे जो कषाय आदिक विभावपरिणमन होते है उन परिणमनोमे कर्म, शरीर और अन्य बाह्यपदार्थ ये सब निमित्त होते है। तो कोई पदार्थ यदि विभावरूप परिणमे, विकाररूप रहे तो उसमे निमित्त अनेक होते है, तो यहाँ निमित्तोकी बात कही जा रही है। उन निमित्तोमे यह सोचना चाहिए कि पुद्गल पुद्गलमे जो परस्परका निमित्तपना है वह तो सब सही निमित्त है और जीवके विकारमे कषायमे निमित्त तो कर्मका उदय है, बाकी सारी चीजे निमित्त नही कहलाती, किन्तु आश्रयभूत कहलाती हैं अथवा कल्पनाके विषयभूत कहलाती है।

निमित्त और आश्रयभूत पदार्थका रहस्य समझे बिना विवादकी शान्तिकी कठिनता-- भैया! निमित्त व आश्रयभूतकी बात समझ लेना बहुत जरूरी है, जिसके समझे बिना आजकलके उठे हुए अध्यात्मवादोका समाधान न मिलेगा। हठमे जो जिस तरह कहता आया है वह उस तरह कहता ही रहेगा, उसका अन्त नही आ सकता, न विवाद समाप्त हो सकता, क्योकि शब्द नाना है। कहनेमे बात एक आती है, उसीको पकड मरोडकर कितने ही विवाद उठाये जा सकते है, पर अपने लिए यदि सत्य समझना हो तो उसे दो भागोमे बाँटें—निमित्त और आश्रयभूत। क्रोधभाव उत्पन्न होता है तो उसमे निमित्त तो है क्रोध प्रकृतिका उदय और आश्रय है कुछ मनुष्य, कुछ अन्य जानवरोकी करनी अथवा कोई अजीव पदार्थ है बिगड गया, प्रतिकूल आ गया तो ये सब बाह्यपदार्थ आश्रयभूत हैं। लोग यो शंका तभी तो कर देते हैं कि देखो निमित्त कुछ नही करता। एक मुनिराजको कोई गाली दे रहा है तो मुनिराजको तो क्षोभ नही आता, तो उस गालीनिमित्तने कुछ किया तो नही, लेकिन वे यहा भूल जाते हैं। गाली देना या किसी मनुष्यके द्वारा उपद्रव होना यह निमित्त नही है, किन्तु आश्रयभूत है। आश्रयभूत पदार्थके होनेपर कार्य होता भी और नही भी होता। यदि आश्रयण हो तो कार्य सम्भव है और कोई उसका आश्रयण ही न करे तो कार्य नहीं

होगा, पर निमित्तमे यह बात नही है। मुनिराजके अनन्तानुबधी और अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये १२ प्रकारकी कषायोका विपाक नही है अतएव उनकी योग्यता मद-कषायकी है। सो वहाँ ये गालीगलौज उपद्रव आदि कुछ भी क्षोभके लिए आश्रय नहीं बन पाते। तो वहाँ इस क्षोभका निमित्त नही है और जितना वहाँ निमित्त है उसके अनुकूल वहा भी कषाय पायी जाती है। तो जीवके विभावपरिणमनमे निमित्त है कर्मका उदय, और बाकी बाहरी सचेतन अचेतन पदार्थोका सम्बध होना ये सब हैं आश्रयभूत बातें। पुद्गलमे यह बात नही पायी जाती कि किसी निमित्तके होनेपर वह कार्य न करे, उपादानमे योग्यता है और निमित्तकी उपस्थिति है तो कार्य चलता ही रहेगा। जैसे घडी है, घडी शुद्ध साफ है, पेंच पुर्जे सही है, ठिकानेके लगे हुए है, उसमे चाभी भर दी जाय तो चलती रहेगी, वहा धोखा नही मिलता, लेकिन यहाँ जीवके किसी कामकी बात कह दी जाय और वह कह भी दे कि मैं यह काम इतने समयमे करूँगा और वह कर न सके, कोई भूल हो गई, बीच मे कोई विघ्न आ गया, यो अनेक बाते बन जायेंगी। तो यह अन्तर क्यो आया पुद्गलमे और जीवमे ? पुद्गलके लिए जितने निमित्त मिलेंगे और उन निमित्तोमे जो कार्य बन सकता है वह बनता रहता है, पर जीवमे यह बात नही देखी जाती। अनेक साधन मिलने पर भी काम हो या न हो। यह अन्तर यो आया कि जीवके विभिन्न परिणमनमे कर्मकी अवस्था ही विशेष निमित्त है अन्य बाह्य साधन आश्रयभूत कहलाते है।

निमित्त और आश्रयभूत पदार्थोंका उदाहरणपूर्वक स्पष्टीकरण—जैसे जीव अनेक बार समवशरणमे भी गया, वहाँ साक्षात् अरहतदेवका उपदेश भी सुना, दिव्यध्वनिसे भी कर्ण पवित्र किया, लेकिन अनेकोको सम्यक्त्व नही होता। वहाँ लोग शका करने लगते हैं कि देखो निमित्त कुछ कार्य नही करता, निमित्तकी कोई आवश्यकता नही। काम हो जाय तो उसे निमित्त कहना और काम न हो तो निमित्त न कहना। समवशरणमे यह जीव गया और वहाँ सम्यक्त्व न हुआ तो समवशरण निमित्त न रहा। अगर सम्यक्त्व हुआ तो समवशरणको निमित्त कह देंगे। भैया ! ऐसी बात नही है, समवशरण सम्यक्त्वका निमित्त नही है और भी जो साधन बताया है कि वेदनाका अनुभव या मूर्तिके दर्शन या जातिस्मरण ये सम्यक्त्वके साधन हैं। पर यथार्थ शब्दोमे कहा जाय तो ये सब सम्यक्त्वके निमित्त नही हैं, किन्तु सम्यक्त्वके आश्रयभूत है। सम्यक्त्वका निमित्त तो अनन्तानुबंधी चार कषायप्रकृति और दर्शनमोहकी ३ प्रकृतियाँ, इनका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हुआ है, ऐसा होने पर सम्यक्त्व होता ही है, पर समवशरणमे पहुचना यह सम्यक्त्वका आश्रयभूत है, निमित्त नही है। आश्रयभूतमे तो दोनो बातें बनती हैं कि आश्रयभूत होनेपर भी कार्य हो या न हो, वह किसीके लिए आश्रयभूत बना, किसीके लिए नही बना। उपस्थित रहने से क्या होता ? पर

निमित्तमे यह बात नही है। निमित्त होने होने पर और जहाँ ऐसे कर्म निमित्त जिसके लगे हैं वहाँ योग्यता भी वैसी रहती है तो उपादानमे योग्यता होनेपर उसके अनुकूल कार्य होगा ही। कभी कभी यह भी शंका की जा सकती है कि देखो—१० वे गुणस्थानमे लोभकषायका उदय तो है, सूक्ष्म लोभ पाया जाता ना, मगर उनका बध नही हो रहा। वहाँ निर्जराकी रुकावट नही हो रही तो वहाँ बात यह है कि वहा जघन्य शक्तिका उदय है और जघन्य शक्ति वाले कर्मोंके उदय होने पर उसके अनुकूल वहा व्यक्त कार्य नही हो पाता। तो वह निमित्तनैमित्तिक भावसे अलग बात न रही। जो जैसे शक्तिसम्पन्न निमित्तको पाकर कार्य होता है वह वैसे शक्तिसम्पन्न निमित्तको पाकर होगा। प्रयोजन यह है कि जीवके जितने विकारपरिणमन होते है उन परिणमनोमे निमित्त तो है कर्मोंकी अवस्था और आश्रयभूत अन्य समस्त पदार्थ। यदि निमित्त हो तो आश्रयभूत पदार्थ भी आश्रय बनकर कर्मबन्धके कारण बन जाते है। और निमित्त न हो तो दूसरोका आश्रयभूत रह जाय, पर निमित्त रहित इस जीवके वे पदार्थ आश्रयभूत नही बन पाते हैं। वे बधके साधन नही हो पाते।

निमित्तनैमित्तिक भाव और परिणमनस्वातन्त्र्य—निमित्तनैमित्तिक भावकी बात समझ लेने पर अब इस ओर दृष्टि दीजिए कि निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादानमे नही पहुंचता। निमित्तका सहयोग इतना ही है विभावपरिणमन होनेमे कि निमित्तकी उपस्थिति मात्र रहना, इससे आगे इस कर्मोदयमे, इस कर्म अवस्थाने जीवप्रदेशमे कुछ नही किया। यह जीव स्वय इस योग्यताका था तो निमित्त सन्निधानमे यह स्वयं अपने आपमे विकाररूपसे परिणम गया है। निमित्तनैमित्तिक भाव भी विधिवत् होनेका नियम और निमित्तका उपादानमे कुछ भी न किया जानेकी दृष्टि, ये दो बातें जिनके चित्तमे स्पष्टतया रहती हैं वे पुरुष एक प्रबल ज्ञानी हैं। नही तो अनेक लोग इस डरके मारे कही उपादान परतंत्र न कहलाने लगे, निमित्तको निमित्त ही नही कहते, और चूंकि सिद्धान्तमे निमित्त शब्दका जिकर है इसलिए उससे मुकर भी नही सकते। तब उन्हें कहना पडता है कि निमित्त कुछ नही करता। चीज जिस समय जिस रूप परिणम जाती है, उस समय सामने जो चीज हाजिर हो उस पर निमित्तका आरोप होता है तथा इस डरसे कि कही उपादानको स्वतत्र कह दिया तो उपादानमे फिर विभावपरिणमन न हो सकेगा, यह संसार की बात न बतायी जा सकेगी, सो इस कारणसे निमित्तकी प्रधानता करके कह देते है कि उपादान क्या करेगा बेचारा? सब कुछ निमित्त ही करता है। उपादान क्या है? है, उसमे तो काम बनता है, इतनी ही बात है, पर करने वाला कौन? परिणमाने वाला कौन? वह निमित्त। देखो—अग्नि निमित्त न हो तो पानी गर्म कैसे हो जायगा? यो अनेक उदाहरण देकर इस प्रकारसे बोल देते है कि काम तो निमित्तका है। निमित्त ही

करता है। ये सब दोनो ओरकी कमजोरियां हैं। उपादान अपने आपमे कैसा स्वतत्र है ? जिस किसी भी रूप परिणमे, मात्र अपनी परिणतिसे ही परिणमता है। निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी ग्रहण नही करता। इसमे किसी प्रकारका विवाद ही नहीं है। और साथ ही निमित्त और उपादानका इतना नियत सम्बन्ध है कि ऐसी शक्ति वाला उपादान हो और ऐसे अनुकूल निमित्त पदार्थ उपस्थित हो तो वहा कार्य होता ही है। इन दोनो बातोको माने और फिर द्रव्यकी स्वतत्रतापर जिसकी दृष्टि रहे ऐसे ज्ञानप्रकाशमे रह कर जीव अपना उद्धार कर लेता है। नही तो आग्रह पक्षमे कल्याणकी बात गौण हो जाती है और इसकी अपेक्षा हो जाती है कि जो उसने कहा है वह बात सत्य है और लोग मान जायें यही सिद्ध हो। बस केवल जाननेमे यही मात्र प्रोग्राम रह जाता है।

संसारसंकटसे छुटकारा पानेके अन्तः साधन सम्यक्त्वके लाभके यत्नमें प्रासङ्गिक चर्चा--यह ससार है। जिस जगह हम आप इस समय रह रहे हैं वह जगह क्या अपनी है ? वह जगह लोकके परिमाणके सामने कितनी है ? समुद्रके बिन्दु बराबर भी नही है। जिस कालमे हम आप यहाँ चल रहे हैं यह काल भी क्या है ? अनादिसे अनन्तकाल व्यतीत हो गया और भविष्यमे और अनन्तकाल व्यतीत होगा, ऐसे इस निस्सीम कालके भीतर यह १०–२० वर्षका काल क्या ? जिन लोगोमे रहकर हम कल्पनायें बनाते हैं और शेखचिल्ली बनते हैं, अटपटी कल्पनाओसे अपनेको भर लेते है, जिन मनुष्योको हम कुछ दिखाना चाहते हैं वे सब क्या है ? अनन्त जीवोकी तरह ये जीव भी रुलते सनते आज इस मायामय मनुष्य पर्यायमे आये हैं, ये कोई परमार्थ चीज नही है, इनको क्या दिखाना ? इनको दिखानेसे मुझे लाभ क्या ? ये कोई प्रभु तो नही है, स्वय मायामय पर्यायमे रहकर क्लेश पा रहे है। ज्ञानी पुरुषोको इन सब बातोंपर यथार्थ निर्णय है, इसके इस कारण उन्हे कोई वाञ्छा नही रहती है। इच्छा होकर भी भीतरमे इच्छा नही है। यह सब बल है श्रद्धानका, सम्यक्त्व का। उस ही सम्यक्त्वके प्रसगमें यह चल रही है यहाँ कि निमित्त किस भाँति होता है और उपादान किस भाँति होता है ? फिर हाल अभी निमित्तकी सख्या बता करके प्रकाश डाला जा रहा है। चर्चा यह चल रही कि विभावपरिणमनमे कितने तक निमित्त हो सकते हैं। इसके विभाग यो कर दीजिए कि पुद्गलके विभावपरिणमनमे तो अनेक निमित्त होगे। कपडा बनाया जाता है तो वहा कुम्हार, ततु, तुरी, बेम, शलाका आदिक औजार ये सब निमित्त पड रहे हैं, पर जीवके विकारपरिणमनमे निमित्त तो है कर्मकी अवस्था और बाकी जितने पदार्थोंके सयोग इसके विषयमे साधन बनते हैं वे सब पदार्थ कहलाते है आश्रयभूत।

जीवके मोक्षपरिणमनमें निमित्तोंका विचार--यहा कोई जिज्ञासु प्रश्न करे कि हम तो सुनते हैं कि मोक्षमे बडा सुख है, हमे तो मोक्ष ही चाहिए। मोक्षकी बातें बतायें कि

मोक्ष होनेमे क्या-क्या निमित्त बनता है ? क्योकि लोग मोक्षके पानेके लिए बहुत-बहुत कार्य कर रहे है, तपस्या भी करते है, देवदर्शन करते है, ध्यान करते है, अनेक प्रकारके उपसर्ग भी सहते है, स्वाध्याय भी करते है और भक्ति आदिक करते है तो ये सब बाते करना जरूरी है ना । तो मोक्षमे ऐसे-ऐसे कितने निमित्त होते है ? भैया ! इसका समाधान तब तक कोई न पा सकेगा जब तक कि यह न जान लें कि मोक्ष मुझे किसका करना है और वह कैसा है ? मोक्ष चाहिए मुझे आत्माका । कर्मसे आत्माको छुटकारा दिलाना ।

तो जिसको छुटकारा दिलाना है वह आत्मा क्या है, इसका सही निर्णय हुए बिना मोक्षका वास्तविक निमित्त क्या है, इसका समाधान नही पाया जा सकता । यह आत्मा है एक चैतन्यस्वभावमात्र । एक ऐसा अमूर्त पदार्थ जिसको कोई नही पकड सकता, न जिसमे किसी प्रकारका रूप रग है, सो न किसी इन्द्रिय द्वारा जाना जा सकता है । एक भावमात्र चैतन्यस्वभावमात्र आत्मा है, उसे मोक्ष दिलाना है । तो यह केवल यह ही रह जाय, इसके साथ जो कुछ और लिपटा है वह सब छूट जाय, ऐसी स्थिति बनाना है । यदि यह बात कोई पा सका तो वह समाधान पा लेगा कि मोक्ष होनेमे क्या-क्या निमित्त होते है । देखिये—मोक्ष जीवके स्वभावपरिणमनकी अवस्था है, अर्थात् जीवका जैसा स्वरूप है, स्वभाव है, वही मात्र व्यक्त रहे, वही प्रकट रहे, इसीका नाम मोक्ष है । स्वभावपरिणमनमे उस निमित्तकी बात जाननी है तो जानिये— कालद्रव्यके सिवाय अन्य कोई निमित्त नही होता मोक्षपरिणमनमे । हाँ पहिले समयमे जो मोक्ष होता है उसको तो यह कह सकते है कि उसमे निमित्त अष्टकर्मोंका क्षय है, पर मोक्ष होनेके बाद क्या सदा मोक्ष उनमे नही रहता ? जो छूट गया वह सदाके लिए छूटा ही रहता है । तो जितने अनन्त सिद्ध है कोई कभीसे मुक्त हुए, कोई कभीसे, उनका अब इस मोक्षपरिणमनमे निमित्त क्या है सो बताओ ? क्या कर्मोका क्षय ? कर्मोका क्षय हो ही नही रहा, क्योकि कर्म उनकी गाँठमे ही नही है । कर्मरहित जीवको ही तो सिद्ध कहते है । कर्म ही नही है तो कर्मोंके विनाशकी बात क्या कही जाय ? अब यह जचा होगा कि उस मोक्षपरिणमन होनेमे, केवल रहनेमे, स्वभावमात्र रहनेमे निमित्त केवल कालद्रव्य है । कालद्रव्य एक साधारण निमित्त है । इस कारण उसको कोई निमित्त ही नही कहा जाता, वह तो साधारण निमित्त है, उसे तो हटाया भी नही जा सकता । तो मोक्ष जीवके स्वभावपरिणमनकी अवस्था है और स्वभावपरिणमनमे केवल कालद्रव्य ही निमित्त है, अन्य कोई निमित्त नही है । जरा इसकी तुलना अन्य शुद्ध द्रव्योसे कर लीजिए । धर्म, अधर्म, आकाश और काल, ये चार द्रव्य शाश्वत शुद्ध द्रव्य है, इनमे कभी विकारपरिणमन न था, न है, न होगा । इनका सदा स्वभावपरिणमन होता है । तो अब बतलाओ—धर्मद्रव्यका स्वयमे जो स्वभावपरिणमन हो रहा है उसमे निमित्त

क्या है ? सिवाय कालद्रव्यके और कोई निमित्त नही है। कालद्रव्यके निमित्त वाली बात यो समझ लीजिए झट कि समय गुजर रहा है बस यही निमित्त है धर्मादिक द्रव्योंके परिणमनमे। अन्य कोई पदार्थ निमित्त नही है। तो जो पदार्थ शुद्ध होते हैं उनकी परिणति की ऐसी ही व्यवस्था है। अब जो शुद्ध है वे धर्म, आकाश आदिककी तरह ही तो केवल शुद्ध है, उनमे जो उनके असाधारण गुणोका सहज परिणमन हो रहा है उसमे कालद्रव्य निमित्त है अन्य कोई निमित्त नही है।

शुद्धात्माके परिणमनमें निमित्तत्वकी बात जाननेके लिये आकाशादिक शुद्ध द्रव्यों की तुलनाका वर्णन—एक बात और समझिये—जो कोई विलक्षण कार्य होता है, नवीन कार्य होता है उसमे तो निमित्तकी खोज करना चाहिए। यह कार्य अभी न था और अब हुआ और कार्य भिन्न जचे, उसमे निमित्तकी खोज होती है। स्वभाव परिणमनमे भिन्न भिन्न कार्य ही नही जंचा करते। अतएव वहाँ कालद्रव्यको छोडकर अन्य निमित्त नही है। हाँ पहिले समयमे जो मोक्ष हुआ है वह एक नवीन कार्य है। अभी तक तो ससार था, लो अब इस समयमे मोक्ष हुआ है तो वहाँ निमित्तकी बात विचार सकते हैं, सो वहाँ निमित्त है कर्मोका क्षय होना। कोई विधिरूप निमित्त वहाँ नही है। वहाँ अभावरूप निमित्त है, जिससे यह सिद्ध होता कि जीवकी स्वच्छताका प्रतिवन्ध करने वाले जो कर्म निमित्त थे उनका अभाव हुआ। लो स्वच्छता, निर्मलता, स्वभाव विकास तो स्वय ही अपने आप सहज होता है। केवल एक जो प्रतिवध था उसका प्रक्षय हुआ है। तो जीवका जो प्रथम ही प्रथम मोक्ष समय है उस समयके मोक्ष परिणमनमे तो निमित्त ढूंढा जायगा और वह निमित्त है कर्मोका क्षय। पर आगेके मोक्षपरिणमन शाश्वत निमित्त रहते ही है। ता सर्व कर्मोंसे रहित अवस्था उनके सदैव रहती है वहाँ आप निमित्त क्या कहेगे ? केवल कालद्रव्य निमित्त है। पर मोक्ष नाम है छुटकारेका और छुटकारेका अर्थ समझा जाता है बधनकी बात दिमागमे रहनेपर। जैसे किसीका पिता आज तक कभी जेलखाने नही गया। और कोई कह बैठे कि साहब, आपके पिता तो जेलसे मुक्त हो गए, तो वह सुनने वाला तो बुरा मानता है, क्योकि छुटकारा जो भाव है वह बन्धनको दिमागमें लेकर आया करता है। जेलसे छूट गया इसका अर्थ है कि पहिले जेलमे बद्ध था, तो यह एक तरहसे बुरा लगता है, तो मोक्ष शब्द कहकर इसका अर्थ आपेक्षिक रखनें पर यह एक आमतौरसे कहा जाता है कि कर्मके क्षयके निमित्तसे मोक्ष होता है, पर उसमे विवेकपूर्वक देखा जाय तो प्रथम समयमे जो मुक्तिरूप नवीन कार्य है उसका निमित्त तो है कर्मका क्षय, पर इसके बाद जो सदा छूटा रहना है, अलग रहना है, स्वभावमे रहना है उसका कारण केवल काल है, अन्य और कोई निमित्त नही है।

प्रभावकी निष्पत्तिका उद्गम—अब कुछ इस तत्त्वपर विचार कीजिये कि जो कार्य हुआ है वह वास्तवमे किसका प्रभाव है ? इस समस्याके समाधानसे भी यह प्रसग स्पष्ट हो जायगा। इसके लिये कुछ उदाहरण लीजिये। जैसे किसीने गाली दी और उसे सुनकर लक्षित पुरुष क्रुद्ध हो गया तो बताइये वह क्रोधपरिणमन रूप असर क्या गाली देने वालेका है या क्रुद्ध हुए पुरुषका है। यदि गाली देने वालेका असर दूसरे पुरुषपर पहुंचता है तो अन्य भी मनुष्य तो वहाँ बैठे है किसी अन्यपर यह असर क्यो नही पहुचा ? और देखिये वह लक्षित पुरुष भी ज्ञानबलसे अपनेमे जरा भी क्षोभ नही लाता तो क्रोध भी न हुआ। उस समय उसके ज्ञानबलका असर रहा। असर नाम प्रभावका है, प्रकृष्टरूपसे होनेका नाम प्रभाव है। प्रकर्षेण भवन प्रभाव। होनेका नाम भाव है। जिस होनेपर चर्चा हो, दृष्टि हो, उस होनेकी बात सिद्ध होनेपर उसका नाम प्रभाव कहलाता है। तो प्रभाव नाम होनेका है। जिसमे प्रभाव हो, परिणमन हो वह प्रभाव उस पदार्थका है। जो कुछ है, पूर्ण हो या अशरूप हो। वह द्रव्य, गुण या पर्याय इन तीनमे से ही कुछ कहा जा सकता है। सो असर नाम द्रव्य व गुणका तो है नही, क्योकि द्रव्य और गुण शाश्वत है, असर विनाशीक है। तब असर पर्यायका नाम है। पर्याय जिसमे हो उसकी ही पर्याय कही जाती है सो असर जिसमे हो उसका ही असर कहा जायगा। हाँ, वह कार्य निमित्तकी अनुपस्थितिमे नही हो सकता था सो यह निमित्तनैमित्तिक मेल बतानेके लिये निमित्तका असर है, यो समझाना होता है। देखिये दिनके प्रकाशमे वृक्षके नीचे छाया होती है। उस छायाको बताइये—छाया किसकी है। लोक तो यह कहते है कि छाया वृक्षकी है, यह कथन निमित्तकी प्रधानतासे है। वास्तवमे तो छाया है परिणमन जिसका हुआ हो छाया उसकी है। छायारूप परिणमनके लिये हुआ क्या ? पृथ्वीने स्वय अपने आपमे छायारूप परिणमन किया सो पृथ्वीका ही असर है वह छाया, और होती है निमित्तको पाकर, तो ऐसी सब जगह यही बात घटित करना चाहिए, जीवको सम्यक्त्व होता है तो प्रभाव किसका है ? जीवका। जीवने अपने आपमे अपना प्रभाव बनाया अर्थात् अपनेको सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न किया।

नैमित्तिक परिणमनके प्रसङ्गमें भी परिणतिका स्वातन्त्र्य—अब देखिये यह कि सम्यक्त्वकी निष्पत्तिमे निमित्त क्या हुआ ? ७ प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम अन्य और कोई निमित्त नही हुआ। न समवशरण, न भगवानका दर्शन, न वेदनाका अनुभव, न जातिका स्मरण, न देव ऋद्धियोका दर्शन, ये कोई निमित्त नही होते। ये सब कहलाते है आश्रयभूत। आश्रयभूतके साथ कार्यका अन्वयव्यतिरेक नही होता और निमित्तके साथ नैमित्तिक कार्यका अन्वयव्यतिरेक होता है। निमित्तके होने पर कार्यका होना, निमित्तके न-

होनेपर कार्यका न होना यह सम्बन्ध निमित्त और नैमित्तिक याने उपादानके परिरणमनमे है परस्पर पर-उपादान और आश्रयभूतमे अन्वयव्यतिरेकका नियम सम्भव नही है। समवशरणमे यह जीव अनेक बार गया, उपदेश भी सुना, सम्यक्त्व न हो तो वहाँ यह शका न करना चाहिये कि देखो सम्यक्त्वका निमित्त तो मिला, पर सम्यक्त्व नही हुआ। सम्यक्त्वका निमित्त उसे न मिला था। सम्यक्त्वका निमित्त है अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शन मोहनीयका उपशम, क्षय और क्षयोपशम। वह होता तो सम्यक्त्व होता, पर समवशरणादि सब साधन आश्रयभूत हैं और आश्रयभूतमे नैमित्तिक कार्यके प्रति नियम नही बनता। इसीसे तो यह सब अन्तर देखा जाता है कि चीज एक ही है पर उसके आश्रयसे परिणाम अनेकोंके अनेक तरहके होते हैं। वही बात किसीको सुहाती है और किसीको नही सुहाती है। चीज एक है, यह अन्तर इस कारण है कि वह चीज सुहाने या असुहानेका निमित्त नही है। उसका निमित्त तो उस प्रकारके मोहनीयका उदय है। तो यह समझ लिया होगा कि निमित्तनैत्तिक भाव भी एक कोई प्रबल घटना है और उपादानकी स्वतन्त्रता भी किसी उपादानकी अपनी परिणतिमे स्वतन्त्रता भी बेरोकटोक है। मृदग बजता है, बजाने वाला उस पर हाथकी ठोकर मारता है। लगता यो है कि बजाने वाले ने जबरदस्ती ठोकर लगाकर मृदंगको बजा ही दिया। अब बजनेके मायने शब्दरूप परिणमन। तो पुरुष ने उस मृदगमे, उस तबलेमे ठोकर लगाया। यहाँ पुरुषके आत्माने अपने आपमे भावका कर्म किया। उसका निमित्त पाकर पुरुष शरीरकी हथेलीने काम किया और उस हाथके सयोगका निमित्त पाकर वह मृदंग, वह चमडा या कपड़ा पदार्थ जैसा क्रियावान् बना, उसका निमित्त पाकर भाषावर्गणा जातिके जो पुद्गलस्कध हैं; वे शब्दरूप परिणाम गए। तो शब्दरूप परिणमनेमे उन भाषावर्गणाओकी परिणतिके समय परिणतिने किसीकी अपेक्षा नही की, तबलेमे हाथ लगाया, लग गया। अब शब्दरूप जो परिणम रहा है स्कंध सो वह किसी दूसरेका मेल करके, दूसरेकी परिणति लेकर या खुद और दूसरा दोनो मिलकर नही परिणम रहे। वहां केवल वह भाषावर्गणास्कंध शब्द रूप परिणम गया। उपादान स्वातत्र्य भी देखिये– कोई मनुष्य उत्तेजक व्याख्यान दे रहा है शासकके विरुद्ध, कोई उत्तेजनोत्पादक बात-कह रहा है तो वक्ताने अपने आपमे भावका निर्माण किया और उसके निमित्तसे ये ओठ, जीभ आदिक इनका ऐसा सयोग वियोग होता रहा कि शब्दरूप परिणमन चलता रहा। अब उसे सुनकर श्रोतावोको जो उत्तेजना उत्पन्न हुई उस उत्तेजनारूप परिणमनमे किसी दूसरेका साथ नही लिया गया, वह स्वय अपनेमे उत्तेजनारूप परिणमता रहता है। तो उपादानका स्वातत्र्य और निमित्तनैमित्तिक भाव दोनोको विधिवत् जानने पर सम्यग्ज्ञान हुआ जानिये। परन्तु वहा कही उपादान परतत्र न हो जाय, इस डरके मारे

निमित्तनैमित्तिक भावको न मानना और उपादानमे अटपट परिणमन न हो जाय इससे निमित्तकी मुख्यता रखना और उपादानमे स्वातंत्र्य नही मानना, ये सब दोनो ओरकी कमजोरियाँ हैं, विधिवत् जानकर फिर जिस दृष्टिमे समाधिभाव जगता है, निर्विकल्पता जगती है, निर्विकल्पताके निकट पहुचना वनता है उस दृष्टिको प्रधान वनाकर आगे वढिये । और फिर जव सत्य आनन्दकी अनुभूति होनेको होगी तो वहाँ सव दृष्टियाँ छूट जायेगी, केवल एक ज्ञानानुभव रहेगा ।

मोक्षमार्गके वाह्यसाधनोंकी चर्चा—निमित्त उपादानके इस प्रसंगमे प्रश्न यह किया गया था कि मोक्षपरिणामनमें क्या क्या निमित्त होते है ? उसका उत्तर यो हुआ कि प्रथम वार जो मोक्षपरिणामन है उसमे तो कर्मोका क्षय निमित्त है और उसके वाद जो सदैव मोक्षपरिणामन वना रहता है उसमे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्यके परिणामन की भाँति केवल कालद्रव्य निमित्त है, अन्य कोई पदार्थ निमित्त नही है । इस समाधानको पानेके वाद यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि चलो मोक्षपरिणामन वना रहनेका भी निमित्त मर्म समझा और प्रथम समयमे मोक्षपरिणामनका भी निमित्त समझा, लेकिन इससे पहिले जव जीव मोक्षमार्गमे चल रहा है, मोक्षके विपयमे यत्नशील है तो उस समय उसको क्या क्या निमित्त होते है, तो वहाँ मनुष्यभव वज्र वृषभ नाराच सहनन आदिक अनेक निमित्त है । निमित्त शब्दसे कितनी ही वार प्रयोग किया जाय, वहाँ यह विवेक रखना कि साधारणतया आश्रयको भी निमित्त कह देते है और जो निमित्त हैं साक्षात् उनको तो निमित्त कहते ही हैं । जव जीव मोक्षके उपायमे चलता है तो मोक्षका उपाय वनता किससे है ? मनुष्यसे । मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है न कि तिर्यञ्च, नारकी या देव । तो देखिये—मनुष्यभव निमित्त रहा ना । और मनुष्योमे भी जिसके वज्र वृपभ नाराच संहनन है वह ही जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता । अन्य कोई मोक्ष नही प्राप्त कर सकता । तो यो वज्र वृपभ नाराच सहनन भी निमित्त हुआ । इस प्रसगमे इस तथ्यको ध्यानमे रखना होगा कि मोक्षमार्गमे जव चल रहे है उस समय भी अन्तरङ्ग वाह्य निमित्त तो कर्मोदयकी अवस्था है, उनका क्षय क्षयोपशम चल रहा है । यहाँ दर्शन ज्ञान चारित्र गुणोकी वृद्धि हो रही है । इसीका नाम तो मोक्षमार्ग है । तो वस्तुत ये कर्मोकी अवस्थायें मोक्षमार्गमे निमित्त है । पर अन्य वाह्य स्थितिया कैसे हुई जिनमे जीवको ये कर्मोके क्षयोपशम आदिक मोक्षमार्गमे निमित्त पडे, उन स्थितियोका यह वर्णन है । तो ये वहिरंग वाह्य निमित्त हैं ।

भावविशुद्धिसे मोक्षमोक्षमार्गसाधनोंका अनायास मिलन—मोक्षमार्गकी साधनाके निर्णयको सुनकर यह जिज्ञासा हो सकती है कि फिर तो यह भावना वनायी जानी चाहिए कि इन निमित्तोको खूव जुटायें । जीवको मोक्षके लिए फिर मनुष्यभव, वज्रवृषभनाराच

सहनन आदिक जुटानेकी जरूरत है, तब फिर इनके जुटावमे लग जाना चाहिये। एक इस तरहकी मनमे तरग उठती है। लेकिन यह तरंग विवेकपूर्वक विचार करने पर शान्त हो जाती है। मनुष्यभवको जुटानेमे लग जावो। अच्छा लग जावो, कैसे लगोगे ? कैसे जुट जावोगे ? कोई जान मानके यत्न करने वाली बात हो तो बताओ। यह तो सब भाव साध्य बात है। जीवके निर्मल परिणाम हो और उससे अपने आपमे एक शान्ति और प्रकृतिकी बात बने तो ये सब निमित्त मिल जाते है, पर इन निमित्तोको हमे जुटाना है, क्यो कि ये मोक्षमार्गके कारण है, साधन है। इस प्रकार पराश्रित दृष्टि बने तो मोक्षका कारण न बनेगा। पराश्रित दृष्टि तो ससारका ही कारण है। जिसे मोक्ष जानेकी इच्छा है, जिसका मोक्षके लिए प्रयत्न है उसका तो काम है कि वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रस्प निर्मल परिणाम बनाये। यह अमुक बाह्यद्रव्य निमित्त है और वहाँ दृष्टि है और उनको जुटानेका भाव बनाये इससे कोई सिद्धि नही है। वे तो सब अनायास मिलकर निमित्त होते हैं, प्रयत्न तो यही करना चाहिए कि हमारा रत्नत्रयभाव निर्मल हो, इसके अलावा अन्यत्र दृष्टि न होना चाहिए। जो निर्मल परिणाममे रहेगा उसके अवसर पर ये सब निमित्त मिल जायेंगे. क्योकि उन उत्तम सहनन और मनुष्यभवके मिलनेका निमित्त भी तो जीवका निर्मल परिणाम है। तो एक निर्मलताको अगर साध लिया तो सब बातें सध जाती हैं और एक अपने आपकी निर्मलताको न साध सके तो बाहरमे किन्ही भी चीजो का सग्रह करे तो वह न सध सकेगा। यह सब मिलेगा अपने अवसर पर और वह अवसर मिलेगा आत्माके निर्मल परिणामकी कृपासे। निमित्तकी आशा, निमित्तकी दृष्टि रखनेसे उनका लाभ नही है।

पुण्याशासे पुण्यबन्ध न होनेकी भाँति मोक्षमार्गके बाह्यसाधनोंके जुटानेके विकल्पोंसे संप्राप्तिका अभाव—जैसे कोई पुरुष पुण्यकी आशा रखकर पुण्यकार्य करे तो उसे पुण्यबध नही होता, क्योकि पुण्यकी आशारूप पापपरिणाम तो पहिलेसे कर लिया, अब पुण्यका यत्न कहाँसे हुआ ? तो पुण्यकी आशासे जैसे पुण्यका बध नही होता इसी प्रकार मोक्षमार्गके इन बाह्य निमित्तोके जुटानेकी इच्छासे और प्रयत्नसे यह जुट नहीं जाता। लोग इस आशासे भी देवपूजा बहुत किया करते हैं कि इससे बाधायें मिटती है, शान्ति मिलती है या सुख मिलता है, आनन्दका लाभ होता है। खूब रोजिगार चलता है, तो इस आशाको रखकर यदि वह भक्तिमे लग रहा है तो उसके पुण्यका विशेष बध होता है और उसके उदयमे लौकिक सम्पदायें मिलती है, लेकिन यह चलन चल यो गया कि लोग आशा रखकर प्रभु-दर्शन आदिक करते है जैसा कि उन्होने समझ रखा है और साथ काम भी हो जाता है। तो जब काम सिद्ध हो गए लौकिक तो यह श्रद्धा जम जाती है कि देखो प्रभुसेवासे ही यह

काम बना। लेकिन जो लोग प्रभुके निकट ही नही आ रहे, ऐसे करोडो अरबो पुरुष है जो प्रभुका नाम भी नही लेते और उल्टे ही उल्टे चलते है, विदेशोमे बहुतसे लोग ऐसे भी भरे है और इस देशमे भी ऐसे लोग भरे है, उनके भी तो काम हो रहे है। घर बनते जा रहे हैं, संतान होती जा रही है, द्रव्य भी आता जा रहा है, तो यह तो एक ख्याल बना रखा है कि प्रभुसेवा करनेसे हमको धन मिलेगा इसलिए सेवा करनी चाहिए। यह भाव उत्तम भाव नही है। यहाँका सर्व समागम जो कुछ मिला, मिलेगा वह सब पुण्यानुसार मिलेगा। उसका तो निमित्त ही पुण्योदय है। अब अपने आपको संसारके संकटोसे बचाना है सदाके लिए तो आत्माका स्वरूप जानें और उसमे रमण करनेका यत्न करे। प्रभुभक्ति करें, जिस उपायसे बने स्वरूपदृष्टिमे रहे, उस सहज चैतन्यस्वभावकी दृष्टिमे रहे। जो काम करना है सो कीजिए, पर पुण्यकी आशा रखकर चाहे कि पुण्यबध हो और उससे काम बने तो यह बात नही बनेगी। तो जैसे पुण्यकी आशासे पुण्यका बंध नही होता इसी प्रकार इस मोक्षमार्गके साधन जुटानेका यत्न करने, विकल्प करने और इच्छा करनेसे यह साधन नही जुटता।

अविकार अन्तस्तत्त्वके आश्रयरूप विशुद्धिसे मोक्षमार्ग प्रगतिका लाभ—भैया! एक परिणामोकी निर्मलताका यत्न बनाये तो ये सब साधन सहज मिल जायेगे। देखिये—उपादानमे अनेक कार्य निमित्तपूर्वक होते है और आत्माका मोक्षमार्ग भी अनेक बाह्य साधनो मे चलता है, लेकिन निमित्तका लक्ष्य रख करके मोक्षमार्ग नही चलता। निमित्तमे चलता है यह बात ठीक है, पर निमित्तके लक्ष्यमे मोक्षमार्ग नही चलता। निमित्तका लक्ष्य करना तो स्वय एक बडा विभावपरिणमन है, परदृष्टि बनाई गई तो निमित्तका लक्ष्य बनाये रखना तो ऐसा पापका काम है कि जिसका फल तो संसारमे रुलना है उससे मोक्षमार्गकी आशा करते हैं। बात यहा यह बतायी गई है कि मोक्षमार्ग ऐसे ऐसे निमित्तमे चला करता है यह बात तो सही है, पर निमित्तका लक्ष्य रखकर मोक्षमार्ग चले यह बात गलत है। निमित्तका लक्ष्य बनाना परदृष्टि है, मिथ्यात्व है, मोह है, वह तो ससारमे रुलनेका साधन है। यदि संसारका रुलना इष्ट न हो तो निमित्तका लक्ष्य छोडकर अखण्ड निर्विकल्प विशुद्ध स्वलक्षण मात्र इस चैतन्यस्वभावकी ओर आइये। यह चैतन्यस्वभाव निमित्त नही है, इसलिए निमित्तका लक्ष्य न करना ऐसा सोचकर इसका लक्ष्य न छोडिये। यह तो स्वय है, उपादान है, अपने आपमे है। और यहाकी विधि ही यह है कि अपने अन्तस्तत्त्वका लक्ष्य करेगे तो सब कार्य मोक्षमार्गके लिए जैसा होना होता है वैसा हो जाता है। तब कर्तव्य यह है कि निर्विकल्प आत्मस्वरूपकी ओर उन्मुख हूजिए। फिर उस मोक्षके विकासके लिए जिन वस्तुओका संयोग वियोग जिस जिस रूपसे जो निमित्त चाहिए होगे वे सब स्वयं होगे,

अपने आप होंगे, पर निमित्तके लक्ष्यसे मोक्षमार्ग न बनेगा, निमित्तपूर्वक कार्य हो रहे हैं यह बात ठीक है, पर निमित्तके लक्ष्यसे होने वाला भी कोई कार्य होता है। मगर वह है पाप, वह है संसारमे रुलना, वह है बन्धनकी बात। कर्तव्य अब यह है कि निर्णय तो यह रखें कि नवीन कार्य निमित्त सन्निधानपूर्वक हुआ करते है, पर हमारे हितका मोक्षमार्गका कार्य यह निमित्तके लक्ष्यसे न बनेगा, किन्तु निमित्तका लक्ष्य छोडकर अपने आपमे शाश्वत विराजमान अन्त प्रकाशमान चित्स्वरूपके लक्ष्यसे न बनेगा।

ज्ञान और वैराग्यकी सत्यशरण्यरूपता—जगतके सभी लोग अपनी शान्तिके लिए अपना कुछ न कुछ सहारा तका करते है, लेकिन जरा सोचिये तो सही कि इस जगतमे कौनसा ऐसा सहारा है जिससे वास्तविक शान्ति प्राप्त हो ? इस जगतमे वहुतसे खटपट करके देख लिया होगा, पर कही शान्ति तो अभी तक नही प्राप्त हुई। वहुतसे मित्रजनोंसे, नेता आदिकसे सहारा तका पर वहासे धोखा ही मिला, पञ्चेन्द्रियोसे सहारा तका, वहासे भी धोखा ही मिला। तो बाहरमे कोई भी अपना सच्चा सहारा नही है। अपना सच्चा सहारा है ज्ञान और वैराग्य। अपने जीवनभर दुःखी होनेके बाद और अनेक उपसर्ग उपद्रव सहनेके बाद भी अगर कोई उस तथ्यभूत निर्णयपर आ जाता है तो उसकी जिन्दगी सफल है। ज्ञान और वैराग्य ही केवल इस जीवके लिए शरण है। जितना जितना यह जीव अपने आपको अकेला निरखता जायेगा उतना ही उतना यह शान्तिके मार्गमे बढता जायेगा। मैं आत्मा इस देहसे भी निराला एक ज्ञान ज्योतिस्वरूप हूँ, यो जितना-जितना अपने आपके अकेलेकी ओर यह जीव आता जायगा उतना ही उतना इसके संकट टलेंगे और प्रसन्नता होगी। हम आप जिस मेलेमे आये हुए हैं, जिन भगवानके पूजन वदन हेतु यहा पर बहुत दूर दूरसे लोग आये हुए है उन भगवानमे ऐसी क्या खूबी है ? उन्होने कौन सा ऐसा कार्य किया था जिसके कारण आज वे पूज्य बने हुए हैं, वदनीय बने हुए है ? तो उन्होने किया था ज्ञान और वैराग्य। उनका यह ज्ञान और वैराग्यका ऐसा सहारा था कि जिससे वे अडिग रहे और आत्मसाधनामें सफल हुए, निर्वाण हुआ। यही कारण है कि हम आपका उन प्रभुकी ओर अनुराग है। यहाँ की बाहरी दिखावट बनावटकी बातोसे इस जीवको शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। आत्माको वास्तविक शान्ति तो ज्ञान और वैराग्यसे ही प्राप्त हो सकती है। जगतके अन्य किसी भी पदार्थसे शान्ति नही प्राप्त हो सकती। इस बातको उन प्रभुने अच्छी तरहसे जान लिया था, और जगतके सर्व बाह्य पदार्थोंका सहारा तजकर आत्म-उपासनामे लग गए थे। उस आत्मउपासनाके कार्यमे वे रंच भी विचलित नही हुए। यही कारण है कि वे प्रभु हम आपके लिए पूज्य हुए। तो जो अपने को जितना अकेला विचारेगा वह उतना ही सुखी होगा। इसे अगर एक शब्दमे कहे तो

यह निर्णय रख लीजिए कि मैं अपने आपको जितना अकेला सोचूंगा उतना ही आनन्दकी ओर हू और जितना जितना दूसरोसे सहारा तकेगे उतनी उतनी ही हमको अशान्ति है। एक यह सिद्धान्त है इसका आप खूब विचार कर लीजिए।

बाह्यसमागमका लगाव छोड़े बिना शान्तिकी असंभवता—सारी जिन्दगीभर जीते हैं, सब कुछ कमाया, पुत्रादिक बडे हुए, उन सबसे शान्ति प्राप्ति करनेकी बडी बडी आशायें की, पर उनसे कौनसी चीज ऐसी प्राप्त हुई जिसके बलसे सन्तुष्ट रहे ? सतोष सबसे बडा धन है। लोग आज जो सोना चांदी आदिक धनकी होडमे लग रहे है वे सोचते तो यह हैं कि इससे हमे सुख मिलेगा, पर कदाचित ऐसा हो जाय कि सबकी सारी सम्पदा सरकार जप्त कर ले, मात्र गुजारे भरका ही रहने दे तो जरा सोचो तो सही कि उस समय आपको कितना दु खी होना पडेगा ? हलाकि आपकी आजीविकाके लिए आपके पास कुछ धन रहेगा; पर उस कमाये हुए धनके छूट जानेपर दु ख तो होगा ही। जो बाहरी समागम है चाहे जीते जी छूट जाये या मरण हो जानेपर छूट जायें, वे छूटने तो है ही। मगर इतना विवेक नही करते कि हम भगवानके नामपर अथवा अन्य धार्मिक कार्योंपर कुछ धन खर्च कर ले, और उस धनका वास्तविक सदुपयोग करके अपने जीवनको सफल कर ले। अपने जीवनका सुधार व बिगाड करनेके लिए हम आपके सामने एक बडी समस्या है। यहाकी प्राप्त चीजें जो कि एक दिन छूटनी ही है उन्हे अभीसे छूटा हुआ समझ लें तब तो ठीक है, नही तो उनके छूटनेपर बडा चिन्तातुर होना पडेगा।

उपलब्ध स्वर्णावसरमें आत्मकल्याणका उपाय बना लेनेकी बुद्धिमानी करनेका अनुरोध—अहो, करना तो था यहाँ अपने उद्धारका कार्य, पर यदि विषयोकी खाज खुजानेमे ही सारा जीवन खो दिया तो समझो कि नीचे ही गिरना होगा। ऊँचे उठनेकी बात न बन सकेगी। इससे भाई यह विचार करो कि मैं आत्मा क्या हू और मुझे शान्ति कैसे मिले ? इसका उत्तर इन्द्रियोको उद्दण्ड बनानेमे न मिलेगा। अपने नेत्रोंको बन्द करके, इन्द्रियविषयो की उपेक्षा करके अपने आपको अकेला विचार करनेपर अपने आपका सही निर्णय कर लिया जायगा। क्या करना है ? जो भगवानने किया सो ही हमे भी करना है, भगवानने क्या किया ? प्रभुने किया आत्माका विश्वास, आत्माका ज्ञान और आत्मामे रमण, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र।

हम आप जापमे बोल जाते है, पञ्चपरमेष्ठीका नाम बोल जाते है, भगवानका नाम बोल जाते है, पर भगवान क्या है, यह बात चित्तमे नही आती। हम आप रत्नत्रयका नाम बोल जाते है मगर वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र क्या है, यह बात दृष्टिमें नही आती। यह तो बडा अधेरा है जो कि विषयोके रगमे रंगे हुए है। इन विषयोके रग

मे रमकर तो हम आपको लाभ न प्राप्त होगा। मान लो घर गृहस्थीमे रहकर आज घरके, समाजके, देशके कार्य करने पड रहे हैं सो तो ठीक है, मगर उनमे राग और द्वेषकी बुद्धि करना यह कहाँ तक ठीक है, इसपर तो आप विचार करें ? मान लो यहाँसे मरकर किसी अन्य देशमे उत्पन्न हो गये तब तो फिर इस देशका कुछ भी समागम आपका न रहेगा। आप तो जिस देशमे उत्पन्न हो गए उसे ही अपना समझेंगे और वहाँके समागम ही आपके लिए इष्ट वस्तु बन जायेंगे। तो घर गृहस्थीमे रहकर आप गृहस्थीके कार्य सम्हालें, गृहस्थीके नातेसे कार्य निभायें सो तो ठीक है, पर बात ध्यानमे रहे कि ये मेरे मुख्य कार्य नही हैं। मेरा तो मुख्य कार्य है आत्मोद्धारका। यह आत्मोद्धार ही मेरे लिए सहयोगी है, अन्य कार्य कोई मुख्य कार्य नही हैं। अपना मुख्य कार्य तो है ज्ञान और वैराग्य बनाना। यदि इस पथ से चले तब तो आत्माका उद्धार है अन्यथा तो जन्ममरणके सकट ही भोगते रहना होगा और संसारमे रुलते रहना होगा। यदि यहासे मरण करके कीडा मकोडा हो गए तो फिर क्या करोगे ? तो यहा पर जो कुछ भी चीजें प्राप्त हुई हैं उनका सदुपयोग इसीमे है कि अपने ज्ञानको बढायें, मोहममता, रागद्वेषादिक दूर हटायें और अपने आपके अकेलेपनका अधिकाधिक ध्यान दें तो हम आपको शान्तिका मार्ग मिलेगा। बाहरमे कही भी शान्तिका मार्ग न मिलेगा। इसके लिए आवश्यक है स्वाध्याय करना। घरपर अथवा दूकानपर अथवा अन्यत्र कही हो, वहा स्वाध्याय कीजिए। स्वाध्याय करने से कुछ दिनोमे आप अपने आपमे कुछ बल पायेगे अन्यथा तो कषायोमे पडकर कुछ बल नही मिलेगा और न अपने आत्माका उद्धार हो सकेगा।

मोक्षके निमित्तोंका लक्ष्य होनेकी मोक्षविघ्नरूपता—अभी तक यह बताया गया था कि मोक्ष होनेमे मनुष्यभव, वज्रनाराचनसहनन आदिक निमित्त पडते है, जिस किसी भी प्रकारसे यह बात बतायी गई थी। तब यह जिज्ञासा होती है कि जब ये सब बातें मोक्षमे निमित्त हैं तो इसका लक्ष्य रखना क्यो हानि पहुचाता है ? अभी यह बताया गया था कि यद्यपि मनुष्यभवके बिना जीवको मोक्ष न मिलेगा, वज्रनाराचसहनन को छोडकर अन्य सहननोसे मोक्ष नही मिलता, लेकिन कोई इसका लक्ष्य रखे कि मुझे आगे मनुष्यभव मिले, उस मनुष्यभवसे हमारा मोक्ष होगा। तो इस प्रकार निमित्तपर लक्ष्य रखनेसे मोक्ष नही मिलता निमित्त है, मनुष्यभव बिना मोक्ष नही होता, पर मनुष्यभवका कोई ध्यान बनाये रखे तो उससे भी मोक्ष नही मिलता। सो ही पूछा जा रहा है कि निमित्तके लक्ष्यसे अलाभ क्यो होता है ? तो समाधानमे यो समझना कि निमित्तका लक्ष्य करनेसे जो काम बनेगा तो चूंकि जीवने अपना लक्ष्य छोडकर किसी बाह्य पदार्थका लक्ष्य किया, इस कारण विभाव परिणमन बनेगा। जिस विभावपरिणमनका फल है ससारमे रुलना। तो अगर ससारका

रुलना इष्ट नही तो निमित्तका लक्ष्य छोडे और अपने आपका जो एक सहज शाश्वत स्वरूप है उसका लक्ष्य करे। अगर अपने आपका लक्ष्य दृढ बनेगा तो मोक्ष होने के लिए मोक्षमार्गमे जिन-जिन चीजोका निमित्त होना चाहिए वे अपने आप होगे।

परप्रसङ्गमें निःसारता—देखो-लोग जिन्दगीमे बडे-बडे संकल्प करते है, इतना वैभव बढाना है, मकान बढाना है, खेती बढाना है अथवा लोगोमे इज्जत बढाना है। तो ठीक है, बढा लें, बढ जायगी, लेकिन इसका फल क्या होगा ? खूब जायदाद बढ गई तो क्या फल मिलेगा ? वह समय आयगा ही कि सब कुछ छोड कर जाना पडेगा। उससे फायदा क्या पाया ? और हाथ पैर व्यर्थ ही पीटते रहे। मान लो लौकिक इज्जत भी खूब बढ़ गई, लोग बडा अच्छा मानने लगे तो भी क्या फायदा है ? नुक्सान ही हुआ। अगर उसमे दिल फसा है, उसका विकल्प बना है तो उसके कारण इसके कर्मबन्ध होगा और ससारमे रुलना रहेगा, मोक्षमार्ग न मिल पायगा। तो नुक्सान ही हुआ, फायदा कुछ नही। एक यह सकल्प भीतरमे बनाये कि हमको तो कर्म, शरीर, कषाय आदिक सबसे छूटना है। मैं अकेला हू, अकेला ही संसारमे रुल रहा हू। इस मुझ अकेलेका कोई सहाय नही है। जब जहाँ जिस पर्यायमे जाना है, जिस पर्यायरूप जो कुछ होना है वह सब अकेलेको ही करना पडता है। इस मुझ अकेले अकिञ्चन ज्ञानमात्र आत्माका दुनियामे कुछ नही है। इस हितकारी परिज्ञानका लाभ इसीमे है कि मै सब झंझटोसे छूटकर केवल रह जाऊँ। जैसा मैं आत्मा विशुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र हूँ, केवल वही रह जाऊँ, मेरा व्यक्तिगत रूपसे कोई नाम लेने वाला नही, कोई पहिचान करने वाला नही, किसीका उससे लगाव नही। कुछ मत रहो, सारी दुनिया मुझे भूल जाय, मैं भी सबको भूल जाऊँ, यहाँ इस प्रसंगमे सार तत्त्व कुछ नही है, मुझे तो संसारबन्धनसे छुटकारा पाना है, दूसरा मेरा कोई प्रोग्राम नही है, ऐसा संकल्प आये तब समझिये कि आत्मा पुण्यमय हो रहा है। आप अपना बडा लाभ पा रहे है।

अन्तस्तत्त्वके ज्ञानप्रकाश विना तृप्तिकी असंभवता—अन्तस्तत्त्वके ज्ञानप्रकाशके बिना बाहरमे आप कुछ कर लें, मन वचन कायका योग ही तो किया, परिश्रम ही तो किया, अपने ज्ञानको ही तो बिगाडा, फायदा क्या पाया किसी भी बाह्य बातमे ? अपने स्वरूपको देखिये। देखते रहो, तृप्त रहो, ऐसी धुन बनाओ वह है आत्माकी सार और कामकी बात, इसके अलावा चाहे आप कितना ही खुश हो रहे हो किन्ही बाहरी बातोमे, वह सब बेकार है। जैसे शराबके नशेमे जिसे नशा आया है ऐसा पुरुष हँसता अधिक है और अपने बोलनेकी बडी कला भी दिखाता है, लेकिन उसका हँसना और उसकी चतुराईका दिखाना कोई बुद्धिमानी नही है, दुःख ही है। इसी प्रकार यह मोहका नशा—तीन लोकमे कहाँ कितना क्या

ढेर पडा हुआ है उस ढेरमे से थोडीसी ढेरी मिल गई, थोडा वैभव मिल गया, यहाँ खुश हो रहे है, अपने आपको बडा चतुर और वडा समझ रहे है लेकिन उस शरावीकी तरह यह भी इन मोही प्राणियोका हसना है। सार कुछ नही है, अविवेक है, लेकिन जहाँ सारे ही शरावी जुडे हो, उनमे एक भी विना नशाका न हो, तो उनकी जो आपसमे क्रीडा होती है, वोलचाल होती है व्यवहार होता है उसे खराव समझे कौन ? इसी प्रकार इस लोकमे जब सभी मोही जीव पडे है तो इनकी जो लीला हो रही है, मेरे तेरेका विकल्प चल रहा है और बडी व्यवस्था बनायी जा रही है, इनको बुरा कहने वाला कौन मिले ? क्योकि सभी मोही जीव यहाँ पडे हुए हैं। जैसे सैकडो शरावियोके बीच अगर कोई एक भला आदमी पहुच जाय जिसमे कि नशा नही है तो उसकी सुने कौन ? और उसे महत्त्व दे कौन ? इसी तरह जहाँ ये अनन्त मोही जीव पडे हुए हैं ये सैकडो अरवो मनुष्य जहाँ ये मोही पडे है और इस लोकमे मेरे तेरेका व्यवहार बनाया है, इज्जतकी कल्पना की है, इनके बीच अगर कोई एक ज्ञानी पहुचे तो उसको महत्त्व दे कौन ?

संसारकी सर्वतः कष्टरूपता—यह सारा ससार कष्टमय है और इससे बढकर कष्ट क्या होगा कि कष्ट पा रहे है, फिर भी कष्टको सही मायनेमे कष्ट नही समझ पाते। तो एक सकल्प होना चाहिए कि हमे तो कर्मबन्धनसे छुटकारा पाना है, एक ही मेरा काम है। यही काम कर लिया तो यह मनुष्यजीवन सफल है, इसका उपाय बना लें। इसका उपाय है सम्यग्दर्शन। सम्यक्त्वकी प्राप्ति अगर हो गई तो समझो कि जीवन सफल है और सम्यक्त्व न पाया तो कुछ भी करते रहो, सब बेकार है। इसमे अब कुछ धीरतापूर्वक आत्मकल्याण की ओर झुकना चाहिए। कहाँ आत्मकल्याण बसा है ? सब कुछ मेरा मेरे स्वरूपमे है, आपके जौहरका पता नही, और बाहरके खण्ड पत्थरमे जौहर निरखते है। मोक्षकी चाह करे, एक ही कार्य अपने उद्देश्यमे रखे कि मुझे तो जन्ममरणके सकटसे छुटकारा पाना है, क्योकि जन्म मरणमे दुःख है, तत्त्व कुछ नही है, मलिनता है। मनुष्य हुए, जब जन्मे तो बड़ी खुशियाँ मनाई गयीं। तो देखो जो बच्चा पैदा हुआ वह तो बडा कष्ट पा रहा है और ये घरके लोग बडी खुशियाँ मना रहे हैं। उसे तो जन्ममे भी कष्ट, मरणमे भी कष्ट जीवनमे भी कष्ट तो कष्ट कष्टको लिए ही सारा जीवन है। इसको सुखसाताका कहीं काम नही। अब जिनको कुटुम्बी समझा गया है वे लोग खुशियाँ मनाते हैं कि मेरे घर पुत्र पैदा हुआ। अरे जो पैदा हुआ है वह तो कष्ट ही कष्ट भोग रहा है। मरणका कष्ट, जन्मका कष्ट और जिन्दगी का कष्ट, कितनी ही तरहके जन्म, कितनी ही तरहकी योनिया।

शरीररागसे हटकर इस भवमें मोक्षोपाय बना लेनेमें बुद्धिमानी—इस शरीरके सम्बध मे सोचिये—इसमे कोई सारकी बात रखी है क्या ? जो जो भी राग लगे है वे सब छोड

देने लायक है। जिन जिनसे अपना संसर्ग माना है वे सब छोडने योग्य है। तो एक मोक्ष का सकल्प बनाये। मुझे तो मोक्ष चाहिए अर्थात् छुटकारा चाहिए याने मैं केवल ही केवल रह जाऊँ। मेरे माथ अन्य कोई द्रव्य न रहे, केवल मैं जैसा मैं हू उसी स्वरूपमे रह जाऊँ बस वह चाहिए मुझे, और कुछ न चाहिए। यह बात चित्तमे समाती हो तब पुण्योदयसे आप बडे होते है तो आपका बडप्पन सफल हो जायगा अन्यथा मनुष्य हुए न हुए एक वराबर, बेकार। कीडा मकोडा रहते तो, मनुष्य रह गए तो, बात दोनो एक समान है, क्योंकि मनुष्यभव तो तिरनेके लिए है, जिस किसी भी प्रकार ससारसे छुटकारा मिले उसका उपाय बनानेके लिए मनुष्यभव है, वही न किया तो बेकार है। जैसे कोई हाथी रखे है घरमे तो उसका उपयोग यही था कि शानसे सवारी करते, अच्छे महंतसे रहते, और ढोने लगे उस पर खाद कूडा तो हाथी जैसा खर्च बढाना यह सब बेकार है। काम तो किसीके लिए था और करने लगे खाद कूडा ढोनेका काम, तो इसी तरह मनुष्यजन्म पाया तो था इसलिए कि ऐसा उपाय बना ले, ऐसा विवेक बना ले कि जिससे मुक्तिका मार्ग बन जाय, उपाय मिल जाय, सम्यक्त्व पैदा हो जाय, हमारी दृष्टि आत्मतत्त्वकी ओर जाय, ऐसा उपाय बनानेके लिए मनुष्यभव मिला था, लेकिन करने लगे विषयसाधनोके ही काम, तो ये ही काम कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा आदिक करते है वही काम किया इस जीवने तो बेकार ही तो पाया मनुष्यजन्म। चिन्ताओसे भरा हुआ जीवन बनाया, अज्ञान अधकारसे बेड़ा हुआ यह उपयोग रहे तो इस मनुष्य जीवनका लाभ क्या रहा ? एक संकल्प बनाये कि मुझे तो कर्मोंसे छूटना है।

मोक्षोपायके यत्नमें हमारा कर्तव्य—अब कर्मोसे छूटनेके उपायमे जब हम चलें तो हमे क्या करना चाहिए ? निर्णय करें करना क्या चाहिए ? देखिये, मोक्षके मायने क्या हैं ? केवल रह जाना। आत्मा ही आत्मा रह जाय, इसके साथ न शरीर रहे, न कर्म रहे, न कषाय रहे, न विकार रहे, न इनकी पहिचान रहे, ये सब कुछ न रहे, खाली यह अकिञ्चन आत्मा ही आत्मा रहे, इसके मायने है मोक्ष। यदि केवल रह जानेकी मनमे भावना है तो किसी समय अपनेको केवल देखो। देख सकते हो। शरीरका भान भुलाकर केवल चैतन्यस्वरूपका दर्शन कर सकते हो। ज्ञानमे ऐसी ही तो महिमा है कि बीचके सारे झगडो को छोडकर एक सारभूत बातको ग्रहण कर लें। इस पर्यायको भी भूलकर, जगतके सारे आडम्बर परिग्रहोको भूलकर, क्योकि हैं ना ये सब पर और अहित, इनसे कुछ सम्बंध नही तो क्यो इन्हे चित्तमे बसाऊँ ? इन सबको त्यागकर केवल मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानप्रकाश हू, ऐसे शुद्ध तेजमय अपने आपको देखा तो मोक्षका उपाय बन जायगा और इसको अगर न देख सके तो बाहरमे चाहे कितनी भी स्थितियाँ बना डाले, सब बेकार बाते है। इस जीव

ढेर पडा हुआ है उस ढेरमे से थोडीसी ढेरी मिल गई, थोडा वैभव मिल गया, यहाँ खुश हो रहे है, अपने आपको वडा चतुर और वडा समझ रहे है लेकिन उस शरावीकी तरह यह भी इन मोही प्राणियोका हसना है। सार कुछ नही है, अविवेक है, लेकिन जहाँ सारे ही शरावी जुडे हो, उनमे एक भी विना नशाका न हो, तो उनकी जो आपसमे क्रीडा होती है, वोलचाल होती है व्यवहार होता है उसे खराव समझे कौन ? इसी प्रकार इस लोकमे जव सभी मोही जीव पडे है तो इनकी जो लीला हो रही है, मेरे तेरेका विकल्प चल रहा है और वडी व्यवस्था वनायी जा रही है, इनको वुरा कहने वाला कौन मिले ? क्योकि सभी मोही जीव यहाँ पडे हुए हैं। जैसे सैकडो शरावियोके वीच अगर कोई एक भला आदमी पहुच जाय जिसमे कि नशा नही है तो उसकी सुने कौन ? और उसे महत्त्व दे कौन ? इसी तरह जहाँ ये अनन्त मोही जीव पडे हुए है ये सैकडो अरवो मनुष्य जहाँ ये मोही पडे है और इस लोकमे मेरे तेरेका व्यवहार वनाया है, इज्जतकी कल्पना की है, इनके वीच अगर कोई एक ज्ञानी पहुचे तो उसको महत्त्व दे कौन ?

संसारकी सर्वतः कष्टरूपता—यह सारा ससार कष्टमय है और इससे वढकर कष्ट क्या होगा कि कष्ट पा रहे है, फिर भी कष्टको सही मायनेमे कष्ट नही समझ पाते। तो एक सकल्प होना चाहिए कि हमे तो कर्मवन्धनसे छुटकारा पाना है, एक ही मेरा काम है। यही काम कर लिया तो यह मनुष्यजीवन सफल है, इसका उपाय वना लें। इसका उपाय है सम्यग्दर्शन। सम्यक्त्वकी प्राप्ति अगर हो गई तो समझो कि जीवन सफल है और सम्यक्त्व न पाया तो कुछ भी करते रहो, सव वेकार है। इसमे अव कुछ धीरतापूर्वक आत्मकल्याण की ओर झुकना चाहिए। कहाँ आत्मकल्याण वसा है ? सव कुछ मेरा मेरे स्वरूपमे है, आपके जौहरका पता नही, और वाहरके खण्ड पत्थरमे जौहर निरखते हैं। मोक्षकी चाह करें, एक ही कार्य अपने उद्देश्यमे रखें कि मुझे तो जन्ममरणके सवटसे छुटकारा पाना है, क्योकि जन्म मरणमे दु ख है, तत्त्व कुछ नही है, मलिनता है। मनुष्य हुए, जव जन्मे तो वड़ी खुशियाँ मनाई गयी। तो देखो जो वच्चा पैदा हुआ वह तो वडा कष्ट पा रहा है और ये घरके लोग वडी खुशियाँ मना रहे है। उसे तो जन्ममे भी कष्ट, मरणमे भी कष्ट जीवनमे भी कष्ट तो कष्ट कष्टको लिए ही सारा जीवन है। इसको सुखसाताका कहीं काम नही। अव जिनको कुटुम्वी समझा गया है वे लोग खुशियाँ मनाते हैं कि मेरे घर पुत्र पैदा हुआ। अरे जो पैदा हुआ है वह तो कष्ट ही कष्ट भोग रहा है। मरणका कष्ट, जन्मका कष्ट और जिन्दगी का कष्ट, कितनी ही तरहके जन्म, कितनी ही तरहकी योनिया।

शरीररागसे हटकर इस भवमें मोक्षोपाय बना लेनेमें बुद्धिमानी—इस शरीरके सम्बध मे सोचिये—इसमे कोई सारकी वात रखी है क्या ? जो जो भी राग लगे है वे सव छोड

देने लायक है। जिन जिनसे अपना ससर्ग माना है वे सब छोडने योग्य है। तो एक मोक्ष का संकल्प बनाये। मुझे तो मोक्ष चाहिए अर्थात् छुटकारा चाहिए याने मैं केवल ही केवल रह जाऊँ। मेरे साथ अन्य कोई द्रव्य न रहे, केवल मैं जैसा मैं हू उसी स्वरूपमे रह जाऊँ बस वह चाहिए मुझे, और कुछ न चाहिए। यह बात चित्तमे समाती हो तब पुण्योदयसे आप बडे होते हैं तो आपका बडप्पन सफल हो जायगा अन्यथा मनुष्य हुए न हुए एक बराबर, बेकार। कीडा मकोडा रहते तो, मनुष्य रह गए तो, बात दोनो एक समान है, क्योंकि मनुष्यभव तो तिरनेके लिए है, जिस किसी भी प्रकार संसारसे छुटकारा मिले उसका उपाय बनानेके लिए मनुष्यभव है, वही न किया तो बेकार है। जैसे कोई हाथी रखे है घरमे तो उसका उपयोग यही था कि शानसे सवारी करते, अच्छे महंतसे रहते, और ढोने लगे उस पर खाद कूडा तो हाथी जैसा खर्च बढाना यह सब बेकार है। काम तो किसीके लिए था और करने लगे खाद कूडा ढोनेका काम, तो इसी तरह मनुष्यजन्म पाया तो था इसलिए कि ऐसा उपाय बना ले, ऐसा विवेक बना ले कि जिससे मुक्तिका मार्ग बन जाय, उपाय मिल जाय, सम्यक्त्व पैदा हो जाय, हमारी दृष्टि आत्मतत्त्वकी ओर जाय, ऐसा उपाय बनानेके लिए मनुष्यभव मिला था, लेकिन करने लगे विषयसाधनोके ही काम, तो ये ही काम कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा आदिक करते है वही काम किया इस जीवने तो बेकार ही तो पाया मनुष्यजन्म। चिन्ताओसे भरा हुआ जीवन बनाया, अज्ञान अधकारसे बेडा हुआ यह उपयोग रहे तो इस मनुष्य जीवनका लाभ क्या रहा ? एक सकल्प बनाये कि मुझे तो कर्मोसे छूटना है।

मोक्षोपायके यत्नमें हमारा कर्तव्य—अब कर्मोसे छूटनेके उपायमे जब हम चलें तो हमे क्या करना चाहिए ? निर्णय करें करना क्या चाहिए ? देखिये, मोक्षके मायने क्या है ? केवल रह जाना। आत्मा ही आत्मा रह जाय, इसके साथ न शरीर रहे, न कर्म रहे, न कषाय रहे, न विकार रहे, न इनकी पहिचान रहे, ये सब कुछ न रहें, खाली यह अकिञ्चन आत्मा ही आत्मा रहे, इसके मायने है मोक्ष। यदि केवल रह जानेकी मनमे भावना है तो किसी समय अपनेको केवल देखो। देख सकते हो। शरीरका भान भुलाकर केवल चैतन्यस्वरूपका दर्शन कर सकते हो। ज्ञानमे ऐसी ही तो महिमा है कि बीचके सारे झगड़ो को छोडकर एक सारभूत बातको ग्रहण कर लें। इस पर्यायको भी भूलकर, जगतके सारे आडम्बर परिग्रहोंको भूलकर, क्योंकि है ना ये सब पर और अहित, उनमे कुछ सम्बन्ध नहीं तो क्यो इन्हे चित्तमे बसाऊँ ? इन सबको त्यागकर केवल मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानप्रकाश हू, ऐसे शुद्ध तेजमय अपने आपको देखा तो मोक्षका उपाय बन जायगा और इसको अगर न देख सके तो बाहरमें चाहे कितनी भी स्थितियाँ बना डालें, सब बेकार बातें है। इस जीव

का साथी कोई दूसरा नही है, खूब अच्छी तरह देख लो और इसमे कुछ उलहनेकी बात नही, यह तो पदार्थका ऐसा स्वरूप है कि सब पदार्थ अपने आपकी सत्ताके लिए है, सर्व पदार्थ अपने आपमे अपना परिणमन करनेके लिए हैं। कोई अन्य पदार्थ मेरा परिणमन करनेके लिए है ही नही, हो ही नही सकता, स्वरूप ही ऐसा है। तब सोच लीजिए—ममतामे क्या सार रखा है ? ममता करे तो चीज आपकी नही, ममता न करें तो चीज आपकी नही। सो व्यर्थ अनर्थ मोहविकल्प छोडकर अपनेको केवल, अकिञ्चन ज्ञानमात्र निरखो। मुक्तिके लिये पुरुषार्थ करना है। अज्ञान अधकारके ये व्यर्थके विकल्प क्यो बढाये जा रहे है ?

ज्ञानी पुरुपके अकिञ्चन ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वकी प्रतीतिके कारण वाह्यमें ममताका अभाव—अहो, ज्ञानीके अलौकिक वैभव पडा है, ज्ञानी पुरुषके वैभवमे ममता नही रहती, देहमे भी ममता नही रहती। देहमे बस रहा है यह और देहपर जो बीते उसे भोगना भी पडता है इसे कुछ सीमामे, फिर भी ज्ञानीको देहमे ममता नही। जैसे कोई पुरुष किन्ही डाकुवोके फदेमे पड जाता है तो वह उन डाकुवोके साथ रहता है। पर उसे उसे उन डाकुओसे ममता नही रहती। जैसे बहुत जगह डाकुओका यह काम है कि किसी आदमीको पडकर जगलमे ले जाते है। उससे वे डाकू कहते हैं कि तुम हमे इतने हजार रुपये घरसे मँगा दो तो हम तुमको छोडेंगे अन्यथा तुम्हारी जान ले ली जायगी। वह बहुत-बहुत मिन्नते करता है कि मेरे पास रुपये नहीं है, इतने ही ले लो, पर वे डाकू नही मानते हैं। आखिर उस फसे हुए व्यक्तिको उन डाकुओके बीच काफी दिन रहना पडता है। पर जरा बताओ कि उस फसे हुए व्यक्तिको उन डाकुओसे कोई ममता है क्या ? ममता नहीं है, वह तो फदे मे पडा है। इसी तरह यह जीव रह रहा है इस शरीरके साथ, शरीरके कब्जेमे है, बन्धन मे है, ऐसा समझ लो, लेकिन जो ज्ञानी पुरुष हैं उनको इस शरीरमें ममता है क्या ? उन्हें तो यह स्पष्ट बोध है कि यह मैं आत्मा हू शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप, और यह देह—मल रुधिर राधमलकी थैली है। अर्थात् इस देहके अन्दर मल मूत्र खून मांस मज्जा आदि अपवित्र चीजें भरी है। तो इन अपवित्र चीजो रूप मैं हू क्या ? यो तत्त्वज्ञानीको इस देहमे ममता नही है, पर करे क्या ? जैसे डाकुओके बन्धनमे पडा हुआ धनी करे क्या ? उसका कोई वश नही चलता, उसे रहना पडता है, और डाकुओके बीच नम्र विनयसे रहना पडता है, नही तो वे डाकू जान ले लेंगे। यो ही शरीरकी बहुतसी बातोमे चलना पडता है, पर इतना होते हुए भी इस ज्ञानीको देहमे ममता नही है। जिनको अपने आपके स्वरूपका भान हो गया है वे सम्यग्दृष्टि सुखी हैं, उन्हे अब कही रज नही है।

संसारका झूठा मोह छोड़कर आत्मीय शाश्वत आनन्द पानेके यत्नमें भलाई—भैया !

या तो संसारका झूठा मौज ले लो या अपना सदाके लिए सच्चा आनन्द पा लो, दो बातो मे कुछ ले लो। दो बाते एक साथ न चलेंगी। परिकल्पित झूठे मायामय, अज्ञान अधेरेमे समाये हुए कुटुम्बका वैभवका इनका मोह, इनका लगाव, इनसे बडप्पन, या तो उसका मौज ले लो, सो मौज वह भी नही। बीच-बीच अनेक विपदाये है। बीच बीच भी क्या, निरन्तर विपदाये है। अगर इस मौजकी आपको इच्छा नही है, इसे आप हेय समझते है तब फिर आइये अपने स्वरूपकी ओर। स्वरूपदर्शन करे और उससे सन्तुष्ट रहे, उसका लाभ प्राप्त करें, मोक्षमार्गमे आये, मोक्षका उपाय बनायें, मोक्ष प्राप्त करे। अब चुनाव आपका है। क्या आप चु ते है। ससारमे जन्ममरण करना और जैसे चाहे गदे अच्छे भले बुरे सब तरहके देहोमे बधना और वहा ममता, रागद्वेषादिके सकट सहना, यह मंजूर है तो जैसा आज तक करते आये वैसा करते रहो, वही उसका उपाय है और यदि यह बात चित्तमे आती है कि ससारके सकटोसे छुटकारा पाना है, अपने आपके स्वाधीन आनन्दसे तृप्त रहना है तो ये क्षोभ, ये संगम समागम, मूर्छा, बाह्यके लगाव, इन सबका परित्याग करना होगा, अपने आपके स्वरूप ज्ञानके लिए उद्यमी बनना होगा।

मोक्षोपायके यत्नमें सब कुछ न्यौछावर कर देनेके साहसकी आवश्यकता—देखिये आप अगर मोक्षमार्गमे लगनेके काममे आये और वहा कुछ धनलाभ कम हुआ तो इसका दुख न माने। मिटता है तो सब मिट जाय। जब जीवन है, आयुका उदय है तो शरीर टिकनेका साधन मिलेगा जरूर। और विलक्षणता तो यह है कि ज्यो ज्यो आत्माके उद्धार के काममे लगेगे त्यो त्यो जब तक ससारमे रहना होगा टाटसे रहेगे। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जन कितना ही तप कर लें वे चक्री तीर्थंकर जैसा वैभव नही प्राप्त कर सकते। इसको प्राप्त करनेका अधिकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको ही है, पर उसके लिए हिम्मत यह होना चाहिए कि सब मिटता है तो मिट जाय, कोई हर्ज नही। किसी भी बडे काममे सफल होनेका साधन हिम्मत ही तो है। बहुत बडे व्यापारके कामके लिए लोग बडी भारी रकम लगा देते है, उन्हे साहस करना पडता है कि लाभ मिलेगा तो ठीक, न मिलेगा न सही, इतनी हिम्मत लगाकर वे उस भारी रकमको लगा देते है तब वे लाभ पाते है। इसी तरह अगर अपने आकिञ्चन्य धर्ममे अपनेको समा देना है, मोक्षमार्गमे अपनेको लगाना है तो यह हिम्मत बनानी होगी कि मैं तो अकिञ्चन हू, मेरा मेरे स्वरूपके सिवाय कुछ नही है। जब कुछ नही है तो दुनियाकी दृष्टिमे जो कुछ मिला है वह साराका सारा न रहे तो मेरा कोई विगाड नही है। मेरा मेरे स्वरूपके सिवाय मेरेमे कुछ न रहे, यह बात तो मेरेमे शुरूसे ही है। ऐसी स्थिति आती है तो आये, उसका स्वागत करे, उसकी हिम्मत बनाये तब जाकर आत्माको मोक्षलाभ जैसी युक्ति बन पायगी। वह चीज बनाना है। क्या करना

है मोक्षके उपायके लिए ? केवल अपने आपके स्वरूपको जानते रहना है। अकिञ्चन चैतन्य ज्योतिमात्र अमूर्त ऐसे स्वभावको अपने ज्ञानमे लेना यह काम करना, फिर तो जो कुछ होना होगा, अपने आप होगा। किसे मुक्ति मिलेगी ? अपनेको मिलेगी। क्या उपायों को दृष्टिमे लेकर काम बनेगा ? अरे वाहरके सारे लक्ष्य छोड़नेसे काम बनेगा। जो ऊँची श्रेणियोमे साधुजन चढते है, आजकल तो श्रेणिया नही है, साधुजनोमे इतनी क्षमता नही है कि वे अपनेको धीर बना सके। तो श्रेणी नही होती, लेकिन जब श्रेणिया मिलती थी साधनसे, तो "श्रेणीमे क्या रहता है" क्या उसका लक्ष्य रखते थे, क्या "उससे लाभ मिल रहा है" इसका कुछ वे ध्यान न रखते थे। उनका लक्ष्य तो केवल चैतन्यमात्र अन्तस्तत्त्वका रहता था, फिर जो होना होता था वह स्वयमेव होता था। तो मोक्ष पानेके लिए अपने आपके उस स्वरूपका चिन्तन बनाना होगा। उसका लक्ष्य बनाओ, निमित्तका लक्ष्य न रखो—

परलक्ष्यपरिहारपूर्वक स्वलक्ष्यमें आनेका अनुरोध—देखिये—कर्मक्षय भी जिन साधनोमे होगा उनमे होगा, पर उन साधनोका लक्ष्य रखकर कर्मक्षय नही बनता। काम तो उसी वस्तुमे होगा जो उपादान हो। कार्य उपादानसे ही प्रकट होता है अर्थात् जिस पदार्थमे जो परिणमन बनता है, जो कार्य बनता है वह कार्य उस उपादानसे ही बनेगा, निमित्तसे नही। वे चाहे अनेक हों, निमित्तका कोई गुण उपादानमे नही आता। और उपादानमे भी जो कुछ बन रहा है सबकी शक्ति पहिलेसे ही है। ऐसा भी नही कि उपादान कुछ न था और हो रहा है। सब पदार्थ अपनी-अपनी शक्तिसे परिपूर्ण है। जीव और पुद्गल ऐसे है कि जिनमे विभावशक्ति है, तो निमित्त विस्तारमे इसमे विभावपरिणमन होते रहते है। सो उसमे भी मर्म यह है कि कब किस निमित्तको पाकर उपादान किस प्रभावमे आ जाता है ? यह कला उपादानकी है। निमित्तकी बात तो इतनी है कि वह सन्निधानमे है। अपनेको चाहिये मोक्ष। तो मोक्षका उपाय जो अपना केवलस्वरूप है उसे जानना, समझना और उसमे रमण करना है, अन्य लक्ष्य मोक्षके उपायका नही है। सारकी बात इतनी है कि मोह ममताको छोडें, मोह ममता बेकारकी बात है। अगर इसमें सार हो तो इसे भी करें। अगर ममताके करनेसे ही सार निकलता तो ममता होना ही धर्म था। पर इस ममतामे कुछ भी सार नही है। खूब विचार करके देख लो। इन प्राप्त समागमोमें अभी तक बहुत-बहुत ममता किया होगा, उनके प्रति बहुत-बहुत विकल्प किए होगे, पर जरा बताओ तो सही कि आज तक उनसे आपने लाभ पाया क्या ? उन परपदार्थोंसे ममता करनेसे सार क्या निकला सो तो बताओ। बल्कि फल यह मिला कि ससारमें रुलना अभी तक बना हुआ है। तो इस ममतामें कुछ भी सार नही है। इससे ममताको त्यागे और मुक्त होनेका अपना

दृढ सकल्प बनाये ।

निमित्त सन्निधानमें भी परिणमयिताकी परिणतिकलाका कथन--यह परिणमनकी विधिका प्रसग चल रहा है । निमित्तके उपस्थित होनेपर उपादानमे कार्य चलता है, इस प्रसगमें यह बात बतायी गई कि यह कला उपादानकी है कि वह निमित्तको पाकर अपने आपमे विभावपरिणमन कर ले । यह बात सुनकर मनमे यह जिज्ञासा जग सकती है कि तब तो निमित्तकी कुछ बात न रही । कुछ भी चीज सामने हो वही निमित्त कहलाने लगेगी । फिर तो जो लोकव्यवहारमे निमित्तकी व्यवस्था है कि ऐसा निमित्त जुटाये उससे कार्य बनेगा तो यह सब व्यवस्था व्यर्थ हो जायगी । कार्य हो रहा है, जो निमित्त आया उसकी उपस्थितिके कार्य बन जाते है । तो किसी भी पदार्थका निमित्त पाकर उपादान अपना विभाव परिणाम बना ले और तब अलग-अलग निमित्तकी उपस्थितिकी छंटनी कैसे होगी ? भले ही यह जिज्ञासा बने, पर वस्तुस्वरूप जाननेसे समस्या हल हो जायगी । वस्तुस्वरूप यो है कि उपादानमे कला तो अवश्य है कि वे अपनी ओरसे विकाररूप परिणम जाये, लेकिन वह इस प्रकारके निमित्तको पाकर अपना यह प्रभाव बनायेगा, यह भी तो विशेषता उस घटना के बीच है और इस स्थितिसे निमित्तकी एक विशेषता सिद्ध होती है । जैसे कोई मनुष्य कुर्सीपर बैठा है तो उसके बैठनेमे निमित्त कुर्सी तो हुई और उसमे उसीकी विशेषता हुई है, मगर सडी हो, गली हो, टूटी हो तो उसपर वह पुरुष नहीं बैठ सकता । तो वह कुर्सी पुष्ट है, बलिष्ठ है, ठीक है, बैठने योग्य है, ऐसे पुष्ट निमित्तको पाकर मनुष्य बैठ सका, सो अब बैठनेकी क्रियामे कलापर विचार करें तो यह तो पुरुषकी ही कला है कि वह ऐसी पुष्ट कुर्सीका निमित्त पाकर बैठने रूप परिणम गया । तो मनुष्यके बैठनेमे निमित्त होनेपर भी कला तो पुरुषकी कही जायगी । वह बैठने रूप परिणति, वह कला निमित्तकी न कही जायगी । निमित्तमे विशेषता तो अवश्य है । यदि ऐसी पुष्ट कुर्सी न हो तो न बनेगा बैठना, लेकिन निमित्तकी विशेषता निमित्तमे ही समाप्त है । निमित्तसे बाहर कार्यमे, उपादानमे नही पहुँचती है । निमित्तकी विशेषता निमित्तमें है । उपादानमें यह कला है कि किसी विशिष्ट समर्थ पुष्ट निमित्तको पाकर यह उपादान अपने उपयोग रूपसे परिणम सकता है । इसमे दोनो जगह दोनो बातें दिखती है लेकिन परिणमन की जो बात है उसका सम्बंध, उसकी कला उपादानमे है, और इस तरह भी समझ सकते है कि उपादानमे योग्यता नही है, तो उस प्रकारके पदार्थ पडे भी रहे, वे निमित्त नही हो पाते । जैसे सिद्ध भगवान कहाँ रहते हैं ? जहाँ कि कार्माणवर्गणाये है वहाँ ही सिद्ध प्रभु है लोकमे ही तो मुक्त जीव हैं और लोकमे ही सर्वत्र कार्माणवर्गणायें भरी है, वे तो कर्मरूप परिणम कर जीवके दुःखका कारण बनती हैं । लेकिन न उनके बंधन है, न उनके दुःखका कारण है । तो उपादानमे ही स्वय

ऐसी कला है कि वह किसी प्रकारके पदार्थका निमित्त पाकर किसरूप परिणाम सकता है।

आत्महितैषीकी उपादानको प्रधानतया लखनेकी प्रकृतिका कारण—इस प्रसगमे कुछ ऐसी दृष्टि जगी है कि उपादानको प्रधानता दी जा रही है। और कार्य हो रहा है दोनो कारणोसे, दोनो कारणोमे, एक तो निमित्त कारण हुआ और उपादान कारणमे कार्य हुआ तो यह चित्तमे शका हो सकती है कि जब निमित्त बिना कोई कार्य नही होता तो निमित्तसे एकदम दृष्टि मोडकर और एक उपादानमे ही दृष्टि ले जानेका यत्न क्यो किया जा रहा है ? जब कारण दोनो है तो बात दोनोकी करें, लक्ष्य दोनोका करें, प्रधानता दोनों की करनी चाहिए। फिर ऐसा न करके क्यो उपादान पर ही लक्ष्य किया जाता है और निमित्तको लक्ष्यसे हटाया जाता है ? इस सम्बन्धमे वास्तविकता यह है कि पहिला निर्णय तो यह कीजिए कि निमित्तकी उपस्थितिमे जो कार्य होगा वह विभावका होगा और निमित्त के अभावमे जो कार्य होगा वह स्वभावकार्य होगा। अब आपको स्वभावकार्यसे रुचि है या विकारसे रुचि है ? अगर स्वभावपरिणमनसे रुचि है तो स्वभावके परिणमन वाली बातमे प्रतीति करना चाहिए, एक बात। दूसरी बात यह है कि कुछ अवस्थाओमे जो मोक्षमार्गकी अवस्थाये है (मोक्ष अवस्थाकी व मिथ्यात्व अवस्था की बात नही कह रहे) किन्तु इनके बीच जो मोक्षमार्गकी अवस्थाये है उन अवस्थाओमे कुछ आश्रयभूत तत्त्व है ऐसा कि जिस की उपस्थितिमे कर्मोंके झडनेका अथवा मोक्षमार्गका काम चल रहा है। एक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है वहाँ, लेकिन निमित्तका लक्ष्य करने पर वहाँ मोह और पर दृष्टि बनती है। उससे तो कार्य बहुत ही बिगडा हुआ हो जायेगा। ससारमे रुलनेका कार्य बन बैठेगा। इससे जीवको निमित्तका लक्ष्य करके रहना उचित नही है, लेकिन निमित्तनैमित्तिक भावसे मना भी नही किया जा सकता। यह तो कार्यकी पद्धतिकी जानकारीकी बात है। एक जानकारीकी बात होना और एक कर्तव्यकी बात होना। जानकारीमे तो यह है कि जितना भी अमूर्तसे हटा हुआ परिणमन है वह स्वभावपरिणमन नही है, विभावपरिणमन है। वह सब निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक है। लेकिन कर्तव्य क्या है ? यदि हम निमित्तका लक्ष्य करके उसका कोई विचार बनायें; परदृष्टि बनाये तो भला काम न होगा, विकाररूप परिणमनेका ही कार्य होगा। इस कारण निमित्तका लक्ष्य रखना कर्तव्य नही है। निमित्त के लक्ष्यसे जीवमे विकारपरिणमन होगा और यदि स्वाश्रित दृष्टि होगी। सबसे निराला चैतन्यमात्र यह मैं हू ऐसी अन्तर्दृष्टि होगी तो स्वभावका विकास बनेगा, बात सब तैयार है यहाँ, क्योकि सब जीव ही ये पूरे तैयार हैं, परिपूर्ण हैं, बस इसी कलापर सृष्टि है।

दृष्टिकी सृष्टाधारता—देखिये दृष्टिपर जीवकी सृष्टि है। मैं अपना भविष्य कैसा बनाऊ, अपनेको क्या बनाऊ, यह सब हमारी दृष्टि पर निर्भर है। कितना ऐश्वर्य है इस

जीवका । यह बात अन्य पदार्थोमे न मिलेगी । यह जीव जैसी दृष्टि बनाता है वैसी इसकी सृष्टि होती जाती है । दृष्टि सब सृष्टिका आधार है । ससारमे कैसी कैसी सृष्टियाँ है ? यहाँ कोई किन्ही चीजोके सयोग मेलसे या वैज्ञानिक आविष्कारोसे कीडा मकोडा, पेड पौधा—पशु, पक्षी, मनुष्य आदि बना तो दे, नही बना पाता है, और तो जाने दो प्राणियोके अग का जो मल है वह ही कोई वैज्ञानिक बना दे । तो ये सब जीवके जितने परिणमन है वे उस जीवकी दृष्टिपर निर्भर है । कोई जीव पशु बन गया तो जैसे कुम्हार घडा बना लेता है ऐसे घडने जैसी बात उस पशुके बननेमे हुई है क्या ? बताइये किस चीजसे बना वह पशु, किसने बनाया, कहाँ बैठकर बनाया ? कोई इसका ठीक उत्तर नही बैठता । और यह प्राकृतिक बात देखिये कि जीवने दृष्टि ऐसी कषाय भरी की कि जिससे ऐसा कर्मबन्ध हुआ कि जिसके उदयमे स्वय ही प्रकृत्या यहाँ वहाँके फैले हुए अपने साथ विश्रसोपचय रूप से लगी हुई आहारवर्गणायें शरीररूप परिणम गईं । शरीर बना, अब यह वृद्धिको प्राप्त हो रहा, ये सब बातें इस जीवमे स्वयं हो रही है, कोई करने वाला हो जगतके सब पदार्थों का तो बता ही नही सकता । अनन्तानन्त पदार्थ है, उनकी सभाल कर सकने वाला कौन है ? लोग कहते हैं ऐसा कि ईश्वरकी एक शक्ति है, एक लील है, एक ऐसी विशेषता है, ऐसी वह अनन्त सामर्थ्य वाला है कि सारे जगतके पदार्थोंको वह रच देता है । ऐसा कोई ईश्वर अगर है तो यह अपने आनन्दका अनुभव करेगा या इन समस्त परिणमनोको करेगा । एक बात । दूसरी बात यह है कि ये होगे कैसे ? विज्ञान सिद्ध बात नही बनती । निमित्त उपादानपूर्वक होने वाले कार्यमे उनकी विधि विचारे । ये सब कार्य बिना उपादान के किसी भी प्रकार न हो सकेंगे । निमित्त उपादानपूर्वक होने वाले सभी कार्योंको उन पदार्थोंके ही ऊपर छोड दे । वे है, ना तो निरन्तर उत्पाद वे करते ही रहेगे । यह उनमे स्वभाव पडा है । अब कही कोई कमती नही हो सकती । जो एक सत् है, जहाँ पडा है वही उत्पाद व्यय करता रहेगा, यही सृष्टि कहलाती है । तो जीवकी जो सृष्टि हो रही है वह जीवकी दृष्टि पर हो रही है । इस कारण दृष्टिका विशुद्ध करना अति आवश्यक है । हम सही सही परिज्ञान करें तो हमे ज्ञानप्रकाश मिलेगा और हम अच्छे शान्त वातावरणमे रह सकेंगे ।

अज्ञानकी महती विडम्बना—अज्ञानसे बढकर विडम्बना कोई नही है । लोकमे तो यह बात पहिले मालूम पड जाती है । जिसको जिस बातका ज्ञान नही है वह उस बातमे लगे, तो कितनी गल्तियां, कितनी विडम्बनाये, कितनी बात होती है, लोग उसपर हस देते हैं, क्योंकि अज्ञानमे विडम्बनायें बसी हुई है । एक बार गृहस्थावस्थामे हम खेतपरसे दो तीन गाडी गुड लेकर आ रहे थे तो रास्तेमे एक गाव मिलता है मामाका गाव । बैसाखके दिन

थे, बड़ी तेज धूप थी, तो मामाने एक दिल्लगी की कि अरे यह गुड गर्मीके मारे पिघला जा रहा है, इसपर एक दो घड़ा पानी छिडक दो तो इसका पिघलना बद हो जाय। तो हमने क्या किया कि मामाके घरसे दो एक घडा पानी लाकर उसमे छिडकना शुरू किया तो हमारे उस कार्यको देखकर सभी लोग हँसने लगे। तो यहा यह बता रहे हैं कि अज्ञानमें कितनी विडम्बना होती है, लोग हँसते है। जिसको जिस चीजका ज्ञान नहीं है उसके उस कार्यको करता हुआ देखकर लोग समझते है कि देखो यह बेहोश है, इसे कुछ सुध ही नहीं है। अब जरा परमार्थ तत्त्वपर तो आइये। हम आप लोग कर क्या रहे हैं ? घरमे मोह, कुटुम्बमे मोह, वैभवमे मोह, इज्जतमे मोह। और ये सभीकी सभी चीजें असार हैं, है एक पुद्गल का ढेर, ईंट पत्थरका ढेर और वे भी विनाशीक, भिन्न, उनसे मेरा सम्बध क्या ? परिचय क्या ? कर्मोंके प्रेरे हुए अनेक योनियोमे भटकते भूलते यहा पैदा हो गए, उन्हे तो कही न कही पैदा होना ही था। अब इस मोही जीवकी यह आदत है कि जो मिला उसीमे मोह करता है। कोई हिसाबका मोह नही है कि इस जीवको तो इस जीवसे ही मोह होना चाहिए, क्योंकि यह ही पुत्र है, यह ही स्त्री है, आदि। यह तो एक अटपट मोह है। चूकि विकारवासना है इसके, इस कारण जो भी सामने मिला उसीसे मोह करने लगता है। तो है ना यह बिल्कुल अज्ञानपूर्ण बात। इसमे कितनी विडम्बना भरी है सो यह बेचारा सहता जाता और पता भी नहीं कर पाता।

रत्नत्रयमें ही वास्तविक इज्जतकी संभूति—इज्जतकी बात क्या ? क्या है इज्जत ? इस अनन्त कालमे थोडे कालके लिए स्वार्थी जनोने यदि कुछ गा दिया तो यह कोई आत्मा की इज्जत है क्या ? आत्माकी इज्जत तो रत्नत्रयमें है। अपने स्वरूपका श्रद्धान हो, ज्ञान हो और उस ही मे रमण हो तो इज्जत बन चुकी। और उसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि उनके नामकी हम आप मूर्ति बनाकर पूजते है। इससे बढकर जीवकी और इज्जत क्या होगी ? जो मूर्ति अपनी ओरसे कुछ नहीं कहती, कोई आदमी अपनी ओरसे कुछ कहता है तो लोगोंका आकर्षण या भाव बढानेमें कारण पडता है, मगर मूर्ति कुछ नही कहती। वहां हम आप कुछ ज्ञान करते हैं, हम आप ही अर्थ लगाते है, हम आप ही भाव भरते हैं और उन प्रभुकी भक्ति उपासना किया करते हैं। तो यह तो स्पष्ट उदाहरण है कि इज्जत तो वास्तवमे रत्नत्रयके धारण करने वालेकी है, अन्य किसीकी इज्जत नही है। और वह इज्जत परमार्थसे उनकी उनके लिए है। और जो उनकी उपासना करते हैं उनका यह आशिक रत्नत्रय इज्जतके लिए है। तो प्रकट सब असार है, रचमात्र कही भी सार नही है। कोई बडे आरामसे रह ले, अच्छी मौजकी जिन्दगी बिता ले तो उसने लाभ कौन सा लाभ लूट लिया ? मरण तो होगा ही। मरणके बाद फिर न जाने

कहाँ जन्म होगा, न जाने उस जीवपर क्या बात बीतेगी ? तो कौनसा लाभ उसे मिल गया ? अगर कुछ सुखसे रह लिए, कुछ आरामसे रह लिए, अपना कुछ स्वार्थ साध लिया तो उसमे कौनसी बात लूट ली गई ? लाभ तो मात्र रत्नत्रयमे है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप परिणाममे। इस बातकी रुचि रखने वाले, इस ओर लगनेका उत्साह रखने वाले बिरले है और बहुतायत बनी हुई है मिथ्यादृष्टियोकी, मिथ्या आचरण करने वालोकी, लेकिन ज्ञानी पुरुष कभी सत्पथसे डिगता नहीं है कि लोगोकी भावना देखकर, लोगोका रवैया देखकर, उनकी प्रवृत्ति निरखकर यह भी सोच ले कि अरे सार तो इसमे है, इसमे लगना चाहिए, ऐसा भाव ज्ञानीके नही जगता। तो ज्ञानमे तो लाभ है और अज्ञानमे विडम्बना है।

स्वरूपस्मरणमें ही वास्तविक लाभ—अब जिनका होनहार अच्छा है, निकट संसार है, जन्म मरणसे छूटनेका समय निकट आ गया है, जिसको संसारसे मुक्त होनेकी बात नजदीक मिली है उसके यह ज्ञानप्रकाशका भाव बनता है। मैं हू और यही मैं मेरा सर्वस्व हूँ, मेरा सब कुछ परिणमन, विधि सब मेरेमे इतनेमे ही चलता है। इससे बाहर मेरा कही कुछ नही है, ऐसा निरखता है, और ऐसा देखकर यह तृप्त रहता है। यह सब प्रताप है आकिञ्चन्यका। अपने आपको अकिञ्चन, अपने आपको अपने स्वरूपमे सर्वस्व भरा हुआ जो निरखेगा उसका मोह टूटेगा। जिसका मोह मिटेगा उसको शान्ति प्राप्त होगी। शान्तिका और कोई रास्ता नही है। मोह कर करके यह जीव शान्ति प्राप्त कर सके, यह कभी नही हो सकता। जो लोग आज भले अच्छे जीवित हैं और बड़े सुखसे, आरामसे रहते है, हंसी खुशीसे रहते है उनकी यह हंसी खुशी, उनका यह आराम कितने दिनोका है ? वह दिन तो सब पर आयगा जब कि रोना पड़ेगा। वियोगका दिन आयगा, मरणका दिन आयगा और वहाँ उन्हे बडा पश्चाताप करना पड़ेगा, और जिसने अपने अंत प्रकाशमान आत्मस्वरूपको जाना है और यह निर्णय किया है कि मेरा सब कुछ यही है, मुझे अन्यसे कोई आशा नही है, मुझे अन्यके प्रति कोई आकर्षण नही, मैं कही भी किसी जीवमे कुछ नही चाहता। मैं तो यह हूं, इतना ही हूं, इतनेसे ही मेरा सम्बध है। इतनेको ही अपनेको जो दृष्टिमे रखेगा वह तो अन्त प्रसन्नताके साथ यहाँसे तिर जायगा। उसको क्लेशके समय न आयेगे। तो यह सब महा लाभ है, यही स्वलक्ष्य है, यही परदृष्टिसे निवृत्त होना हैं। अपने आपमे रमनेमे ही लाभ है, यह बात जिसके हृदयमे समायी है वही जीव धन्य है, और वही उपासनीय पुरुष है।

अपनी भलाईके अर्थ स्वलक्ष्य रखने व ज्ञाता रहनेका कर्तव्य—देखिये, अब भले कामके लिए यह सिद्धान्त निकला कि जानकारी तो पूर्णतया कर लो, पर कर्तव्य है आत्मसाधनाका, कर्तव्य है अपने आपके लक्ष्यका। अब किन्ही बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि रख करके

अपनेमे विकल्प बनानेका कर्तव्य नही है। इससे भी बात विचारें तो निजका लक्ष्य भी एक कमजोरीकी अवस्था है। लक्ष्य करना और जानकारी रखना, इन दोनोमे अन्तर है। प्रभु परमात्मा आत्माको भी जानते, परको भी जानते, पर लक्ष्य न आत्माका करते और परका तो करते ही नही। लेकिन जब तक ऐसी सहज दशा उत्पन्न नही होती है तब तक अपना कर्तव्य है स्वलक्ष्य करनेका। जब लक्ष्यमे कुछ न कुछ आता ही है तब कर्तव्य है अपना लक्ष्य करना और जहाँ ऐसी सहज वृत्ति जग जाती है कि लक्ष्यमे कुछ आता ही नही है, ज्ञानमे अब आ रहा है तो उनके लिए लक्ष्य करनेके लिए कुछ न रहा। केवल एक ज्ञानपरिणमन। ज्ञान ध्यान और तप, इन तीनोमे उत्कृष्ट दशा है ज्ञानकी। यहाँ ज्ञानसे मतलब अर्जित ज्ञान नही, विद्या नही किन्तु केवल ज्ञाताद्रष्टा, केवल जानना यह सबसे उत्कृष्ट स्थिति है। इसके जानकार जब इस स्थितिमे नही रहते तब वे ध्यान करते है, और जब कभी ऐसी स्थिति जगती है कि ध्यानमे भी नही रह पाते तो वे संयमी तपश्चरण आदिकके कार्योमे लगते है। अब समझ लीजिए कि अपने अन्दरका स्वभाव, वैभव, धन, सर्वस्व ये अपने आपके लिए कितने महत्त्वशाली और उपयोगी है, जिनकी हम सुध नही लेते और बाह्यमे परवस्तुओकी आशा रखकर दुखी होते हैं।

विज्ञानदृष्टि और हितदृष्टिके प्रयोजनकी पद्धति—परिणमनके याथातथ्यको दो दृष्टियोसे समझिये—एक वैज्ञानिक दृष्टि और दूसरी हितदृष्टि। विज्ञानदृष्टिमे सर्वतोमुखी निर्णय बना है। वहाँ निमित्तकी अनुपस्थितिमे कार्य नही होता, यह दीखा और निमित्तकी किसी परिणतिसे कार्य नही होता उपादानमे, यह भी दीखा। कोई पुरुष केवल एक ही पदार्थकी दृष्टि रखे तो वहाँ यह दिखेगा ही कि यह पदार्थ है, ऐसे गुणवाला है और समय समयपर उसमे परिणमन होते है और उसमे परिणमन उसके ही उत्पादव्ययसे होते है, उसमे किसी दूसरेका कोई हाथ नही है यह दीखा, लेकिन यह भी तो निर्णय पड़ा हुआ है कि इस प्रकार का ही विभावपरिणमन हो ऐसी नियमितता क्यो है? तो उसका उत्तर होगा कि निमित्त के सन्निधानमे और उपादानकी योग्यतानुसार कार्य होता है, ऐसे ज्ञानका एक महान बल है। अब हितदृष्टिकी ओरसे देखिये तो हित दृष्टिका एक ही उसूल है कि परका लक्ष्य न हो। परका लक्ष्य न करो। यदि अपना हित चाहते हो, आत्मोद्धार चाहते हो तो एक ही सिद्धान्त है मूलमे कि परका लक्ष्य मत करो, स्व ही लक्ष्य हो और उससे भी बढकर यह स्थिति बने कि न स्व लक्ष्यमे रहे, न पर लक्ष्यमे रहे। लक्ष्य और अलक्ष्यका विकल्प ही न हो। एक अपने आपका सहज परिणमन होता हो, यह है हितकी स्थिति। और और बातें किस प्रकार हो रही हैं और हमे हितके लिए किसे निरखना चाहिए, ये दो बातें अपने अपने क्षेत्रमे भली प्रकार जानना चाहिए। फिर भी हितकी दृष्टिकी प्रधानतामे हित वाला ही

वर्णन किया जायगा, परका लक्ष्य न रहे इस पद्धतिका ही वर्णन किया जायगा, और इस वर्णनमे द्वैत न दिखना चाहिए। पर न दिखना चाहिए ऐसा वर्णन होगा। लेकिन उस वर्णन को हितमे और भक्तिमे उपासनामे न ले जाकर एक निर्णय जैसी बात घोषित करे तो यह एकान्तकी बात अयुक्त हो जाती है। निर्णयमें तो सर्वतोमुखी निर्णय होगा और हितदृष्टिमे जैसे हित हो उस प्रकारकी दृष्टि बनती है।

परलक्ष्य न करके स्वलक्ष्य करनेके उपदेशकी प्रधानताका कारण——यहाँ यह आशका की जा सकती है कि निर्णयमे जितनी बाते आती है उतनी ही दृष्टि रखनेमे क्या हर्ज है ? निर्णयकी तो बात है, सच तो बात है। सत्यकी ओरसे क्यों मुकरा जाय ? निमित्तकी उपस्थितिमे कार्य नही होता, यह जब सत्य है तब फिर सत्य बातका तो कितना ही आश्रय किया जाय, कितना ही निरखा जाय, उसमे परको भूलनेकी बात क्यो कही जाती है ? उक्त आशंकाके समाधानमे सत्यकी भी बात सुनो। एक होता है घटित सत्य और एक होता है परमार्थसत्य। सत्यका अर्थ है जो सत्मे हो सो सत्य, जो सद्भूत वस्तु है अथवा जो उपादान है उसमे जो हो सो सत्य। इस सत्यको कहेगे परमार्थसत्य। जो एक सत्मे हो रहा वह सत्य है। किसी भी सत्में किसी दूसरेका कुछ नही होता। और घटित सत्य यह है कि निमित्त-नैमित्तिक भावपूर्वक कार्य हो रहे है तो किस स्थितिमे, किस निमित्तकी उपस्थितिमे, उपादान मे किस किस तरह कार्य होता है यह सब बताना एक घटना सत्य है। अब घटित सत्यको ही ले लीजिए। एक कार्य पडा हुआ है यह कि मुझे शान्ति मिले, सत्य शान्ति मिले, निर्बाध शान्ति मिले, जिसके बाद फिर अशान्तिमे न आना पडे। तो ऐसी शान्ति भी तो एक घटना है, वह घटना कैसे घटित होगी ? सो प्रयोग और अनुभव करके समझ लिया जायगा कि जब परवस्तु लक्ष्यमे रहती है तब शान्तिसे भेट नही होती और जब परलक्ष्य छूटकर केवल एक स्वलक्ष्य रहता है वहाँ आकुलताये दूर होती है। तो शान्तिके लिए परलक्ष्यकी बात छोडकर स्वलक्ष्यमे आनेकी बात भी तो एक घटित सत्य है, इसलिए हितदृष्टिमे परको लक्ष्य न करनेका उपदेश है और एक स्व ही लक्ष्यमे रहे ऐसा सदेश है।

निमित्त और नैमित्तिक भावका भाव——निमित्त और नैमित्तिक भावके मायने क्या हैं ? निमित्त तो कहलाते है बाह्यपदार्थ, जो उपादानमे होने वाले कार्यके साथ अविनाभाव रखते हो, और नैमित्तिक कहलाते है वे कार्य जो कार्य निमित्तसे अविनाभाव रखते हो। अर्थात् जिनके होनेपर कार्य हो, जिनके न होनेपर कार्य न हो वह है निमित्त, पर कार्य जिसमें न हो। कार्य जिसमें हो उसे कहते है उपादान। अविनाभावकी बात उपादानमे कार्य के साथ नही लगायी जा सकती, क्योकि उपादान तो सदा है। जैसे रागभावके लिए यह कहा जायगा कि रागप्रकृतिके होनेपर राग होता है, रागप्रकृतिका उदय न होनेपर राग नही

होता, इस कारण रागभावका अविनाभाव उपादानमे घटाने लगे तो क्या ऐसा अविनाभाव घट जायगा कि आत्माके होनेपर रागभाव होता है, आत्माके न होनेपर रागभाव नही होता। ऐसा कौनसा समय है जब कि आत्मा न हो ? फिर वहाँ यह अविनाभाव क्या बनेगा कि आत्माके न होनेपर राग न हो, आत्माके होनेपर राग हो ही। दोनो तरहसे नही बनता। आत्माके होनेपर राग होता ही रहे, यह भी नही बनता और आत्मा न हो यह भी नही बनता। तो विभावका अविनाभाव निमित्तके साथ है लेकिन निमित्त वह है जिसमे कि कार्य नही होता, जिसका कि वह परिणमन नही है, किन्तु अन्वयव्यतिरेक हो, जैसे कर्म।

जीवके विभाव होनेमें आश्रयभूत पदार्थोंका संकेत—जीवमे क्रोध किसी दूसरे पुरुष के व्यवहारकी अरुचिसे हुआ। कोई कैसा ही चलता है, कैसा ही अपना व्यवहार कर रहा है, बोल रहा है वह न सुहाया, उसकी रुचि न हुई, क्रोध जग गया, तो क्रोध तो हुआ नैमित्तिक और पुरुष हुआ निमित्त। यह स्थूलदृष्टिसे कहा जा रहा है। पुरुष निमित्त वस्तुत नही कहलाता क्रोधका ? वह आश्रयभूत कहलाता है। आश्रयभूत पदार्थके सम्बधमे यह बात है कि उपादान यदि उसका आश्रय करे तो आश्रयभूत बनेगा, न आश्रय करे तो न बनेगा। केवल जीवके विभावपरिणमनके लिए ही आश्रयभूत निमित्त होता है, अजीवकी परिणति के लिये नही। अजीवमे तो परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव ही है। वहाँ ऐसा नही है कि कोई आश्रयभूत पदार्थ हो और कोई निमित्त हो। जीवके लिए ही, जीवके कार्यके लिए ही ये दो भाग हैं कि कुछ होगा आश्रयभूत, कुछ होगा निमित्त। जैसे घडी रखी है और एक टेबिलपर पर रखी है तो घडीका टेबिल आश्रयभूत नही कहा जा सकता, निमित्तभूत कहा जायगा। आश्रयभूत वस्तु वह कहलाती है कि जिसका आश्रय लें तो लें, न लें तो न लें, दोनो बातें बन सकती हैं जहाँ, पर अजीव अजीवोमे ऐसा नही है। जैसा निमित्त होगा वैसी बात बनती है। जीवमे है ऐसा कि कुछ आश्रयभूत हो वहाँ। एक पुरुष गाली देता है, मोही पुरुषने उसे आश्रयभूत बनाया और निर्मोही ज्ञानी मुनिने उसे आश्रयभूत नही बनाया। निमत्तकी ऐसी बात है कि उस मुनिके केवल सज्वलन कषाय ही है और वह तीव्र कषायके लिए निमित्त नही है। क्योकि वह मदशक्तिकी प्रकृति है कि गाली-गलौज देने वाले व्यक्ति का आश्रय बना सकी। तो यो निमित्तनैमित्तिक भावमे अविनाभाव है, आश्रयभूत पदार्थमे नही। कर्मोंमे उदयसे क्रोध उत्पन्न हुआ तो कर्म तो निमित्त है और क्रोध नैमित्तिक हुआ।

कर्मदशाके लिये आत्मपरिणामकी निमित्तभूतता—आत्माके क्रोधकषायका निमित्त पाकर कर्म बँधे, तो निमित्त हुए आत्माके कषायभाव और नैमित्तिक हुआ कर्ममे बन्धन। कर्ममे कुछ भी काम हो, उसके लिए सब निमित्त बनेंगे, आश्रयभूत न बनेंगे, क्योकि कर्म जड है। जड पदार्थके कार्यके लिए कोई आश्रयभूत हो, कोई निमित्त हो ऐसा भाग नही है,

उसके लिए सभी निमित्त है और इसी कारण कर्मबन्धनमे गल्ती कभी नही होती। कोई मनुष्य किसी भी जगह, किसी भी ढंगसे, वैसे ही मायाचारसे कुछ भी गुप्त कार्य करे, कोई मनुष्य उसे जान सके या न जान सके, मगर कर्मका बन्धन तो होगा ही, क्योकि कर्मको कषाय निमित्त चाहिए उस जीवने कषाय की। चाहे रसोई घरमे बैठकर कषाय करे, चाहे किसी कमरेमे अकेले बैठकर कषाय करे, चाहे मायाचारी रखकर कषाय करे, कोई न समझ सके इस प्रकारसे कषाय रखे तो रखे, कितने ही पुरुष ऐसे होते है कि आ तो रहा है क्रोध, मगर बचन यो बोलेगे कि अपनी बडी शान्ति दिखा रहे है और मुझे कुछ गम नही क्या कहा, क्या बात है आदिक कुछ भी कहे, मगर चित्तमे क्रोध बस रहा है तो कर्मोका बन्धन तो होगा ही। पुरुषोसे मायाचार कर लिया तो करे मगर कर्मसे मायाचार नही कर सकते। क्योकि कर्मोके बन्धनके निमित्त हो तो वे बंधेगे ही। चेतनमे भूल हो जायगी पर अचेतन न भूलेगे। उनमे जब जहाँ जिस तरहका निमित्त पाकर जो कर्म होना होगा वह होगा ही। जब आत्माने कषायभाव और कर्मभाव किया तो निमित्त है कर्मबन्ध और नैमित्तिक है कषायभाव।

निमित्तभूत पदार्थ और आश्रयभूत पदार्थके निमित्तत्वका अन्तर—निमित्तभूत कर्म और अन्य पदार्थोमे यही अन्तर है कि जीवके परिणमनमे कर्म तो निमित्त होते है और अन्य पदार्थ आश्रयभूत होते है। बाह्यपदार्थ जब कल्पनाके विषय हुए तब वे निमित्त होते है इस कारण उन्हे निमित्त शब्दसे न कहकर आश्रयमात्र कहना चाहिए। विषयमात्र हो जीव के तब क्रोधभाव जगे, कर्मका उदय जगे। क्रोधपरिणमन होनेको है तो जो बात सामने होगी, जो परिणति दिखेगी उसको आश्रयभूत बनाकर वह क्रोध करेगा। और कोई ऐसा भी हो सकता है कि उस ढगके क्रोध होने के लिए आश्रयभूत अगर नही मिलता है तो कषाय तो वहाँ जग जायगी मगर उसमे तीव्रता न आयगी। और ऐसी स्थितिमे कोई यह शका करे कि फिर तो निमित्तकी बात सही न रही। कर्मका उदय आये, क्रोध कषायका उदय आये और आश्रयभूत उसे मिल न सके ढगका तो क्रोध उसके तेज न हो सकेगा। तो बात वहाँ यह है कि फायदा उसे अभ्यासका होता है। साक्षात् फायदा नही होता, किन्तु वासना जो अन्दर है वह उसी किस्मकी है कि वहाँ बन्धन होगा ही। मगर अभ्यास का फायदा उसे यह है कि आश्रयभूत पदार्थोका वह त्याग कर दे तो उसका अभ्यास यो बनेगा कि कभी वह अपने भीतर वासनामे भी अन्तर डाल लेगा। तो वहाँ अभ्यासका अन्तर आया, उसका लाभ हुआ। लेकिन जिस प्रकृतिका जिस अनुभागमे कर्मका उदय आया उसे उसका व्यक्तरूप नही बन पाया आश्रयभूत पदार्थ न होनेसे, मगर भीतर-भीतर वासना होनेसे उतना ही काम करेगा। देखिये इसी बुनियाद पर दो प्रकारके उपदेश किए

जाते है। एक तो यह कि भाई घर छोडा तो क्या फायदा ? वासना तो बनाये रहे। एक तो इस तरहका उपदेश मिलता है। गृहत्याग कर दिया, निर्ग्रन्थ हो गए, वनमे रहने लगे, मगर मोह न छूटा, तो क्या फायदा हुआ ? यो उपदेश दिया जाता है। और एक यो उपदेश दिया जाता कि देखो बाह्य पदार्थोका त्याग करो, इन विषयोका त्याग करो। चरणानुयोगमे यह वर्णन बहुत आता है, और वहाँ इस बात पर प्रधानता नही देते कि त्याग करे या न करे, बध तो वासनाके अनुसार होगा। यह वहाँ कथन नही करते, इसी पर ही जोर देते है कि तुम वैभवका त्याग करो अथवा अमुक चीजका त्याग कर दो, इतनी चीजोका परिमाण रख लो, यह उपदेश चलता है। इन दोनो उपदेशोका समन्वय कैसे हो ? बात अलग-अलग क्षेत्रकी है। एक दे रहा है वासनाको बुरा बताकर वासनाके त्यागपर जोर और एक दे रहा है बाह्य पदार्थके सम्बन्धको खतरनाक बताकर बाह्य पदार्थोके सम्बन्ध के त्याग पर जोर। समन्वय यो है कि बाह्य पदार्थोके त्यागसे तो अभ्यासका लाभ मिलता है और वासनाके त्यागसे साक्षात् लाभ मिलता है। तो आश्रयभूत पदार्थोका परिहार करने से भी लाभ है लेकिन साक्षात् लाभ है उस अभ्याससे, उस ज्ञानसे, उस उपासनासे जिससे कि वासना दूर होती है।

कर्मकी निमित्तभूतता—बाह्यपदार्थ और कर्मोदय ये दोनो निमित्त हैं मगर इनमे अन्तर है। एक तो विषयभूत है और एक निमित्तभूत है। आश्रयभूतको कहा गया है कि ये निमित्तके नोकर्म हैं—रागप्रकृतिका उदय, रागप्रकृतिके बाह्यसाधनकी उपासनामे अपना फल दिखाता है। तो पुरुषोके लिए कहलाये वे आश्रयभूत और कर्मोदयके लिए कहलाये वे बाह्य-पदार्थ नोकर्म। जैसे निद्रा प्रकृतिके उदय आनेपर नीद आती है, ठीक है, आ गई नीद, और कोई भैसका दही खूब खाये किसी दिन तो देखो उस दिन कैसी नीद आती है ? तो निद्रा प्रकृतिके उदयके लिए भैसका दही नोकर्म है। नोकर्मका यह मतलब है कि जिसके सन्निधानसे निमित्त अपना प्रभाव पूरा बना सके वह नोकर्म है। तो कर्म हमारे कल्पनाके विषय होकर निमित्त नही होते। बहुतसे प्राणी ऐसे हैं कि कर्मोके सम्बधमे कोई जानकारी नही रखते, कर्म कितने प्रकारके हैं, कर्मकी कितनी सूक्ष्म वर्गणायें हैं, इस जीवके साथ विस्रसोपचय लगे हैं, कर्मोके कितने प्रकार हैं, कितने ढग हैं, इन बातोका किन्हें ज्ञान है ? कर्म कल्पनाके विषयभूत नही हैं मगर वे निमित्तभूत हैं। जैसे कोई चीज जलानेके लिए आग कल्पनाका विषय बने तब जले ऐसी बात नही है, आग मिलेगी तो वह चीज अवश्य जल जायेगी। जैसे किसीने भूलसे पीछे रखी हुई आगपर पैर रख दिया तो वहाँ यह गुंजाइश न चलेगी कि भाई हम तो आगको कल्पनामे ले ही नही रहे थे, आगने क्यो हमारे पैरको जला दिया ? तो जल यो गया कि वह पैर अजीव है और आग अजीव है, वहाँ कल्पनामे

लेनेपर कोई चीज न जलेगी किन्तु वहाँ तो सीधा निमित्तनैमित्तक भाव है। हाँ आग पडने पर भी अब जीव जो अन्दरमे दुःखी हो रहा है उसके लिए कल्पनाका विषय बन जायगा। जीवके परिणामके लिए बाह्यपदार्थ कल्पनाके विषय होते हैं, और कर्म कल्पनाके विषय होकर फल नही देते, किन्तु वे आते है तो फल देते ही है। काल्पनिक और प्राकृतिक ये दोनो ही निमित्त है, आत्मासे पृथक् प्राकृतिक निमित्त तो है कर्मोदय कर्मकी अवस्था और काल्पनिक निमित्त है आश्रयभूत पदार्थ। हैं दोनो आत्मासे जुदे।

जीवने राग किया तो वहाँ प्राकृतिक निमित्त है रागप्रकृति का उदय और काल्पनिक निमित्त है स्त्री पुत्र वगैरह। तो ये दोनोके दोनो आत्मासे जुदे है, कर्म भी जुदे है और वह कुटुम्ब भी जुदा है। उन दोनोकी परिणतिसे आत्मामे राग नही हुआ। न कर्मकी परिणतिसे आत्मामे राग हुआ, न कुटुम्बकी परिणतिसे राग हुआ। इस कारण परमार्थत निमित्तका आत्माके साथ कार्य कारण भाव नही किन्तु निमित्तनैमित्तक भाव है। कर्ता कर्म भाव नही। कर्म कर्ता हो जीवके रागका अथवा कुटुम्ब कर्ता हो जीव के रागका, ऐसी बात नही है। हाँ निमित्तमात्र है वे दोनो, एक है काल्पनिक निमित्त और एक है प्राकृतिक निमित्त। हमारा वश काल्पनिक निमित्तसे लक्ष्य हटानेका हो सकता है क्योकि कल्पनाकी चीज ही तो है। आज हम कल्पनाये किए है—निमित्त हो रहा है, न कल्पनायें करें, निमित्त न होगा, इस कारण बाह्यपदार्थोंका त्याग करनेका उपदेश है और उसको लक्ष्यमे न लेनेका उपदेश है।

एक पदार्थमें ही कर्तृकर्मभाव——इस प्रसगमे दो विषय बताये गए थे कि कर्तृकर्मभाव और दूसरा निमित्तनैमित्तिक भाव। कर्तृकर्मभावकी दृष्टिसे जैसे घडेका कर्ता मिट्टी है और निमित्तनैमित्तिक भावकी दृष्टिसे घडेका कर्ता कुम्हार है। यह बात कुछ संकेतरूपमे कही गई थी। अब उस ही प्रसगमें विवरणसहित उसका मर्म समझिये। कर्तृकर्म भाव तो एक सत्ता वाले पदार्थमे है, एक सत्तामात्र अर्थात् एक ही पदार्थमे उपादानमे ही जो परिणमन हो रहा है उस परिणमनको तो कहते है कर्म, और उस उपादानमे जिसमे कि परिणाम रहा है उसे कहते हैं कर्ता। परमार्थ दृष्टिसे कहा जा रहा है यह। जो पदार्थ जिसरूप परिणमता है वह उसका कर्ता कहलाता है। परिणमयिता और परिणाम—परिणमने वाला और परिणमन, ये दो बातें कही जा रही है मगर शब्द रखे जा रहे है कर्ता कर्म। ये शब्द न रखे जाने चाहियें थे, लेकिन लोकव्यवहारमे इस शब्दका प्रयोग होता रहता है, इस कारण इन शब्दोको बताता गया है। वैसे तो जब पदार्थोंका ऐसा ही स्वभाव है कि वे हैं और परिणमते रहते हैं, वे हैं और अपनी शक्तिसे परिणमते है, अपने उत्पादसे हैं, अपने ही व्यय से है। किसी एक पदार्थमे किसी दूसरे पदार्थका द्रव्य गुण पर्याय कुछ भी नही पहुचता। तो स्पष्ट बात यह है कि लोकमे जितने पदार्थ है वे सब है और परिणमन उनमे होता

है। तो इस दृष्टिसे उनमे कर्ताकर्म शब्दकी बात न कही जानी चाहिए थी। कोई करने वाला ही नही, खुद खुदमे परिणमता है, वहाँ करनेकी बात क्या हुई ? लेकिन लोकव्यवहारमे कर्ता कर्मकी रूढि है और जिन्हे समझाना है वे इस कर्ता कर्मके रगमे रगे चले आ रहे हैं। कुम्हारने घडा बनाया, जुलाहेने कपड़ा बनाया, उसने दुखी किया, उसने सुखी किया, इस तरह जब कर्ता कर्मके व्यवहारमे चले आ रहे हैं तो उनको ही समझानेके लिए प्रयत्न है तब परमार्थसे कहा जाता कि वस्तुत कर्ता कर्म एक पदार्थका उस ही मे है, एकका दूसरेमे कर्ता कर्म सम्बध नही है।

कर्ताकर्मके तथ्यके ज्ञानीके कषायोंकी क्षीणता—कर्ता कर्मके इस मर्मको जाननेसे कषायोमे फर्क आता है। कषायें क्षीण होती है। क्रोध किस पर करना ? उसने मेरा क्या किया ? उसने जो कुछ किया खुदमे खुदकी योग्यतासे परिणमन किया है, इसके आगे उसका कुछ कार्य नही है। तब क्रोध किस बातपर करना ? विचार विचारसे क्रोधमे अन्तर आ जाता है। तब यह भाव जगता है कि देखो नाहक बिना अपराधके यह मुझको यो कह रहा है, तब वहाँ क्रोध बढता है। जहाँ यह दृष्टि बनी कि इस बेचारेका ऐसा ही परिणाम था ऐसी ही योग्यता थी, इसको ऐसा ही अपना भाव बनानेमे शान्ति दिखी, इसने ऐसा भाव किया, इसके आगे इसका कोई कार्य नही है। तो चाहे उस घटनामे अपनेको कुछ हानि भी पडी हो, धनकी या अन्य बातकी, लेकिन जहाँ यह विचार मूलमे बना कि इसका तो कार्य इस तक ही था, इसमे ही समाप्त हो गया, इसके आगे इसने कुछ किया नही तो वहाँ क्रोध न जगेगा। तो परमार्थत कर्ताकर्मभावकी समझ यह बड़े ऊँचे ज्ञानकी बात है। इस समझ बिना हम आज तक जगतमें रुलते आये, जन्म मरण करते आये। यह मर्म न जाना कि दुख पाया हमने तो अपने आपमे अपने खोटे अशुभ परिणमनसे पाया और जन्ममरणसे छुटकारा पाऊगा तो अपने आपमें अपने ही परिणमनसे पाऊँगा। सबसे बड़ा काम पडा है हम आपका इस मनुष्यभवमे इस उपाय बना लेनेका कि जन्म मरणका सकट हमारा मिट जाय, क्योकि कोई तत्त्व नहीं। मरे फिर जन्मे। जन्मके बाद कुछ परिचय हो जाता है तो लगने-ऐसा लगता है कि यही मेरा सब कुछ है, इसमें मेरा बड़प्पन है, इससे ही काम चलता है, लेकिन इतना भी तो सोचिये कि जहाँ अगले भवमे जन्म लेंगे उसका आज तो कुछ परिचय नही। तो मेरे लिए तो वे सब अपरिचित हैं, और जन्म न लेना पडे तो मेरा नुक्सान हुआ कि लाभ हुआ ? अपरिचित तो वे थे ही, परिचय तो जन्मके बाद बनाया जाता है। तो परिचय बनाना और दुखी होना, बस यही व्यवसाय लगा हुआ है। जन्म लेना उन का परिचय तैयार करना और दुखी होना और मर जाना, इसके सिवाय और प्रोग्राम क्या चल रहे है जिन्दगीमे, सो ढूंढो। अब इसमे परिचय हो जाने पर बात कुछ रूची सी

लगती, कुछ यो महसूस भी करने लगते कि बच्चोको कहां छोडा जाय, इनकी तो जिम्मेदारी हम पर ही है, ये सब विकल्प दौडने लगते है। मगर उस पहिली स्थितिको तो सोचो कि जब परिचय हो न था तो कितना क्लेश है ? जन्म लेना, परिचय बनाना, दुःखी होना और मर जाना, इसके सिवाय और कोई रोजिगार नही चल रहा, ये सब व्यर्थके रोजिगार है। परिचय बनानेकी बात बिल्कुल मिथ्या है। कोई जीव कहीसे मरकर यहा पैदा हो गया। बस उसे अपना मान लिया, यह गल्ती तो इसके खुदके अज्ञानकी है। उस अज्ञानका संसरण करे, ज्ञानबलको बढायें, अपने आपको समझाये। यदि अपनी इस समाधिके अभ्यास से यह सब कुछ बुझता है, मिटतासा है तो बुझने दो, मिटने दो। मिटता कुछ नही है। जो पदार्थ सत् है वह रहेगा। बुझता है तो बुझे। मेरे ज्ञानमे ये सब बातें न आयेंगी तो मेरी रक्षा ही तो है। भली प्रकारसे निर्णय करके परख लो कि इस जगतमे जन्म मरण करते रहनेसे कोई लाभ नही है। शान्तस्वभावी है हम और नाना नटखट करके हम अशान्त हुआ करते हैं, इसमे कोई तत्त्वकी बात नही है। तो जन्म मरणसे छुटकारा मिले यह काम है हम आपका सबसे बडा। और उस छुटकाराके लिए आवश्यकता है इस तत्त्व ज्ञानकी। जहा बताया जा रहा है कि कर्ता कर्मभाव पदार्थका उसका उस ही में है। तो कर्ता कर्म भावकी यह परमार्थता जब हम जान लेते है तो परके विकल्प नही रहते, कषायें शान्त होती हैं, निर्विकल्प अंतस्तत्त्वके अनुभवनकी प्रेरणा होती है, अनुभव बनता है। यही उपाय है जन्म मरणके मिटने का। तो कर्ता कर्म भावका एक ही अद्वैत पदार्थमे सम्बन्ध है।

जीवविभाव और कर्मावस्थामें निमित्तनैमित्तिक भावकी स्थिति—निमित्तनैमित्तिक भाव क्या होता है ? यह सम्बध है पृथक् सत् पदार्थमे। जुदे जुदे सत्तावान पदार्थमे निमित्तनैमित्तिक भाव घटित होता है। जैसे कुम्हारने घडा बनाया, यह निमित्तनैमित्तिक भावकी दृष्टिसे कहा जा रहा है। तो यहाँ कुम्हार जुदी सत्ता रख रहा है और घडा जुदी सत्ता रख रहा है। घडा मिट्टीमे है, कुम्हार कुम्हारमे है तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थोंमे निमित्तनैमित्तिक भाव हुआ करता है। जैसे जब जीव योग और उपयोगको करता है, तब वहाँ कर्मबन्धन हो जाता है। योगके मायने है परिस्पंद। मन, वचन कायकी हालतका निमित्त पाकर जो आत्मप्रदेशोमे परिस्पद होता है उसे योग कहते है। और उपयोग क्या ? जिसमे ज्ञानको जमानेका यत्न होता है ना उस यत्नको उपयोग कहते है। तो जीवने तो योग और उपयोग किया। हर जगह जहाँ भी वह प्रीति करता है, द्वेष करता है, कषाय करता है, जो भी जीव नटखट करता है, कर सकता है वहाँ योग और उपयोग है। तो उस योग और उपयोगका निमित्त पाकर जो कार्माणवर्गणा जीवके साथ विस्रसोपचय रूपसे लगी है वे

कर्मरूप बन जाती है। तो कर्मरूप बन्धन होना यह तो नैमित्तिक भाव है और जीवमे योग उपयोग होना यह निमित्त है। जीवके ही कषायका निमित्त पाकर कर्म बधे ना, तो कषाय तो निमित्त हुए और कर्मबन्धन नैमित्तिक हुए। यह भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थोमे है; जीवकी सत्ता अलग है और कार्माण स्कधोकी सत्ता अलग है। उनमे निमित्तनैमित्तिक भाव बताया गया है, और जब उन पुद्गल कर्मोका उदय आता है तो जीवमे कषायभाव जगता है, उस समय कर्मोदय निमित्त है और कषायका जगना नैमित्तिक भाव है।

निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसंगमें भी कर्ताकर्मभावकी एक सत्ताक झलक—जीव और कर्मके निमित्तनैमित्तिक भावके इन प्रसंगोमे भी कर्ताकर्मभावकी देखें तो जीवने योग उपयोग किया, सो जीव कर्ता और योग उपयोग कर्म है। कार्माणवर्गणाये कर्मरूप पर्याय बनीं तो कर्मबन्धन तो कर्म हुआ और वे कार्माणवर्गणायें कर्ता हैं। जब कर्मका उदय हुआ उस समय जीवके कषाय जगे ऐसा निमित्तनैमित्तिक भाव है, इतनेपर भी कर्ममे जो उदय आया सो उदय है कर्म और उसका कर्ता है वह ही कर्मरूप द्रव्य। और जीवमे जो क्रोधादिक कषायें जगी सो उसका कर्ता है जीव और उसका कर्म है कषाय। तो यो कर्ताकर्म तो एक पदार्थमे देखा जाता है और निमित्तनैमित्तिक भाव भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थोमे निरखे जाते हैं। यह है निमित्तकी बात। चाहे वह काल्पनिक निमित्त हो अथवा प्राकृतिक। जैसे किसी जीवको संतान आदिकके व्यवहारसे क्रोध जग गया तो इस क्रोध जगनेमे निमित्त तो है क्रोध प्रकृतिका उदय। यह तो है प्राकृतिक निमित्त और काल्पनिक निमित्त है संतानका व्यवहार। बच्चेने कुछ असुहाया काम कर दिया, उसका आश्रय पाकर क्रोध जगे तो उसमे काल्पनिक निमित्त हुआ वह बच्चा और प्राकृतिक निमित्त है क्रोधप्रकृतिका उदय। तो अब इन दोनो निमित्तोका भी तात्पर्य देखिये। काल्पनिक निमित्तका मतलब है—जिन बाह्य वस्तुओको विषय बनाकर जीवके विभाव होते हैं उन बाह्य वस्तुओको काल्पनिक निमित्त कहते हैं। निमित्तके विषयमें आकर यह कार्य पडे, इसे चाहे काल्पनिक निमित्त कहो या आश्रयभूत वस्तु कहो। जब यह जीव क्रोध कर रहा तो यह ज्ञानमे किसको लिए हुए है, किस प्रसंगमें झट क्रोध जग रहा है? इसका जो उत्तर है उसे कहते है आश्रयभूत वस्तु। जब कभी विकट क्रोध जगनेको होता है और क्रोध जगता है किसी दूसरेके व्यवहारसे, पर वह है नही सामने अथवा वह बलवान है उसका हम कुछ बिगाड सकते नही। तो जो सामने मिला छोटा बडा, बस उसका ही विषय बनाकर क्रोध करने लगता है। जैसे कभी कोई स्त्री अपने पतिके किसी व्यवहारसे क्रोधमे बैठी हुई है, अब वह कर तो सकती नही कुछ, क्रोध जगनेको है उस समय सामने बच्चा है तो वह स्त्री उस बच्चेको ही पीट पाटकर अपनेको

शान्त कर लेती है । जैसे एक प्रसिद्ध कहावत है—कुम्हारसे न जीते गधेके कान मरोडे । किसी कुम्हार और कुम्हारिनमे कभी लडाई हो गई थी, कुम्हारने उसे पीट दिया था । अब वह कुम्हारिन करे क्या, मन ही मन कुढ रही थी, कुम्हारका कुछ कर तो सकती नही थी सो उसने किया क्या कि पासमे बँधे हुए गधेके कान ऐठकर अपने क्रोधको शान्त किया । तो क्रोध करते समय उस समय ज्ञानमे क्या आया, कल्पनामें क्या आया, लक्ष्यमे किसे लिया ? इसका जो उत्तर है बस वही आश्रयभूत वस्तु है, काल्पनिक निमित्त है ।

आश्रयभूत निमित्तका उपादानपरिणतिके साथ अन्वयव्यतिरेकका अनियम—काल्पनिक निमित्तमे नियम नही रहता । यह वास्तवमें निमित्त नही कहलाता । यही तो कारण है कि मोही जन कुटुम्बका आश्रय करके मोह बढाते है और योगी जन जो कि उनका आश्रय नही करते है उनकी कल्पनामे नही आता है तो वह सामने उपस्थित हो तब भी निमित्त तो नही है । जिस घरका परित्याग कर दिया उसी घरमे साधु आहार लेने चला जाय, क्योकि उसके लिए तो सब एक है । उस समय यदि वह यह सोचता है कि यह मेरा घर था, यहाँ आहारको नही जाना है, इसमे ममता जगेगी, या न जाना चाहिए साधुको, ऐसा कुछ सोचकर अगर उस घरमे नही जाता तो उसमे ममताका दोष है, उसकी कल्पनामे तो आया कि यह मेरा घर था, यह न था । अब तो उसके लिए सब एक समान है । तो उस घर भोजन भी हो और वे स्त्री पुत्रादिक सामने हो, आहार भी दे रहे, उतनेपर भी उस योगीकी कल्पना मे वे स्वजन रूपसे विषय नही बन रहे और उनको कर्मबन्ध नही होता । सो यह काल्पनिक विषय है, वास्तविक निमित्त नही कहलाता । जीवके विभावपरिणमनके वास्तविक निमित्त को तो कहा है प्राकृतिक निमित्त कर्मकी अवस्था । कर्मप्रकृतिके उदय उपशम आदिक प्राकृतक निमित्त कहलाते हैं । कर्मका उपशम हुआ, मद कषाय हुई, कर्मका उदय है, कषाय जगी, उदीर्णा हुई, तीव्र कषाय हो गयी, तीव्र उदय हुआ, तीव्र कषाय है । तो कर्मकी अवस्था प्राकृतिक निमित्त कहलाती है जीवके विकारके लिए, क्योकि इन कर्मोकी जैसी अवस्था होती हैं उसके ही अनुकूल जीवमे नैमित्तिक भाव बने ।

अनुकूल निमित्त और योग्य उपादानकी नियत अवस्था—इस प्रसगमे यह जिज्ञासा बन सकती है कि आत्मा यदि उपयोग ठीक रखे तो कर्मके उदय फिर निमित्त भी नही हो सकते, ऐसा भी तो हो सकेगा । जब कोई सम्यग्दृष्टि जीव स्वानुभवकी ओर चल रहा है तो उस समय उसका उपयोग विशुद्ध है, स्वका अनुभव कर रहा है वह, वहाँ उस समय अनेक कषायोका उदय चल रहे है, पर काम तो नहीं हो रहा, वे निमित्त तो न रहे, तो जैसे काल्पनिक निमित्तके साथ ढिलाई है कल्पनामे आया तो निमित्त नही होता । तो यों ही इसके साथ भी तो ढिलाई हो सकती है । फिर वास्तविक निमित्तमे भी वह बल न रहा ।

इस जिज्ञासाका समाधान यह है, कि भाई कभी उपयोग ठीक हो तो उपयोग ठीक होनेके समय उदयकालसे पहिले उस प्रकृतिमे सक्रान्ति हो जाती है, पर उदयकाल अगर पा गया कोई कर्म तो ठीक उस उदयके समयमे उस कर्मप्रकृतिके उदयके निमित्तके अनुकूल जीवमे परिणमन होगा। वह चाहे व्यक्तरूप न दे सके, वासनारूप न हो, मगर उससे अनुकूल कर्मबध भी होता है, वर्तमानमे जितनी शक्तिकी अवस्था रह जाय जिस कर्ममे, उसके अनुकूल वहाँ नैमित्तिक क्रिया होती है। कर्मके उदयकी यह व्यवस्था है कि जीवने आज कोई कर्म बाँधा और मान लो वह बाँध लिया अरबो वर्षकी स्थितिका तो उसमे एक यह आबाधाकाल का नियम रहता है कि मान लो वह अरबो वर्षकी स्थिति वाला कर्म जो आज बँधा है वह डेढ दिन तक उदयमे न आ सका तो यह डेढ दिन आपका आबाधाकाल कहलाता है। अब डेढ दिनके बाद वह कर्म उदयमे आने लगा तो उसमे तो अरबो, खरबो स्पर्धक स्कध पडे है, अब वे सभी तो एक साथ उदयमे न आयेगे। अगर सभी एक साथ उदयमे आये तो अरबोकी स्थिति न रही। जितने कर्म बँधे थे वे कर्म भिन्न भिन्न क्रमश समयोमे उदय होने के किये बँधकालमे ही विभक्त हो जाते हैं। तो उनमे जब जो स्कधमे आते है तो उदयकालमे वे फलके निमित्त होते ही है। फल कैसा हो वह उस अवसरकी बात है। देखिये, उदयकाल सबका अपने अपने समयमे एक एक समयका है, मगर उदयावलीसे उदयका सम्बध बन जाता है, मानो असख्यात समयकी एक उदयावली है, एक सेकेण्डका बहुत छोटा असख्यातवा हिस्सा तो सामान्यतया इसीको लोग उदय कहते हैं, पर वस्तुत उस उदयावलीमे जो असख्यात समय है, उसमे जिस समयमे उदय आया वह उदयका समय है। शुद्ध परिणामकी ओरसे उस उदयकालसे पहिले भी कर्म बदल सकते हैं, पर उदयकालमे आनेपर फिर उसके अनुकूल नैमित्तिक भाव होता है। तो यह प्राकृतिक निमित्त है। और काल्पनिक निमित्त हैं धन वैभव स्त्री पुत्रादिक ये सब। तो इससे हमे यह शिक्षा लेनी है कि हम कल्पनामे इन पदार्थोंको न लायें तो हमारे कर्म ढीले पड जायेंगे और यह अभ्यास हमारे कितने ही कर्मबन्धनोको बिल्कुल रोक देगा। तो इस कारण हमे अपनी कल्पना, अपना उपयोग विशुद्ध बनानेका ध्यान रखना चाहिए और उसका उपयोग, धर्म व भक्ति व आत्मस्वरूपका चिन्तन है। इन दोनो उपायोसे अपना ज्ञानवल बढायें और जन्ममरणके सकटसे छूटनेका समय निकट करें।

नोकर्म न मिलनेपर कर्मका उदय निष्फल होनेसे निमित्तत्व व्यवस्थाके विघटनकी आरेका—यहाँ एक जिज्ञासा हो रही है कि करणानुयोगमे भी ऐसा बताया गया है कि कितनी ही प्रकृतियोंके बाह्यसाधन न मिलनेपर वे निष्फल हो जाते हैं। प्रकृतियोका उदय आये, पर बाह्य आश्रयभूत पदार्थ न मिलें तो वे प्रकृतियाँ अपना फल नही दे पाती, क्योकि

कर्म और नोकर्म दो प्रकारके कारण कहे गए है। कर्म तो है निमित्तभूत और नोकर्म है कर्मका सहायक। जैसे निद्रा कर्मका उदय आया और उस दिन खाया हो किसीने भैसका दही तो खूब अच्छी नीद आयगी और निद्रा प्रकृतिके उदय चल रहे है और हो रहा है कोई इष्टवियोग तब तो निद्रा नही आती। तो क्या यह कहा जायगा कि इस दिन उसके निद्राकर्मका उदय ही न चला। तो कितने ही बाह्यसाधनोके न मिलनेपर प्रकृतियाँ निष्फल हो जाया करती है। यह बात इस प्रसगमे कैसे घटेगी? जहाँ यह कहा जा रहा है कि निमित्तका नैमित्तिक कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक है।

निमित्तत्व व्यवस्थाविघटनके आरेकाका समाधान—समाधान उक्त जिज्ञासाका यह है कि जब ऐसी स्थितियाँ होती है कि बाह्य साधन नही मिल रहे, अथवा प्रतिकूल साधन मिल रहे है फिर ऐसी स्थितियोके समय कर्मोदयकालसे एक समय पहिले स्तुविक संक्रमणसे सक्रान्ति हो जाती है, और तब यह कहा जायगा कि सही उदयकाल उसके आया ही नही, ऐसी बहुत-सी प्रकृतियाँ होती है, जैसे यहाँ हम आपके सम्भव है कि चारो गतियोकी सत्ता पडी हुई हो। पहिले समयमें कषायबद्ध जो कर्म बधे थे उनमे चारो गतिया भी हम आपकी पडी हुई हैं, यह सम्भव है। आयु तो केवल दो ही रह सकती है—एक जिस आयुको भोग रहे हैं वह, और दूसरी यदि नवीन आयुका बंध हो गया तो वह। यो आयुकर्मकी दो की ही सत्ता रह सकती है। किसीके एकको ही रहती है, जब कि नवीन कर्म आयु कोई नही अब तक बाध सके, तो उसकी एककी ही सत्ता है। किन्तु गतियोकी ऐसी बात है, कषायों का निमित्त पाकर गतिया चारोमे कोई न कोई बधती रहती हैं। और सम्भव है कि चारो गतिया इस समय हमारी सत्तामे है, और जब सत्तामे है तो उनका उदय भी होगा। अब नरकगतिका उदय भी चल रहा है तिर्यञ्चका भी चल रहा, मनुष्यका तो चल ही रहा, देवगतिका भी चल रहा तो उसे स्थूलदृष्टिसे तो कहेगे कि चारो गतियोके उदय चल रहे हैं, लेकिन सूक्ष्मदृष्टिसे बात यह है कि नरक गति या देवगति या तिर्यञ्चगति, इन तीन गतियोकी प्रकृति उदयमे आते आते उदयकालसे पहिले सब मनुष्यगतिरूप बदल करके फिर मनुष्यके रूपमे उदय आता है तो इन गतियोके उदयका बाह्य साधन न मिल सका कि अपने ही सही रूपमे इसका उदयकाल आ जाय। जब स्तुविक सक्रमण द्वारा अन्य प्रकृति रूप परिणाम करके उदयमे आया तब निमित्तके साथ नैमित्तिक भावका अन्वयव्यतिरेक कैसे विघटित हुआ? उन प्रकृतियोका स्वमुखसे फल नही मिलता किन्तु पररूपसे फल मिल जाता है और फिर वस्तुत यह कह सकते है कि उनका वास्तविक उदय न हो सका। उदयावलीमे तो आये वे पर उदयकालसे एक समय पहिले वे संक्रमणको प्राप्त हो गए। तो यहां तक यह बात जाननी चाहिए कि विभावपरिणमनोमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है

और तभी ही सुनिश्चित व्यवस्था है कि अमुक अमुक प्रकारके कार्य अमुक स्थितिमे होते है। निमित्तनैमित्तिक भाव माने बिना घटनाकी व्यवस्था नही बन सकती, लेकिन इतना होने पर भी जब परिणतिपर दृष्टि डालते है, वस्तुके स्वरूपपर पदार्थके स्वपर दृष्टि करते है तो वहा यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि प्रत्येक कार्य अपने अभिन्न आधारभूत उपादानसे प्रकट हुई उपादानकी शक्तिसे बने और उत्पादव्यय स्वभावके कारण यह सब हुआ। वहाँ किसी भी परका निमित्तका द्रव्य गुणपर्याय किसीका भी उपादानमे प्रवेश नही है। तो यो निमित्तनैमित्तिक भाव बराबर जानकर भी परिणमनस्वतन्त्र्यपर जिसकी दृष्टि बनी है, ये दोनो निर्णय जिसके पडे हुए हैं वह ज्ञानी पुरुष परलक्ष्य छोडकर स्वलक्ष्यमे आकर अपना उद्धार कर लेनेमे समर्थ है।

निमित्त व नैमित्तिक भावका कालयौगपद्य—अब इस समय यह विषय और विचार मे रखिये कि निमित्त पहिले होता है या नैमित्तिक कारण पहिले होता है ? कुछ लोग इस पद्धतिसे भी कह देते हैं कि जब कार्य हो गया तब किसी बाह्य पदार्थमे निमित्तका उपचार करते हैं। इस कथनमे तो ऐसा जाहिर होने लगता कि कार्य पहिले होता है और निमित्त की बात, निर्णय आदि बादमे होते हैं। कुछ लोग इस पद्धतिसे कहते हैं कि निमित्त पहिले तैयार समर्थ है सो फिर वह आगे निमित्त कार्यको कर पाता है। ऐसी स्थितियोमे इसका निर्णय करना भी आवश्यक हो गया कि निमित्त पहिले होता है या नैमित्तिक ? समाधान इस जिज्ञासाका यह है कि होते तो निमित्तनैमित्तिक दोनो एक साथ याने निमित्त सज्ञा और नैमित्तिक सज्ञा ये दोनो एक साथ होती हैं। जैसे पिता और पुत्रके बारेमे पूछा जाय कि बताओ पिता पहिले होता है या पुत्र ? तो बिना विशेष विचार किए बहुतसे लोग तो यह कह देगे कि पिता पहिले होता है, पुत्र बादमे होता है। लेकिन कोई स्वतत्र परिणमन की धुनमे रह रहा हो तो वह यो भी कह सकेगा कि पुत्र पहिले होता है तब पिताकी बात पीछे कही जाती है। लेकिन ये दोनो सज्ञाये पिता, पुत्र एक कालमे होती हैं, क्योकि जब तक पुत्र नही होता तब तक पुरुषको पिता नही कहा जाता। तो यह बात कैसे बनी कि पुत्रसे पहिले पिता था ? वह व्यक्ति था, यह तो कह सकते हैं, मगर पिता था, यह नही कहा जा सकता, क्योकि पिता नाम पडता ही तब है जब कि पुत्र हो। तो पुत्र होनेके साथ ही पिता हुआ, उससे पहिले पिता नही हुआ। उससे पहिले कोई किसी नामका व्यक्ति था, और ढगकी बात थी। तो पिता और पुत्र ये दो सज्ञायें एक साथ हुई।

कारण और कार्यके कालयौगपद्यके दृष्टान्त—निमित्तनैमित्तिक भावकी युगपत्ताके सम्बन्धमे और भी दृष्टान्त लो। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमे बताओ पहिले कौन होता है और बादमे कौन होता है ? यहाँ निमित्त तो है सम्यग्दर्शन और नैमित्तिक है सम्यग्ज्ञान। यो

उदाहरणमे ले लीजिए। उनके बारेमे कोई पूछे कि बताओ सम्यग्दर्शन पहिले होता कि सम्यग्ज्ञान ? तो इसका सही उत्तर यह होगा कि दोनो एक साथ होते है। देखिये—सम्यग्दर्शन होनेके लिए यद्यपि बहुत सच्चा ज्ञान हो तभी सम्यग्दर्शन होता है, लेकिन यहाँ ज्ञान हो तभी सम्यग्दर्शन होता है लेकिन यहाँ बात चल रही है ऐसे सम्यक्त्वकी कि जिससे ज्ञान मे सम्यक्पना आया। अनुभवपूर्वक जो ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान होता है; और अनुभव बिना वैसा ही ज्ञान हो चाहे, जैसा कि अनुभवके बाद हुआ; लेकिन अनुभवरहित होनेके कारण उसमे सम्यक् सज्ञा नही होती। जैसे जैनबद्रीमे गोमटेश्वरकी प्रतिमा है, उसे देखने कोई गया न हो और यहीसे पुस्तको द्वारा अथवा दूसरोसे सुनकर अच्छी तरहसे जानकारी कर लिया हो कि बाहुबलि स्वामीकी मूर्ति इतने फिट ऊँची है, पैर इतने मोटे है; अगुलियाँ इतनी लम्बी है, हाथ इतने लम्बे व इतने मोटे है आदि। यो बाहुबलिकी मूर्तिका ऐसा परिचय कर लिया जैसी कि वह प्रतिमा। ऐसा ज्ञान कर लेने वाला पुरुष कभी मौका पाये और वहाँ पहुचकर साक्षात् उस मूर्तिके दर्शन करे तो उस दर्शनके समय भी वैसा ही ज्ञान हुआ जैसा ज्ञान पहिले कर चुका था, लेकिन यह बतलावो कि दर्शन के समयमे ज्ञानमे जो स्पष्टता है, विशदता है, वैसी स्पष्टता, वैसी विशदता क्या पहिले थी ? बल्कि पहिले जाना उसने और भी ज्यादह था। उस मूर्तिके देखते समयमे अनेक लोग ज्ञान नही रख पाते है कि यह मूर्ति कितने फिट ऊँची है, इसके हाथोकी व पैरोकी अगुलियाँ कितनी बडी है, इसके हाथ पैर आदि कितने बडे है, तो वह व्यक्ति दर्शन करनेसे पहिले उस प्रतिमाके अगोकी नाप भी जानता था, इतनेपर भी दर्शनसे पहिले उसका ज्ञान सम्यक् न था, ऐसे ही ज्ञान ज्ञान था, लेकिन अब दर्शनपूर्वक अनुभवपूर्वक जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान मे दृढता है, स्पष्टता है, और कुछ इस तरहका भी निर्णय है कि देखिये—जिस मूर्तिके बारे मे हमने ऐसा जाना था, समझा था, चित्रमे देखा था, यह वही है, ऐसी दृढतापूर्वक ज्ञान है। तो जो अन्तर उस मूर्तिके दर्शनसे पहिले हुए मूर्तिके ज्ञानमे और दर्शनपूर्वक हुए मूर्तिके ज्ञानमे है ऐसा ही अन्तर सम्यग्दर्शनसे पहिले होने वाले तत्त्वनिर्णयमे और सम्यग्दर्शन पूर्वक होने वाले तत्त्वनिर्णयमें है। स्थूलरूपसे बात वही है। और तब यह कहा जा सकता कि वाह पहिले सच्चा ज्ञान होगा तब सम्यग्दर्शन हो सकता है। ज्ञान बिना सम्यक्त्व कैसे होगा ? उसीके लिए वस्तुके स्वरूपका निर्णय, अभ्यास, चर्चा, अध्ययन आदिक चलाये जाते है। तो जब ज्ञान होगा तभी तो सम्यक्त्व होगा। आत्माके बारेमे ज्ञान किया—यह देहसे निराला है, अमूर्त है, ज्ञानमात्र है, और जब ऐसा अनुभव करनेके लिए यत्न करेंगे सो सम्यक्त्व होगा। तो देखो—सच्चे ज्ञानपूर्वक ही सम्यग्दर्शन हुआ, यो कहनेमे आता है। और बात भी बहुत दृष्टिमे सत्य है, वही वस्तुस्वरूपके विपरीत ज्ञान करनेके

बाद सम्यक्त्व नही होता। जैसा वस्तुका स्वरूप है उसके अनुकूल ज्ञान चल रहा हो तो सम्यक्त्व होगा। बात यह ठीक है, इतनेपर भी सम्यग्दर्शन होता है स्वानुभवपूर्वक। तो स्वानुभवपूर्वक हुए सम्यग्दर्शन सहित जिसका ज्ञान हो वह ज्ञान एक विशेष स्पष्टताको लिए हुए है। जिसमे वह दृढतापूर्वक कहा जाता कि तत्त्व यही है, ऐसा ही है, अन्य प्रकार है ही नही, हमने साक्षात् देखा। तो जैसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके बारेमे यह प्रश्न हो कि पहिले कौन होता है ? तो वहाँ उत्तर है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एक साथ होते हैं। ज्ञान पहिले भी था परन्तु सम्यक् सज्ञा सहित ज्ञान सम्यग्दर्शनके साथ ही हुआ। यो ही समझिये कि जीवके क्रोध कषाय जगी, उसमे निमित्त है क्रोध प्रकृतिका उदय। तो बतलाओ क्रोधप्रकृतिका उदय पहिले होता है या क्रोधकषाय पहिले होती है ? उत्तर यह है कि दोनो एक साथ होते है। क्रोधप्रकृतिका उदय क्रोधकषायके होनेमे निमित्त है। जिस समय क्रोध प्रकृतिका उदय है उसी समय क्रोधकषाय है; और बधकी भी यही बात है। बध होता है कषायका निमित्त पाकर। तो बताओ कषाय पहिले होती है कि कर्मबन्ध पहिले होता है ? उसका भी उत्तर यही कि दोनो एक साथ होते हैं। जिस समयमे कषाय है उस ही समयमे कर्मबन्धन है। तो निमित्त और नैमित्तिक ये दोनो एक साथ होते हैं।

निमित्तनैमित्तिकभावके यौगपद्यके विरोधी वादोंका समन्वय—अब कुछ उन लोगो के आशयका भी समन्वय कीजिए जिनका कहना कुछ और प्रकारसे है। किसीने यह कहा है कि जब नैमित्तिक कार्य हो जाता है तब निमित्तपर विचार किया जाता है। बात सही हैं यह भी। जब नैमित्तिक कार्य समझमे आया तब निमित्तका उपचार किया गया, न कि निमित्तका सत्त्व बना। निमित्त तो नैमित्तिक कार्यके समय ही था, पर हमने कब समझा कि यहाँ निमित्त है, यहाँ यह निमित्त था। हम यह कब समझ पाते हैं और यहाँ हम दूसरे को कैसे समझा पाते है ? जब नैमित्तिक कार्यका ज्ञान हुआ पहिले, तब हम निमित्तकी बातको समझा पाते हैं। तो समझानेमे उपचार करनेमे यह बात सही है, पर नैमित्तिक पहिले हो, पीछे निमित्तका सत्त्व हो यह बात सही न रही। नैमित्तिक अगर पहिले हो गया तो निमित्त के सत्त्वकी जरूरत भी नही रहती; और पहिली बात तो यह है कि उसका नैमित्तिक नाम ही न रहेगा। तो निमित्तका उपचार भले ही बादमे हो और बादमे क्या; कोई दो चार दिन बाद भी करे दे। दो चार दिन पहिले हुए कार्यका निमित्त क्या है ? इसका वर्णन कोई कई दिन बाद करे तो इसका यह अर्थ न होगा कि नैमित्तिक कार्य होगा दो चार दिन पहिले और निमित्त होगा दो चार दिन बाद। निमित्त और नैमित्तिक दोनो कार्य एक साथ होगे। उपचार करनेकी बात एक समझने और समझानेके क्षेत्रकी बात है। अब

उस दूसरी बातका भी समन्वय करो। जो लोग कहते है कि निमित्त पहिले होता है तब वह निमित्त पूरा तैयार बनकर किसी नैमित्तिक कार्यको करता है। उनकी बात इतनी दृष्टि मे सच है कि जो नैमित्तिक कार्यके समय निमित्त है, जिनका निमित्त पाकर नैमित्तिक कार्य बना है वह पदार्थ अपने सत्त्वमे पहिलेसे ही था, निमित्त था, यह नही कहा जा रहा है पर उसकी सत्ता थी। जैसे पुत्र होनेसे पहिले पुरुषकी सत्ता थी, वह पुरुष था जिसको कि पिता कहा गया। तो यो सत्त्व पहिले था, पर पहिले सत्त्व होनेपर भी निमित्त न था। तो यो निमित्तनैमित्तिक ये दोनो एक साथ होते हैं।

निमित्तनैमित्तिकका कालयौगपद्य होनेपर भी निमित्तनैमित्तिककी भेद व्यवस्था—अब निमित्तनैमित्तककी युगपत्ता सुनकर यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि जब निमित्त और नैमित्तिक एक साथ होते है तो यह व्यवस्था कैसे बनायी जाय कि यह तो निमित्त है और यह नैमित्तिक। जैसे बछडेके दो सीग होते हैं वे दोनो सीग एक साथ पैदा होते है। उनमे क्या कोई यह कह सकता है कि यह सीग कारण है और यह कार्य? दाये सीगने बाये सीग को पैदा किया और बायें सीगने दाये सीगको पैदा किया, क्या यह कहा जा सकता है? नही कहा जा सकता। उसमे कार्य कारण भाव नहीं है क्योकि वे दोनो एक साथ है, यो ही यहाँ भी बताया कि जब निमित्त और नैमित्तिक दोनो एक साथ हो गए तो उनमे एक व्यवस्था कैसे बनायी जाय कि यह पदार्थ तो निमित्त है और यह पदार्थ नैमित्तक है। इसका समाधान यदि कोई कुछ विवेकसे काम ले तो बहुत ही सरल है। जिसमे कार्य हो ऐसा पदार्थ और जिसमे कार्य न हो किन्तु जिसके साथ अन्वयव्यतिरेक रहा ऐसा पदार्थ, ये दो तो भिन्न-भिन्न पदार्थ है ना। तो एक साथ तो कहा नही जा सकता इन दोनोमे। जो निमित्तभूत पदार्थ है उसका तो निमित्तमे रहने वाली आधेयतासे निरूपण होता है और जिसमे कार्य हुआ वह पदार्थ नैमित्तिकमे रहने वाली आधेयतासे निरूपित पदार्थ है। दोनो पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं और है एक साथ। तो एक साथ होने पर भी एक निमित्तनिष्ठ आधेयतासे निरूपित है, एक नैमित्तिकनिष्ठ आधेयतासे निरूपित है। तो यह निमित्त है, यह नैमित्तिक है, यह विवेक हो जाना बिल्कुल सरल है। जैसे दीपक और प्रकाश ये दोनो एक साथ होते है ना? जिस समय दीपक जलाया गया, क्या प्रकाश जलानेके कुछ देर बादमें होगा या प्रकाश पहिले होता है और दीपक पीछे बनता है? दीपक और प्रकाश ये दोनो बाते एक साथ होती हैं, फिर भी कोई भूल करता है क्या कि प्रकाश तो निमित्त है और दीपक नैमित्तिक है? कोई यो कहता है क्या? सभी लोग यही कहते है कि दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। प्रकाश दीपकसे पैदा हुआ, प्रकाशसे दीपक नही पैदा हुआ। बस इस निमित्त और नैमित्तिकके सम्बन्धमे भी यह बात स्पष्ट है। कर्मोदय, कषाय यद्यपि

साथ होते हैं लेकिन यह स्पष्ट विदित है कि कर्म निमित्त कारण है और कषाय नैमित्तिक कारण है और जब कर्मबंध और कषाय इन दोनोके सम्बन्धमे बात कहते हैं तो वहाँ भी यह स्पष्ट विदित है कि कषाय निमित्त है और कर्मबन्ध नैमित्तिक है। इस सब प्रकरणको जानकर हमे यह समझना है कि कषाय नैमित्तिक है, मेरे स्वभाव नही है। उनसे हटकर अनादि अनन्त चैतन्यस्वभावपर दृष्टि जानी चाहिए, जिससे कि जन्म मरण मिटनेका उपाय मिले।

निमित्तनैमित्तिक भावके पहिचानकी एक साधारण विधि—इस प्रसंगमे निमित्त नैमित्तिक भावकी चर्चा चल रही है। निमित्त और नैमित्तिक इन दोनोकी पहिचानका मोटा उपाय क्या है ? दो पदार्थोमे हम यह कैसे झट जान जाये कि यह तो नैमित्तिक भाव है और यह निमित्त बना। उसकी मोटी पहिचान यह है कि जो निमित्त बना है ऐसा निमित्तभूत द्रव्य तो नैमित्तिक भाव बिना भी रह सकता है, पर नैमित्तिक भाव निमित्तकी उपस्थिति के बिना नही रह सकता। इस प्रकरणमे दो प्रकारके क्षेत्रोमे यह निर्णय करते है—एक तो ऐसा कि साक्षात् निमित्त हुए बिना पूर्व समयोमे वह निमित्तभूत पदार्थ रहा और निमित्त न रहा। एक यह कि नैमित्तिक भाव हो सके ऐसी स्थिति भी हो, फिर भी वह निमित्त न बने, एक यह क्षेत्र। जैसे—कर्मोदय निमित्त है जीवके कषायमे।

कर्म निमित्त है, पर उदयसे पहिले कर्म सत्तामे मौजूद है, वह भी पृथ्वी के टुकडेके समान पड़ा हुआ है। उसका कोई प्रभाव नही है। कर्म जब उदयकालमे आता है तब ही वह कषायमे निमित्त होता है और वह कषायका उत्पाद करता है। इससे पहिले कर्म सत्त्वमे बना रहे, उससे इस जीवकी कोई बरबादी नही है। कर्म अगर सत्त्वमे ही सदा बने रहे, उनका उदय न आये तब तो यह बहुत ही बढिया बात हो जाय, मगर यह हो कैसे ? जो कर्म सत्त्वमे हैं वे खिरेंगे, उनका विपाक होगा, उदयकाल आयगा, किसी भी प्रकार खिरेंगे, यह तो अवश्यम्भावी बात है, पर सत्त्व जिस समय रह रहा है उस समय उस सत्त्वके कारण उस जीवको नुक्सान नही पहुचा। जीवकी बरबादी है तो कर्मके विपाककाल मे है। विपाककी परम्परा प्रतिसमय चल ही रही है, तो जो निमित्तभूत बनता है ऐसे कर्म का उदयकालसे पहिले भी सत्त्व है, पर नैमित्तिक भाव नहीं है, एक बात, दूसरी बात यह है कि किन्ही परिस्थितियोमे कर्मका उदय हो और नैमित्तिक भाव न बने, यह भी बात बन जाती है। यह बात कुछ स्थूल दृष्टिसे सोचनी होगी। जैसे कितनी ही प्रकृतियोका उदय, उदयाभावी क्षय बना रहता है और उसका नैमित्तिक भाव बन पाता।

इस समय हम आपके सम्भव है चारो गतियोका भी उदय चल रहा हो लेकिन फल मिल रहा है केवल मनुष्यगतिके उदयका। वे तीन गतियोके उदय निष्फल हो जाते हैं, क्योकि उनका विपाक भोगनेके लायक नोकर्म नही है। भव तो मनुष्यका मिला है, तब

वहाँ नरकगतिके उदयका फल नही मिल सकता। तिर्यञ्च और देवगतिके उदयका फल नही मिल सकता। यह स्थूलदृष्टिकी बात है। सूक्ष्मदृष्टिसे तो उदयकाल एक-समयका है। उस सम्बन्धमे ये तीन गतियाँ नही आ पाती। उससे एक समय पहिले उनका सक्रमण हो जाता है। लेकिन निमित्त तो कहलाया। निमित्तकी बात तो सदा चित्तमे रहती है ना। जैसे यह सब तो निर्णय पडा ही हुआ है कि रोटी बनने के निमित्त साधन आग, चकला, बेलना, आटा आदिक साधन होते है। यदि ऐसा ख्याल न हो तो इस साधनको जुटाये ही क्यो? निमित्तके सम्बन्धमे यह सुविदित रहता है कि अमुक कार्यके होनेमे ये ये पदार्थ निमित्त होते है और निमित्त तो असलमे तब हुए जब कि नैमित्तिक कार्य हो रहा हो, उस कालमे, लेकिन निमित्त कौन होता, कैसे होता, यह सब व्यवस्था पडी हुई है। तो नैमित्तिक कार्यके बिना भी निमित्तका सत्त्व रहता है पर नैमित्तिक कार्य निमित्तकी उपस्थिति बिना हो ही नही सकता। जब जो कुछ भी बात बीत रही है, कषायपरिणमन आदिक उस समय निमित्तकी उपस्थिति है ही। उसके सन्निधान बिना वैभाविक कार्य नही हो सकता। तो निमित्त नैमित्तिकके पहिचानकी एक यह मोटी विधि है।

निमित्तके सन्निधान बिना नैमित्तिक परिणमन न हो सकनेके सम्बन्धमें शंका समाधान—इस प्रसगमे एक जिज्ञासा उठ सकती है कि कही कही तो निमित्तके बिना भी विभावपरिणमन हो जाता है। जिस जीवके कषाय नही है ११ वे, १२ वे १३ वे गुणस्थानमे, लेकिन प्रकृतिबध और प्रदेशबध तो चलते ही रहते है। सातावेदनीय सम्बन्धी प्रकृतिबध और प्रदेशबन्ध होता बताया गया है करणानुयोगमे। फिर यह कहना कि निमित्त के अभावमे नैमित्तिक भाव नही होता। देखो यहाँ कषायके अभावमे भी सातावेदनीयका बध हो गया यह जिज्ञासा उठ सकती है, लेकिन यह जिज्ञासा जब इस प्रसगमे सही ज्ञान किया जाय तो शान्त हो जाती है। सातावेदनीयका जो बध बताया गया है ११ वे १२ वे १३ वें गुणस्थानमे तो वह बंध नही, वस्तुत आस्रव है, और वह आस्रव ईर्यापथ आस्रव कहलाता है। उस ही को प्रकृतिबंध और प्रदेशबधकी अपेक्षा बध कह दिया है। बध चार प्रकारके होते हैं—प्रकृतिबध, प्रदेशबंध, स्थितिबध और अनुभागबध। जैसे जब हम भोजन करते है तो जो भोज्य पदार्थ खाया गया उसमे हमने इतना ही तो प्रयत्न किया कि उसे मुखमे डाल लिया और दाँतोसे चबाकर निगल गए, वह पदार्थ पेटमे चला गया। अब पेटमे भोजन पहुंच जानेके बाद हमारी क्या करतूत चलती है? अरे वह भोजन पेटके अन्दर पहुच गया तो अपने आप ही वहाँ चार तरहके काम होते रहते है उस एक किलो भोजनमे जो कि खाया गया उसमे इतने परिमाणका भोजन तो खून बनेगा, हड्डी, माँस, मल, पसेव आदि बनेगा, ये सब बातें बन रही है। ये बन रही हैं अपने आप प्राकृतिक,

निमित्तनैमित्तिक भावमे और इतने स्कध परमाणु ये 'रस रूप बनकर इतनी देर तक इस शरीरमे टिकेंगे, ये दो ही घंटे रहेगे, पसेव बनकर निकल जायेंगे, ये २४ घटे रहेगे, मल बनकर निकल जायेगे, ये २५ दिन रहेगे, ये खून बनकर रहेगे'। इस तरहसे उन भोजनके घटोमे स्थिति भी पड जाती है और जो रसरूप बनेगे वे स्कध इतने होगे, जो मलरूप बनेंगे वे इतने होगे। यो प्रदेशका, परमाणुओंका भी वहाँ भाग हो जाता है। यह तीसरी बात हुई। चौथी बात यह बन जाती है कि रसरूप बनने वाला यह स्कध इतनी शक्ति रखता है, वीर्यरूप बनने वाला यह स्कध इतनी शक्ति रखता है, वहुत स्कंध हैं, शक्ति कुछ भी हो, मल कितना भी अधिक हो पर उसमे क्या शक्ति? और खून मलसे कम है मगर उसमे शक्ति अधिक है, और वीर्यकी मात्रा वहुत कम है, फिर भी शक्ति सबसे अधिक है। तो जैसे यह चार तरहका बँटवारा हो जाता है इसी तरह बाँधे हुए कर्मोंमें भी चार तरहका बँटवारा हो जाता है। इतने कर्म परमाणु ये ज्ञानको ढकने वाले होगे, ये सुख और दु खके कारण बनेंगे, ये कषाय पैदा करनेके निमित्त बनेंगे, ये अन्तराय डालेंगे, ऐसी उनमे प्रकृति पड जाती है पहिली बात। दूसरी बात, इस प्रकृति वाले परमाणु इतने होगे जो ज्ञानावरण होगे, ज्ञानको ढाकेंगे, उन कर्मोंकी गिनती इतनी होगी, सुख दु ख देने वाले कर्मोकी गिनती इतनी है, यो प्रदेश बँटवारा भी हो जाता है। तीसरी बात यह है कि उनमे स्थिति पड जाती है। ये कर्म, ये प्रकृति, ये कर्मस्कंध इतने दिनो तक जीवमे रहेगे ऐसी स्थिति पड जाती है। और चौथी बात—यह है कि उन प्रकृतिमे उन कर्मोंमे शक्ति पड़ जाती है कि इतनी डिग्रीका इतनी तीव्रतामे अथवा इतनी मदतामे यह अपना फल देगा। यो चार प्रकार के बन्धन होते हैं। उनमे से प्रकृतिबध और प्रदेशबध तो योगसे होते है। आत्माके प्रदेश जो कि हिलते है उस समय कर्मोंमे प्रकृति और प्रदेश उस योगके निमित्तसे होते हैं, और स्थिति और अनुभाग शक्तिका बनना यह कषायसे होता है। तो चूकि ११ वे, १२ वें, १३ वें गुणस्थानमे कषाय नही है तो वहाँ स्थितिबध और अनुभागबध नही होता। प्रकृतिबध और प्रदेशबध होते हैं। उन्हें बंध शब्दसे यो कहा कि जहाँ स्थितिबध और अनुभागबध होता है वहाँ प्रकृतिबंध और प्रदेशबन्ध होता ही है। ऐसा साहचर्य होनेकी वजहसे जहाँ स्थितिबंध और अनुभागबंध नही है वहाँ भी यही नाम ले लेते हैं कि प्रकृतिबध और प्रदेश-बन्ध हुआ। असलमे उसका नाम है आस्रव और ईर्यापथआस्रव। इन निष्कषाय तीन गुण-स्थानोमे मात्र आस्रव है, बध नही है, मगर बधके परिच्छेदोमे करणानुयोग शास्त्रोमे बध शब्दसे कह दिया गया है। उसका भाव यह समझना चाहिए कि केवल एक समयको आया और गया। इस तरहसे ही वहाँ प्रकृतिबध और प्रदेशबन्ध होना है। तात्पर्य यह है कि नैमित्तिक भाव निमित्तकी अनुपस्थितिमे होता नही है। अगर हो जाय तो वह स्वभाव बन

जायगा, विभाव न कहलायगा। इस प्रकार जीव और कर्मके उदाहरणको लेकर निमित्त-नैमित्तिक भावकी व्यवस्था बतायी गई है।

नैमित्तिक भावके लिये नियत जातिके निमित्त होनेके नियमका कारण—इस प्रसंग मे अब यहाँ एक जिज्ञासा बन जाती है कि जीवका जो विभावपरिणमन होता है, कषाय-भाव होता है उनमे निमित्त कर्मका उदय होता है और अन्य परमाणु नही होते। इसका कारण क्या है ? दुनियामे पुद्गलोका इतना ढेर पडा हुआ है, शरीर भी है, ये तो निमित्त होते नही कषायमे और कर्मोके उदय कषायभावमे निमित्त होते हैं। इसका कारण क्या है ? इसका कारण स्पष्ट है कि कर्म भी एक ऐसा विशिष्ट अनुभाग शक्ति रखते हैं कि वे ही जीवके विभावमे निमित्त बन पाते हैं, शरीरके परमाणु नही। और भी अनेक पुद्गलका ढेर है, वह भी नही बन पाता। केवल जीवके साथ बँधे हुए वे कर्म ही कषायके निमित्त बन पाते हैं। प्रतिनियत ही कोई निमित्त होता है, इसके उदाहरण तो लाखो करोडो मिलेंगे। जलके गर्म होनेमे आताप ही निमित्त होता है। क्यो जी ठड क्यो न निमित्त रह जाये ? भाई ऐसी ही शक्ति वाला, ऐसे ही रूप, रस, गध स्पर्श वाला, ऐसी ही योग्यता वाला निमित्तनैमित्तिक बन पाता है अन्य नही। यह बात तो यहा अनेक उदाहरणोमे मिल जाती है। तो यो ही समझिये कि विशिष्ट अनुभागशक्ति वाले कर्म जीवके विभावमे कषायमे निमित्त होते है, अन्य परमाणु निमित्त नही होते। इस प्रकरणमे बहुत पहिले एक अभिमत कुछ लोगोने बताया था कि कुछ लोग ऐसा मानने लगते हैं कि जब जीवमे कषाय भाव जगता है उस समय किसीमे निमित्तका व्यपदेश किया जाता है तो जब व्यपदेश नैमित्तिक भाव होने के पश्चात् किया जाता है तो उसको पहिलेसे कैसे निमित्त समझाया जाय कि यह कर्म इसका निमित्त है। उत्तर भी उसी प्रकरणमे सक्षेपमे दे दिया था कि व्यपदेश उपचार कथन नैमित्तिकभाव समझनेके बाद हुआ, किन्तु निमित्तपना नैमित्तिक भाव होनेके बाद आया सो बात नही। निमित्तपना नैमित्तिक भावके साथ हुआ।

निमित्तभूत पदार्थका अपनी स्वतन्त्रतासे सद्भाव—देखिये—सिद्धान्त-शास्त्रोमें भी स्पष्ट कथन है कि आज कषायकी, जिस समयकी उसी समय कर्मका बन्ध हुआ और उसी समय प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग, इन चारोका विभाग भी तुरन्त हो गया, तो प्रकृतिबंधके मायने यही तो है कि ये कर्म इस इस प्रकारके कार्यके होनेमे निमित्त होगे। ज्ञानावरण कर्म जीवके ज्ञानको ढाकनेका कारण बनेगा।

तो देखिये—निमित्तका निर्णय पहिले हो गया ना। अब चाहे आगे ऐसी भी परिस्थिति आ सके कि तपश्चरण, ज्ञान वैराग्यके बलसे उन कर्मोको उदयकालसे पहिले ही खिरा दे तो वह उस समयके निमित्तनैमित्तिक भाव वाली बात होगी। तो जब यह

क्रोध प्रकृति उदयकालमे आती है तो जीवमे क्रोधकषाय जगती है। तो क्रोध कषाय होनेके समयमे ही क्रोध प्रकृति निमित्त बनी हुई है। अब हमने समझा कि अरे क्रोध प्रकृतिका उदय आया तब क्रोध जगा। नैमित्तिक भाव जगनेपर निमित्तका अनुमान किया गया। जैसे किसी पहाडसे धुवा निकल रहा है और उस धुवाको देखकर हम अग्निका ज्ञान कर रहे। अग्नि निमित्त है, धुवा नैमित्तिक है। अग्निसे धुवा उत्पन्न हुआ यो समझ लीजिए। अथवा उस अग्निके कुछ हिस्से उपादान ही तो है जो धुवा रूप परिणाम रहे हैं। अग्नि कारण है और धुवा कार्य है। वहाँ कार्य जाननेके बाद हमे कारणका ज्ञान हुआ। धुवाँके परिचयके बाद वहाँ अग्नि है इतना ज्ञान हुआ, पर इसके मायने यह तो न हो जायगा कि धुवा होने के बाद अग्निका सत्त्व हुआ। वह तो समान कालमे है, पहिलेसे भी है। तो व्यपदेश हुआ, उसकी समझ बनना और बात है, निमित्त होना अन्य बात है। ऐसी ही बात इन कर्मोदय और कषायोकी भी समझना चाहिए कि कषाय जगनेपर हमने यह ज्ञान किया कि इसके ऐसी क्रोध कषायका उदय है, इस कर्मका उदय है। तो यह केवल एक समझ ही तो बनी। व्यपदेश हुआ, विचार हुआ। लेकिन इसके मायने यह नही हैं कि कषाय जगनेके बाद वह क्रोधप्रकृति उदयमे आये ही। वह तो उसके समानकालमे ही है। तो इन चर्चाओ मे निमित्तनैमित्तिक भावके विषयमे यह निर्णय करके रख लेना कि निमित्त नैमित्तिक भाव यह ऐसा सुनिश्चित है कि यह जीव कर्मोदयरूप निमित्तके सन्निधानमे ही कषाय आदिक भाव कर रहा है, उनकी अनुपस्थितिमे जीवके कषायादिक नही होते। इसका कारण यह है कि कर्ममे ऐसे ही निमित्तपने की शक्ति है, इस तरह कह लीजिए अथवा यो कह लीजिए कि इस जीवमे, उपादानमे इस तरहकी ही शक्ति है कि यह अमुक अमुक प्रकारके निमित्तको पाकर स्वय कषायरूप परिणमता है।

अनुकूल निमित्तके सन्निधानमें उपादानमें अपना प्रभाव बनानेकी क्षमता—भैया! शब्दोसे कुछ कह लीजिए, ज्ञानी पुरुष अर्थ एक समझेगा। जो बात यथार्थ है वही उसके परिचयमे होगी। शब्दोसे चाहे किसी पद्धतिसे कह लो। वह तो कहनेका ढग है जल्दी समझानेका, देरसे बता सकनेका, ये जुदी-जुदी विधियाँ है, पर बात सबमे वह एक ही है जिस बातको ठीक तरहसे किसीने समझा हो। जैसे कोई पुरुष यह कहता है कि मेरे शिरमे दर्द है तो ऐसा कहकर भी ज्ञानी पुरुष बात सही समझ रहा है। और कोई यो कहे कि शिर की नसोमे कुछ खून रुक गया है, जिसके निमित्तसे शिरमे इस तरहकी अवस्था बनी है और उसका निमित्त पाकर जीवमे वेदना हो रही है। बात दोनोमे कही गई एक ही, और ज्ञानी ने वही बात समझा, मगर एक कथन जरा देरसे कहने और समझानेका है और एक कथन सीधा जल्दी बता देनेका है। अब सीधा जल्दी बता देनेका जो कथन है उसका अर्थ कोई

दूसरा भी लगा सकता है, क्योकि वह संक्षिप्त भाषा है और जो देरसे कथन करनेकी पद्धति है वह जरा स्पष्ट परिभाषा है। उसमे अर्थ दूसरा नही कर पाता। अन्तर यही तो है, पर ज्ञानी पुरुष उन दोनोमे बात उस एकको ही समझता है जो यथार्थ बात है। यथार्थता यही है। जैसे अध्यात्मसूत्रमे एक सूत्रमे कहा है "निमित्त प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत्" निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला बनता है।

निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसङ्गमें भी दोनोंके स्वातन्त्र्य—निमित्त उपादान तथा निमित्तनैमित्तिक भावके सम्बन्धमे वर्णन चल रहा है कि निमित्त कैसा होता है, इस सम्बन्धमे व्यावहारिक बातें अधिक हुआ करती है; पर व्यावहारिक बातोमे ही अधिक लगे हुए मनुष्योको वस्तुस्वरूप भी यों जंचने लगता है कि एक पदार्थ दूसरेका कर्ता ही तो है और युक्तियाँ यो मिलने लगती है कि देखो यह निमित्त न होता तो यह कैसे हो जाता, इसी बल पर इस सम्बन्धमें अनेक बाते कही जाती हैं कि निमित्त सहाय होता है; निमित्त प्रेरणा करता है, निमित्त मित्रताका काम करता है। यो अनेक बाते होती है। उससे तो यह सिद्ध होता है कि निमित्तकी बरजोरी बहुत कुछ सिद्ध है। मानो यज्ञदत्तने हाथ पकड कर कही किसी कार्यमे जुटा दिया, या कुम्हारने मिट्टीको दबा दबाकर घडा बना दिया, तो यो लगता है कि देखो निमित्तकी बडी बरजोरी है। जब कोई दो पहलवान कुश्ती करते हैं तो एक पहलवान दूसरे पहलवानको कितना दबाता है, जोर लगता है, तो इन बातोसे यह बात विदित होती है कि निमित्तकी बडी बरजोरी है किसी कार्यको करनेमे, ऐसे अनेक तरहके विचार उत्पन्न होते है, उन सबके समाधानमें इतनी बात समझना है कि जिस पदार्थ का जितना जो कुछ सत्त्व है उस प्रदेशके उतने ही प्रदेशमे उसका ही कार्य बनता है, उससे बाहर कुछ आदान प्रदान नही होता। यह बात तो वस्तुस्वरूपकी है। इतना दृष्टिमे आने पर फिर सब निर्णय हो जाता है कि निमित्त किसी अन्य पदार्थमे कुछ करता है अथवा नही।

निमित्तकर्तृत्वप्रतिपादक वचनोंका प्रयोजन निमित्तकी विशिष्ट परिस्थितिका परिचय—जो कुछ निमित्तके बारेमें अनेक बातें कही जाती है वह निमित्तकी विशिष्ट परिस्थितिका प्रतिपादन है। जैसे कहा गया कि कुम्हारने मिट्टीके लोधेको पकडकर घडा बनाया तो यह कुम्हारकी उस विशिष्ट परिस्थितिका परिज्ञान है। ऐसी-ऐसी क्रियाओमे परिणत कुम्हार, ऐसी-ऐसी जातिका व्यापार करने वाला कुम्हार घडेके निष्पादनमे निमित्त है, तो निमित्तकी कैसी परिस्थतियाँ है उनका परिज्ञान है इन वाक्योमे, न कि निमित्तने अपनी कुछ परिणति प्रेरणा असर गुण कुछ भी उपादानमे डाला। अत यह सिद्ध न करना कि कुम्हार अपना गुणपर्याय मेहनत विचार कुछ भी घडेमे डाल देता है। वह तो एक निमित्तकी विशिष्ट पर

स्थितिका ज्ञान है, कुम्भकारकी ओरसे देख रहे हैं तो यो लग रहा है कि घडा बननेमे कुम्हार का व्यापार निमित्त है, और जरा मिट्टीकी ओरसे भी देखिये कि कुम्हारके ऐसे व्यापार होने का निमित्त वह घडा है, वह मिट्टी है। यदि कुम्हार मिट्टी चाक आदिकका आश्रय किए विना किसी भी जगह किसी तरहका हाथ करे तो लोग यह कह देंगे कि इसका दिमाग कुछ चल गया है। कुम्हारका हाथ व्यापार उस ढगसे जो चल रहा है तो वह है नैमित्तिक और वह मिट्टीका आश्रय जो किया वह है निमित्त। तो निमित्तनैमित्तिक भाव तो प्रति क्रियामे परस्पर लगाया जा सकता है। तो निमित्तके सम्बधमे जो कुछ विशेष वाते कही जाती हैं, प्रेरणाकी, मित्रताकी, असरकी, वे सब निमित्तकी विशिष्ट परिस्थितिका ज्ञान कराने वाली है, न कि निमित्त कुछ उपादानमे गुणपर्याय दे देता है।

उपादानभूत वस्तुके स्वरूपपर दृष्टि देनेसे निमित्तोंके निमित्तत्वकी औपचारिकताका परिचय—जब उपादानकी विशेषतापर दृष्टि दें और वस्तुका स्वरूप उस ही वस्तुके स्वरूपमे परिसमाप्त होता है, इस निर्णयपर उपयोग रखें तो सर्वत्र यह विदित होगा कि निमित्त उदासीन कारण हुआ करता है। कोई भी निमित्त प्रेरक नही होता। कौनसा उपादान किस प्रकारकी स्थिति सम्पन्न वस्तुको निमित्त पाकर परिणमा, उस क्रियासम्पन्न निमित्तमे प्रेरणा जैसा बोध होने लगता है। मिट्टीसे घडा बननेमे किस शक्ति और क्रिया वाला कुम्हार निमित्त होता है ? इस बातका बोध करानेके लिए प्रेरणा वाली बात कही जाती है कि कुम्हारने उस मिट्टीको दबाकर घडा बना दिया। केवल सत्त्वको निरखा जाय तो इतने क्रियावान कुम्हारके बीच भी मिट्टीमे जो घडारूप परिणमन है वह केवल मिट्टीमे मिट्टीकी परिणतिसे ही है। उस समय एक विशिष्ट परिस्थिति वाला कुम्हार निमित्त हुआ। हाँ जब उस निमित्तकी स्थितिपर दृष्टि रखकर देखा जाता तो कई निमित्त प्रेरक प्रतीत होते हैं। इस प्रेरकताके कथनका भी तात्पर्य यह लेना कि अपनी ही क्रियाका परिणमन करते हुए ऐसे निमित्त उपादानकी सन्निधिमे है, बहुत शक्तिका कार्य करने वाला निमित्त है तब उपादानमे नैमित्तक भाव हो रहा है। इतना सम्बधभर जाननेपर निमित्तकी प्रेरकताका यह अर्थ नही लेना कि उपादान नही परिणम रहा और निमित्त परिणमा रहा है, यह बात नही है। तो जितने ये भेद पडे हैं। निमित्तके, वे निमित्तकी विशिष्ट परिस्थितियोके कारण पडे हैं।

तब कह सकते है कि कोई प्रेरकनिमित्त, कारकनिमित्त, साधक निमित्त, प्रतिबधकनिमित्त, उत्तम्भकनिमित्त, ज्ञायकनिमित्त और उदासीननिमित्त, विषयरूप निमित्त, सयोगरूप निमित्त और वियोगरूप, यो अनेक प्रकारके निमित्त होते हैं। उस कार्यके बीच निर्णय केवल एक ही है कि विशिष्ट योग्यता वाला पदार्थ अपनी योग्यतासे अनुकूल अन्य पदार्थको निमित्त मात्र पाकर परिणम जाता है। यह सिद्धान्त इन सभी प्रकारके निमित्तोके बीच है, इनसे कही बाधा नही आती, पर निमित्तकी विशिष्ट परिस्थितियाँ देखने

से निमित्त अनेक प्रकारके नजर आते है ।

प्रेरक निमित्तके प्रसंगमें भी उपादानमें निमित्तकी अकिञ्चित्करताका परिचय--देखिये प्रेरक निमित्त क्या ? जिस नैमित्तिक क्रियामे क्रियारूप परिणत हुआ पदार्थ जो निमित्त पडा है, उसको निमित्त मात्र पाकर उपादानमे अपनेमे अपनी क्रिया बन रही है, उसे प्रेरकनिमित्त कहते है, प्रेरकनिमित्तके बारेमे इससे बढकर और क्या दृष्टान्त दिया जायगा ? जैसे अग्निने पानीको गर्म कर दिया । पानीमे खूब खलबली मचा दिया अग्निने, ऐसा प्रतीत होता है, अथवा कुम्हारने उस मिट्टीके लोधेको पसारकर घडा बनाया या किसी पुरुषने किसीका हाथ पकडकर खीच लिया, उस जगहसे हटा दिया, इतनी प्रेरणा वाली घटनाके बीच भी सिद्धान्त एक ही है, बडो तेज क्रियामे परिणत पुरुष निमित्त है एकके हट जानेमे । कोस, कुशूल, पर्यायसे घट बन जानेमे निमित्त है एक बडी तेज शक्तिसे अपनेमे ही अपनी क्रिया करने वाला कुम्हार । तो कुम्हारने जो श्रम किया वह कुम्हारने अपनेमे, अपने मे से श्रम किया । इतना तेज श्रम करने वाला कुम्हार घडेकी निष्पत्तिमे निमित्त है ऐसी बात बतानेका सुगम तरीका प्रेरकनिमित्त कहकर बताता है । परमार्थतः किसी भी अन्य वस्तुका असर पर्याय गुण शक्ति किसी अन्यमे नही पहुंचती । वस्तुकी स्वतंत्रताके जान लेने का एक अद्भुत प्रभाव है, चमत्कार है, ऐसा वह जानने वालेमे उत्पन्न होता है ।

विडम्बना मेटनेका उपाय वस्तुस्वातन्त्र्यपरिचय--ससारमे सबसे महान क्लेश विडम्बना विपदा है मोहकी । जीव सब स्वतत्र हैं, अमूर्त ज्ञानमात्र है । जीवके स्वरूप पर दृष्टि देने पर विदित होगा कि किसी जीवका बाहरमे कही कुछ नही है । यह सबसे निराला अमूर्त रूप रस गध स्पर्शसे रहित है, केवल ज्ञानानन्द स्वरूपमे रत । ऐसा यह मैं आत्मा हूं । इस आत्माका बाहरमे कौन है ? प्रेरकनिमित्तका एक उदाहरण आया ही था । देखो-यहाँ ये दो बुढिया बात कर रही थी, उसपर हम क्षोभ कर रहे, क्षोभ करनेका उद्देश्य बुढिया से विरोध न था किन्तु कोई बात इष्ट लग रही, यह स्वतत्रताकी चर्चा, वस्तुस्वरूपका कथन जो एक हितके लिए आवश्यक है, वह इष्ट जंच रहा, उस इष्टमे कुछ बाधा समझमे आयी, कुछ क्षोभमे आये तो इस क्षोभमे भी प्रेरणा बुढियाने नही की, किन्तु इस प्रकारकी क्रियामे परिणत वह बुढिया क्षोभमें नही हुई, बस इतनी भर बात प्रेरक विषयमे समझने की है । और इस विषयको समझकर फिर यह सर्वत्र विदित होगा कि कोई भी निमित्त उस उपादानमें कुछ प्रेरणा नहीं करता, किन्तु इस निमित्त स्वरूप अपने आपमे प्रेरित है और ऐसा प्रेरित निमित्त किसी विभाव क्रियामे निमित्त कारण पड़ता है, इतनी भर बात समझ लेना है । अब ध्यानमे आया होगा कि घर गृहस्थीमे रहने वाले लोग जो एक दूसरेके प्रेरक हैं, ऐसा जो दिखता है उसमें केवल इतनी ही सारकी बात है कि अपने-अपने स्वार्थके लिए

अपनी-अपनी चेष्टा करने वाले इन मोही जीवोने, जिन्होने अपने विषयके साधन, अपने सुखकी वात उनके निमित्तसे मान रखी है, यह प्रेरित हो जाता है अर्थात् अपनी मोह राग-द्वेष परिणतसे परिणत हो जाता है। वास्तविक सम्बन्ध कुछ नही है। स्वरूपमे जैसे आप तैसे हम। हमसे सम्बधित वातोमे आपको राग नही जग रहा, आपसे सम्बंधित वातोमे हमको राग नही जग रहा और वे दोनो वातें विल्कुल भिन्न है, जैसे हमसे भिन्न हैं वैसे ही आपसे भिन्न है। फिर न आपका यहाँ कुछ है, न हमारा कुछ है। अमूर्त ज्ञानमात्र अपने आपका स्वरूप है। इस स्वरूपका जिसने परिचय किया, अनुभव किया वह तो ससार सकटोसे पार हो जाता है और इस ही स्वरूपसे जो अनभिज्ञ रहे मोही मूढ रहकर ससार मे जन्म मरणकी परम्परा बढाते रहते है। जैसे पूर्वजन्मके प्रसग कुछ दिन रहकर खतम हुए। आज तो नही है इसी प्रकार इस जन्मके भी ये प्रसग कुछ दिनको रहकर ये भी वियुक्त हो जायेगे, रहेगे नही, लेकिन इस मोहीकी धुन तो एक ही सव भवोमे है, जो मिला उसे ही अपना माना है। इसकी यह टेक किसी भवमे नही मिटी और यही कारण है कि समागम तो मिटते गए मगर इसके जन्म मरणकी परम्परा न मिटी। इस मोहको दूर करनेमे ही कल्याण मिलेगा। कल्याणका अन्य कोई उपाय नही है।

मोहविध्वंसक औषधि——मोहको दूर करनेकी यह खास औषधि है कि प्रत्येक सत् पदार्थकी स्वतत्रताकी परख कर लें, इससे ही मोह दूर होगा। वाकी और जो उपाय किए जायेगे वे औषधियाँ नही है, वे दवा है, मोहको दबा देंगे पर मिटा न सकेंगे। थोडी देर को राग दूर कर लिया। यो तो घरमे मन न मिलनेपर या प्रतिकूल होनेपर घरका भाई भी कह देता है कि इससे तो अच्छे गैर लोग हैं, हमारा तो इसमे राग रहा ही नही। पति-पत्नी के बीच भी कोई विवाद ऐसा उत्पन्न हो जाय तो एक दूसरेके प्रति कह देते हैं कि हमारा तो रच भी राग इसमे नही रहा। अब हमारे जरा भी इससे स्नेह नही रहा। तो क्या यह बात उनकी सत्य है? स्नेह नही रहा, यह बात तो नही है पर स्नेह दब गया। ऐसी प्रतिकूल घटनाये आयी कि रागकी जगह द्वेष आ गया। उस द्वेषने रागपरिणतिको दबा दिया, एक जीवमे जब द्वेष जग रहा तो राग कहाँसे आया?

यो राग मिटनेसे कोई वैरागी हो गया क्या? जो सम्यग्ज्ञानपूर्वक रागका मिटना है वह है वैराग्य वाली बात। ऐसा सम्यग्ज्ञान, वस्तुकी स्वतत्रताका परिज्ञान करे। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यके कारण ऐसे ही शीलस्वभावके कारण निरन्तर परिणमता रहता है। जो जहाँ जिस प्रकार परिणमना है, होता है। किसी भी पदार्थमे यह हठ नही पडी है कि मुझे इसके बाद इस तरहका परिणमन करना है। हो रहा है यद्यपि ऐसा ही कि अनन्त परिणतियाँ है और वे क्रमश परिणत हो जाती हैं, लेकिन हठ किसीका कुछ नही है। हठ केवल शुद्ध पदार्थमे है, सो उसमे हठ क्या करे, वहाँ निर-

न्तर सदृश परिणमन होता रहेगा, वहाँ दूसरे प्रकारका परिणमन नहो। विभावपरिणमन मे उपादान अपनी योग्यतानुसार अनुकूल निमित्तको पाकर उस प्रकारसे परिणम जाते है। इस स्थितिमे भी निमित्त स्वतत्र है और उसने अपने आपमे अपने ही उत्पादव्ययका काम किया। उपादान स्वतंत्र है, उस समय भी उपादानने अपने आपमें अपने ही परिणमनका कार्य किया। यो किसी पदार्थका कोई दूसरा पदार्थ स्वामी नही, अधिकारी नही। ऐसे हम आप जो जीव है, जो कि अमूर्त ज्ञानमात्र विलक्षण परम अनुपम आनन्दस्वरूप जो सत् पदार्थ है सो अपनेमे अपना ही निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। इसका कोई भी अन्य पदार्थ कुछ नही लगता। मोहके वश हुआ यह जीव परपदार्थोंसे मोह करता है। इस जीव की ऐसी टेक पड गई है कि जो भी जीव अपने घरमे पैदा हो गए अथवा कही बाहरसे आये उन्हे अपना मान लेता है। कदाचित् उन घरके चार जीवोकी जगह कोई और ही जीव आ गए होते तो उनसे मोह करने लगता। ऐसा भी होता है कि जिनसे यह जीव राग करता है वे कहो उससे बिल्कुल राग न करते हो, याने वे सब तो इससे हटना चाहते हैं लेकिन यह पुरुष राग करता है; तो बताओ—यह इकतरफा राग है कि नही ? है। तो ऐसे ही समझिये कि अगर कोई दूसरा मनुष्य चाह रहा हो और उसे यह मित्र भी चाहता हो तो वहाँ भी उन दोनोका इकतरफा राग है, परस्पर नही, क्योकि सभी जीव अपने आपमे अपने भावके अनुसार अपनेमे कषाय परिणमन किया करते है। कोई किसी अन्यके प्रयोजनके लिए नही करता। तो प्रेरक निमित्तका भी जहाँ कथन आ रहा हो वहा पर केवल यह बात जाननी है कि इस कार्यमे इस इस प्रकारकी क्रियामे वह पदार्थ निमित्त हुआ है, न कि उस पदार्थने अपनेमे से कोई द्रव्यगुण पर्याय निकालकर दूसरे पदार्थको किया।

कारक निमित्तके प्रसङ्गमें भी उपादानमें निमित्तकी अकिञ्चित्करताका परिचय—जैसी बात प्रेरकनिमित्तमे है वही बात कारकनिमित्तमें भी। जिस अनुकूल विकार परिणत पदार्थको निमित्त करके उपादान अपना विकार बनाता है उसे कारकनिमित्त कहते है। कहते हैं ना कि क्रोध प्रकृति ने जीवको क्रोधी कर दिया, लोभप्रकृतिने जीवको लोभी कर दिया। वहां उस प्रकृतिने अपनी परिणतसे इस ज्ञानानन्द स्वभाव वाले जीवको क्रोधी लोभी किया हो सो बात नहीं, किन्तु इस प्रकारकी चारित्र योग्यता रखने वाला यह जीव उस क्रोध लोभ प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर यह अपनी परिणतिसे क्रोधी लोभी हुआ। इस कारकनिमित्तमे इतनी बात ज्ञानमे आयी कि जो निमित्त पडा वह स्वय विकारी है। विकृतपदार्थ अमुक विकारमे निमित्त पड़ा, इतनी बात जाननेके लिए कारकनिमित्तकी बात कही जाती है। तो प्रेरकनिमित्त हुआ अथवा कारकनिमित्त हुआ सभीके। वस्तुस्वरूपपर दृष्टि देनेसे विदित होगा कि सभी उपादानोसे बाहर ही बाहर रहे इसलिए वे उदासी—

हुए। यो वस्तुकी स्वतन्त्रताका ज्ञान करने वाला व्यक्ति परवस्तुओमे मोहित नही होता है और उमे अपने कल्याणका मार्ग मिलता है। लोकमे विकाररूप परिणमन एक दूसरेका निमित्त पाकर हो रहे है। इस प्रसंगको जब लोग निमित्तकी प्रधानतासे देखते है तब उनकी यह परिभाषा बनती है कि देखो इसने बाधा डाल दिया, इसने इसको सिद्ध कर लिया, इस को बद किया, इसपर प्रेरणा की आदिक अनेक शब्दोमे कह लेते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि वे सब निमित्त इन शब्दोसे चाहे कहा जाय लेकिन निमित्तका द्रव्य, गुण, पर्याय, असर, प्रभाव कुछ भी उपादानमे नही पहुचता। निमित्तको निमितमात्र पाकर उपादान अपनेमे प्रभाव उत्पन्न करता है, तो इस घटनाका, निमित्तका प्रभाव, इस शब्दसे कहा करते है और ऐसा ही कहनेमें एक सुगमता है और सक्षिप्तता है।

साधक निमित्तके प्रसङ्गमें भी उपादानमें निमित्तकी अकिञ्चित्करता—कुछ निमित्त होते है साधक, जिनका निमित्तमात्र पाकर उपादान अपने गुणोका उत्कर्ष सिद्ध कर ले उसे साधकनिमित्त कहते है। जैसे मूर्तिदर्शन, सत्सग आदिक कारणको साधकनिमित्त ही तो कहा करते है। ये सब साधक कारण है। प्रभुके दर्शन करे, मदिरमें पूजन करे, ये सब अपने उत्कर्षके साधन है, वस्तुत ये सब निमित्त उत्कर्षके करने वाले नही हैं, पर जो जीव जिस योग्यता वाला होता है अपनी योग्यतानुसार प्रभुदर्शन करके जो अपना भाव भरता है, भक्तिपूर्ण बनाता है उसमे आश्रय क्या पडा ? वह मूर्ति। अतएव वह मूर्तिदर्शन साधक-निमित्त कहलाता है। किन्ही शब्दोमे कहा जाय। जो तथ्य बात है वह दृष्टिमें रहनी चाहिए। यो तो प्रभुभक्तिमें पद्धति ही ऐसी है कि प्रभुका सामर्थ्य बताना और अपने उत्थानमें साधक आश्रय निमित्त हुए हैं तो उनको केवल साधकनिमित्त, आश्रयनिमित्त इतना न कहकर उनको ही अपना सर्वस्व कहना यह भक्तिकी पद्धति है। भक्तिके समय तत्त्वज्ञानकी बारीक बातें न प्रयोगमें लाना चाहिए अन्यथा उस भक्तिमें कमी आ जायगी। जैसे प्रभुके सामने ही कोई दर्शन करे और वहाँ तत्त्वज्ञानकी बात झाडे कि हे प्रभो! आप मेरा कुछ नही करते, मैं ही आपका निमित्त पाकर अपनेमे भाव बनाऊँ, अपना उत्कर्ष करूँ तो आप मेरे लिए निमित्त कहलाते है। तो यह भी कोई भक्तिकी पद्धति है क्या ? तत्त्वज्ञान सही है लेकिन भक्तिके प्रसंगमें तत्त्वज्ञानकी सूक्ष्मता नही आया करती है। उस समय निमित्त की प्रधानतासे ही कथन होता है, पर तत्त्वज्ञानी उसका अर्थ बोलकर ही समझता है। भक्तिमें वह ऐसा कह देता कि हे प्रभो! आपने अजन जैसे चोरको तारा, हमे भी तार दो, इतने पर भी वह तत्त्वज्ञानी पुरुष जानता है कि उस अजन चोरने स्वय ही अपने आपमें ज्ञानबल पैदा करके, भक्तिबल बढाकर, प्रभुका आश्रय लेकर अपनेमें उत्कर्ष किया, पर तत्त्वज्ञानका प्रसग तो ध्यान मननमें है और गुणानुरागमें, भक्तिमे भक्तिका ही प्रसग है। तो साधकनिमित्त अनेक

होते हैं आत्मोत्कर्षकी स्थितिमे, फिर भी यह बात ओझल न रखना कि उपादान अपनी ही शक्तिसे, अपनी ही परिणतिसे अपने आपमे अपना ही उत्पाद कर रहा है। वहाँ बाह्य निमित्त मात्र है। इस वर्णनमे यह सर्वत्र दृष्टि करते जायें कि देखो—पदार्थके उत्पादकी कितनी स्वतंत्रता है? आखिर पदार्थ है ना, तो है के साथ ही उसकी स्वतन्त्रता भी लगी है। बस यहाँ लोग उसकी स्वतंत्रताको भूलकर ही तो लोग दुखी हो रहे है। इसके मायने यह नही कि आजादी स्वच्छन्दता होनेसे सुखी हो जायेंगे।

हम आजादी और स्वच्छन्दताकी बात नही कह रहे, हम पारमार्थिक आजादीकी बात कह रहे है, जिससे मोह हटता है। उस स्वतंत्रताकी पहिचान यह है कि यहाँ मोह नही रहता। जहाँ मोहभाव हो और फिर अपनी आजादी माने तो वह स्वच्छन्दता है, स्वतत्रता नही है। वास्तविक स्वतंत्रता तो मोहके परित्यागमे ही होती है। तो वस्तुस्वातत्र्य जाननेसे मोह मिटता है, यह स्पष्ट बात है। जब यह समझमे आ जाय कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपका ही मालिक है, अपने आपकी ही दशाका करने वाला है, अपनी ही स्थिति रूप परिणमता है, उसका सर्वस्व उसका स्वय खुद है, उससे बाहर उसका कुछ नही। यही बात मेरी है, मेरा स्वरूप एक विशुद्ध चैतन्यमात्र है। केवल एक चित्प्रकाश, जिसका पहिचाननहार, जाननहार भी कोई नही, जिसका सम्बधी कोई नही है। ऐसे उस चित्प्रकाशमय आत्माका, इस जगतमे कहाँ क्या है? कौन मेरा उत्कर्ष साधन है, कौन मेरा बिगाड करने वाला है? सर्व पदार्थ अपने आपमे अपना उत्पादव्यय ध्रौव्य अनादिसे करते आये हैं और अनन्तकाल तक करते चले जायेंगे।

मोहवश ही भिन्नमें आत्मीयताकी कल्पना—यह जीव मोहमे पागल बनकर अपने मे सम्बध घटित करता रहता है। जैसे कोई पागल लडका किसी कुवेके निकट बैठा हो और वहाँ कोई मुसाफिर मोटरमे, कोई साइकिलमे, कोई ताँगा, रिक्शा आदिमे आते है, और थोडी देरको पानी पीनेके लिए उस जगह वे रुक जाते हैं। बादमे पानी पीकर वे अपने निर्दिष्ट स्थान चले जाते है। उनके चले जानेपर वह पागल लडका रोता है, अपना शिर धुनता है— हाय! मेरी मोटर चली गई, मेरे रिक्शा, ताँगा, साइकिल आदि चले गए। इसी तरह जो समागम मिले घर द्वार, कुटुम्ब, मित्र, धन वैभव आदिक ये हमारे रचमात्र भी नही है। अज्ञान अधेरेमे मोहमे जो कुछ बक रहे हैं सो बकें, लेकिन इस चित्प्रकाशमात्र आत्माका ये कुछ वैभव नही हैं, ये पुण्योदयके अनुसार अपनी परिणतिसे यहाँ हैं और फिर चले जायेंगे। चले जायेंगे, इसमे तो कुछ शक नही है। चले जानेपर यह जीव रोता है— हाय! मेरा सब कुछ गया। तो यह सब मोहकी विडम्बना है। उस मोहका विनाश होगा वस्तुस्वरूपके परिज्ञानसे। उसीके लिए यह सब चर्चा चल रही है।

यह बात अपने हितके लिए विशेष साधक है। उसकी ओर उसके परिज्ञानकी ओर उत्साह न जगना, यही तो एक मोहकी निशानी है। और संसारमें अगर बहुतसे लोगोंकी वोटोंका निर्णय करें तो मिथ्या निर्णय बनेगा कि सच्चा? जब सभी जीव मोही हैं, विपरीत हैं, दुःखी हैं, अज्ञानी हैं तो इनका कोई प्रवर्तन देखकर, इनकी बहुतायता देखकर किसी कामका जो निर्णय कर लेवे अपने हितके लिए, तो यह तो अनर्थका कारण है। एक भी ज्ञानीका अगर प्रसाद मिल गया तो उसे सब कुछ प्राप्त हुआ समझिये और हजारों अज्ञानियोंसे अगर कोई प्रशंसा भी मिल गई तो उससे कोई आत्माका उत्कर्ष नहीं। उत्कर्ष तो एक ज्ञानी द्वारा प्रशंसा किए जानेपर भी नहीं है, मगर वहाँ तो यह सम्भव है कि कोई वास्तविक मार्गके लिए बात कह रहे हैं। तो आत्माके उत्कर्षके लिए अनेक निमित्त साधक निमित्त हैं, लेकिन वहाँ भी निमित्तमें निमित्तका ही परिणमन है, उपादानमें उपादानका ही परिणमन है। प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पादव्ययस्वभावके कारण प्रतिसमय उत्पन्न होते हैं और विलीन होते हैं।

प्रतिबन्धक निमित्तके प्रसङ्गमें भी उपादानमें निमित्तकी अकिञ्चित्करता—एक होता है प्रतिबंधक निमित्त। किसी कार्यमें प्रतिबन्ध आ जाय, जिसको निमित्त पाकर किसी कार्यमें प्रतिबन्ध आ जाय, जिसका अभाव होनेपर उपादानमें विशिष्ट कार्य बने, उसे प्रतिबन्धक निमित्त कहते हैं। जैसे नौसादर और चूनेका लेप अग्निके कार्यको रोक देता है। अग्नि तो जलानेके लिए तैयार है, मगर किसी पत्तेका बर्तन बनाया और उस पत्तेकी पीठपर खूब लेप कर दिया उस औषधिका तो उस पत्तेके बर्तनमें पानी भरकर दाल भी पकायी जा सकती है। आगमें वह पत्तेका बर्तन जलेगा नहीं। बहुतसे लोग तो हाथमें कोई चीज लगा लेते और वे बहुत तेज गर्म साँकल हाथोंमें पकड़ लेनेका काम दिखाते हैं, पर वे जलते नहीं हैं। तो वहाँ यदि प्रतिबंधक औषधि न होती तो आग जलानेका कार्य कर लेती। अब प्रतिबन्धक निमित्त होनेपर अग्निमें जलानेके कार्यमें रुकावट आयी। उसमें जलनेका जो निमित्त होता है वह प्रतिबंधक निमित्त होता है। लोकव्यवहारमें हमारे अनेक कार्योंमें रुकावट डालनेवाला प्रतिबंधक निमित्त मिलता रहता है, उन प्रतिबंधकोंने क्या किया यहाँ? सो कुछ नहीं। मगर ऐसा योग है कि प्रतिबंधक निमित्तका सन्निधान हुआ तो उपादान अपने विशिष्ट कार्यसे रुक जाय। उसके उसके योग्य उस समय परिणमन होगा, तो ऐसा निमित्त कहलाता है प्रतिबंधक, किन्तु वहाँ भी निमित्तभूत पदार्थमें उसके उत्पादव्ययसे उसका परिणमन हुआ और उपादानभूत पदार्थमें उसकी योग्यतानुसार उस ही में परिणमन हुआ, वस्तुकी स्वतंत्रता स्वतंत्र है। कुछ निमित्त उत्तम्भक होते हैं।

मन्त्रप्रयोगके प्रसङ्गमें भी मान्त्रिककी अन्यमें अकिञ्चित्करता—बहुतसे मन्त्रसाधक

उत्तम्भन आदिक कार्योंके लिए यत्न करते है, कोई चलते हुएको रोक देना, प्रगति करते हुएकी प्रगतिमे बाधा डालना, ऐसे कार्योंके लिए मत्र साधना करते हैं, वह एक उत्तम्भक निमित्त है। और उस समय जो कार्य होता है जिस उपादानमें उसके लिए निमित्त कहा जाता है लेकिन स्वतत्रता वहाँ भी है। उपादान अपने आपकी योग्यतासे ऐसा बना। पहिले जब गजरथ बहुत चला करते थे तो उस समयमे कुछ ऐसी धारणा लोगोकी थी कि जो जोशी लोग होते थे वे अपने ही घर बैठे हुए रथका चक्का तोड़ देते थे। उनका घर वहाँसे मीलो दूर हो, फिर भी मंत्रसाधनाके बलसे वे ऐसा कार्य कर देते थे। तो वहाँ उन्होने क्या किया? अपने आपमे ही अपना तत्र किया, लेकिन वहाँ ऐसा हो जाता था, ऐसी धारणा थी। वहाँ भी मत्रसाधना निमित्त है और यहाँ उत्तम्भन आदिक हो गए। उनकी साधनाके तत्र ऐसे होते थे कि किसी बाँसके अत्यन्त पतले पुञ्चोकी एक अर्थी बना देते थे तो साधना करके उस साधनाके जोशमे उस अर्थीके कुछ बाँस तोड देते थे। वहाँ उस तरहकी घटना घटी। वहा तथ्य कितना है, यह विषय तो अलग है मगर उत्तम्भन निमित्तकी बात कह रहे है। कदाचित् ऐसी भी घटना हो जाय तो भी उपादानकी स्वतत्रतापर दृष्टि दें कि वहा अर्थीमे जो भी क्रिया हुई है, जो तोडफोड़ हुई है वह उसकी परिणतिसे होती है। वहा वह मत्रवादी साधक नही है। मत्रकी बात सुनो—कितने ही लोग ऐसे मत्रवादी है कि मंत्रसे बिच्छू, सर्प आदिकके विष हटा देते हैं, और यह बात बहुत देखी भी जाती है। इस घटनामे जरा विचार तो करो कि जिस पुरुषको सर्पने डसा है उसका शरीर विषसे व्याप्त हो गया है। मत्रवादी दो चार हाथ दूर खड़ा है, मंत्र पढ रहा है, और कितने ही मंत्रवादी ऐसे होते है कि वे अपने गावमे ही मत्र बोल रहे, जिस व्यक्तिके सर्पने डस लिया है उसके पास भी नही जाते, फिर भी सर्पका विष दूर हो जाता है। तो क्या किया मत्रवादीने उस पुरुषमे? कुछ नही किया। उसने स्वय अपने भाव मे जोश पैदा किया, उसकी साधनाकी बात की और यहां उससे विष उतरा, तो विष उतरनेमे उस मनुष्य वाली बात ही कारण है। उसके ही प्रत्ययसे ऐसा परिणमन हुआ, पर निमित्त है वहा मंत्रवादीका मत्र प्रयोग। तो छोटे मोटे मत्र तत्रकी बात ही जब इस बात को सिद्ध कर देती है कि उपादानमे क्या हो रहा, उसमे कारण वह दूसरा है, पर मत्रका अपने अपनेमे कार्य है। कुछ घटनायें ऐसी सुनी भी हैं कि आजकल दृष्टि बंद करने वाले मदारी लोग भरे जलसामे बैठे हुए लोगोसे बजे तो हों ४, पर कह देते कि देखो अब १२ बज रहे हैं, तो सभी लोग अपनी अपनी घडीमे १२ बजेका ही समय पाते हैं। यद्यपि हमने अपनी आखो नही देखा, पर बहुतसे लोगो द्वारा बड़े प्रभावपूर्वक कहते हुए सुनते जरूर हैं। तो ऐसा होनेमें वहां होना क्या है? उस दृष्टि बंधकने अपने आपमें अपना परिणमन किया

और वहा घडी देखने वालोने अपने आपमें अपनी बुद्धिसे अपना परिणमन किया। तथ्य तो वहा भी यही है, प्रत्येक घटनामे यही निरखते जायें कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कोई कार्य नही करता। ऐसा निमित्त उत्तम्भकनिमित्त कहलाता है।

ज्ञायक निमित्तके प्रसंगमें निमित्तकी उपादानमें अकिञ्चित्करता—कुछ निमित्त ज्ञायक निमित्त होते है, जिस पदार्थका निमित्त पाकर स्वफल या किसी पदार्थके सत्त्व आदिक का ज्ञान कर लिया जाता है उसको ज्ञायकनिमित्त कहते हैं। यदि हिरन सामने बाई ओर से दाहिनो ओरको निकल गया तो लोग कहते हैं कि आज तो सगुन हुआ, मेरा कार्य सिद्ध हो जायगा। और इस तरहकी वात कभी देखी भी जाती है। तो ऐसे समयमे उस सगुन को फलवान बनानेका जो निमित्त बताता है वह ज्ञायकनिमित्त है। जब अकम्पनाचार्य आदिक मुनियोपर आपत्ति पडी थी रक्षाबन्धनके दिन, उस समयमे श्रवण नक्षत्र काप रहा था, रात्रिको निरखा मुनिने। वह श्रवण नक्षत्रका कम्पन था ज्ञायक निमित्त। अनेक ज्ञायक निमित्त होते है। आप किसीकी दूकानपर बैठे हुए थे, वहा आप अपना छाता भूल गए। जब आप लौटे जा रहे थे तो रास्तेमे किसी छाता वाले पुरुषको अथवा छाताको देखकर आपको याद आया कि वहा मेरा छाता रह गया। तो आपको याद दिलानेमे जो छाता निमित्त है वह है ज्ञायकनिमित्त। पर वहा यह बतलाओ कि उस छतरीने आपमे ज्ञान पैदा किया, या आपका हाथ पकडकर वह उस दूकानमे आपको ले गई? क्या किया उस छतरी ने? वह छतरी तो अपने आपके परमाणुओमे थी, अपने ही स्वय उत्पादव्ययध्रौव्यसे रह रही थी। इससे आगे उसका कार्य तो न था, लेकिन उसका निमित्त मात्र पाकर उसको निरखकर जो एक ज्ञान हुआ 'छतरी भूल आये' तो आपकी यादके लिए वह छतरी ज्ञायक निमित्त हो गई, लेकिन उस छतरीने आपमे किया कुछ भी नही। आप ही स्वय उसको देखकर अपनी याद कर लेंगे। तो वस्तुमे स्वतत्रता की दृष्टि बन जाय, उससे वढकर कोई भाग्यशाली पुरुष नही है। लेकिन यह मोही प्राणी इन धन वैभवोके समागमोको पाकर अपनेको भाग्यशाली समझ रहा है। इसके अज्ञानका रग इतना गहरा पड़ा हुआ है भीतरमे कि कभी धर्मके नामपर धर्मके ऊपरी काम भी कर रहा, मगर भीतरमे उस धर्मका कुछ भी असर नही होता। असर हो भी कैसे? उसके चित्तमे तो बाह्य प्राप्त समागम समाये हुए हैं, कषायोका लोभ ही बढा हुआ है। यदि ये विकारभाव इसके चित्तसे हट जायें और इसकी साधनामे एक स्पष्टता आ जाय, उसकी सिद्धिमे सफल हो जाय।

पोजीशन प्वायजनका बिरादर—वस्तुस्वातन्त्र्यके उपयोगका अभ्यास इस जीवको हितकारी है, न कि यह लौकिक पोजीशन हितकारी है। पोजीशन तो प्वायजन है अर्थात् विष है। जैसे विषका भक्षण करने वाला पुरुष मरणको प्राप्त हो जाता है इसी तरह

पोजीशनकी बात चित्तमे रखने वाला पुरुष भी नष्ट हो जाता है। वह पोजीशन भी है क्या ? कदाचित् कुछ स्वार्थी लोगोने प्रशंसात्मक दो शब्द बोल दिए तो उससे लाभ क्या मिला ? यह लौकिक पोजीशन तो इस जीवकी दुर्गति और विनाशका कारण है। वास्तविक पोजीशन तो यह है कि अपने आपके भाव न बिगडने पायें, अपना शुद्ध भाव रहे। अपनेको अपनेमे निरखना, अपना कार्य करना, अपने इस ज्ञानस्वरूपको अपने उपयोगमें लेना, गुप्त लेना, बडी शान्तिसे लेना, वह है अपने आपका वास्तविक पोजीशन। वही पोजीशन अपना भविष्य सुधारेगा, वही वर्तमानको सुधारता है, और अतीतमे चाहे कितनी ही कुछ गडबडी की हो, पाप किया हो। उन सबका भी सुधार कर देता है। स्वरूपानुभवमें इतनी सामर्थ्य है कि त्रिकालका सुधार हो जाता है। पोजीशन तो वहाँ है। लोग यहाँ क्या कहते है ? इन अज्ञानी जनोका कुछ लगाव रखना और उनकी कुछ बातसे अपनेमे सन्तोष करना। जैसे बहुतसे नेता जन इसी बातसे तृप्त है कि अगर लाखोकी भीड हो गई, हमारा विशेष स्वागत हो गया, सरकारने विशेष प्रबंध कर दिया तो वहां तृप्त हो गए। देखो— कहाँ तो वे नेता जन बहुत-बहुत कष्ट पाते रहते है, मगर उस १०–५ मिनटके स्वागत समारोहमें अपनी उस कल्पित इज्जतसे तृप्त होना चाहते है। यह पोजीशन तो निरन्तर इस जीवको बेचैन करनेका कारण है। देखिये– भरत चक्रवर्तीके पास कितना बडा वैभव साम्राज्य था, फिर भी उसकी दृष्टि रहती थी समस्त परवस्तुओसे हटकर स्वमे आनेकी। उस स्वदृष्टिमें आनेपर भले ही सम्मान बढे लेकिन साथमे यदि यह कला पडी है तो वह भूलमें नही है, वह तो सुखमे है। ये सब बाते जब वस्तुकी स्वतंत्रता समझमे आती है तब अनायास ही प्राप्त होती है।

स्वभावविकासके विविध प्रतिच्छेदोंमें भी स्वातन्त्र्यका दर्शन—पदार्थमे जो स्वाभाविक परिणमन होते है उनके सम्बधमे निमित्तकी बात बतानेकी आवश्यकता नही रहती। कारण यह है कि उन परिणमनोमे केवल कालद्रव्य ही निमित्त है, अन्य कोई निमित्त नही है, लेकिन जो परिणमन भिन्न है—पहिले समयमे पहिले कुछ रूपसे था, अब किसी अन्य जुदे रूपसे है, ऐसे परिणमनोमे कोई निमित्त होते ही है, क्योकि वे भिन्न परिणमन है। पहिले परिणमनसे अगला परिणमन भिन्न प्रकारका हो तो वहां कोई निमित्त अवश्य होता है। तो ऐसे परिणमनोंके लिए यहां निमित्तकी चर्चा चल रही है। स्वभावपरिणमनकी धारा पूर्णतया न चल रही हो और किसी अंशमे अब परिणमन बन रहा हो तो वहा भी निमित्त होता है। जैसे हम आपकी जब कभी अपने हितरूप स्वभावपर दृष्टि पहुंचती है तो यद्यपि वह एक स्वभावकी ओरका ढलना है लेकिन परिणमन तो भिन्न है ना। अभी कुछ और था, अब कुछ और हुआ और कुछ समय बाद और हो जायगा। तो यहा निमित्त है ज्ञाना-

वरण आदिक कर्मोंका क्षयोपशम, दर्शनमोहका उपशम आदिक और कुछ चारित्र आवरण करने वाली प्रकृतियोंका क्षयोपशम विशेष यह तो निमित्त होता है और बाह्यसाधन—अच्छे साधनमे सत्संगमें रहना या जैसे कि कुछ धर्मात्मा पुरुष नजर आयें, जिनका कि केवल एक स्वभावरमणमे ही हितका विश्वास है और उसका शरण गहनेके लिए अपना जीवन माना है, ऐसी बात उनकी समझमे बैठी हो तो उनका सहवास ये सब बाह्य साधन बनते हैं। तो अपनेको उपयोगी तो यही कि ऐसा साधन बने कि अपने हितकारी निजस्वरूपकी दृष्टि बराबर रहे और असार अहित, जिनके लगावमे कुछ भी आत्माका लाभ नही है, उनसे उपयोग हटे और दुर्लभ जो मानव-जीवन पाया है उसकी सफलता मिले, यही काम मात्र इस जीवन मे करने योग्य है। बाकी तो सब ससारका झमेला है, जहा सार कुछ नही है, जितना बाहरमे मौज माना जा रहा है वह भी एक अंधेरा है।

निमित्तकी उदासीनता—इस प्रसगमे निमित्तोकी चर्चा चल रही है कि किसी भी उपादानकी क्रिया होनेमे कैसे-कैसे कार्य निमित्त हुआ करते है? कुछ निमित्त उदासीन निमित्त कहलाते है। यद्यपि वस्तुके स्वरूपपर मूलपर दृष्टि दी जाय तो सभी निमित्त उदासीन रहते है। कारण यह है कि उपादानमे कुछ भी परिणमन करनेके लिए निमित्तोका कुछ उत्साह नही है। निमित्त कुछ कर नही सकते, क्योंकि प्रत्येक पदार्थका स्वरूपकिला इतना दृढ है कि वह किसीके द्वारा भी भेदा नही जा सकता, तो इस दृष्टिसे सभी निमित्त उदासीन होते हैं लेकिन अपनी क्रिया न करते हुए, अपनेमे कोई विशिष्ट तरंग न लाते हुए केवल सन्निधान मिलता है, ऐसे निमित्तोको उदासीन निमित्त कहते है। जो स्थिर हैं ऐसे पदार्थों का निमित्त पाकर उपादानमे परिणमन हुआ तो उन निमित्तको उदासीन निमित्त कहते हैं। जैसे कोई मुसाफिर कही घूमने जा रहा है, ऊपरकी धूप, नीचेकी धूप और उस गर्मीके आतापके कारण वह बड़ा व्याकुल है। वह जा रहा है और मनमे यह लालसा रखे है कि कही छाया मिल जाय तो एक आध घंटे वहाँ बैठकर विश्राम लूं, फिर आगे बढूं। नही तो इस तरह चलते रहनेमे तो जानका भी खतरा है। थोडी दूर चले जानेके बाद उसे एक बटवृक्ष दीखा। उस बटवृक्षके नीचे वह मुसाफिर पहुच जाता है, वहाँ एक आध घंटे विश्राम करके आगे बढ जाता है। तो अब देखिये—उसको विश्राम मिला, वहां वृक्ष की छायामे पहुंचा, इन सब बातोमे वृक्ष निमित्त है तो कैसा निमित्त है? उदासीन निमित्त है। वृक्षने न उस मुसाफिरको बुलाया, न कुछ चेष्टा की और न हरकत की। वह तो जहाँका तहाँ खडा रहा। वृक्षमे उपादान परिणतिके लिये कुछ भी बात नही हुई, फिर भी इस सतप्त पुरुषके विश्राममे वह वृक्ष निमित्त हुआ। तो ऐसा निमि उदासीन-

निमित्त कहलाता है। इसमें तो यह बात स्पष्ट है कि उस निमित्तसे इसमे कोई द्रव्य, गुण, पर्याय नहीं आया फिर भी लोकव्यवहारमे यह भले प्रकार कहते है कि इस वृक्षसे मुझे बडी शान्ति मिली, बडा विश्राम मिलता है, इसने बहुत ठडक पैदा कर दी। तो ऐसा कथन होनेपर भी वास्तविक बात ज्ञानसे ओझल न करना चाहिए। प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसका उसमे ही होता है। किसी विभावपरिणमनमें अनेक निमित्त होते है तो उनका खण्डन नही है, किन्तु पदार्थपरिणमनकी बात देखी जाय तो बिल्कुल तथ्यकी बात है कि जिस पदार्थमे जो परिणमन हो रहा वह उस पदार्थमे उसकी उत्पादव्यय शक्तिसे हो रहा।

निमित्तकी आश्रयभूतता—कुछ निमित्त आश्रयभूत निमित्त होते है, जिस बाह्यवस्तुका आश्रय करके जीव विकारभावसे परिणमता है उसे आश्रयभूत निमित्त कहते है। देखिये--आश्रयभूतपनेकी बात जीवके लिए ही लागू हो सकती है। अजीव अजीवमे परस्पर मे तो केवल निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, पर जीवके लिए, जीव विकार करे, कषाय करे तो उसमे निमित्त तो प्रकृति कर्मका उदय है, और वे बाहरी चीजे जिनमे उपयोग फसाकर इस जीवने विकारभाव किया वे पदार्थ आश्रयभूत निमित्त कहलाते है। जैसे एक प्रसिद्ध घटना बताते है कि कोई वेश्या मर गई तो लोग उसको श्मशानमे जलानेके लिए लिए जा रहे थे। उस श्मशानमे तीन प्रकारके जीव बैठे हुए थे। एक मुनि महाराज थे, एक कामी पुरुष था और वही अनेक स्याल रह रहे थे। उस वेश्याके मृतक शरीरको देखकर तीनो जीवोमें भिन्न-भिन्न भाव हुए। मुनिराजके मनमे यह भाव आया कि इस ससारमे कैसे दुर्लभ मानव जीवनको पाकर इस वेश्याने व्यर्थमे अपना जीवन गवाया। इसने खोटे कार्योमे पडकर अपना दुर्लभ मानव जीवन व्यर्थ खोया, मुनिराजके मनमे तो यह भाव आया, और उस कामी पुरुषके मनमे यह भाव आया कि यह वेश्या तो मुझसे बहुत परिचित थी। अगर कुछ दिनो तक यह और जीवित रहती तो इससे मैं और भी मिलता रहता। और उन स्यालो के मनमे उस समय यह भाव आया कि यदि इसे ये लोग बिना जलाये यो ही छोड जाते तो हमारा कुछ दिनोंका भोजन बनता। तो देखिये चीज तो एक थी—उस वेश्याका मृतक शरीर, लेकिन उसको निरखकर तीन प्राणियोमे तीन प्रकारके भाव हुए। ये भाव क्यो हुए? यो कि आश्रयभूत निमित्त था, न कि निमित्तभूत निमित्त था। अब निमित्तभूतकी बात सुनो—मुनिराजके ऐसे ही चारित्र आवरणका क्षयोपशम, दर्शन मोहनीयका क्षयोपशम था कि जिसकी वजहसे ऐसा निरन्तर भाव बना। और कामी पुरुषके ऐसे ही दर्शनमोहनीय चारित्र मोहनीयका उदय था जिसके कारण गंदे भाव बने और उन स्यालोंके भी ऐसे मोहनीयके उदयमें ऐसे भाव बने तो वहाँ नैमित्तिक भाव जो हुए है वैराग्यके अथवा कामके अथवा भूख मिटानेके, वे सही नैमित्तिक ढगसे हुए, लेकिन नैमित्तिक भावके होनेमे वह शरीर आश्रयभत

बना, तो जैसा जिसका भाव बनना था अनुकूल निमित्त होनेके कारण प्रकृतिकी अवस्थासे उनको उस तरहके भावोंमे वह मृतक शरीर आश्रय बन गया। तो जो निमित्त आश्रयभूत कहलाता है। वहाँ भी यह बात समझना होगा कि निमित्तसे इस उपादानके कार्यमे द्रव्य, गुण, पर्याय कुछ भी नही आया, किन्तु वह था जरूर अनुकूल आश्रयभूत निमित्त।

निमित्तकी विषयभूतता—जिस ज्ञेय पदार्थको विषय करके ज्ञान ज्ञेयाकार रूप परिणमता है उसको विषयभूत निमित्त कहते हैं। विषयभूत शब्दमे जो विषय पडा है उस का गंदा अर्थ नही है, ज्ञानका स्वभाव जानना है। कोई भी शक्ति बिना परिणमनके नही रहा करती। जब हम आप सब जीवोके ज्ञानशक्ति है तो ज्ञान तो कुछ न कुछ परिणमन करेगा ही, और ज्ञानके परिणमन होनेका ढग ही यह है कि ज्ञान अपने आश्रयमे रहकर आत्मामे ही रहता हुआ यह ज्ञान अपना जाननरूप परिणमन बनाये रहता है। और जानन रूप परिणमन की विधि ही यह है कि उसमे किसीका जानना रहता है, किसीका ग्रहण रहता है अर्थात् कुछ प्रकाश इस सम्बन्धकी जानकारी है, बस वहाँ जो विषयभूत हुए याने जाननेमे जो कुछ आया वह विषयभूत निमित्त है। जैसे–केवल ज्ञानमे तीन लोक तीनकालके समस्त पदार्थ ज्ञानमे झलक रहे हैं और झलक कैसे रहे है? जैसे ये पदार्थ हैं वैसे झलक रहे हैं। वहाँ विपरीत झलक नही हो सकती। जो पदार्थ जिसरूपमे जिस ढंगसे जैसा सत् है उसी प्रकार केवलज्ञानमे झलकता है। तो ऐसे ही क्यो झलका? यह पूछा जाय कि केवल ज्ञानमे इस प्रकारका ज्ञान क्यो हुआ? तो उत्तर आप क्या देंगे कि इसी प्रकारके पदार्थ हैं इसलिए वैसा ही जानते हैं। तो किसी तरह ये बाह्य पदार्थ निमित्त तो कहलाये। ये जिस प्रकारसे हैं उसी प्रकारसे ज्ञानमें आये। तो उस ज्ञानके निमित्त हुए ये सब पदार्थ। तो कौनसे निमित्त है? कारक नही, ज्ञायक नही, आश्रयभूत नही। आश्रयभूत निमित्त कहलाते है विकार परिणमनके, पर यह तो शुद्ध ज्ञान हो रहा हो वहाँ भी विषय बनता है, अशुद्ध ज्ञान चल रहा हो वहा भी विषय बनता है तो यह विषयभूत निमित्त होता है। ज्ञानके जो विषयभूत हो वह विषयभूत निमित्त है। अब विषयभूत निमित्तोकी चर्चा सुनकर इस समय कुछ निश्चयमे आप आये होगे कि सहज सुगम सूक्ष्म याने कुछ सम्बन्धसा ही नही, ऐसा अत्यन्त जुदा यह विषयभूत निमित्त है। अन्य सब निमित्तोमे कुछ न कुछ विशेष सम्बन्धकी बात थी, कुछ विशेष अनुकूलताका उनमे परिचय था, लेकिन यहाँ तो कुछ भी नही हैं। केवल ज्ञानमे विषय है।

अस्तित्व वस्तुत्व नामक साधारण गुणोंसे भी वस्तुकी विविक्तताका परिचय—जहा पदार्थके ६ साधारण गुणोका वर्णन चलता है वहा एक प्रमेयत्व नामका भी साधारण गुण है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व, ये ६ साधारण,

गुण बताये गए है। याने कोई पदार्थ यदि है उसमे ये ६ बातें स्वयमेव हैं। न होनेपर सत् नही हो सकता। तो वे ६ बातें क्या ? अस्तित्व क्या ? पदार्थ जिस गुणके कारण "है" उसे अस्तित्व गुण कहते है। मायने पदार्थका यहां सत्व है वह अस्तित्व गुणकी वजहसे है। वस्तुत्व गुणकी वजहसे पदार्थ अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नहीं। कोई पदार्थ "है" होता है तो उसमे नियमत यह बात पायी जाती है कि वह अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूप से नही है। यदि ऐसा वस्तुत्व न हो तो वह "है" रह ही नही सकता। कोई अपने स्वरूप से है और परस्वरूपसे भी हो तो फिर "है" क्या रहा ? वह तो कुछ न रहा। न खुद रहा, न पर रहा। और जैसे कोई चीज परके स्वरूपसे नही है इसी तरह अपने स्वरूपसे भी न हो तो भी वह क्या रहा ? तो वस्तुत्वकी वजहसे ही सत्ता कायम है। पदार्थ अपने स्वरूपसे है और परके स्वरूपसे नही है। जैसे चौकी अपने काठ आदिकके रूपसे है और पुस्तकके कागज आदिक रूपसे नही है, यह बात है तब चौकी है। अगर चौकी अपने काठरूपसे भी न हो अथवा पुस्तकके कागजरूपसे हो जाय तो चौकी ही क्या रही ? तो पदार्थमे वस्तुत्व गुण होना एक साधारण बात है। देखिये बात तो चल रही है साधारण गुणोकी, मगर शिक्षा लेनेके लिए प्रत्येक बात समर्थ है। इस वस्तुत्व गुणने यह आख खोला कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है। तो यह मैं अपने स्वरूपसे हू परके स्वरूपसे नही हू। अब स्वरूपमे होती है चार बाते—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। तो अर्थ हुआ कि मैं अपने द्रव्यसे हूँ, घर, वैभव कुटुम्ब, आदिकके द्रव्यसे नही हू। मैं अपने निजी प्रदेशसे हू, घर वैभव कुटुम्बके प्रदेशसे नही हू। मैं अपनी ही परिणतिसे हूँ, अपने ही काल से हूँ। मुझमे जो कुछ बात बनती है वह अपने ही परिणमनसे बनती है, परकी परिणति से नही बनती। मैं अपने ही भावोसे हू, अपने ही स्वरूपसे हूँ। कुटुम्ब, वैभव, मित्र आदिक किसीके भावोसे नही हूँ। तब आप बतलाओ कि सम्बन्धकी गुञ्जाइश कहाँ रही ? मेरा मेरे स्वरूपसे बाहर कही अन्यत्र सम्बन्धकी बात कहा हुई ? शिक्षा लेनेके लिए जैनदर्शनका एक-एक अक्षर उपयोगी है, किन्तु अपनी बुद्धि तो पहिले व्यवस्थित हो, विषय-वासनाओसे रगी हुई न हो, बाहरी मौज ममताके अंधकारमे डूबा न हो, उसके लिए शिक्षा प्रत्येक अक्षरसे मिल सकती है।

द्रव्यत्व व अगुरुलघुत्व नामक साधारण गुणसे भी वस्तुकी विविक्तताका परिचय-- वस्तुमे, पदार्थमे वस्तुत्व गुण साधारण है। वस्तुत्व गुण तक सामान्यतया निर्णय बना कि पदार्थ है, अपने स्वरूपसे है, परके स्वरूपसे नही है, लेकिन इसमे इतनी ही तक हठ बनाई जाय कि पदार्थ हैं, अपने स्वरूपसे हैं, परस्वरूपसे नही है तो इससे कुछ समझमे नही आया। जब तक वस्तुका परिणमन, वस्तुकी क्रिया न व्यक्त हो तब तक वस्तु समझी ही

नही जा सकती । और दूसरी बात यह है कि वस्तुमे साधारण गुण भी यह है कि वह निरन्तर परिणमता रहे। कोई चीज है तो सही, किन्तु न उसका आकार, न गुण, न व्यक्त रूप, कोई अवस्था नहीं, फिर है वह क्या चीज ? तो वस्तुमे एक द्रव्यत्व गुण है जिस गुणके कारण वस्तु निरन्तर परिणमती रहती है। यदि कुछ लोगोंकी कल्पनाके अनुसार ईश्वर इस जगतकी चीजोंको बनाता होता, अनन्तानन्त वस्तुएँ कभी कोई बनाये बिना भी रह जाय, उसकी सुध न रहे, कई बार भूल हो जाय, कुछ भी हो, कहीं पडा रहे, गुप्त रहे तो क्या ऐसा हो सकता है कि किसीकी सुध न रहे तो वह परिणमे बिना रह ले ? व्यवस्था न बनेगी । लेकिन जहाँ वस्तुमे द्रव्यत्वगुण वस्तुकी ही शक्ति मानी गई है तो चाहे आप १० वर्ष उस वस्तुको न जानें, किसीकी खबर किसीको भी न हो, तो वस्तु है ना, तो अपने "है" के कारण, द्रव्यत्वके कारण निरन्तर परिणमता रहेगा । वहाँ एक समयको भी परिणमन छूटता नही है । इतनी बात जाननेपर भी कोई उद्दण्डता करना चाहे तो कर सकता है । लो इतना तो हमे अधिकार मिल गया कि मैं हूँ, अपने स्वरूपसे हूँ, परस्वरूपसे नही हूँ और निरन्तर परिणमता रहता हू । तो मैं तो परिणमता रहूँगा, चाहे किसी दूसरे रूप परिणमूं, दोनोंके रूपसे परिणमूं, कुछ भी बन जाऊँ, कुछ भी अपनेको बना डालूं । मुझे तो द्रव्यत्व शक्तिने अधिकार दिया है, लेकिन इस उद्दण्डतामें हैपना न रहेगा । मैं अगर किसी अन्यरूप परिणम जाऊँ, मैं न रहा, अन्य भी न रहा तो इस व्यवस्थाके लिये शक्ति है अगुरुलघुत्व, जिस गुणके कारण वस्तुमे सहज ही यह व्यवस्था बनी हुई है कि वह अपने स्वरूपसे ही परिणमेगा, बनेगा, दूसरेके स्वरूपसे न बनेगा ।

प्रदेशवत्त्व व प्रमेयत्व नामक साधारण गुणसे भी वस्तुकी विविक्तताका परिचय—वस्तुमें उपरिकथित ४ साधारण गुण होनेपर भी अगर वस्तुके बारेमे कुछ प्रदेशका, आकार फैलावका, विस्तारका कुछ भी भान न हो तो ये सब बातें समझी कहाँ जायेंगी ? और इनका आधार कुछ भी नही है । अत. प्रदेशवत्व नामका साधारण गुण भी अवश्य है । जो भी पदार्थ है वह नियमसे प्रदेशवान है, कुछ न कुछ फैला तो है, उसका कुछ न कुछ घेरा तो है । इतना सब कुछ ज्ञान होनेपर भी अन्तिम स्पष्टीकरण देखिये—पदार्थमे एक प्रमेयत्व नामका भी गुण है कि जो नियमसे प्रमेय रहेगा, ज्ञेय रहेगा, जानकारीमें रहेगा । जानकारीसे छूट नही सकता । भले ही छद्मस्थ लोग नही जान पा रहे, सब सत्को उनके ज्ञानावरणका ऐसा ही उदय है लेकिन जब ज्ञान बिल्कुल विशुद्ध हो जाता है, ज्ञानावरणका लगाव नही रहता, क्षय हो जानेके समय स्वयं ही अनन्त सत् इस केवलज्ञानमें ज्ञेय हो जाते हैं । तो इन अनन्त पदार्थोंका इस केवलज्ञानमे ज्ञेय बन जाना, इन ज्ञेयोंका इस ज्ञानके साथ क्या सम्बंध है ? तो कुछ भी सम्बंध नजर नहीं आ रहा सत् पदार्थमे और यह ज्ञानस्वरूप

अपनेमे अपने स्वभाव रूप बन रहा है। तो उस ज्ञानमे जो ये समस्त सत् विषय हुए, यह जान गए, ये निमित्त कहलाते हैं विषयभूत। यहा भी यह बात समझनी होगी कि विषयभूत निमित्तका भी द्रव्य, गुण, पर्याय कुछ भी इस ज्ञानमे नही पहुंचा। तो वस्तुकी स्वतंत्रताका ऐसा स्वातन्त्र्यविषयक बोध मोहविपदाको हटा देता है। इसलिए इस स्वतंत्रताका परिज्ञान करना बहुत आवश्यक है।

निमित्तकी संयोगरूपता तथा वियोगरूपता—कुछ निमित्त संयोगरूप होते है, किन्ही पदार्थोंके संयोगके निमित्तको पाकर, उनमे से किन्ही पदार्थोंके संयोगके निमित्तको पाकर, उनमे से किसी उपादानका कोई विशिष्ट परिणमन हो तो वहाँ उसे सयोगरूप निमित्त कहते हैं। जैसे दो चीजोके संयोग होनेसे किसी एक पर प्रभाव हो अथवा दोनों पर प्रभाव हो तो दोनोंके करना वह सयोग निमित्त होता है। जैसे—आगपर पानी डालते हैं तो आग खतम हो जाती है और पानीकी भी दशा बिगड जाती है। तो दोनोकी दशायें विगडनेमे वहा आग और जलका संयोग निमित्त हुआ। किसी पदार्थका स्वाद बदल जाता है संयोगमे तो उन पदार्थोंके स्वाद बदलनेमे निमित्त होता है सयोग। तो यों सयोगरूप निमित्त हुए, लेकिन वहाँ भी यह दृष्टि देना है कि दो पदार्थोंके मेलसे दोनोमे कुछ फर्क आया है लेकिन वह परिणमन प्रत्येक पदार्थका उस ही पदार्थसे उत्पन्न हुआ है। किसी एकके परिणमनको कोई दूसरा पदार्थ नही परिणमा सकता। कुछ कार्योंमे वियोगरूप निमित्त होता है। किन्ही पदार्थोंके वियोगका निमित्त पाकर उनमें से किसी भी पदार्थका या दोनोका जो कुछ विशिष्ट परिणमन होता है तो उस समय उसे वियोगरूप निमित्त कहते हैं। जैसे दो बालक हाथ पकडकर एक दूसरेको खीच रहे है, उसी समयमे हाथ छूट जाय, दोनों बालक गिर जाते हैं, तो उस एक साथ परिणमन होनेमे वियोग कारण हुआ। तो यो कुछ पदार्थ वियोगरूपसे निमित्त होते है। वियोग रूपसे निमित्त होने पर भी दिखता वहा भी यह है कि उस प्रत्येक पदार्थमे जो परिणमन हुआ है वह उसके उत्पादव्यय स्वभावसे हुआ है। किसीके परिणमन को कोई दूसरा नही कर सकता। यो संयोग वियोग रूप निमित्त यत्र मशीन आदिक अनेक कार्योंमे स्पष्ट विदित हो जाता है। बड़े बडे यंत्र संचालनके कार्य इसी संयोग और वियोग रूप निमित्तसे होते रहते हैं। तो यो अनेक निमित्त होते हैं लेकिन उनमे जानना यही है कि निमित्त होनेका अर्थ इतना ही है कि वह पदार्थ सन्निधानमे था। इसके आगे निमित्तका उपादानमें कुछ गया हो सो बात नही है।

परतुस्वातन्त्र्यका दर्शन—यह सब निमित्तका वर्णन सुनकर ऐसी मिथ्या श्रद्धा न करना कि निमित्त उपादानपर ऐसा असर डालता है। उपादानपर निमित्त अपना असर नही डालता। किन्तु यहां उपादानमे परिणमनेकी ही ऐसी कला है कि वह इन प्रकारके

अनुकूल निमित्तको पाकर अपनेमे असर स्वयं प्रकट कर लेता है। निमित्तभूत पदार्थका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कभी भी उपादानमे नही पहुचता। यह चर्चा चल रही है निमित्तकी। निमित्त और उपादानके बीच यह बात है कि दोनो स्वतंत्र है। किसीका किसीपर असर नही है, परयोग इसी प्रकार है। तो फिर जो आश्रयभूत पदार्थ हैं उनका तो सम्बध ही क्या बतायें ? लोग घर वैभव, स्वजन, मित्रजन, किसीको भी उपयोगमे लेकर अपने आपमे रागद्वेष, क्षोभ, आकुलता, परिणमन कर लेते हैं तो वहाँ उस राग शोकरूप परिणमनमे वह पदार्थ कुछ करने वाला नही हुआ, उसका कोई असर नही आया, किन्तु इस जीवने स्वय ही कल्पनायें करके ऐसा ही परिणमन बना लिया है। जैसे एक घटना ऐसी ले कि एक बालक दूसरे बालकको चिढा रहा है, २० हाथ दूर खडा हुआ अंगुली मटका रहा जीभ चला रहा, मुह बना रहा तो वह दूसरा लडका चिढ रहा है। तो वहाँ यह बतलाओ कि उस चिढाने वाले लडकेने चिढने वाले लड़केपर क्या किया ? उसके, मुख, जीभ, अंगुली आदिक उस चिढने वालेके पास तो नही पहुंचे। वह तो अपने आपमे अपने ही शरीरमे अपना परिणमन कर रहा है। उस दूसरे पर कुछ नही कर रहा है और चिढने वाला लडका अपने आपमे उसको निरखकर जानकर अपना अर्थ लगा रहा है कि यह मुझे चिढाता है। मैं बेक्सूर हू, मुझसे यह क्यो द्वेष करता है ऐसी बात उसके चित्तमे भर जानेसे वह चिढ रहा है। तो यहाँ वास्तविकता देखो कि उस चिढाने वाले लडकेने उस चिढने वालेमे कुछ नही किया। वह अपना ही काम कर रहा और चिढने वालेने अपने आप अपना ही काम किया, पर जिसका आश्रय पाकर वहा विपरिणमन हुआ उस ओरसे व्यवहारमे यो कहा जाना कि इसने इसको दुःखी किया, सुखी किया।

वस्तुस्वरूपके परिचयसे परकर्तृत्वके भ्रमका विनाश—वस्तुस्वरूपपर दृष्टि देनेसे यह अंधेरा मिट जाता है कि मैं किसीको सुखी करता हूँ, दुःखी करता हू, जिन्दा करता हूँ, मारता हू आदिक, जो भ्रम बना रखा है, यह भ्रम वस्तुस्वरूप जाननेपर नहीं रहता। परन्तु सुखी होता है कोई जीव तो साता वेदनीयके उदयमे सुखी होता है, उस समय नोकर्म कोई पडा, पर उसका निमित्त कारण तो साता वेदनीयका उदय है। सो वह उदय भी जीव के प्रदेशोमे गया नही, वह अपनेमे ही रहा, पर उस समय ऐसा योग है कि राग प्रकृतिका उदय आये तो जीवमें राग परिणमन हो, साता वेदनीयका उदय आये तो जीवमे सुख परिणमन हो। फिर जहाँ निमित्तका भी प्रवेश नही वहाँ अत्यन्त भिन्न रहने वाले मुझका दूसरे जीवमे क्या प्रवेश होगा ? मैं किसीका कुछ नही करता। मैं अपनी कषायसे अपनेमे अपनी कल्पनायें बनाकर क्षोभ करता रहता हू। और मेरी परिणतिका निमित्त पाकर जानकर दूसरा पुरुष अपना अर्थ लगाकर दुःखी होता है। असातावेदनीय निमित्त कारण है दुःखी

होनेमे, सो वह असाता वेदनीय कर्म भी उस जीवमें जाता नही, फिर आश्रयभूतकी तो क्या ही कथा है ? मैं किसीको दु.खी नही करता, मैं किसीको जीवित भी नही कर सकता। वस्तुत. आयुकर्मका उदय होनेपर जीव जीवित रहता है, एक भवमे शरीर लिए हुए रहता है, तो अन्तरङ्ग निमित्त कारण तो कर्मोदय है। मैं कभी किसीको मारता भी नही। कभी कोई जीव किसी जीवका हनन भी करे तो लोकव्यवहारमे कहा तो यो जाता है, पर वस्तुत: उस कषाय करने वालेने अपनेमे खोटे परिणाम किया, कषाय किया, योग किया, इसके आगे कुछ नही किया। और वहाँ आयुकर्मके क्षयका अवसर था तो उस अवसरमें इसके प्राणोका वियोग हुआ। तो प्राणोके वियोगका निमित्त कारण आयुका क्षय है और उस कालमे कोई भी निमित्त बने। तो आयुका क्षय आयुकर्ममे हुआ, पर कोई जीव किसी जीवको उपादान-तया मारता नही है। वह तो अपने भाव बिगाडता है। यो जगतके पदार्थोमे जब जो कुछ भी परिणमन हो रहा है वह परिणमन उसमे उसके कारणसे हो रहा है। परपदार्थ तो निमित्तमात्र होते है। यह जब वस्तुस्वरूप समझमे आता है तो मोह शृंखला टूट जाती है। मैं मैं हू, मेरा सब कुछ भविष्य मेरे भावपर निर्भर है। मैं यदि अज्ञान अंधेरेमें हूं तो इस संसारमे रुलता ही रहूगा। यदि मैं शुद्ध ज्ञानप्रकाशमे आया हू और अपने शुद्ध चैतन्य-स्वभावको अपना रहा हू, इसीमें अपने उपयोग लगा रहा हूँ, स्वभाव और उपयोग जहाँ एक रस हो रहे है वहाँ संसारके संकट अपने आप टल जाते हैं। कर्मबन्धन टूट जाता है।

वस्तुस्वातन्त्र्यके उपयोगसे जीवन सफल करनेकी प्रेरणा—भैया ! बडी दुर्लभतासे

ऐसी क्रियाको देखकर कहा जाता है कि यह प्रेरक निमित्त है, यह कारक निमित्त है। वस्तुत तो उस समय भी वैसे निमित्तको पाकर उपादानने अपने आपमें अपना असर प्रकट किया है। उपादान किस निमित्तको पाकर अपना प्रभाव बनाता है, उस निमित्तकी विशष्टता समझानेके निमित्तको प्रेरक कारक आदिक शब्दोसे कहा जाता है। वस्तुओका परस्परमे क्या सम्बंध है, कैसी स्वतंत्रता है, इसको निरखनेपर यह स्पष्ट निर्णय है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्तिसे, अपने उत्पादव्यय स्वभावसे अपनेमे अपना परिणमन करता रहता है।

व्यवहार प्रयोगमें वस्तुस्वातन्त्र्यके उपयोगके अभ्यासका अनुरोध—हमे अपने व्यवहारमे रोजकी घटनाओमे यह ज्ञान रखना चाहिए कि कभी क्रोध न उत्पन्न हो सके। किसी जीवकी प्रतिकूल परिणति है तो समझे कि इसकी परिणति इसके साथ है, इसका कषायभाव इसमे है, इससे मेरा कोई सम्बध नही। मैं अपने आपमे अपने स्वभावसे ही परिणमता हू। मैं बुरा परिणमूं तो मेरा बुरा होगा, मैं भला परिणमूं तो मेरा भला होगा। इस जगतमे मान किस बातपर करे ? रखा क्या है यहाँ अपना ? समस्त परतत्त्व हैं। मैं तो अमूर्त चैतन्यमात्र कोई गुप्त प्रकाशमय पदार्थ हू। यहाँ मानका क्या अवकाश ? कौन सी चीज यहाँ ग्रहण करने योग्य है जिसके पीछे मायाचार अथवा लोभ किया जाय ? फिर तत्त्वज्ञान उत्पन्न करके इन कषायोसे हम दूर हो और अपने स्वभावकी ओर लगें, इसमे ही हमारा कल्याण है। इसके अतिरिक्त अन्य विधिमे हमारी भलाई नही है।

निमित्तको पाकर उपादानमें अपना प्रभाव व्यक्त कर लेनेकी कला—निमित्त और उपादानके इस प्रसगमे यहाँ तक यह निर्णय हुआ कि उपादान किसी पदार्थको निमित्त पाकर विकाररूप परिणमता है। वहाँ परिणमनेकी योग्यता तो स्वय उपादानमे है, किन्तु इस रूप विभावरूप परिणमनेकी कला उपादानमे निमित्तको पाकर प्राप्त की है। अब निमित्तकी ओर से देखा तो ऐसा जचेगा कि यह ही क्यो निमित्त हुआ, इस कार्यके लिए अन्य कोई पदार्थ क्यो नही निमित्त होता ? तो कल्पनामे यह बात आती है कि इस पदार्थमे निमित्त होनेकी शक्ति है, इस कारण यह पदार्थ निमित्त हुआ। जैसे घडेके बननेमे दड, चक्र, कुम्हार, ये सब निमित्त कहलाते हैं। उस समय खडे तो कुछ बालक भी हैं, गधा भी खडा भी खडा है, कुछ आने जाने वाले मुसाफिर भी खडे हो जाते है। ये सब क्या घडेके निमित्त कहलायेंगे ? न कहलायेंगे। तो अन्य पदार्थ निमित्त नही हैं और दंड चक्र आदिक ही उनके निमित्त हो पाते है। यह अन्तर कैसे पडा ? तो एक उत्तर यह आ जाता है कि दड चक्र आदिक पदार्थोंमे निमित्त होनेकी शक्ति है, अन्य पदार्थमे नही है। कुछ यह निर्णय हुआ कि निमित्तत्व शक्ति है, इस विषयमे आगे बतावेगे, पर यहाँ इतना मानकर आगे चर्चामे बढना कि किन्ही अनेक पदार्थोंमे निमित्त होनेकी शक्ति है, अन्य पदार्थोंमे नही है।

निमित्तमें उपादानको बलात्कार न परिणमानेकी शक्ति न माननेके कारणकी जिज्ञासा—अब एक जिज्ञासा इस प्रसगमे यह बनती है कि जब निमित्तमें निमित्त होनेकी शक्ति है तो वह निमित्त जबरदस्ती ही बलात्कार क्यो नही कार्य कर देता ? जब दण्ड चक्र आदिकमे घडेमे निमित्त होनेकी शक्ति है तो ये दंड चक्र आदिक घडेको बना क्यो नही डालते ? कई जगह तो देखा जाता है ऐसा कि जिसमे निमित्तत्व शक्ति है वह पदार्थ जबरदस्ती कार्य कर देता है। जैसे अग्निमे निमित्तत्व शक्ति है कि जलको गर्म कर दे तो अग्नि जब सामने होगी तो वह जलको गर्म कर ही देगी। या चुम्बकमे लोहेको खीचनेकी शक्ति है तो चुम्बकमे आकर्षण निमित्तपनेकी शक्ति है तो देखा यह जाता है कि चुम्बक लोहेको जबरदस्ती खीच लेता है। तो जैसे कुछ पदार्थोमे यह बात विदित होती है कि निमित्त उपादानमे कार्य जबरदस्ती कर देता है, यो ही सभी निमित्तोमें क्यो नही यह कला है कि वह उपादानमे कार्य जबरदस्ती कर दे, ऐसी एक जिज्ञासा बनती है।

निमित्तमें उपादानको बलात् परिणमानेकी शक्ति न होनेका समाधान—अब उक्त जिज्ञासाके समाधानमे प्रथम तो यह बात समझना कि अग्नि ही जलको जबरदस्ती गर्म नही करती, चुम्बक भी लोहेको बलात्कार नही खीचता, इस सम्बन्धमे और स्पष्टीकरण करेंगे। जब ऐसे पदार्थोमे जिनमे जबरदस्ती सी नजर आती है वे भी उपादानके कार्यका बलात्कार नही करते। तो अन्य निमित्तोके सम्बन्धमे फिर पूछना ही क्या है ? अग्नि पानी को गर्म नही करती। किन्तु अग्नि योग्य सन्निधानमे हो तो उसका निमित्त पाकर पानी स्वयं शीत पर्यायको छोडकर उष्णपर्यायमे आ जाता है। वस्तु कौन कितनी है ? यह बात दृष्टिमे रखते हुए यह समाधान सुनना होगा। पानी स्वय ही अग्निका सन्निधान पाकर शीत पर्यायको छोड़कर उष्ण पर्यायमे आया है। अग्निने पानीमे उष्ण पर्याय उत्पन्न नही की, इसी प्रकार चुम्बक लोहेको खीचता नही है। चुम्बकमे लोहेको खीचनेकी शक्ति है यह बात तब कही जाती है कि जब लोहा चुम्बकका निमित्त पाकर स्वयं खिच जाया करता है। तो लोहेमे चुम्बककी ओर खिच जाना निरखकर कहा जाता है कि चुम्बकमे लोहेको खीचनेकी शक्ति है। इस सम्बन्धमे दो बातें ध्यानमे लाये। चुम्बकमे तो है आकर्षकपने की शक्ति, जैसी कि जिज्ञासामे बात आयी थी और लोहेमे है आकर्ष्यशक्ति याने खिच जाय इस प्रकारकी शक्ति। अब इन दोनोका मुकाबलेमे विचार किया जाय तो यह बात अधिक स्पष्ट ज्ञात होगी कि लोहेमें खिच जानेकी शक्ति है। क्योकि क्रिया लोहेमें हुई। और चुम्बकमे खिचनेकी शक्ति है यह बात नही विदित हुई। तो वह औपचारिक बात है और लोहेमे आकृष्ट हो जानेकी शक्तिकी बात स्पष्ट बात है। इस प्रसंगको इन शब्दोमे कहा जायगा कि लोहा चुम्बकका निमित्त पाकर खिच जाता है। इसी बातको थोड़े शब्दो

मे संकेत भाषामे यह बनाया गया है कि चुम्बक लोहेको खीचता है। साकेतिक भाषा और स्पष्ट भाषा—जैसे इन दो में अन्तर है। साकेतिक भाषाका जो अर्थ है वही संकेत न बने ऐसी भी स्थिति होती है, पर स्पष्ट भाषाका वही अर्थ है और वही कहा गया है। तो चुम्बक लोहेको जबरदस्ती खीचता नही है, किन्तु चुम्बकका योग्य सन्निधान पाकर लोहा अपनी क्रियावती शक्तिके परिणमनमे चुम्बककी ओर खिचने लगता है। देखो सभी द्रव्य किन-किन क्रियाओमें परिणत हुआ करते हैं। कोई किसीकी परिणति नही कर सकता। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, पर वहा पर भी किसी द्रव्यने किसीमें क्रिया नही की। लोहे की क्रिया लोहेमें हुई। निमित्त चुम्बकका सन्निधान है। चुम्बकने लोहेकी और लोहेने चुम्बक की क्रिया नही की, किन्तु ऐसा ही योग है कि लोहेके खिचकर आगे चले जानेमें चुम्बक जैसा पदार्थ निमित्त होता है।

बलात्कार जैसा दिखनेमें आने वाली घटनामें भी निमित्तकी उपादानमें अकिञ्चित्करता—जहाँ कही बहुत अधिक बलात्कारकी बात भी दिख रही हो वहां रच भी बलात्कार नही है। जैसे किसी मल्लने छोटे मल्लका हाथ पकडकर फेंक दिया तो देखनेमे तो यह बात आयगी कि देखो इस बडे मल्लने छोटे मल्लको खीचकर फेंक दिया। इस स्थितिमे भी बडे मल्लने छोटे मल्लमे कोई क्रिया नही की। जो वस्तु जितनी है उतनी ही दृष्टिमें रखकर समझना है। हुआ क्या उस प्रसगमे कि बडे मल्लकी आत्माने अपनेमे उस प्रकारकी कषाय की, इच्छा की। और उस तरहका परिस्पद हुआ उसका निमित्त पाकर उसके शरीरमे वायु चली, उसका निमित्त पाकर शरीरके उस ढगसे अग चले। उस ढगसे चलते हुए अंगके बीच वह छोटा मल्ल था तो उन चलते हुए बडे मल्लके शरीरके अंगोका निमित्त पाकर छोटे मल्लका शरीर स्वयं अपनी उस क्रियावती शक्तिके कारण खिचा फिका दूर गया। एक पदार्थने किसी दूसरे पदार्थकी क्रिया नही की। यह वस्तुस्वरूप सर्वत्र अमिट है। कोई भी निमित्त उपादानमे बलात्कार नही करता, न अपना गुण देता है, न कोई अपना परिणमन देता, किन्तु योग्य उपादान निमित्तके सन्निधानमे एक अपनी विशेषता प्रकट कर लेते है। यह सब रहस्य केवल इस सूत्रमे पूरा समाया है कि 'निमित्त प्राप्य उपादान स्वप्रभाववत्' निमित्तको पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला हो जाता है। यह तथ्य व्यवहारकी अनेक घटनाओमें घटित कीजिए।

अपनी घटनाओंमें वस्तुस्वातन्त्र्यका उपयोग करनेका लाभ—वस्तुस्वातन्त्र्यके तथ्यका फायदा उठानेके लिए अपने पर बीतने वाली घटनाओमें इसको घटित कीजिए। मोह घटेगा। मुझमे कोई यदि प्रेम जगता है तो उसकी ही मलिनताकी योग्यतासे उस प्रकारके कर्मोदयका निमित्त पाकर किसी अन्य वस्तुको आश्रयभूत बनाकर मेरा प्रेम परिणमन मेरेमें ही उत्पन्न

होता है और वह परिणमन उत्पन्न होकर मेरेमे ही समाप्त हो जाता है। यो ही दूसरे लोग यदि ऐसा देख रहे है कि यह मुझपर बडा अनुराग रखता है तो वहां भी यही स्थिति है कि वे घरके स्वजन आदिक लोग अपनी योग्यतासे, अपनी कषायसे, अपनी इच्छासे अपने उस कर्मोदयका निमित्त पाकर रागपरिणमन कर रहे है। और उस रागपरिणमनमें इसका आश्रयभूत मैं बन गया हू। मैं नही बन गया, किन्तु उस प्रकारके उनके रागपरिणमनमे ये आश्रयभूत हुए है। सो यहा उपचारसे कहते है, यो कि हमारा आपमें बहुत अनुराग है। उनका परिणमन उन ही में है और उन ही मे समाप्त होता है। उनसे बाहरमे उनके परिणमनकी गति नही है, तब कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थसे कुछ भी सम्बंध नही रखता। वस्तुस्वरूपको देखो—सबका अपना अपना स्वरूपकिला अत्यन्त मजबूत है जो त्रिकाल भी किसीके द्वारा ढाया नही जा सकता। कितनी भी परिस्थितिया हुईं अनादिकालसे इस जीव की, निगोद जैसे भवमे गया, जहा ज्ञान कुछ है भी, यह समझमे नही आया, इतना जड़ बन गया। एक श्वासमे १८ बार जन्ममरण होना। भला सोचिये कि एक सेकेण्डमे करीब २३ बार कोई जन्म ले और मरण करे यह कोई व्यवहारमें लगती सी बात है क्या, पर होता है ऐसा। तो वह स्थिति एक जड जैसी स्थिति बन गई, किन्तु वहा भी चेतन जड नही हो सका और आखिरकार आज हम आप इस मनुष्यभवके रूपमे इतने बुद्धिशाली इस समय नजर आ रहे हैं। वही तो चेतन है जो कभी निगोद अवस्थामे थे, लेकिन कितने ही निमित्त सन्निधान हो और नैमित्तिक परिणमन हो जायें, फिर भी जो पदार्थ जिस जातिका है, जिस असाधारणभावको लिए हुए है उसका परित्याग कभी नही होता। तब यह बात आयी कि एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ त्रिकाल भी कोई सम्बंध अथवा अभेद नही है।

निमित्तकी उपादानसे बहिःस्थिति—व्यवहारमे यह बात देख रहे है कि आगने पानी को जबरदस्ती गर्म कर दिया। भले ही चूल्हेपर बटलोही रख दी और वहा यह सोचे कि अभी गर्म न हो तो किसीके सोचनेसे वहा रुक जायगा क्या? आग तो जलको गर्म कर ही देगी। और यह बात यो भी समझमें आ रही है कि आगके निमित्त बिना या आग जैसे संताप वाले पदार्थके निमित्त बिना जल गर्म नही होता, और चुम्बक बिना लोहेका खिचना नही होता, इतनेपर भी यह बात अमिट है कि निमित्त उपादानके स्वरूपसे बाहर ही रहता, अग्नि जलसे दूर ही दूर बनी हुई है। अग्नि जरा जलके निकट जाकर गर्म करनेकी चेष्टा तो करे, अग्नि बुझ जायगी। अग्नि जलमें आकर जलको गर्म करती है, ऐसा क्या कही होता है? यदि आग जलमे आये तो आग ही न रहेगी। तो देखो जलके स्वरूपसे बाहर ही तो रही आग, चुम्बक भी लोहेसे बाहर ही तो है, लोहा भी चुम्बकसे बाहर ही तो है, खिच जानेपर भी, मिल जानेपर भी एक प्रदेशमात्र भी लोहा चुम्बकमें नही गया, चुम्बक लोहामे

नही गया। तो निमित्त सब ही उपादानोंसे बाहर ही बाहर रहता है। हवा चली और पत्ते उडे तो उस प्रसंगमे भी हवा पत्तोमे रंच भी नही गई और पत्ते हवामें रच भी नही हैं। साधारणतया ऐसी बातोमे लोग शीघ्र विश्वास नही कर सकते। जब हवाकी इतनी तीव्र प्रेरणा है कि पत्ते नीचेसे उड़े उडे फिर रहे तो हवाने पत्तोको उडाया, यह कैसे गलत कहा जा सकता है? हवा पत्तोमे पहुची, यह बात गलत कैसे है? भले ही ऐसा नजर आये, मगर पत्ते कितने हैं, क्या स्वरूप है, कितने अणुवोका स्कध है, कितनेमे वह अपना निर्माण बनाये हुए है, और हवाका क्या स्वरूप है? इन दोनोपर दृष्टि देनेसे ऐसे कठिन निमित्त-नैमित्तिक सम्बंधके बीच भी पत्तोमे पत्ते ही है, हवामे हवा ही है। उडाता भी जाय तो हवा हवामे उड रही है, पत्ता पत्तामे उड रहा है। ऐसा वस्तुका स्वातंत्र्य है। जिस स्वातत्र्यको दृष्टिमे लेनेसे मोह ममत्व दूर हो जाता है।

मोहीकी अज्ञानचेष्टा—मोटे रूपसे भी देखो तो यहाँ लौकिक जनोसे, स्वजनसे, सतान से, भाईबधुसे प्रीति कर रहे है, उनके वे कुछ हैं क्या? मोह अवेरा ऐसा है कि लग रहा कि ये ही तो मेरे सर्वस्व हैं. यह ही तो मेरी सारी दुनिया है, ये मेरे भाई नही, ये मेरे बच्चे नही तो फिर कौन हो जायेंगे? और दूसरे कोई बात नही मानते, दूसरोपर हमारा अधिकार नही जमता तो दूसरे मेरे कैसे हो जायेंगे? ये ही है मेरे सब कुछ। तो भाई अनन्तानन्त जीवोमे से अटपट कुछ जीव घरमे आ गए। एक कल्पना यह करो कि ये न आये होते, इनके बजाय और कोई जीव आये होते तो क्या आपको यह अन्तर होता कि उनमे मोह न होता या कम होता? दूसरी बात यह है कि घरके लोग जो अधिकारमे रहना चाहते और रह रहे हैं वे अपनी कषायसे अपनी इच्छासे, अपनेमे शान्ति इस तरह आयगी, सुख यो मिलेगा, इन सबका हिसाब उनमे बना हुआ है। उन सबके कारण वे आपके अधिकार मे हैं, आज्ञामे है, बात मानते है। वस्तुत आपकी वे आज्ञा नही मानते, न आपके अधिकार मे है, न आपकी बात मानते है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमे, परिणमनमे, सत्त्वमे स्वतत्र है, किसीका किसी अन्यमे साथ रच सम्बध नही है।

निर्णयमें हित व अहित दोनोंके सम्पर्ककी संभावना—कोई निर्णय होता है तो वह निर्णय हितके लिए भी प्रेरणा दे सकता है और पक्ष पुष्ट करने के लिए भी प्रेरणा दे सकता है। उपादान और निमित्तमे परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है, यह निर्णय इस हितके लिए भी प्रेरणा देता है कि आखिर निमित्तनैमित्तिक सम्बंध ही तो कर लो। कर्ता कर्मभावका सम्बध तो नही। या अभिन्न हो जानेकी बात तो न कुछ रहे तो दोनो अपने अपने स्वरूपमे और दूसरेके स्वरूप से बाहर। यह बात भी निमित्तनैमित्तिक सम्बधकी चर्चा मे जानी जा सकती है। यह तो है हितके लिए प्रेरणा देने वाला निर्णय और यो भी पक्ष

पुष्ट किया जा सकता कि देखो—निमित्तनैमित्तिक भाव वैसा डटकर है कि निमित्तके बिना नैमित्तिक हो तो ले। निमित्तने ही तो सब कुछ किया। यो परका सम्बंध, परका कर्तृत्व वाले पक्षकी बात भी पुष्ट की जा सकती है। जो सज्जन है वे प्रत्येक परिस्थितियोमे अपनी चतुराई रखते हैं और जो मूढ है वे भली बुरी घटनाओंमें अपनी मूढता ही प्रकट करते है, तभी तो कहावतमे कहते है कि पंडित शत्रु भी भला, पर मूर्ख मित्र भी भला नही। जिसको हम मित्र समझ रहे, जिसको समझा कि यह मेरे हितमे काम आयगा उस मूढकी मूढता हमारी बरबादीका कारण बनेगी और जिसे हम शत्रु समझ रहे है जिससे हम कुछ भय किया करते है वह पडित, तो वह पडित कभी किसी समय बरबादीके निकट भी आ जाय तो वह भी हमारी रक्षा कर देगा। तो यह सब उपादानकी योग्यतासे ही तो सम्बंध रखता है।

परिणतिमें परिणन्ताकी कलाका दर्शन—निमित्त और उपादानमे परस्पर ऐसा निमित्त और उपादानमे परस्पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बंध होनेपर भी यह बात निर्णय मे रखिये कि है सर्वत्र उपादानकी कला। कुछ उपादान किसी पदार्थको सामने पाकर निमित्त पाकर किस प्रकारकी परिणतिसे परिणम जाय, यह बात उपादानमें योग्यतामे पड़ी हुई है। इतनी बात अवश्य है कि ऐसा कार्य रूप परिणमन होनेके लिए इस तरहका पदार्थ निमित्त होता है। तो निमित्तका करना धरना इस सम्बधमे इतना ही है कि वह सामने है, उपस्थित है। जैसे आप कुर्सीपर बैठ गए, तो कुर्सीने क्या कला की जो आपको बैठाला? वह तो ज्योकी त्यो पडी हुई है। आपमे यह कला है कि ऐसी बलिष्ट पुष्ट कुर्सीका आश्रय पाकर आप बैठ जाते है। तो जब कलाकी बात कही जायगी तो परिणमने वालेमे कला नजर आयेगी। निमित्त तो जिस रूप रग आकार शक्ति वाला है, स्वयंके लिए स्वयंकी सत्ता के लिए, बस उसकी कला उसमे उसकी है। और यह कि उपादान कैसे पदार्थका निमित्त पाकर किस रूप परिणम जाय, यह बात उपादानमें नही है।

कार्यके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारणोंमें परस्पर भिन्नता—किसी भी विभाव कार्यमें दो कारण हुआ करते है–निमित्त कारण और उपादान कारण। कार्य जिसमे होता है उसे तो कहते है उपादान कारण और उस उपादान कारणमे कार्य होनेके लिए जिन-जिन बाह्यपदार्थोंकी आवश्यकता हुई थी वे सब निमित्त कारण कहलाते हैं। तो निमित्त कारण का उपादान कारणके साथ कोई सम्बध है या नही? और क्या स्थिति है. क्या तथ्य है? इस बातको समझ लेना आत्मकल्याणके लिए कितना आवश्यक है, यह बात इस प्रसगसे समझ लीजिए कि निमित्त और उपादानमे कर्ता कर्मका सम्बध माना जाता है तो स्वस्वामी सम्बध भी मान लिया जायगा, एक दूसरेका कुछ है, यह बात भी उसके निश्चयमें आ

जायगी। तो मोहका टूटना फिर कैसे बन सकेगा? यदि हम आप अपनेसे सम्बधित घर द्वार कुटुम्ब मित्रजन समाज आदिक अनेक कार्योंमें सम्बंध मानें।

मैं करने वाला हू, इसने मुझे यो किया, मैं इसका मालिक हू, यह मेरी चीज है, यह बात जब हृदयमे बैठ जायगी तो मोह टूटनेका फिर साधन क्या रहा? और मोह जब तक रहेगा तब तक दुर्गति है, जन्म मरण है। कोई इसका सहाय नही है। पूछने वाला भी नही है। तो सकटोसे मुक्ति पानेके लिए मोहका टूटना आवश्यक है। और मोहके छोडने के लिए यह वस्तु स्वतत्रताका परिज्ञान करना अति आवश्यक है। भगवानकी भक्ति तो अच्छी प्रकारसे तैयार हुए हृदयमे प्रगतिका बीज बो सकेगी। अगर किसीकी कुछ तैयारी ही न हो, वस्तुकी स्वतत्रता समझे बिना चित्तमे वह तैयारी आ ही नही सकती। तो बिना तैयारी वाला पुरुष भगवद्भक्तिको पा कैसे लेगा? जो ज्ञानी हो, उस साधनामे तैयार बैठा हो उसके लिए फिर प्रभुभक्ति आदिक बातें प्रगतिमे सहायक बनेंगी, पर जो अज्ञानी जन है, मोही जन है, जिन्हे वस्तुस्वरूपका परिचय ही नही है उनके लिए तो उनका भगवान क्या है और उनकी भक्ति भी क्या है? वे सब बातें विचित्र होगी, संसार वाली ही होगी। तो हम आपको कल्याणके लिए वस्तुकी स्वतत्रताका परिज्ञान कर लेनेका बहुत महत्व है, उसी सम्बन्धमे यह चर्चा चल रही है कि उपादानके कार्यके लिए अनेक निमित्त हुए, इस पर भी निमित्तका कुछ भी उपादानमे पहुचता नही है।

वस्तुस्वरूपमें विशिष्टाद्वैतका दर्शन—देखिये कैसी विचित्र बात है कि यह उपादान अनुकूल निमित्तके सन्निधानमे स्वयं अपनेमे प्रभावित हो जाता है। बात सर्वत्र यही है। यदि कोई देहाती पुरुष किसी कार्यवश न्यायालयमे पहुचता है। जाना ही पडता है, प्रथम ही बार गया तो एक देहाती अथवा कम आने वाला बडे भय और शका सहित उस-कचेहरीमे प्रवेश किया, वहाँ एक तो अनजानी जगह, दूसरे-अफसरके सामने पहुचनेकी बात। सभी बातोसे उसका दिल काँपने लगा और काँपता हुआ, घबडाता हुआ वह पहुचा, तो यह बतलाओ कि उसकी घबडाहट या जो कुछ भी उसमे बात बन रही है वह क्या जजके असरसे बन रही है? जजने उसमे क्या डाल दिया? जजने उसमे अपनी किरण फेका या उसका कोई द्रव्य गुण उस देहातीमे पहुचा। तो परद्रव्यसे कुछ नही आया। यह ही स्वय अपनी योग्यतासे अपने आपमे अर्थ लगाकर, निमित्त बनाकर स्वय घबडा गया। इसने अपना धैर्य खोया। तो यह प्रभाव, यह असर, ये सब उसकी योग्यतासे हैं। निमित्त जरूर ऐसा है कि ऐसी योग्यता वाले पुरुषमे जो घबराहटकी बात बनी तो ऐसे साधनका जजका, बडी बातका सन्निधान पाकर हुआ है। तो देखना यहाँ यह है प्रधानरूपसे कि प्रत्येक वस्तु परिपूर्ण है और उसका अपने आपमे उत्पादव्ययध्रौव्य है, इस कारण एक वस्तुका दूसरी

वस्तुके साथ सम्बन्ध नही। विशिष्टाद्वैतका दर्शन करना है। कुछ लोग तो मानते है सर्वाद्वैत अर्थात् जगतमे जितने भी चराचर पदार्थ है सब एक ब्रह्ममात्र है, सब एक चीज है और सर्वाद्वैतपन तो नही है। किन्तु विशिष्टाद्वैतपन अवश्य है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपके प्रदेश मे जितना है उतना ही है। उसमें दूसरी चीज नही है। तो प्रत्येक वस्तु अद्वैतरूप हुई। अनन्तानन्त पदार्थ अद्वैतरूप है। किसी भी पदार्थमे किसी दूसरेका सम्बन्ध नहीं। तो इस विशिष्टाद्वैतके दर्शनमे मोहके रहनेकी गुञ्जाइश नही रहती।

एक पदार्थका अन्य पदार्थमें कुछ भी करनेकी अशक्यता—भैया! काम भी मात्र अपना यह पड़ा है कि मोह मिटे। दुनियामें ये सब चीजें अनादिसे हैं, अनन्तकाल तक रहेगी, कभी किसी परिणतिमे है, कभी किसी स्थितिमें है, उनका जो कुछ परिणमन है वह उनके उपादानमें होता है। यह जीव तो बाह्य पदार्थमें कुछ करनेके लिए असमर्थ है, कुछ कर ही नही सकता। इसकी तो मन जैसी बुरी दशा हो रही कि जैसे मन किसी भी विषयका भोग करनेमें समर्थ नही है, स्पर्शका भोग करेगी स्पर्शनइन्द्रिय, रसका भोग करेगी रसनाइन्द्रिय, गंधका भोग करेगी घ्राणइन्द्रिय, रूप देखनेका भोग करेगी चक्षुइन्द्रिय, शब्दका उपभोग कर्ण-इन्द्रिय करेगी। तो मनके वशका तो कुछ नही है। लेकिन इस उपभोग करती हुई इन्द्रिय को देखकर समझकर यह मन व्यर्थ खुश हो रहा है। तो इसी तरह मोही जन करनेमे कुछ समर्थ नही, परका क्या करेंगे ? पर पुण्यके अनुसार, विकल्पके अनुसार माफिक कुछ कार्य बन रहा है, तो यह मोही यहाँ व्यर्थ ही खुश हो रहा है। किसी भी पदार्थके साथ किसी अन्यका रच सम्बध नही है। यह इतनी बात समझमें आये तो अभी ही आनन्द मिले। आनन्दमय तो स्वरूप है इस जीवका। इसे आनन्द पानेके लिए कुछ यत्न नही करना है। वह तो स्वरूप ही है। अब यदि कोई अपनी स्वरूप महिमाकी ओर न आये, स्वरूपको भूल जाय तो परदृष्टि करेगा, बस क्लेश होने लगता है। क्लेशका उपाय मिटा लीजिए—आनन्द तो अपने आप ही है। उपाय करना है क्लेश मिटानेका। आनन्द पानेका उपाय करनेकी जरूरत नही। क्योकि वह तो हमारे स्वरूपमे ही मौजूद है। तो क्लेश हो रहा है सब मोह-जालका और मोहजाल मिट सकेगा इस वस्तुकी स्वतन्त्रताके ज्ञानसे। उसकी ही चर्चा इस प्रसंगमे चल रही है।

एकमें अन्यकी अकिञ्चित्करताका एक पौराणिक उदाहरण—सुकोशलने जवानीमे प्रारम्भमे ही घरद्वार सब तज दिया। उस समय लोग मना रहे थे कि अरे तुम्हारी स्त्रीके गर्भ है, बच्चा हो जाने दो, बडा हो जाने दो, राजतिलक उसका कर देना, फिर विरक्त हो जाना, लेकिन यह सब समझाना वहाँ व्यर्थ हो रहा। वहाँ वस्तुकी स्वतन्त्रताका इतना स्पष्ट भान है कि वहाँ इस अज्ञान अधकारकी कोई गुजाइश ही नही है। मैं इसका कुछ कर दूंगा

मैं इनको सुखी करता हूं, दुःखी करता हूं आदि, ऐसा सोचनेमें कोई निर्दयताका दोष नही है। मोही जन यो सोचने लगते हैं कि बडी निर्दयता की। ऐसी स्त्रीको ऐसे सकटमे छोड दिया, ऐसे घरबारको छोड दिया। यह कोई छोडनेकी आयु थी, अरे कुछ अपनी सतानपर दया नही आयी। लेकिन उस विरक्त पुरुषकी अन्त भूमिकाको तो देखो—वहाँ स्पष्ट प्रकाश है कि प्रत्येक जीव अपने उत्पादव्यय स्वभावसे ही उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। नवीन नवीन अवस्थाये उसमे उत्पन्न होती रहती हैं और उसमे पुण्य पाप कारण होता है। ऐसी स्पष्ट स्वतन्त्रताका भान है वहाँ तो कोई किसीके कुछ परिणमनको कर ही नही सकता। सब अकिञ्चित्कर है। ऐसे ज्ञानप्रकाशके बीच निर्दयताकी बात कहाँसे आ सकती है? निर्दयता भी रागद्वेषमे बनती है और दया भी रागद्वेषके बीच बनती है। दयाके लिए रागकी प्रधानता है और निर्दयताके लिए रागी जीवके द्वेषकी प्रधानता है, पर जहाँ रागद्वेष नही, स्पष्ट परिचय है उस जीवके निर्दयताकी बात नहीं कही जा सकती।

अपनेपर बीतने वाली घटनाओंमें वस्तुस्वातन्त्र्यके उपयोगके अभ्यासकी आवश्यकता— यदि यह अभ्यास बन जाय कि हम अपने दिनभरकी सैकडो घटनाओंमें उपादान निमित्तकी दृष्टि बनी रहे और समझते रहें कि यह तो इतना ही कार्य कर सका, इतना ही कार्य हुआ। एकका दूसरेमे कुछ कार्य नही गया, ऐसा अभ्यास करते रहें अपने जीवनकी रोज रोजकी घटनाओमे तो वहाँ भी आपका ध्यान है, धर्मसाधन है। धर्मसाधन चाहने वाले पुरुषका सर्वत्र धर्मसाधन होता है। कोई पुरुष बच्चेको गोदमे लेकर मोही आसक्त होकर खिलाता है तो कोई पुरुष बच्चेको गोदमे लिए हुए, उस बच्चेकी द्रव्य गुण, पर्यायोको जानते हुए सोच रहा है कि इसका आत्मा बिल्कुल भिन्न है, मैं आत्मा भिन्न हू, मैं इसका कुछ करनेमें समर्थ नही। बच्चेको यदि बुखार है, फुंसी है, तकलीफ है, उसमे मै कुछ भी करनेमे समर्थ नही हूँ। मेरा आराम, मेरा सुख, मेरा दुःख, मेरे पुण्य पापके अनुसार होता है और जगतमे जैसे अनन्त जीव हैं उसी भांति यह भी एक अन्य जीव है, ऐसी कोई धारणा बनाये, उस पुत्रको गोदमे लिए हुएकी हालतमें तो उसको रोकने कौन आयगा? धर्मसाधना चाहने वाले पुरुषको सर्वस्थितियोमे धर्मसाधनाका अवसर है, एक लगन की जरूरत है, एक आत्मदयाकी आवश्यकता है कि मेरेपर सकट जन्ममरणका है, यह टले तो सदाके लिए मेरा कल्याण हो जाय, ऐसी भावना यदि अपने आपकी दयाकी बन गई तो वह सभी जगहसे धर्मसाधनाकी बात प्राप्त कर लेगा। यह दया भी किसको होगी, जिसको कि वस्तुकी स्वतन्त्रताका कुछ परिचय हुआ हो। मैं हू, अकेला हूँ, अकेला ही जन्म मरण करता हू, इसके जन्ममरणके करनेमे और मिटानेमे कोई दूसरा साथी नही है, ऐसा भान जब स्वयके बारेमे हो तब तो यह दया उत्पन्न होगी कि मेरे जन्ममरणके सकट टलें।

थोडी यह दया चाहिए और इसके आधारसे फिर वस्तुकी स्वंत्रताका उपयोग चाहिए, फिर इसका हित होनेमे कोई विलम्ब नही है।

संसारसंकटोंसे छुटकाराकी विधि बननेपर छुटकाराकी अवश्यंभाविता—देखो—जो कार्य जिन साधनोसे बन जाता है वह बनता ही है। जैसे मिट्टीके गोल-गोल ढक्कनके भीतर बारूद वगैरह भरकर जो फटाके तैयार किए जाते हैं उनमें होता क्या है ? जैसे ही उसमे आग लगाई गई वह फूट गया। तो वहाँ बात यह है कि जिस निमित्त सन्निधानमे जिस योग्यताका पदार्थका जो हुआ सो हो गया। वह तो होकर ही रहेगा। अगर नहीं फूटता है वह फटाका तो समझिये कि आपको निमित्त जोडनेमे गल्ती हुई है या उसमे योग्यतामे कमी है। योग्यता भी हो और निमित्त सन्निधान भी हो और कार्य न हो, यह कैसे होगा ? जो बात जिस विधिसे होने वाली है वह उस विधिमे होती ही है। तो संसारके संकटोसे छुटकारा पानेकी विधि यह है कि अपने आपको केवल दृष्टिमे रख लेना। मैं केवल शुद्ध चैतन्य-प्रकाश मात्र हू, केवल चित्प्रकाश हू, अकेला हू, परिपूर्ण हू, अपनेमे पूरा ही सर्वस्व हू, ऐसी दृष्टि कोई बनाये और ऐसा ही उपयोगमे रहे तो कर्म उसके झड़ने ही पडेगे, कर्म दूर होंगे ही, मुक्ति उसे प्राप्त होगी ही। फिर क्यो न मिटेंगे संकट ? जिस विधिमे जो बात होती है वह उसमे होगी ही। तो अपने आपकी तैयारी अगर इस ढगकी होती है तो उसमे कोई संदेह नही रहता कि उसका कल्याण न हो। तब समझिये कि हम उत्कर्षमें आये। अपना उत्थान पाये, सदाके लिए शाश्वत शान्ति पाये, उसका उपाय यह है और कितना सुगम है ? अपने आपको समझानेकी जरूरत है। और ऐसी दृढ समझकी जरूरत है, फिर कोई कुछ बहकाये पर बहकावे न आये, इतनी दृढताके साथ वस्तुस्वरूपको समझने वाले पुरुषको संकट कहाँ होते हैं ? आनन्दका उपाय यहाँ है, दृष्टिमे है, ज्ञानप्रकाशमें है, लोग कुलपरम्परासे धर्मका साधन तो करते है, मगर चित्तमे यह बात रखे हुए हैं कि धर्मसाधनकी बात फोकट समयकी है, कभी कामसे समय बचे तो थोडा धर्म भी कर आयेंगे, मंदिर भी हो आयेंगे। यह बात नही आती कि मेरा खास काम है धर्मसाधन, जिसके बिना शान्ति नही मिल सकती। और फिर इसमे नही रहा जाता है तो अन्य काम करने पडते हैं। वे है फोकटके काम। करने पडते हैं, मगर इस जीवनमे मुख्य काम धर्मसाधनका है। तत्त्वज्ञान हो, उसका उपयोग हो, इस विधिसे अगर चलेंगे तो संकट क्यों न छूटेंगे ? छूटने ही होंगे। तो वस्तुके स्वतंत्र स्वभावके परिचयकी यह महिमा है, इसी कारण निमित्त उपादानके प्रसंगमे ये सब बाते लम्बी की जा रही है, उसे स्पष्टतया ज्ञानमे लिए जानेका यत्न किया जा रहा है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी निमित्तकी उपादानमें अकिञ्चित्करता—पदार्थोंके जब कोई परिणमन होता है तो वहाँ कोई निमित्त होता ही है, इस बातको सुनकर एक

जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जब निमित्तकी सन्निधि अत्यन्त आवश्यक रही तब फिर यह क्यो कहा जा रहा कि निमित्तका उपादानमे कुछ भी नही गया ? निमित्तके साथ औपचारिक सम्बन्ध भी हो, बाह्य संयोगमात्र सम्बन्ध भी हो तब भी सम्बन्ध तो है ही। किसी रूपका सम्बन्ध कुछ मायने तो रखता है सो इतना सम्बध तो उपादानमे कुछ करता ही होगा, ऐसी एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। समाधान उसका यह है कि निमित्तके असन्निधानमें तदनुरूप परिणमन नही होता और योग्य उपादानका अनुकूल निमित्तसन्निधानमे तदनुरूप परिणमन होता, इतनी बात भरको यदि निमित्तका कुछ करना कहा जाय तो कह लीजिये, परन्तु इससे यह बात नहीं सिद्ध होगी कि निमित्तका द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रभाव प्रदेश आदि कुछ भी उपादानमें जाता है। निमित्तके सन्निधानमे उपादान विपरिणत होता है सो यह उपादानकी कला है कि वह अनुकूल निमित्तको पाकर अपना प्रभाव प्रकट कर लेता है। वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध दोनोका निर्णय रखिये। निमित्तनैमित्तिक सम्बंध तो एक ऐसी चीज है जहाँ यह प्रतीत होता है कि निमित्त उपादानमे कुछ भी नहीं करता, और तथ्य यह है कि निमित्त उपादानमे कुछ नही करता, फिर भी निमित्त बिना कार्य होता नही। जब उपादानमे ही ऐसी कला पडी है कि वह इस इस प्रकारके निमित्तको पाकर अपनेमे कार्य बनायेगा तो इससे ही यह साबित हुआ कि निमित्तके अभावमे उस प्रकारका कार्य बन सका। इतनेपर भी चूंकि पदार्थ सब स्वतंत्र सत् है अतएव सबका अपने आप परिणमन होता है। कोई किसी अन्य पदार्थमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर्याय, शक्ति, असर कुछ भी नही सौंपता है। सर्वत्र उपादानकी ही विशेषता है कि वह किस प्रकारका कब कैसे सान्निध्य मे किसरूप परिणाम जाय ? कही निमित्त व्यवस्था अटपट नही है कि रोटी बनती है आटा से और कभी धूलसे रोटी बनने लगे। इससे जाहिर है कि निमित्तनैमित्तिक सम्बंध स्पष्ट है। लोग रसोई बनानेके लिए वैसे ही आरम्भ करते हैं, वैसे ही साधन जुटाते हैं और वैसी ही क्रिया करते है तो उसका एक नियत सम्बध रहा ना। तो निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है, निमित्तकी अनुपस्थितिमे उस उस प्रकारका कार्य नहीं बन सकता, तिसपर भी प्रत्येक वस्तु का स्वातन्त्र्य अपने आपमे बराबर है। किसी भी द्रव्यकी परिणतिसे, शक्तिसे, योग्यतासे कोई अन्य परिणमन नही करता। निमित्त उपादानके तथ्यके परिज्ञानसे मोहके टूटनेमे बडा बल व सहयोग मिलता है। जब वस्तु सर्वथा अपने आपमे स्वतत्र जची, किसीका किसीके साथ सम्बध नही प्रतीत हुआ तो इस जीवके मोह सहज सुगमरूपसे छूट जाता है। मोह अज्ञानका अंधेरा एक बहुत बडी विडम्बना है। जिसमे यथार्थ सूझता नही और आकुलतायें बहुत बन जाती है, वे सब उपद्रव इस तत्त्वज्ञानसे मिट जाया करते हैं।

उपादानशक्ति व निमित्तत्वशक्तिका विश्लेषण— उपादानमे अपनी योग्यता चाहिए

और उसके लिए इस प्रकारका निमित्त चाहिए। निमित्तमे निमित्तरूप होनेकी शक्ति है और उपादानमे योग्यता है। अब यहाँ दो बातें समझना है—उपादानमे उपादानकी शक्ति और निमित्तमे निमित्त होनेकी शक्ति। इसका भाव क्या है ? तो सुनो। निमित्तमे निमित होनेकी शक्ति है, ऐसा जो कुछ कहा गया सो निमित्त होने की शक्ति तो उपचारसे कही जायगी। और निमित्तमे स्वयं अपने आपमे जो योग्यता है, जो अपने गुणोंकी परिपूर्णता है वह उसका यथार्थ है। जैसे एक पुष्ट कुर्सीपर कोई मनुष्य बैठ जाता है तो मनुष्यके बैठनेमे वह कुर्सी निमित्त हुई तो क्या यह कहा जायगा कि कुर्सीमे मनुष्यको बैठालनेके निमित्तकी शक्ति है। कुर्सीमे निमित्तत्व शक्ति है। कहते तो है ऐसा लोग, मगर वह निमित्त उपादानका जो एक नियत क्रम है, सम्बन्ध है उसे समझानेके लिए कहते है। निमित्तमे जैसे कुर्सीमे रूप यथार्थ है, रस है, गंध है इसी प्रकार क्या उसमें मनुष्यको बैठालनेका निमित्त होने रूप भी कोई गुणपर्याय है। उसमे जो कुछ है सो है। अब इस ढंगसे देखते हैं तो निमित्त मालूम होता है, ऐसे तो वह कुर्सी न जाने कितनी बातोका निमित्त है ? केवल एक मनुष्य बैठने भरकी बात तो नही है और फिर मनुष्योमे भी सैकडो नाम वाले मनुष्य हैं और उन्ही सैकडो हजारोके बैठनेमें निमित्त है तो नाम लेकर भी निमित्त शक्तिके भेद बना लो। यह फलानेचदके बैठालनेमें निमित्तत्व रखता है, फलाने लालको बैठालनेमे निमित्तत्व रखता है। सो तो नही। तो निमित्त शक्तिकी बात तो औपचरिक है, पर उपादानमें जो योग्यता शक्ति है वह वास्तविक है। देखिये—जैसे उस कुर्सीमें रूप, रस, गध, स्पर्शके अविभागप्रतिच्छेद हैं, हीनाधिकता भी है। हल्का रंग, तेज रंग, हल्का ठंड, तेज ठंड, तो इस प्रकार उसमे रूप, रस आदिकके अविभाग प्रतिच्छेद हैं, यो क्या निमित्त शक्तिके भी अविभाग प्रतिच्छेद होते है ? नही। तब समझना चाहिए कि निमित्तत्व शक्ति औपचरिक है। वह ऐसे पदार्थोके लिए निमित्त हो जाती है, यह बात लेकर उसमे निमित्त शक्तिका उपचार किया है।

निमित्तत्वशक्तिकी प्रतिजीवीधर्मरूपता—अथवा यो कह लीजिए कि निमित्तत्वशक्ति प्रतिजीवी धर्म है। जिस धर्मके अविभागप्रतिच्छेद नही होते और धर्म नजर आते हैं तो मालूम तो होता है कि इस कुर्सीमें निमित्त होनेकी शक्ति है। कहीं किसी सूख रहे कपड़े में तो नही है। तो मालूम होती है निमित्तत्व शक्ति, मगर अविभागप्रतिच्छेद उसका नही है। तो जो धर्म ऐसा है कि अविभाग प्रतिच्छेदसे शून्य है, पर धर्म है, इसके माने बिना व्यवस्था नही बनती। वह प्रतिजीवी धर्म कहलाता है। और प्रतिजीवी धर्म जो कोई होते हैं वे किसीके सद्भावरूप होते है। जैसे घडेमें कपडेका नास्तित्व है। मानना तो पड़ेगा। क्या यह कहा जा सकता कि घड़ेमे कपड़ेका नास्तित्व नही है। नही है तो अर्थ है कि घड़ा

कपड़ा बन गया। तो घडामें कपडेका नास्तित्व है, पर उस नास्तित्वके अविभाग प्रतिच्छेद क्या ? अभी घड़ेमें कपड़ेका नास्तित्व कम है, अब अधिक है, ऐसा अविभागप्रतिच्छेद नही है, तब वह प्रतिजीवी धर्म है। लेकिन कपड़ेका नास्तित्व घटके अस्तित्व रूप है। यदि किसी अन्यके सद्भाव रूप हो, कुछ हो तो वह अनुजीवी धर्म नही है। तो निमित्तमें निमित्तत्व शक्ति प्रतिजीवी धर्म मानकर चलो तो अर्थ क्या हुआ कि उपादानमें जैसी कला है, उस रूप यहाँ निमित्तत्व शक्ति है। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि निमित्तत्व शक्तिके भी तो अविभागप्रतिच्छेद समझ में आते है।

देखो—कोई तेज गर्म आग हो और उस आगपर रख दो पानी भरी बटलोई तो वह १० मिनटमें तेज गर्म बन जायगा, और कोई कम गर्म आग है, और उसपर पानीके वर्तनको रखा जाय तो वह २० मिनटमें गर्म हो पायगा। तो देखो—यह आग किसी पानीको २० मिनटसे गर्म करनेका निमित्तपना रख रहा और कोई आग किसी पानीको १० मिनटमें गर्म बना देनेका निमित्तपना रख रहा तो निमित्तमें निमित्तत्व शक्तिके अविभागप्रतिच्छेद हो गए ना ? ऐसी शंका करना यों युक्त नही है कि वह यह निमित्तत्व शक्तिके आधारपर भेद नही है। किन्तु पानीमें ही स्वयं ऐसी योग्यता है कि वह वैसा निमित्त पाकर अपना काम करेगा। इस निर्णयपर यह बात समझना होता है। आग जब ज्यादह गर्म है तो आगमें ही मे उष्णताके अविभागप्रतिच्छेद अधिक है, उस समय यदि जल गर्म किया जाय तो वह जल्दी गर्म होता है, और जब आग कम गर्म है तो उसमे गर्मीके अविभागप्रतिच्छेद कम है तो यह अग्निमे ही बात हुई। तो वह निमित्तकी विशेषता रही, किन्तु निमित्तत्व शक्तिके अविभागप्रतिच्छेद कम अधिक नही, अथवा वहाँ जलकी ही विशेषता है कि वह कितनी गर्म आग हो तो कितनी देरमें अथवा कितना जल्दी गर्म हो, यह तो है आगकी तीव्रता और मन्दतापर विचार करें और कही आग उतनी ही है जो किसी जल किसी जलको जल्दी गर्म कर देती है और ठंडे जलको देरमें गर्म कर पाती है, तो यह भी जलकी योग्यता पर निर्भर है कि कितना गर्म या ठंडा योग्य जल किस निमित्तको पाकर, कितनी देरमें गर्म बन सके, यह बात निमित्त उपादानके बीच यथार्थ है पर निमित्तमे निमित्तत्व शक्ति ढूंढना और उसके अविभागप्रतिच्छेद ढूंढना ये रूप, रूप, रस आदिक शक्तियोंकी तरह नहीं विदित होते। जैसे किसी मनुष्यका यह घर है तो मनुष्यमे जो रूप रंग, लम्बाई, चौडाई है वह तो यथार्थ है, वह मनुष्यमें ढूंढनेसे मिल जायगी। उस मनुष्यको निरखते हैं तो रूप भी समझमें आयगा, आकार वगैरह सब ज्ञानमें आ जायगा, पर यह इस घरका मालिक है, यह बात उस मनुष्यमें नही पायी जाती। उस मनुष्यको शिरसे पैर तक निरखनेपर भी यह पहिचान न हो सकेगी

कि यह पक्के मकान वाला आदमी है या कच्ची झोंपडी वाला। तो जैसे उस सम्बंधको औपचारिक बात कह दी जाती है ऐसे ही निमित्तत्व शक्तिकी बात औपचारिक है। हाँ यहाँ बात कुछ विशेष है उस दृष्टान्तसे कि यहाँ केवल नियत सम्बध है कि कैसा पदार्थ किस निमित्तको पाकर किसरूप परिणमेगा।

निमित्तत्वशक्तिकी औपचारिकताका कारण—यहाँ तक यह बात समझमें आयी कि निमित्तत्व शक्ति काल्पनिक है और निमित्त हो जानेकी बात तथ्यभूत है। तो यह शका होना प्राकृतिक है कि जब कोई पदार्थ निमित्त होता है तो उसमें निमित्तत्व शक्तिको काल्पनिक क्यों कहा गया? निमित्त भी सच है तो उसमें निमित्त होनेकी शक्ति भी सच होनी चाहिए। बात यह है। अन्तर यों पड गया कि किसी भी निमित्तमे स्वय पदार्थकी ओरसे निमित्तपना नहीं है। जैसे कुर्सीको निरखकर नीचे ऊपर सब कुछ देखकर कोई उसमें निमित्तत्व शक्तिके निर्णय बनायेगा क्या? वह निर्णय बनता है निमित्त होनेकी विधि निरखकर। अत कोई पदार्थ न स्वयं निमित्त है और न स्वयं उसमें निमित्तत्व है, चीज है वह, उसका हिसाब लगाया जाता है कि इतनी बलिष्ट कुर्सी है, अमुक चीज है, इस इस काममे आ सकती है, यह उसका हिसाब लगाना हुआ। पर जैसे उसमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाये जा रहे हैं, सद्भावरूप हैं, इसी तरह उसमे निमित्तत्व शक्ति कोई सद्भावरूप है क्या, सो बात नहीं। तो जब प्रत्येक पदार्थ परका अकर्ता है तो स्वय उसमे निमित्तत्व भी नहीं है, देखिये—वह बात तो सत्य है ना कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका परिणमन नहीं करता। किसी अन्य पदार्थके परिणमनरूपसे नहीं परिणम जाता। तो अकर्ता हुआ। तो जब निमित्त उपादानका अकर्ता है परमार्थदृष्टिसे, तब फिर उसमें निमित्तत्व शक्ति कैसे पारमार्थिक कहलायगी, जिसके कि अविभागप्रतिच्छेद हो। इस कारण जब उपादान किसीको निमित्त करके परिणमता है तो वह निमित्त कहलाता है।

देखिये—इस प्रसंगमे बराबर यह बात ज्ञानमें आती होगी कि हम समझ तो रहे हैं कि यह बेन्च इतनी पुस्तकोंके रखनेमे निमित्त हो सकती है। समझ रहे है आप, पर हिसाब लगाकर समझ रहे हैं, युक्ति और गणित लगाकर समझ रहे है। इस बेंचमें रूप, रस, गंध, स्पर्शकी तरह निमित्तत्व शक्ति भी पडी हुई है और जिसके अविभागप्रतिच्छेद होते हो सो बात नहीं। कुछ ऐसा भी समझमें आयेगा कि यदि कमजोर बेन्च है तो यह इतनी पुस्तकोंके रखनेमें निमित्त हो सकती, कम पुस्तकोंको रखनेमें निमित्त होगी, ऐसा भी हिसाब लग जाय, इतने पर भी इस बेन्चमें रूप, रस आदिक शक्तियोकी तरह निमित्तत्व शक्ति सद्भावरूप हो, सो बात नही। उपादान जब स्वय जिस परिणमनके अयोग्य है तब उस परिणमनमें यह निमित्त भी नही हो पाता। हाँ इतनी बात अवश्य है कि उपादान

निमित्तको पाये बिना विभावरूप परिणम नही सकता । यह निमित्त और उपादानमे परस्पर किस प्रकार होनेका नियम है उसकी बात है, पर निमित्तभूत पदार्थमे रूप आदिककी तरह निमित्तत्व शक्ति नही है, यह तो परिणमते हुए द्रव्यकी विशेषता है कि वह किस निमित्तको पाकर अपनेमे किस प्रकारका विभाव बना ले ?

सांकेतिक वाक्योंका भाव—आजके इस प्रसंगमे यह बात दिखाई गई कि निमित्तभूत पदार्थ बिल्कुल पृथक् है उपादानसे । तब मेरा उससे सम्बन्ध कुछ नही है और इसी कारण उसमे निमित्तत्व शक्ति कोई पारमार्थिक नही है, किन्तु जब यह मेल है और ऐसी विज्ञान सिद्ध बात है कि इस प्रकारका पदार्थ उपादान अमुक पदार्थका निमित्त पाकर अमुक कार्य अपनेमे करेगा । इसको सक्षेपमें कहनेके लिए हम निमित्त पदार्थमे निमित्त शब्दसे वाक्य बना लेते हैं । कुम्हारने घडा बनाया, जीवने कर्मबन्ध किया, कर्मने सुख दु ख दिया, आदिक कितनी ही बातें बहुत जल्दी हम बोलते हैं और ज्ञानी पुरुष उसका अर्थ यथार्थ समझते है अज्ञानी पुरुष उसका अर्थ विपरीत करते हैं । अज्ञानी पुरुष तो जो कहा गया वैसा ही सीधा अर्थ लगाते है पर वह साकेतिक भाषा है । उसमे सीधा अर्थ नही बसा । जीवने कर्म बाँधा, इसका अर्थ यह नही कि जीवने कर्म बाँध लिया, कर्मबधनरूप जीव परिणम गया । जीव तथा कर्म एक हो गए आदिक अर्थ वहाँ इतना है कि जीवके कषाय भावका निमित्त पाकर जो कर्मरूप न थी ऐसे विस्रसोपचय कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणत हो गईं । देखिये, विनती पढते हुएमें जब ये शब्द बोले जाते कि अजन जैसे पापी पुरुषोको हे प्रभो ! आपने तार दिया, और विनतियोमे कभी तो यह हो जाता कि कर तो रहे महावीर स्वामीकी स्तुति, मगर कहते हैं कि हे भगवान ! तुमने सीताके अग्निकुण्डको जल बना दिया । अब देखिये सीता तो हुई थी महावीर स्वामीसे लाखो वर्ष पहिले । जब उस समय महावीर स्वामी थे ही नही तो अग्निकुण्डको जल कैसे बना दिया ? लेकिन भक्तिमें आकर भक्त ऐसा भी कह डालता है । वहाँ वीर प्रभु कहकर सिद्धार्थके नन्दन महावीरको न लेना किन्तु वीर जिनेन्द्रका जैसा स्वरूप है सबकी स्तुति हो रही है और फिर वहा किसी जिनेन्द्रने अग्निको जल बना दिया हो सो बात नही है, किन्तु सीताने जिनेन्द्रदेवका ध्यान किया, उससे सीताके परिणाम निर्मल हुए, सीता भक्तिरसमें डूब गई, पुण्यका उदय सामने आया, और कुछ निमित्त ऐसा मिल गया कि उसी समय जो देव कही जा रहे थे, उन्होने इस धर्मात्माका सकट टाला । अग्नि जल रूपमे हो गई । यह उसका भाव है । मगर इतने लम्बे भावको सकेतमे कहनेकी यही पद्धति है, इस कारण निमित्तकी बात कही जाती है । वस्तुत प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वतन्त्र सत् है ।

निमित्त उपादानके सम्बन्धके कुछ निर्णय—अब तक निमित्त उपादानके सम्बधमे

इतनी बातोका परिचय मिला कि उपादानमें कोई विभावकार्य होता है तो वह किसी पर-निमित्तके सन्निधानमे ही होता है। निमित्तके सन्निधान बिना विभावपरिणमन नही होता। दूसरी बात निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी निमित्तका द्रव्य गुण पर्याय प्रभाव कुछ भी उपादानमे नही जाता। तीसरी बात उपादानमे ही स्वयं ऐसी कला है कि वह निमित्तको पाकर अपनी परिणतिसे अपनेमे नवीन पर्यायका उत्पादरूप प्रभाव बना ले। चौथी बात—निमित्तके जो अनेक प्रकारके नाम दिए जाते है प्रेरकनिमित्त, कारकनिमित्त ज्ञायकनिमित्त आदि, वे किन्ही दृष्टियोसे उनके भेद हैं। उसके मायने यह नही है कि प्रेरक-निमित्त उपादानमे कुछ कार्य करता हो और अन्य निमित्त कम कार्य करता हो, कभी न करता हो। सभी निमित्तोमे एक ही सिद्धान्त है कि किसी भी निमित्तका, किसी भी परद्रव्य अन्यद्रव्यमे कुछ भी प्रदेश गुण पर्याय नही जाता। ऐसी चर्चाये चलते-चलते अभी यह चर्चा की गई थी कि किसी भी प्रकार निमित्त हुआ, तथ्य तो है यह और इसके फलमे यह बात सिद्ध होगी कि निमित्तमे निमित्तत्व शक्ति है। तो निमित्तत्व शक्तिके सम्बन्धमे यह स्पष्ट किया कि पदार्थमे स्वटके रूप रस आदिक शक्तियोकी तरह निमित्तत्व शक्ति नही है। वह तो एक पदार्थ है, पडा हुआ है। उपादानमे स्वय ऐसी बात है कि ऐसे पुष्ट निमित्त को पाकर उपादान अपना प्रभाव प्रकट करता है। फिर भी वह निमित्त है। सो निमित्तत्व शक्ति भी माननी तो होगी। तो उस निमित्तत्व शक्तिको उपचारसे कह दिया जाता है। परमार्थत कोई अविभागप्रतिच्छेद वाली निमित्तत्व शक्ति पडी हुई हो सो बात नही है।

औपचारिक निमित्तत्व शक्तिका भावार्थ—कोई इसमे ही सन्तोष कर ले कि चलो औपचारिक निमित्तत्व शक्ति रही, आखिर रही तो। उस निमित्तमे औपचारिक निमित्तत्व शक्ति मान लिया तो उसमे कोई हानि नही। उत्तर उसका यह है कि हाँ ठीक बात है, मान लीजिए औपचारिक निमित्तत्व शक्ति, कोई हानि नही, मगर उसका अर्थ इतना ही होगा कि अमुक पदार्थ इन इन कार्योके लिए निमित्त हो सकता है। इसका अर्थ यह न होगा कि जैसे पदार्थमे ज्ञानदर्शन रूप रस आदिक शक्तियाँ हैं उसी प्रकार कोई अनुजीवी निमित्तत्व शक्ति है। यह अर्थ न बनेगा। हाँ एक हिसाबकी बात युक्तिकी बात कि ऐसे पदार्थ ऐसे ऐसे कार्यो मे निमित्त होते है यह बात जरूर सिद्ध होती है, और औपचारिक एकत्व शक्तिकी बात भी यदि कहते हो तो ऐसी निमित्तत्व शक्तियाँ तो अनगिनती माननी पड़ेगी जिनमे कुछ तो कल्पनामे आ जाती, कुछ कल्पनामे नही आती। जैसे एक दीपक जल रहा रात्रिके समय तो उस जलते हुए दीपकके अवसरमे कितनी बाते हो रही? घरके लोगोको, मेहमानोको वह दीपक सुहा रहा है, चोरोको वह दीपक बुरा लग रहा है। क्योकि प्रकाशमे चोरोकी चाल नही चल सकती है। वह दीपक किसीको बुरा लग रहा, किसीको अच्छा लग रहा,

ऐसी क्या अनेक निमित्तत्व शक्तियाँ है ? किसीको बुरा लगने रूप शक्ति, किसीको भला लगनेरूप निमित्त शक्ति । ऐसी तो काल्पनिक शक्तियाँ अनगिनते मानी जायेगी। तो वस्तुत अविभागप्रतिच्छेद वाला, जिसमे कि उत्पादव्यय होता रहे ऐसी शक्ति कोई वास्तविक निमित्तत्व नामकी नही है, किन्तु वह उसका एक हिसाब है, एक विज्ञान है कि ऐसे ऐसे पदार्थ इन पदार्थोंके परिणमनमे निमित्त होते है ।

द्रव्यकर्ममें निमित्तत्वकी विशेषता और वस्तुस्वरूपके मूलसिद्धान्तका अभङ्ग—अब इस निमित्त उपादानके प्रसंगमे एक अंतिम चर्चा आ रही है कि बाह्यपदार्थोंमे निमित्तपना अथवा निमित्तत्वशक्ति नही है तो मत रहो लेकिन सभी पदार्थोंमें यह सिद्धान्त न लगाया जा सकेगा । द्रव्य कर्ममे तो निमित्तत्व स्वय है और इस दृष्टिसे बाह्यपदार्थोंकी अपेक्षा द्रव्य-कर्ममे कुछ विशेषता है । अमुक अनुभाग और प्रकृति वाला कर्म कितनी डिग्री कषायके होने मे निमित्त है, यह बात वहाँ पायी जाती है। और वहाँ ऐसा नही है कि आत्मा कषाय करे तो उस समयमे इस कर्मपर निमित्तपनेका आरोप किया जाय। अरे वह कर्म तो निमित्त रूप होगा, यह निश्चय बधके कालमे ही हो गया । जब जीवने कषाय की, कर्म बन्ध हुआ तो उस समय चार प्रकारका बध हुआ—प्रकृतिबध, स्थितिबध, प्रदेशबंध और अनुभाग बध । अनुभागबधका क्या अर्थ है ? उसमे अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद नियत हो जाते है। इतनी डिग्रीका फल देनेकी शक्ति इसमे है, उसीका नाम अनुभाग है । तो जब अनुभागकी बात उसमे बन गई तो वह निमित्त है, यह बात पहिलेसे ही सिद्ध हो गई । तो द्रव्यकर्मका प्रकृति, स्थिति, अनुभागका विभाग विपाक कालसे पहिले ही हो गया । आज किसी ने कर्म बाँधा और अरबो वर्ष बाद उसका फल मिलेगा, अरबों वर्ष बाद अनुभाग फलित होगा इस कर्मके उदयके कारण, लेकिन उसके पहिले निमित्तकी सारी व्यवस्था फिट हो गयी । यह इतने अनुभाग वाला है, इतनी स्थिति वाला है, इतने परमाणुपुञ्ज उदयमे आयेंगे । सब बात पहिलेसे बन गई है । ऐसे कुछ अन्य पदार्थोंसे इस कर्मनिमित्तमे विशेषता है, लेकिन मूल सिद्धान्त यहाँ भी भग नही होता । कर्मका द्रव्य गुण पर्याय कुछ भी तो जीव मे प्रवेश नही करता । जीव ही स्वयं ऐसी योग्यता वाला है कि ऐसा कर्मोदय होने पर जीव अमुक अमुक कषाय रूप परिणमे । रही निमित्तत्व शक्तिकी बात तो वहाँ भी निमित्तत्व शक्ति औपचरिक है, निमित्त होना औपचारिक नही है ।

निमित्तकी अनौपचारिकता व निमित्तत्वशक्तिकी औपचारिकता—जैसे कोई पुरुष कुर्सीपर बैठ गया तो उसके बैठनेमे कुर्सी निमित्त है, यह कोई औपचारिक बात नही है, तथ्यकी बात है कि वह कुर्सीका निमित्त पाकर बैठ गया । मगर यह निरखना कि इस कुर्सी मे अमुकको बैठालनेकी निमित्तत्व शक्ति पडी है यह शक्ति औपचारिक है । रूप, रस आदिक

की तरह उसमे निमित्तत्व शक्ति नही पडी है। हाँ हिसाब जरूर लग गया है कि इतनी लम्बी चौडी पुष्ट कुर्सी बैठनेमें निमित्त बनती है। इसी प्रकार कर्मबन्धमे भी जो कुछ बात बनी, अनुभाग बना, स्थिति बनी वह कर्मकी चीज कर्ममें बँधी और वे कर्मकषाय अनुभागमें निमित्त हैं, यह भी सिद्ध है, यह कोई उपचारकी बात नही है, लेकिन उसमे निमित्तत्व शक्ति पडी हुई है इसलिए कोई अलगसे शक्ति वहा अनुजीवी नही है, और वैसे तो कोई भी शक्ति विना परिणमे नही रहती। निरन्तर उसका परिणमन होता। रूपशक्ति है तो उसका व्यक्त रूप निरन्तर रहेगा। हरेसे पीला हुआ, पीलासे लाल हुआ, कुछ भी हुआ, न हुआ, वही रहे, प्रति समय उसमे परिणमन होगा ही। सो यदि ऐसी निमित्तत्व शक्ति है तो क्या उसका निरन्तर परिणमन होता है? क्या होता है? चीज है, खैर जिस विशेषताको लिए जो पदार्थ है वह उस विशेषतारूपमे है। तो निमित्तत्व शक्ति कोई पृथक्‌भूत नही। हाँ ऐसी ऐसी परिस्थिति वाला, ऐसे अनुभाग वाला कर्म इस प्रकारके कषायभावमे निमित्त होते है यह भी प्राकृतिक व्यवस्था है। जैसे कोई मजबूत कुर्सी बैठनेमें निमित्त हो सकती है। बस कुर्सी जो है उसका वर्णन है, उसमे निमित्तत्व शक्ति ही नही है, किन्तु निमित्त अवश्य है। ऐसे ही अनुभाग सहित भी कर्म है तो वह निमित्त है, उसका सही-सही बडा प्ररूपण भी चलता है। इन सब प्रकरणोमे हमें इस शिक्षापर आना है कि हमारी घटनामें आश्रयभूत अथवा काल्पनिक या साक्षात् जो भी निमित्त पडता है वे सभीके सभी पदार्थ उसके सत्यस्वरूपसे भिन्न है। मैं केवल अपने आपके असाधारण गुणमय हू, अपनी ही चेतनास्वरूप मात्र हू और हू ना, इस कारण निरन्तर परिणमता रहता हू। जैसी योग्यता है उसके अनुसार निरन्तर परिणमता रहता हू। अब इस मेरी दुनियामें किसी दूसरेका क्या हस्तक्षेप? किसी दूसरे पदार्थसे मेरा क्या सम्बंध? सबका स्वरूप, प्रत्येकका स्वरूप उस प्रत्येक की पूरी दुनिया है। उससे बाहर मेरा कुछ नहीं। यह है वस्तुस्वरूपका स्पष्ट परिचय। जो इस श्रद्धामें आ जायगा उसके ससारके सब सकट टल जायेंगे और जो इस श्रद्धासे च्युत है अतएव बाह्यपदार्थोमें अपने लगावका सम्बंध रखता है वह जीव इस ससारमे सकट सहना ही रहेगा।

स्वरूपपरिज्ञानसे उपलब्धव्य शिक्षण—हमको स्वरूपपरिचयसे यह ही शिक्षा लेनी है कि जैसे कोई धन कमाता है तो किस लिए? खुद खर्च करे, दूसरेके उपकारमे लगाये और सन्तुष्ट रहे, तृप्त रहे, और धन कमाकर रखे और यह ही काम न किया जाय और ममता बढाई जाय कि यह तो बच्चोके लिए है, हमे इसमे कुछ नही खर्च करना है, नही तो बच्चे लोग दुख पायेगे। तो धनार्जनका इतना श्रम जो किया है उसके केवल कष्ट ही कष्ट रहा फोकटका। यो ही समझिये कि हम धार्मिक ज्ञान करते है, ज्ञान किया, श्रम

करके वस्तु स्वरूपको जाना, अब जाननेके बाद उसको माने नही और उसको अपने आपमे घटित न करें, अपने आपमे उसका प्रयोगरूप न दें तो इस ज्ञानके श्रमको फोकट न कहा जायेगा तो इतना तो कहा ही जायगा कि इस समय सफल नही हुआ। हम अपने आपकी घटनापर विचार करते रहे कि इस प्रसगमे देखो मेरा परमे कुछ नही गया, परका मेरेमे कुछ नही आया, कैसा खेल बन गया कि यह मैं इस प्रकारके कषायोमे लग गया हू। परसे मेरा बिगाड, सुधार, परिणमन कुछ नही। मैं ही ऐसी योग्यतामे हू, मलिनतामे हू, अज्ञान मे हू, मैं स्वय राग इस प्रकारका बनाता हू और दु खी होता हू। इस ससारमे अपने आपके स्वरूपका सम्यक् बोध, सम्यक् श्रद्धान और स्वरूपमे रमण करनेका यत्न, यह तो मेरे लिए शरण है और इसके अलावा अन्य कोई भी बात मेरे लिए शरण नही है। मोहियोको यह साहस नही बन सकता कि चीज जब न्यारी है, छूटी हुई है, छूट जाना है, कुछ मतलब नही, कुछ सम्बंध नही, तो उसके विषयमे उपयोग फंसाये रहना, तृष्णाका रग रगे रहना, यह किसके लिए है ? इसे छोडें। जब भिन्न ही वस्तु है तो एक बार झटकेसे एकदम अलग होकर अपनेको स्वयं केवल निरख तो लें, यह साहस मोही अज्ञानी जनोसे नही हो सकता।

आश्रयभूत निमित्तके याथात्म्यपरिचयकी उपयोगिता— किसी भी घटनामे, निमित्त के प्रसगमे दो तरहके निर्णय है, और दो तरहके निमित्त काम आते हैं, व्यवहारमे आते हैं, एक तो निमित्तभूत वास्तविक और दूसरा आश्रयभूत। यह जीव निमित्तभूत कर्मोंको नही जानता, न उनपर दृष्टि होती और आश्रयभूत निमित्तपर इसका झुकाव है, दृष्टि है, अपनाते हैं और उसीमे ये दु खी होते हैं। खुदकी गल्ती, खुदकी योग्यता और खुदका दु खी होना, यह अपने आपकी करतूतसे चल रहा, और यह उपयोग उस बाह्यपदार्थपर राग और द्वेष रख रहा। अमुकने यो किया, अमुकका यो बर्ताव हुआ, अमुक ऐसा परिणाम रखता है, अमुक ऐसी त्रुटिमे है, इसने मुझे यह दु ख पैदा किया। अरे बाह्यपदार्थने हममे कुछ भी नही किया। हम ही स्वय कल्पनायें करके अपने आपमे दु खी हुए। सुख शान्तिके लिए इस जीव ने अनेक उद्यम किये। धन सग्रह करना, इज्जत बढाना, परिचय बनाना आदिक अनेक तरहके इस जीवने अपनी शान्तिके लिए उद्यम किये। मगर अपने जीवनमे देखो—जबसे जन्म हुआ इस भवमे, तबसे लेकर अब तक इतना उद्यम करनेपर भी किसी भी समय वास्तविक शान्ति नही मिली। जब बच्चे थे तब बच्चो जैसी कल्पनायें बनाकर दु खी होते थे, हमे यह चीज नही मिली, हमको यह दु ख है, हमारा यह अपमान है, अनेक बातें तब भी गढते रहते थे, दु खी होते थे और उस समम यह सोचते थे कि देखो यह बडे हैं, बाबा है, पिता है, चाचा है, इनसे हम जब पैसा माँगते हैं तब देते है, ये लोग हमसे बहुत अच्छे है, बहुत सुखी हैं। हमको इनसे पैसा माँगना पडता, इनसे आशा करनी पडती। ये हमे सुखसे,

लाडप्यारसे रखे तो इनकी मर्जी है। ये सब बातें क्या बच्चे लोग नहीं जानते? और उनके चित्तमे यह बात समायी हुई रहती है कि हमको इतना बडा होना चाहिए तब हमारी शान रहेगी। हम जैसे बच्चोंको तो ये बडे लोग जरा-जरासी बातोंमे डाँट देते, हाथ पकडकर झकझोर देते, हमपर हुकुम चलाते। हम भी इनकी भाँति बडे होते तो अच्छा था। बच्चे लोग तो यह सोचते है कि ये सुखी होंगे। ये ही बच्चे जब बडे हो गए तब सोचने लगे कि बचपन अच्छा होता है। यहाँ कितना कष्ट, कितनी चिन्तायें, कितने यहाँ वहाँके ख्यालात करने पडते। बूढे हुए तो बुढापामे वही चीज बढती है जिसके बढनेका जिन्दगीमे संस्कार बनाया हो। जवानीमे अगर तृष्णाका रग लगा हुआ तो बुढापेमे तृष्णा बहुत बढती है। जवानीमे ज्ञानका रग जमा हुआ हो तो बुढापेमे ज्ञानका प्रकाश बहुत अधिक फैलता जाता है। जो जवानीमे बात चाही हो उसीका रग बुढापामे फैलता है। फल क्या होता है कि अगर तृष्णामे जवानी व्यतीतकी तो बुढापामे तृष्णा बढती है। और सामर्थ्य जब नही है तो उसके सकट कई गुने बढते जाते है।

जीवनकी घटनाओंसे उपलभ्य मार्ग—भैया! जिन्दगीकी घटनाओको निरखकर कुछ तो चेतना है। समझना चाहिए कि जिस पद्धतिमें बहे जा रहे हैं ये लोग, वह पद्धति अंधकार है, विडम्बना है, उसमे शान्तिका नाम नही है। तो इस जीवने शान्तिके लिए अनेक प्रयत्न कर डाला। इस प्रयत्नमे दो चार जीवोको मान लिया कि ये मेरे हैं, तो अपना तन, मन, धन, वचन सब कुछ इन चार जीवोके लिए न्यौछावर है, ये ही मेरे सब कुछ हैं, और घरके उन चार जीवोके अतिरिक्त अन्य कोई पडौसी हो, समाजका हो, देशका हो, कोई हो, ये तो गैर हुए। इनके लिए अगर कुछ लग गया फिर तो उसका हिसाब है, इसपर इतना एहसान है, उनके लिए अगर कुछ शारीरिक श्रम लग गया तो यह एहसान है। गैर लोगोको तो ऐसा फेंका कि ये कुछ चीज नही हैं, मगर यह न समझें कि यह कितनी बडी विडम्बना है, कितना घना अधकार है कि इसमे स्वयकी बरबादी होती जाती है। तो दो प्रकारके निमित्त हैं अपने विभावपरिणमनमे, कषायपरिणमनमे। एक तो साक्षात् निमित्त, दूसरा आश्रयभूत निमित्त। तो ये सब धन सम्पदा वैभव लगें, ये सब आश्रयभूत निमित्त हैं। इनमे राग होता है, तो सामने जो बात मिली, जो कल्पनामे आया, बस उसका उपयोग बनाया और राग बढाया। तो बाह्यपदार्थोसे हमारा रच मात्र सम्बंध नही है। यह शिक्षा लेना है निमित्त और उपादानके यथार्थ स्वरूप समझनेसे।

आरोपित निमित्त व वास्तविक निमित्तका विश्लेषण—देखिये—ये बाह्य समागम आरोपित निमित्त कहलाते है, क्योकि इनके साथ नियत सम्बध नही है कि मूर्तिका दर्शन हो तो भाव सुधरे। क्योकि कोई विधर्मी द्वेषी उस मूर्तिको देखकर द्वेष करता है तो उस मूर्ति

का दर्शन करने वालेसे सम्बध तो न रहा कि यह अच्छा भाव पैदा करेगी । दर्शन करने वालेकी योग्यतापर बात है । यदि वह इस योग्य है, उसका कुछ भावस्वरूप है तो मूर्तिका दर्शन करके अपना भाव अच्छा बना लेते है । तब मूर्ति आरोपित निमित्त हुई, वास्तविक निमित्त नही हुई, इतना विशुद्ध भाव होनेमे । तब वास्तविक निमित्त क्या हुआ ? मोहनीय कर्मका क्षयोपशम । इसी प्रकार जब क्रोध, मान आदिक जगते है तो वहाँ भी यह बात निरखना है कि जिस जीवको देखकर, जिसकी प्रवृत्ति निरखकर क्रोध जगा है वह आरोपित निमित्त है, वास्तविक निमित्त नही है । वास्तविक निमित्त तो क्रोधप्रकृतिका उदय है । यह भी निमित्तनैमित्तिक सम्बध है । कही कर्मका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मेरे आत्मामे नही पहुचता ।

निमित्त उपादान सम्बन्धी इन सब परिज्ञानोका प्रयोजन यह किया जाय कि जब पदार्थ प्रति प्रसङ्गमे परस्पर भिन्न है तो मैं उनमे अपनायत क्यो करूँ, मैं अपनेको केवल देखूं । मैं केवल विशुद्ध चैतन्यमात्र हू और सत्वके कारण निरन्तर परिणमता रहता हू । यह मेरेमे तथ्य है । इसके आगे हम बढे, राग किया, कल्पना किया कि बस हम स्वय (अपने आप) फस गए । तो अपने आपको केवल निरखना अपने कैवल्य स्वरूपमे रत रहना बस यही मात्र एक शिक्षा लेना है और इस ही प्रकारका उद्यम करना है, तो इस उद्यमसे शान्ति मिलेगी । इसके अतिरिक्त अब तक जितने भी उद्यम कर डाले वे सब धोखा ही रहे । यह जीव जिस कषायभावके वश होकर । अपनी सुख खोकर परमे व्यासक्त होता है, अरे वह कषायभाव ही जीवका स्व नही है, वह तो नैमित्तिक भाव है । यद्यपि हुआ वह जीवमें ही, किन्तु जीवके सहज स्वभावके कारणसे ही हुआ हो, सो बात नही । जैसे दर्पणके सामने जो हाथ आदि पदार्थ आया सो उस हाथके आकार फैलावमे अनुरूप दर्पणमें छाया हुई । यद्यपि वह छाया दर्पणमे हुई, फिर भी दर्पणके सहज स्वरूपके ही कारण नही हुई । वह छाया नैमित्तिक है, उसका अन्वयव्यतिरेक हाथ आदिके साथ है जिसका कि सन्निधान पाकर छायारूप परिणमन हुआ है । दर्पणमें तो सहज स्वच्छता है । यो ही अपनेमें निरखे कि जो कषायभाव उदित हुआ है वह मेरा सहज स्वरूप नही है, नैमित्तिक भाव है, अनित्य है, नष्ट होने वाला है, मेरे स्वभागके विपरीत है, मलिन भाव है, क्लेशका हेतुभूत है । इस कषायभावसे मेरा लगाव नही होना चाहिये । मैं तो केवल चैतन्यस्वरूप मात्र हू । यो अपने कैवल्यपर उपयोग देनेमें ही इन सब परिज्ञानोकी सफलता है । हमारा कर्तव्य है कि अपनेको सत्य समृद्ध शान्त निराकुल रखनेके लिये अपने कैवल्य स्वरूपकी उपासना करें ।

।। अध्यात्मसहस्री प्रवचन द्वितीय भाग समाप्त ।।

अध्यात्मसहस्री प्रवचन तृतीय भाग

उपादानशक्तिके विवरणका उपक्रम—सप्तम परिच्छेदमे निमित्त उपादानका सम्बन्ध और परस्पर पार्थक्यके विषयमें वर्णन था। अब इस परिच्छेदमे उपादानकी शक्ति, योग्यता और उससे सम्बधित विषयोंका वर्णन होगा। इस विषयका परिचय पानेके लिए सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि उपादानमे कार्य होनेकी शक्ति किस-किस प्रकारसे रहती है ? कार्य होनेके मायने हैं उपादानमे जो अवस्था बनती है यह अवस्था याने परिणमन किसी पदार्थमे जो हालत बनती है वह हालत तो कार्य है और जिस पदार्थमें हालत हुई वह पदार्थ उपादान कहलाता है। उपादान शक्तिसे मतलब है उस पदार्थका जिसमे कि परिणमन होता है। तो यहाँ उस पदार्थमे परिणमन करनेकी शक्ति कैसे है, उसका वर्णन होना है। शक्ति कहो, योग्यता कहो, दोनोका इस प्रकरणमे एक अर्थ है। उपादान चूंकि सामान्यविशेषात्मक है, पदार्थ सभी सामान्यविशेषात्मक होते हैं तो पदार्थकी यह योग्यता, यह शक्ति भी सामान्यविशेषात्मक है। तब हमें योग्यताको दो प्रकारोमे जानना है कि पदार्थमे सामान्य योग्यता क्या है और विशेष योग्यता क्या है ? सामान्य परिणमनशक्तिको सामान्ययोग्यता कहते है और विशेष विवक्षित जिस परिणमनकी हम चर्चा रख रहे हों उसकी शक्तिका नाम है विशेष योग्यता। अथवा सामान्य योग्यताका नाम कहो सामान्य शक्ति, द्रव्यशक्ति और विशेष योग्यताका नाम कहो समुचित शक्ति पर्याय शक्ति। तो दो शक्तियोका यहाँ वर्णन किया जायगा—सामान्यशक्ति, विशेषशक्ति। सामान्य योग्यता, विशेष योग्यता अथवा कहो ओघ शक्ति, समुचितशक्ति या द्रव्यशक्ति, पर्यायशक्ति।

उदाहरणपूर्वक सामान्ययोग्यता और विशेष योग्यताका कथन—उदाहरणमे यों समझ लीजिए कि जैसे मिट्टीमें घडा होनेकी शक्ति है तो सभी मिट्टियोमे घडा होनेकी शक्ति है। और किसी भी हालतमे वह मिट्टी चाहे जमीनमे पडी हो, बाहर पड़ी हो, निकली हो, सूखी निकली हो, सभीमे घडा होनेकी शक्ति है तो वह कहलायेगी एक सामान्य योग्यता, पर विशेष योग्यताकी दृष्टिसे तो घडा होनेकी शक्ति उस मिट्टीमें है जो घडा होनेसे पहिलेकी जैसी हालतमे हो। जैसे मिट्टी रूपमे समझिये कि जो मिट्टी सान करके चाकपर रखी है और चाक घुमाकर उस मिट्टीको दबाकर कुम्हारने घडा बनाना शुरू किया तो घडा बननेसे पहिले जो हालत रहती है मिट्टी की, जिसे कहते है कुसूल पर्याय। एक छोटी कोठरी

जैसा आकार बन जाता है, उसके पश्चात् घडा बनता है। तो घडा बननेकी विशेष योग्यता उस कुसूल पर्यायवाली मिट्टीमे है। तो इसका नाम विशेष योग्यता है। तब जो परिणमन होता है उस परिणमनसे तुरन्त पहिले जो परिणमन होता है उस परिणमन वाली वस्तुको विशेष योग्यता कहा जाता है। सामान्ययोग्यता तो यो है ज्यो मेरू पर्वतकी जडके नीचेकी मिट्टी है उसमे भी घडा बनने की योग्यता है, मगर क्या उस मिट्टीमे कोई घडा बना देगा ? नही बना सकता। उसमे विशेष योग्यता नही हो सकती। पर सामान्य योग्यता है। यह सामान्य योग्यता नित्य है, सदा रहती है। सामान्य और विशेष दोनो योग्यता परिणमनका आधार बनते है। सामान्य योग्यता तो सदा है, इसलिए वह कभी हो, कभी न हो, यह कहने मे आयेगा ही नहीं जब सामान्य योग्यता वाले पदार्थमे विशेष योग्यता भी आ जाती है तब कार्य बनता है। द्रव्य परिणमनरहित कभी नही होता। इस कारण यह सिद्ध है कि वस्तु की मूल योग्यता, श्रोघशक्ति, सामान्य योग्यता यह नित्य है, सदा रहती है और इस सामान्य योग्यताका पदार्थमे तादात्म्य है। अनादि अनन्त स्वरूपसे वस्तुमे सामान्य योग्यता पायी जाती है। किसी प्रकारके पदार्थमे क्या कार्य बननेकी बात हो सकती है ? ऐसे प्रश्न के समाधानमे जो उत्तर हो उसमे सामान्य योग्यताका ज्ञान होता है। जैसे मिट्टीमे घडा बन सकता है और काठमे घडा नही बन सकता, अथवा पत्थरमे घडा न बनेगा, लेकिन अभी ये दोनो बाते ऐसी है कि कोई कहे कि पत्थरमे पत्थरका घड़ा बना दो, उसको छेद करके काठमे काठका घडा बना दो। तो और दृष्टान्त ले लो। जैसे वज्रमे घडा नही बन सकता, आकाशमे घडा नही बन सकता, जीवका घडा नही बन सकता। अनेक बातें ले लें तो मिट्टीमे घडा बन सकता है, यह है सामान्य योग्यताकी बात, पर जब मिट्टी सानकर तैयार कर चके पर रख दिया और उसकी कुठिया पर्याय बन गयी, उसके पश्चात् ही तो घडा बनेगा ना ? तो वहां विशेष योग्यता प्रगट हुई। ये सब मोटे दृष्टान्त दिए जा रहे हैं।

सामान्ययोग्यताकी नित्यरूपता व विशेषयोग्यताकी अनित्यरूपता—सामान्ययोग्यता का सही दृष्टान्त तो यो कह लीजिए कि पुद्गल परमाणुओमे घड़ा, कपडा आदि बननेकी सामान्य योग्यता है। वे ही पुद्गल परमाणु मिट्टी बने और वही मिट्टी वृक्ष बन गया। तो यो पुद्गल परमाणुमे पुद्गलकी पर्यायें जितनी हो सकती हैं सबकी योग्यता है, केवल घडा ही नही, काठ, पत्थर बज्र सभी कुछ बन जाय, ऐसी पुद्गलमे सामान्य योग्यता है। तो सामान्य योग्यता तो काठ पत्थरके रूपमें आये हुए परमाणुओमें घडा बननेकी योग्यता है, लेकिन विशेष योग्यता वहाँ नही आयी। तो सामान्य योग्यता नित्य है, सदा रहती है। और केवल सामान्यकी योग्यतासे कार्य नही बनता। जब वहाँ विशेष योग्यता भी आती है तब कार्य बनता है। तो सामान्य योग्यता नित्य है। जैसे कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है

तो उसमें सामान्य विभाग तो नित्य रहता है। विशेष विभाग अनित्य भी होता है। और गुणरूपसे किया हुआ विशेष विभाग नित्य भी होता है। यह योग्यताकी बात है। सामान्य योग्यता नित्य है और विशेष योग्यता अनित्य है। क्योकि विशेष योग्यता विशिष्ट पर्याय वाले पदार्थोमे बतायी गई है और वह विशिष्टता उस पदार्थमे सदा नही रहती है। जैसे लोधा कुठिया वाली मिट्टीमे तो घडा बननेकी विशेष योग्यता है। घडा बन गया, पक गया। क्या अब इस मिट्टीमे भी घडा बननेकी विशेष योग्यता है? नही है। वह विशेष योग्यता उस पर्यायके नष्ट होनेमे नष्ट हो गयी। तो विशेष योग्यता अनित्य हुआ करती है। तो कार्य होनेसे पूर्व पर्यायमे होने वाली योग्यताको विशेष योग्यता कहते है। वह विशेष योग्यता उस पर्यायिसे न पहिले थी, न बादमे रहेगी। जैसे—घडा बननेकी विशेष योग्यता उस कुसूल पर्यायमे आयी हुई मिट्टीमे है। वह विशेष योग्यता उससे पहिले न थी और कुसूल पर्याय मिटकर घडा बन जायगा तो अब घडा पर्यायमे भी घडा बननेकी विशेष योग्यता नही मिलती। तो यो विशेष योग्यता कार्यके पूर्व समयवर्ती पर्याय युक्त पदार्थमे है। उससे पहिले भी नही और उससे पश्चात् भी नही।

प्रागभावके सिद्धान्तसे भी विशेष योग्यताकी सिद्धि—दर्शन शास्त्रमे चार प्रकारके भेद बताये गए—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभावका अर्थ है कि कार्यका प्राक् अभाव, अर्थात् पहिले अभाव होना। जैसे तीन पर्यायें लो—कुसूल, घट और खपरिया। खपरियोंका नाम है कपाल। घट कहलाया घडा और घडा बननेसे तुरन्त पहिले जो हालत थी उसे कहते है कुसूल। हो जाता है ना मिट्टीका कुठिया जैसा आकार, और घडा फूटनेपर कपाल होती है, तो घडा प्रागभाव है, कुसूल अवस्थामे घडा नही है। घड़ेका पहिली पर्यायमे अभाव है। जैसे पहिली पर्यायमे घडेका अभाव है तो वह घटका प्रागभाव कहलाता है। घडा मिटनेपर जो कपाल हुई वह घटका प्रध्वंसाभाव कहलाता है। घटके नष्ट होनेपर जिस पर्यायमे घटका अभाव बना वह घटका प्रध्वसाभाव है। और घड़े का कपडेमे अभाव होना यह अन्योन्याभाव है। घड़ेमे कपडा नही, कपडेमे घड़ा नही, इस अभावका नाम अन्योन्याभाव है। और घडेमे जीवका अभाव—यह अत्यन्ताभाव है। त्रिकाल मे भी घडा जीव न बन सकेगा। तो इन चार प्रकारके अभावोमे प्रागभावकी बात इस समय कह रहे है। प्रागभावका अर्थ यह हुआ कि घडेसे पहिले होने वाली पर्यायमे घडेका अभाव होना सो घडेका प्रागभाव है कुसूल। अब यहाँ यह देखिये कि घडा कैसे बना? प्रागभावका नाश हुआ कि घडा बन गया। घडेका प्रागभाव है कुसुल और कुसूल पर्याय नष्ट हुई कि घडा बन गया। तो यो कह लीजिए कि घडेके प्रागभावका अभाव होनेका नाम है घडेका होना। यह दार्शनिक दृष्टिसे चर्चा चल रही है। अब यहाँ यह बात खोजना है, घडेका पहिली

पर्यायमे अभाव होना सो घडेका प्रागभाव है। तो घडेका अभाव कुसूलमे है तो घडेका अभाव कोशमे भी है। याने कुठिया पर्यायसे पहिले कोश पर्याय बनती है। एक पिण्ड जैसा और उससे पहिले स्थास पर्याय होती है। जैसे कि मिट्टी सान कर सनी सनाई धरी है और उससे पहिले मिट्टी की सूखी पर्याय है। तो जितनी पहिली पर्यायें है सभी पर्यायोमे घडा नही है। तो घडेका प्रागभाव सारी पर्यायें हुईं। घडा होनेसे पहिले जितनी पर्यायें मिट्टीमे हुईं वे सब प्रागभाव कही जाना चाहिएँ। और कहा वह गया कि प्रागभावका अभाव होनेसे घडा बनता है तो मिट्टीमे सूखी पर्यायका अभाव किया, सान लिया तो उसे घडा कह दिया जावे। क्योकि प्रागभावके मिटनेका नाम तो पर्याय कार्य है न, ऐसी एक शका उठायी जा सकती है। पर समाधान यह है कि इसको तो यह समझिये कि घडेका प्रागभाव केवल कुसूल पर्यायमे है। उस कुसूल पर्यायके मिटते ही घडा बन जायगा, अथवा पूर्व पर्यायमे प्रागभाव माना तो घडेका प्रागभाव घडेसे पहिले होने वाली अनन्त पर्यायें हैं। घडेसे पहिले होने वाली उन सभी अनन्तपर्यायोका व्यय हुआ। चूंकि जब घडा बनेगा उस बीच अगर पूर्ववर्ती एक भी पर्याय है तो घडा न बनेगा। इसका भी तात्पर्य यह है कि कुसूल पर्याय पूर्ववर्ती पर्यायोका अभाव होने पर ही आवेगी, सो निष्कर्ष यही तो हुआ कि कुसूल पर्यायके व्ययमे घट बनेगा, तो सामान्य योग्यता और विशेष योग्यताकी बात कही जाती है। इस अध्यात्म चर्चासे उस दार्शनिक चर्चाका यह मेल खाता है कि घडा बननेकी विशेष योग्यता कुसूल पर्यायमें है। जब तक मिट्टीमे विशेष योग्यता नही आती तब तक उस पर्यायके अनन्तर घडा पर्याय नही बन सकती।

सामान्य योग्यता और विशेष योग्यताके वर्णनसे दो तथ्योंका प्रकाश—जीवद्रव्यमे घटा लीजिए—ये दोनो योग्यताये। जीवकी जिस समय जैसी पर्याय होनी है; मानो सम्यक्त्व जगना है तो सम्यक्त्व उत्पन्न होने से पूर्व समयमें जो पर्याय जीवकी हुई उस पर्यायमें आये हुए जीव पदार्थमें विशेष योग्यता सम्यक्त्वकी कही जायगी। अतिम मिथ्यात्व है सम्यक्त्वका प्रागभाव क्योकि उसके ही नष्ट होते ही सम्यक्त्व होता है। पर सामान्य योग्यता जीवमें सदैव सम्यक्त्व की पडी हुई है। सामान्य योग्यतासे यह निर्णय होता कि सम्यक्त्व जीवके ही हो सकता है, अन्य द्रव्यके नही हो सकता और विशेष योग्यताका यह निर्णय है कि जीवमें इस समय सम्यक्त्व होगा इससे पहिले न होगा। तो उपादानमें सामान्य योग्यता और विशेष योग्यताके आधारपर परिणमन होनेकी बात समझी जा सकती है। तब यह जानना होगा कि विशेष योग्यता विवक्षित पर्यायसे पहिले नही रहती। किसी विवक्षित कार्य होनेकी योग्यता पदार्थमें किस समय आती है जब उस परिणतिके योग्य पदार्थ हो गया। तो सम्यक्त्व होनेके लिए एक दृष्टिसे देखा जाय तो वे सब पूर्व पर्यायें

कारण होती है जो सम्यक्त्व होनेके विरुद्ध साधनरूप नही किन्तु कुछ उत्तरोत्तर सहयोग रखने वाली और ऐसी स्थितिसे फिर ये सब कर्तव्य हो जाते है कि मदिरमे आयें, दर्शन करे, ध्यान करे, ज्ञान सीखे, सत्सग करे, ये सब कर्तव्य हो जाते हैं। कोई यहा यह कहे कि सम्यक्त्व होनेकी विशेष योग्यता तो इस प्रकारकी अवस्थामें है। इससे पहिलेकी बातें करनेकी क्या जरूरत है? सो इस प्रकरणसे यह जान लिया होगा कि ये सभी कर्तव्य किए जाने योग्य है, पर ध्येय जीवका इन सबसे हटनेका रहता है। तो सम्यक्त्वकी योग्यता जीवद्रव्यमे है, अन्य द्रव्यमे नही है। जो जीवद्रव्य कभी सम्यक्त्व पैदा न कर सकेगा अथवा कह लीजिए अभव्य जीव है, जिनके कभी सम्यक्त्व ही न होगा, उसके भी सम्यक्त्वकी सामान्य योग्यता पडी हुई है। अभव्य जीवमे भी सम्यक्त्वकी, मोक्षकी, रत्नत्रयकी सामान्य योग्यता है। सामान्य योग्यताके आधारपर द्रव्यकी जातिका विभाग किया जाता है। मोक्ष, सम्यक्त्व जीव के ही हो सकता है, जीवको छोड़कर अन्य पदार्थोंमे नही हो सकता। इस बातको बतानेके लिए जीवकी सामान्य योग्यता हुआ करती है। जैसे मोटा दृष्टान्त है कि मेरू पर्वतकी जड़ के नीचे रहने वाली मिट्टीसे घडा कभी बन न सकेगा। वह यहा कहाँ आयगी? उसका साधन क्या मिलेगा? लेकिन उस मिट्टीमे भी घड़ा बनानेकी सामान्य योग्यता है। सामान्य योग्यता एक द्रव्यके प्रकारसे बता देते है। किसी भी पर्यायमे कोई पदार्थ हो, किस जातिके पदार्थमे किस किस तरहकी परिणतियाँ हुआ करती हैं, इसका वर्णन सामान्य योग्यताके आधारपर होता है।

सामान्य योग्यताकी दृष्टिसे विशेष योग्यताका अभ्युदय—जीवद्रव्यमे उत्कर्षके लिए एक यह उपाय है या सम्यक्त्व की या शुद्ध परिणतिकी अवस्था पानेके लिए, योग्यता पानेके लिए यह उपाय है कि सामान्य योग्यता सम्पन्न उस जीवद्रव्यका अर्थात् जीव सामान्यका हम उपयोग करें, उसकी उपासना करें जीवत्व, यही सो सामान्य योग्यताका प्रतीक है। उस जीवत्वकी उस पारिणामिक भावकी हम उपासना करें, जहा सामान्य योग्यता पडी हुई है तो उस उपासनाके आश्रयसे जीवमे विशेष योग्यता वह प्रकट होती है कि जिससे शुद्ध परिणति बन जाती है। उपादानमे शक्ति है, योग्यता है। इसका वर्णन सप्तम परिच्छेदमे निमित्त-नैमित्तिक व्यवस्था बतानेके प्रसगमे कहा, उस ही योग्यताके सम्बधमे इस परिच्छेदमे विशेष चर्चा है कि पदार्थमे योग्यतायें किस किस ढंगसे पायी जाती है, कब होती हैं और कब असर होता है? तो अब तक इस सम्बधमे केवल दो बातें समझ लीजिए कि प्रत्येक पदार्थमे सामान्य योग्यता और विशेष योग्यता होती है। सामान्य योग्यता नित्य है और विशेष योग्यता अनित्य है। सामान्य योग्यता अनादि अनन्त है, विशेष योग्यता कार्य होनेसे पहिली पर्यायसे सम्पन्न पदार्थमें ही है, उससे पहिले और उसके बाद नही है।

उपादानमें योग्यताओंका विवरण—उपादानमे योग्यताओको कितने प्रकारसे समझना है उसके लिए ये तीन भाग बना लीजिये—एक सामान्य योग्यता, दूसरा विशेष योग्यता (पर्याययोग्यता) और तीसरा पर्यायविशेष योग्यता। सामान्य योग्यता तो पदार्थमे परिणमन की सदैव रहती है, और उसको इस प्रश्नके उत्तरमे समझ लिया जाता है कि यह पदार्थ, इस जातिका यह द्रव्य किन-किन रूपोसे पर्यायोरूप परिणम सकता है? जो इसका उत्तर आयगा यह सब शक्ति सामान्य योग्यतामे बात आयगी, और पर्याय योग्यता इस पर्यायमे रहने वाला पदार्थ किन-किन रूपोसे परिणम सकता है इन सब योग्यताओको कहते है पर्याय-योग्यता। जैसे मिट्टीमे घडा आदिक अनेक प्रकारके वर्तन या और कुछ भी बननेकी योग्यता है—यह तो हुई सामान्य योग्यता और घडा बननेसे पहिले जो उसकी कुसूल पर्याय हुई मृत-पिण्डकी, उसमे क्या क्या चीज बन सकती है? बडा घडा, छोटा घडा, डबले, दीपक, तस्तरी आदिक अनेक बाते बन सकती हैं। उन सबके परिणमनकी योग्यता है उस पूर्व पर्यायमे। इसको कहते है पर्याययोग्यता, और उससे बन क्या रहा हैं, उस प्रसंगमे किस रूप परिणमनेकी बात चल रही है उस ही रूप योग्यता है, इसको कहते हैं पर्यायविशेष योग्यता। पहिले जो योग्यताके दो प्रकारकी कही गई थी—सामान्य योग्यता और विशेष योग्यता तो विशेष योग्यतामे ये दोनो आ जाते है—पर्याय योग्यता और पर्यायविशेष योग्यता। अब एक व्यापक दृष्टिसे देखा जाय कि जब कोई स्वभावपरिणमन होनेको है तो स्वभाव पर्याय वाले द्रव्यमे योग्यता एक ही प्रकारसे काम करती है। जिस प्रकारसे शुद्ध परिणमा है उसी तरह वह शुद्ध परिणमता जायगा, ऐसी उसमे योग्यता है। लेकिन जब विभाव पर्याय बन रही हो जीवकी तो उसमे जितने प्रकारका क्षयोपशम हो, उदय हो, संस्कार हो उतने प्रकारसे परि-णमनेकी उसमे शक्ति है। अर्थात् विभावपर्यायके समय नाना प्रकारकी पर्यायें योग्यतामे बननेरूप परिणमनेकी योग्यता है और स्वभावपर्याय वाले पदार्थमे, जीवमें केवल एक ही प्रकारके परिणमन होते रहनेकी योग्यता है। यह पर्याययोग्यताकी बात कह रहे हैं। सामान्य योग्यतामें तो जो परिणमा था, जो परिणम रहा, जो परिणमेगा, जिस-जिस प्रकारसे परि-णाम सकता है वे सभी योग्यतायें मानी गई है, पर पर्याययोग्यताके सम्बन्धमें दो तरहकी योग्यता है। स्वभावपर्यायमें जो पदार्थ हो उसमें केवल एक शुद्ध स्वभावपरिणमनकी ही योग्यता है, और जो विकारपर्यायमे पदार्थ हो उसमें नाना प्रकारके परिणमनोंकी योग्यता है।

नाना योग्यतावान पर्यायमें परिणत पदार्थके प्रतिनियत परिणमन होनेका कारण—यहाँ एक जिज्ञासा हो सकती है कि किसी मलिन वस्तुमे, विभावपरिणत पदार्थमे अनेक प्रकारोसे परिणमनेकी शक्ति है तो वह अगले समयमे सभी प्रकारोसे क्यों नही परिणम

जाता ? जब विभावपरिणत पदार्थमें, मलिन संसारी जीवोमें जब नाना तरहकी कषायो रूप परिणमनेकी योग्यता है तो जिस किसी भी रूप अथवा सभी रूप क्यों नही परिणम जाता ? समाधानमे बात यह है कि जो विभावपरिणमन होता है वह औपाधिक होता है। उपाधिका निमित्त पाकर जो भाव होते है उन्हे औपाधिक कहते हैं। तो बाह्य उपाधि कोई निमित्तमे हो और अंतरंगमे विशेष योग्यता हो तो उस समय उसके अनुरूप प्रतिनियत परिणमन हो सकेगा। और वहा एक समयमें एक ही तो परिणमन होता है, सारे परिण मन नही हो पाते। योग्यता होने पर भी जैसा अनुकूल निमित्त प्राप्त हो उस प्रकारसे इसमें परिणमन होता है। तो यह परिणमन है उपादान योग्यताके अनुसार और उसकी कलाकी बात है यह कि अनुकूल निमित्तको पाकर वह पर्याय हो सकी।

अब यहा यह बात प्रश्नमे आ सकती है कि जब किसी भी पर्यायके बाद कोई एक ही पर्याय होनी है और वही नियत है तब उसमे अनेक योग्यताये क्यो मान ली जाती है ? प्रत्येक पदार्थमे प्रत्येक विकारी पदार्थमे आगे एक ही पदार्थके परिणमनेकी योग्यता मानो कि जो बात उसमे बनेगी। जो बात उस पदार्थमे अगले समयमे नही होती है उसकी योग्यता ही क्यो मानी जा रही है ? यह प्रश्न एक किसी एकान्त आश्रयमें हो सकता है। जहाँ यह निरखा जा रहा हो कि द्रव्यमे प्रतिसमय परिणमन होते ही हैं और जिस समय जो होना है सो हो रहा है तो उसके बाद केवल उस ही पर्यायकी योग्यता है, अथवा केवली ने, अवधिज्ञानियोने जिस समय जो पर्याय देखा है, जाना है उस समयमे वह पर्याय होगी। तो उसकी पहिली पर्यायमे केवल उस ही पर्यायकी योग्यता है। अनेक योग्यता माननेकी आवश्यकता नही है। यह प्रश्न है पर प्रथम पर्याय परिणत पदार्थमे निरीक्षण किया जाय तो यह विदित होगा कि इस तरहकी पर्यायमे रहने वाला पदार्थ आखिर किस किस प्रकार बन सकता है ? जैसे कोई पुरुष इगलिश, हिन्दी, सस्कृत, प्राकृत इन भाषाओ का विद्वान् है और पढ रहा है वह संस्कृतका पत्र, तो उस समय परिणमन तो यद्यपि सस्कृत विद्याका हो रहा है लेकिन संस्कृत पत्र पढनेके कालमे अनेक विद्याओके ज्ञानकी योग्यताका अभाव नही है, योग्यता सभीकी है, पर उपयोग एक ओर है। और जब कभी उस विद्वान्के बारेमे यह जिज्ञासा बने कि इसमें कितनी योग्यताये है और आगे किस-किस पर्यायरूप परिणम सकनेकी योग्यता है ? तो माना जायगा कि चारो विद्याओकी योग्यता है। और आगे की बात जाने दो, वर्तमानमे ही जैसे कि वह पढ रहा सस्कृतका पत्र, लेकिन योग्यता मानी जायगी चारो भाषाओकी और कदाचित् कभी किसी विद्याका पूरा विस्मरण हो जाय तो उस पर्यायमे वह योग्यता न रही, अन्यरूप बात बन गई।

उदाहरणपूर्वक विविध पर्याययोग्यताओंका कथन——यहाँ पर्याय योग्यताकी बात

कह रहे हैं। सामान्य योग्यतासे तो सभी जीवोमे सब विद्याओका ऐश्वर्य पडा हुआ है, पर वर्तमान पर्यायमे परिणत पदार्थके आगे किस पर्यायसे परिणमनेकी योग्यता है, इस दृष्टिसे कुछ सीमायें बन जाती है। तो जो विकार अवस्थामे अनेक योग्यताओकी बात है वह इसी प्रकार है जैसे कि इस विद्वानमे चारो विद्याओके उपयोग कर सकनेकी बात है, अब जैसे चारो विद्याओकी योग्यता तो है उस पुरुषमें, किन्तु सस्कृतका ही उपयोग परिणमन क्यो बन गया इसका ? तो उसका उत्तर यह है कि संस्कृतपत्र हाथमे आया और उसका आश्रय करके उसही को जानने समझनेका यत्न किया तो उसका उपयोग बन गया, परिणमन बन गया। ऐसे ही पर्याय योग्यतामें अनेक प्रकारके परिणमन की योग्यता है, लेकिन जैसा निमित्त प्राप्त हुआ उस प्रकारसे वह परिणम गया। जैसे कुम्हारके चाकपर मिट्टीका लोधा तैयार रखा है और उस मिट्टीके लोधेमे आप बतलाओ क्या क्या बननेकी योग्यता है ? तस्तरी, दीपक, डबला, घडा आदिक सभी बन सकते है। उसमें कुम्हार जिस तरहका व्यापार करता है, जितना ऊँचा नीचा हाथ चलाता है उस प्रकारके व्यापारका निमित्त पाकर मिट्टीमें उस ही प्रकारका फैलाव बनता है और उस प्रकारका बर्तन बनता है। योग्यताये अनेक होकर भी अनुकूल निमित्तके अनुसार वहा परिणमन हुआ। देखिये— सर्वतोमुखी ज्ञान करना है तो निरखिये किसी बालकमें किस-किस प्रकारसे बननेकी योग्यता है ? वैसे देखा यो जाता है कि कोई बालक डाकू (चोर) बन जाता, कोई झूठा बन जाता कोई अच्छा, सच्चा, बुद्धिमान बनता, तो होता क्या है कि मूलमें उस प्रकारकी उसकी योग्यता है और ऐसी कितनी ही योग्यताये हैं, पर जैसा सग मिला, जैसा वातावरण मिला, जैसा उपयोग मिला, उस प्रकारसे बन गया, इतने पर भी बालक बना है अपनी ही योग्यतासे, अपनी ही परिणतिसे। दूसरेकी परिणतिसे नही बना।

निमित्तनैमित्तिक भाव और उपादानयोग्यताके निरूपणमें उपलब्धव्य शिक्षा— योग्यताओके इस विवरणमे शिक्षाके लिए दो दृष्टियोमे शिक्षा मिल सकती है। किसी माँ का बालक बहुत अच्छा होनहार सुशील धर्मप्रेमी था, और २, ४, ६ माहमे किसी खोटे बालक का सग हो जानेसे उसमे व्यसन आने लगे तो कोई कहता है उसकी माँ से कि तेरा बेटा तो ज्वारी बन गया है तो माँ यो कहती है कि मेरा बेटा ज्वारी नही है। वह तो उस दूसरे बालकका असर है। अब देखिये माँ की कितनी विशुद्ध दृष्टि है कि वह अपने बालकको बुरा नही देखना चाहती और जिस अच्छे स्वभावमे वह बालक था उसही रूप अब भी मान्यता रख रही है। और जो ज्वारीपनकी आदत आयी है उसको दूसरे बालककी बता रही है। अब इसमे वे सभी बातें शिक्षाकी आ गई। मेरा बेटा यद्यपि इस समय ज्वारी हो रहा है लेकिन यह व्यसन मिटाया जा सकता है। उस बालकका सग छुटा दें तो वह व्यसन मिट

जायगा। और साथ ही वह माँ यह भी जान रही है कि उस ज्वारीके संगसे ज्वारी बना है लेकिन बना तो मेरा बेटा है। इसका बुरापन मिटाना है। यो दोनों तरहसे इस माँ को ज्ञान है, इसका विश्लेषण वह माँ कर सके या न कर सके, मगर दृष्टिमे दोनों बातें है। इसी प्रकार जो सम्यग्ज्ञानी पुरुष है उनकी दृष्टिमें दोनो बाते है, जो विकार आया है, विभाव आया है वह मेरे आत्माका नही है, यह तो कर्मोदय, बाह्य वातावरण इन सबका असर है। इन सबकी वह छाया है, अतएव यह विकार मिट सकता है। यह विकार मेरे स्वभावकी चीज नही है, और हुए ये कर्मोदय और आश्रयभूत पदार्थोके प्रसंगमे किन्तु इतने पर भी मैं ही तो बुरा हो रहा हूँ, मैं ही तो दुःखी हो रहा हूँ, इसमे बरबादी तो मेरी ही है। इसे मिटाना चाहिए। अब उस बालककी आदत मिटानेके उपाय तो दो प्रकारके थे—उस ज्वारी बालकका संग छुटा दिया जाय और किसी भले पुरुषोके संगमें बना दिया जाय। किन्तु यहा उपाय और भी सुगम है। तीन प्रकारोसे इन विकारोको हटाया जा सकता है। एक तो उन आश्रयभूत पदार्थोका सग मिटा दिया जाय जिनके बीच रहकर बुरे भाव हुए। दूसरे—किन्ही भले पुरुषोके संगमे अपनेको रखा जाय, पर ये दोनो बाते केवल ऊपरी उपाय है। उपाय तो वास्तविक यह है कि अपने आपकी ऐसी उपासना बन जाय कि ये कषाय भाव (विकार भाव) मेरे कुछ नही हैं, ये तो मेरी बरबादी ही करने वाले हैं। ये मेरे स्वभावमे नही है। मैं तो अकिञ्चन स्वभाव वाला केवल अपने चैतन्यस्वरूपमात्र हूँ। मेरे प्रदेश, मेरे गुण समुदाय, मेरा स्वरूप सर्वस्व यही मेरी दुनिया है। इससे बाहर मेरा कही कुछ नही है। इस प्रकार स्वभावकी उपासना बने तो यह विभावपरिणमन दूर हो।

उपादानमें भावी प्रतिनियत एक ही पर्यायकी योग्यता माननेपर पदार्थकी विशेषता का अपरिचय तथा व्यवस्थाका लोप—यहाँ बात चल रही है पर्याय योग्यताकी कि पर्यायमे योग्यताये किस प्रकारकी योग्यताकी पायी जाती हैं। एक तो सामान्य योग्यता, दूसरी पर्याय योग्यता, तीसरी पर्याय विशेषयोग्यता। विभाव पर्यायमे परिणत पदार्थमे किन-किन रूपोमे परिणमनेकी योग्यता है? इसका जो उत्तर होगा उसका सम्बध पर्याय योग्यतासे है और इस पर्यायके बाद यह पदार्थ कैसे एक पर्यायमे आयगा?

इस प्रश्नका जो उत्तर है वह पर्यायविशेषयोग्यतासे सम्बधित है। इस प्रकरणमे एक यह जिज्ञासा बन सकती है कि जब किसी पर्यायके बाद पदार्थमे एक कोई प्रतिनियत पर्याय होनी है, अनेक पर्यायें होनी ही नही हैं तो क्यो न उस पदार्थमे एक ही पर्यायकी योग्यता मान ली जाय? अनेक पर्यायोकी योग्यता क्यो मानी जाती है? उस कुम्हारके चाक पर पडी हुई मिट्टीमे कुम्हार जो बनायेगा, जैसा हाथ चलायेगा वैसा ही बर्तन बनेगा। तो उस मिट्टी लोंदेमे क्यो नही उस एक ही पर्यायकी योग्यता मानी जाती? अनेक योग्यतायें

क्यो मानी जा रही है ? बात इस सम्बधमे यह है कि यद्यपि किसी भी पर्यायपरिणत पदार्थ मे आगे कोई एक पर्याय् होगी, अनेक पर्यायें न होगी, और जिस विधानसे जो पर्याय होनी होगी उसे कोई विशिष्ट अवधिज्ञानी जान भी लेते हैं । लेकिन, इस दृष्टिसे उस पदार्थमे कितनी योग्यता है, क्या योग्यता है, यह तथ्य नही जाना जा रहा । यह तो एक सीधासा सुगम खेल जैसा ज्ञान बनता है कि बस जिस पर्यायमे आवेगा यह पदार्थ इसमे केवल उसी पर्यायकी योग्यता है । यद्यपि कोई पदार्थ आगे एक पर्यायमे ही परिणम जाती सो वह आयी, ठीक है, पर तर्क वितर्क उसमे योग्यताके तथ्यका वर्णन करेगे । उस ही प्रकारकी पर्यायमे रहने वाले भिन्न-भिन्न जगहके मिट्टीके लोधे, उनसे कही कुम्हार घडा बना रहा, कही दिया, अथवा उस ही लोधेमे उस ही प्रयोगमे अभी घडा बनाया, थोडी देर बाद दीपक बनाया, वहाँ जाना जाना है कि इस पदार्थमे कितनी प्रकारकी योग्यता है ? किसी आटेकी लोईको किसी भुने हुए आटे से कोई ६ इचकी रोटी पसारकर रोटी बनायेगा, तो इससे यह तो नही कहा जा सकता कि इस गुमे हुए आटेमे केवल ६ इच पसरी रोटी बननेकी योग्यता है । बुद्धिसे वहाँ निर्णय किया जायगा कि इसमे इतनी इतनी प्रकारकी चीजे बन सकती है, तो पर्याय योग्यतामे अनेक प्रकार के परिणमनोकी योग्यता पडी हुई है । अब वहाँ जैसा अनुकूल साधन मिले उस प्रकारसे परिणमन हो जाता है । यही अन्तर है स्वभावपरिणमन और विभावपरिणमनमे । स्वभाव-परिणमनके लिए निमित्त नही होते । केवल कालद्रव्य निमित्त है । सो वह साधारण निमित्त है, अतएव एक ही प्रकारका परिणमन चलता रहेगा, पर विभावपरिणमनमे निमित्त आश्रय-भूत अनेक आते है, इस कारण पर्याय योग्यतामे अनेक प्रकारसे परिणमनकी योग्यता होनेपर भी जिस प्रकारके अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाया उस प्रकार परिणम गया ।

प्रतिनियत पर्याय होनेपर भी विधिविधानका अनुच्छेद—देखिये यह है एक दूसरी दृष्टिकी बात कि उस पदार्थमे जो कुछ होना था आगे वही हुआ, और कुछ नही हुआ । और इस तथ्यको विशिष्ट ज्ञानी ने पहिलेसे जान रखा था । सो देखो जो जाना था वही हुआ, ऐसी बात यद्यपि है, लेकिन जहा योग्यताका उत्तर देना है तो वहाँ तो तर्क वितर्कसे उत्तर दिया जायगा । उस पदार्थमे कितनी प्रकारसे परिणमनकी योग्यता है और जो ज्ञानी पुरुषने जाना वास्तवमे पदार्थमे जो अगले समयमे परिणमन होना था हुआ । इस दृष्टिसे उस पर्यायमे केवल इस पर्यायके ही परिणमनकी योग्यता है । यह कथन है पर्याय विशेष योग्यताका, और वह निर्णय है केवल एक दृष्टिसे । इन्ही चर्चाओसे सम्बधित अनेक चर्चायें बन बैठती है । जिस दृष्टिमे केवल यह ही निर्णय करके बताया जा रहा हो कि जो पर्याय बनेगी, केवल उसही की योग्यता है, वहाँ निमित्तकी कोई चर्चा नही है और उस समय निमित्त जो पडे सो उसे आरोपित आदिक शब्दोमे बोला जायगा । यद्यपि बात यह भी तथ्य

की है कि अगले समयमे किसी भी पर्याय रूप परिणमन होना तो है। जिस रूप परिणमन होना है उस ही रूप परिणमन होता है, और ज्ञानी सत भी जान लेते है, लेकिन वह परिणमन भी यो ही नही हो गया। अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर उस उपादानने अपना प्रभाव प्रकट किया और यों उन सभी मंतव्योका समन्वय होता है। कामकी बात तो इतनी है कि मैं विकाररूप नही हूँ। विकारसे मैं हट सकता हूँ। अपनी स्वभावसत्ता रूप हूँ, यह शिक्षा लेना है और यह शिक्षा उन सभीके मंतव्योसे ली जा सकती है, पर इसके मतव्यके निराकरणका विरोधका हठ हो जानेपर और अपने ही आशयका हठ हो जाने पर उसका उपयोग ही बदल जाता है, अपनी बातकी सिद्धि वाला उपयोग रहता है, फिर इस शिक्षाका प्रयोग नही कर पाता कि मैं विभाव विकारोसे रहित केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ।

सम्भावनाविधिसे पर्याययोग्यताओंका अवगम—किस पर्यायके रहने वाले पदार्थमें कितनी प्रकारसे परिणमनेकी योग्यता है, ऐसी विशेष योग्यता जाननेका स्थूल उपाय सम्भावना है। जैसे कुम्हारके चाकपर चढी हुई मिट्टीमे सम्भावना की जाती है कि यदि कुम्हार सकोराके आकारके अनुरूप हाथ चलाये तो सकोरा बन जाय, दीपकके आकारके अनुकूल हाथ चलाये तो दीपक बन जाय, घडेके आकारके अनुकूल लम्बा चौडा हाथ फिराये तो घडा बन जाय, परन्तु चलाया उसने एक सकोराके ही आकारके अनुकूल हाथ। तो वहाँ सकोरा की पर्याय हुई। तो इन सम्भावनाओसे पहिले यह जान सकेगे कि उस मिट्टीमे कितनी प्रकार के परिणमन हो सकनेकी आवश्यकता है? यह तो एक पुद्गलकी बात है और जीवमे योग्यता होती है जीवके भावरूपसे। जैसे--छद्मस्थ पुरुषोमे योग्यताक्षयोपशम रूप है और परमात्मा मे योग्यता क्षायिक लब्धिरूप है। पर्याय योग्यता अर्थात् किसी विशिष्ट पर्यायमे रहने वाले पदार्थमे कितनी प्रकारके परिणमन हो सकते है, ऐसा समझनेका उपाय सम्भावना है और एक दृष्टिसे तो कुछ भी एक पर्याय ही होगा ना। उसे ज्ञानियोने जान भी लिया, और जैसा होना है, निमित्त योग है उस रूपसे वह होगा। तो हुआ भी कोई एक प्रतिनियत परिणमन। तो पर्याय विशेष योग्यताकी दृष्टिसे उसमे प्रतिनियत पर्यायकी योग्यता है। यो योग्यताये तीन भागोमे हो गयी—सामान्य योग्यता, पर्याय योग्यता और पर्यायविशेष योग्यता।

विशेष योग्यता माने बिना व्यवस्थाका उच्छेद—अब इस प्रसंगमे एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि पहिले निमित्तनैमित्तिक भावका वर्णन किया था और अब भी झलक आती रहती है कि किसी योग्य निमित्तका सन्निधान पाकर उपादानमे योग्य कार्य होता है। तो जब निमित्त मिलनेपर कार्य सिद्ध होता है तब विशेष योग्यता माननेकी जरूरत क्या थी? समाधान--जरूरत यह है कि यदि विशेष योग्यता न मानी जाय और विशेष योग्यताके अभावमे निमित्त कारण मिलनेपर कार्य होने लगे तब तो सभी कार्य हो लेने चाहिएँ। क्या

वजह है कि मिट्टीसे कपडा नही बनता। मिट्टीमे घडे जैसे ही कार्य बन पाते है। निमित्त वहाँ जुटा दिया जाय—जुलाहा और उसके सारे हथियार (औजार) सब प्रकारके साधन जुटा दिए जाये तो भी उस मिट्टीसे कपडा वैसे बनेगा? अथवा बालूसे तैल भी कोई पेलने लगे, साधन तो जुटा दिया, कोल्हूमे पेल दिया, पानी छिडक दिया फिर उस बालूसे तैल क्यो नही उत्पन्न होता? तो विशेष योग्यताका अभाव है इस कारण ऐसा कार्य नही बनता। जीवके कल्याणके साधन भी समय-समयपर मिलते है। समवशरणमे अनेको जीव दिव्यध्वनि सुनते है, दर्शन करते है, फिर भी सबको सम्यग्दर्शन क्यो नही हो पाता? इसका कारण यह है कि उस प्रकारकी वहाँ विशेष योग्यता अभी न थी, जैसी पर्यायमे सम्यक्त्व पानेकी योग्यता हो सकती है। वह पर्याय न थी तब समवशरणमे जाकर भी दिव्यध्वनि धर्मोपदेश श्रवण करके भी सम्यक्त्व उत्पन्न नही हुआ। तो पदार्थमे विशेष योग्यता मानना ही पडेगा। अन्यथा सब अटपट कार्य होने लगेगे और कोई व्यवस्था न बन सकेगी। और न आत्महित का वहाँ कोई मार्ग मिल पायगा। जब पदार्थ अपने अपनेमे अपनी योग्यता लिए हुए हैं और अपनी ही योग्यतासे वे परिणमन करते हैं, यह विदित होता है तब वहाँ स्वतत्रताका भान होता है। अब उपादानमे योग्यता तो हो नही और कोई पुरुष कोई निमित्त उसमे कार्य कर दे जो कि असम्भव है, योग्यताके अभावमे निमित्त क्या कार्य करेगा? और यहाँ योग्यताका अभाव माना जा रहा है तो इसके मायने यह है कि पदार्थ ही नही है। असत् है। निमित्त किसी पदार्थका कार्य कर देता, वहाँ योग्यता माननेकी आवश्यकता नही है। नही है योग्यता तो ऐसी स्थितिमे पदार्थ असत् कहलाया। वहाँ है ही क्या? शक्ति नही, स्वभाव नही, तब फिर पदार्थ ही क्या रहा? तो यो असत्का उत्पाद होने लगेगा। तो विशेष योग्यता माने बिना कोई व्यवस्था बनती ही नही है और न उसमे कोई हितका मार्ग झलकता है।

कल्याणके लिये अनिवार्य मोहपरिहारके यत्नमें उपादानस्वातन्त्र्यके अवगमकी अनिवार्यता—जीवको अपने हितके लिए चाहिए मोहका परिहार। जिसके तनमे, धनमे, जनमे किसी भी प्रकारका मोहका अश रहेगा तो लेशमात्र मोह रहनेपर भी सम्यक्त्व नही होता, और सम्यक्त्व बिना सारा यह जीवन निष्फल है। यो अनन्त बार जन्म लिया और जिन्दगी मे रहे, उस जिन्दगीमे अनेक प्रसग आये। मोह भी वहाँ बहुत किया। तत्त्व क्या निकला? आज अपने लिए अनन्तभवोकी बात कुछ भी न रही। जो जो प्रसग आये। तो इसी प्रकार इस जीवनमे भी जो प्रसंग आ रहे है वे क्या रहेगे? कुछ भी नही। तो कल्याण है मोहके हटानेमे। जहाँ मोह दूर होता है वहाँ चित्तमे उदारता उत्पन्न होती है। वहाँ तृष्णाका रग नही रहता और ऐसी स्थितिमे उस चित्तमे ऐसी पात्रता होती है कि वह अखण्ड निज चैतन्यस्वभावका अनुभव कर सकता है। स्वका अनुभव करनेके समान जगतमे और कोई वैभव

नही। एक मात्र यह ही सारभूत है कि अपने ज्ञानमे अपना ज्ञानस्वरूप बस जाय। यह ही मात्र मैं हू अकिञ्चन स्वभाव वाला केवल ज्ञानानन्द मात्र एक ज्योति मात्र भावात्मक। अमूर्त यह मैं स्वयं हू, ऐसा दृष्टिमे रहे। इसके अतिरिक्त मेरा परमाणुमात्र भी नही है। इस श्रद्धामे बसने वाले पुरुषोका कल्याण होता है। यह बात मिलेगी उपादानकी स्वतत्रता जाननेसे। पदार्थकी आजादी समझनेसे, जिससे यह बोध होता है कि एक पदार्थका दूसरा पदार्थ कुछ भी नही लगता। यह बात तो तभी चित्तमे समायगी जब कि यह भी सुबोध बन रहा हो कि प्रत्येक पदार्थमे अपनी अपनी योग्यता है, अपना-अपना शीलस्वभाव है और अब यहाँ कोई योग्यता ही न माने तो वस्तुमे फिर माना ही क्या ? चीज क्या रही ? और वह तो एकदम परतत्र ही हो गया। हो नही गया, पर मोहमे ऐसे कार्य करे कोई तो मोहमे ही परतत्रताके विकल्पकी बात उत्पन्न हो जायगी। लो—निमित्त जो चाहे सो कर देता है, उपादानमे तो योग्यता नही होती है। बिना ही योग्यताके उसे निमित्त परिणमा देता है। तो यो निमित्तकर्तृत्व माननेपर फिर तो निर्मोहताका कोई अवसर न मिला।

कल्याणके लिये सम्यग्बोधकी प्रथम आवश्यकता—कल्याणके लिए, मुक्तिमार्ग पाने के लिए सत्य बोधकी आवश्यक्ता है। और सत्य बोधमे यह बात बन रही है कि प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण है, अखण्ड है, अपने आपमे अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्मसे तन्मय है, अतएव सर्व पदार्थ स्वतत्र है। किसीका कोई कुछ नही लगता। मेरा मात्र मैं ही हू। मेरी सारी जिम्मेदारी मुझपर ही है। मैं जैसे भाव करूँगा वैसा भविष्य भोगूंगा। भले ही हम कोई शुद्ध बोधके बलपर, शुद्धभावके बलपर पूर्वबद्ध कर्मोको भी निर्जीर्ण कर दें और उन्हे निष्फल कर दें; पर यह बात बहुत बडे पुरुषार्थसे सम्भव है। जब उपयोग स्वानुभवका रस पीता रहे तो उस स्थितिमे सामर्थ्य है ऐसा कि भव-भवके बाँधे हुए कर्म भी खिर जाते है। और ऐसा होना पडेगा; क्योकि जो भी कोई जीव मुक्त जायेगा उसके तो विकट अनगिनते भवोके बाँधे हुए कर्म पडे है, उनके खिरनेका उपाय यह ही सयम तपश्चरण, ध्यान, स्वका आश्रय है। तो यह ही बात एक सारकी है और यह मार्ग मिलता है तब जब कि हम पदार्थोकी स्वतत्रताका परिचय पा लें। पदार्थका सम्पूर्ण परिचय पानेके बाद उस पदार्थके सम्बन्धमे हमे जिस तत्त्वकी ओर अधिक दृष्टि देनी है उस तत्त्वपर दृष्टि पहुच सकती है। पदार्थ अपने असाधारण गुणरूप है और उसमे उसके अनुरूप परिणमन होनेकी योग्यता हैं। यहाँ यह हठ करना अनुचित है कि किसी विवक्षित पर्यायके बाद जो पर्याय होनी है उसकी ही योग्यता है। वस्तु है, उसका निर्णय है यह। हुई वही पर्याय प्रतिनियत जो होनेको थी, जो ज्ञानियोने जान लिया, किन्तु जब तर्क वितर्क द्वारा उसके निर्णय करने चलते हैं तो यह सब समझना होगा कि इस प्रकारकी पर्यायसे परिणत पदार्थमे ऐसे ऐसे

कार्य हो सकते है। होगा एक ही कार्य, मगर निर्णय और परीक्षण तो पूर्ण रूपसे किया जाता है।

प्रतिनियत पर्यायकी ही योग्यता माननेपर सत्कार्यवादके द्वारका उद्घाटन—यदि ऐसा ही एकान्त हठ किया जाय कि पदार्थमे केवल अगली पर्याय होने मात्रकी योग्यता है, अन्य कुछ नही है तो यो तो इसी लाइनमे बढकर सत्कार्यवाद आ जायगा। सत्कार्यवाद-सिद्धान्तानुयायी यह मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थमें उसमे जितनी परिणतियाँ होगी वे सबकी सबं सदैव हाजिर हैं। अभी भी हाजिर है। बस क्रम-क्रमसे एक-एक पर्याय मिटती जाती है। एक वटके दानेमे क्या-क्या भरा हुआ है? वटके बीजका एक दाना जो कि सरसोसे भी छोटा होता है, जो राईसे भी छोटा होता है उसमे क्या-क्या भरा है? सत्कार्यवादियोंके आशयके अनुसार उसमे एक पेड भी भरा हुआ है, क्योकि जब उस बीजको बो दिया जायगा तो पेड बन जायगा। तो उस दानेमे इस समय भी पेड भरा है और उस पेडमें करोडो फल पैदा होगे। वे फल भी उसमें भरे पडे हैं और एक-एक फलमें हजार-हजार दाने होंगे, वे भी भरे पडें है। और प्रत्येक दानेमें एक एक वट वृक्ष, फिर अनेक वृक्ष भी पडे, लो अब कितने मान लिए जाये? एक वटके दानेमे अनगिनते पेड भी घुसे हैं, फल भी पडे है, यह सत्कार्य-वादका सिद्धान्त है, और माना है कि वह परिणमन क्रमसे निकलता रहता है। निकलता क्या? जो था वही प्रकट हो गया। अब यहाँ निमित्तनैमित्तिक सिद्धान्तकी बात गौण हुई और व्यवस्था भी कुछ न रही। कैसे जगतके पदार्थोंके परिणमन होते हैं यह कोई व्यवस्था न रही। तो यो ही कोई माने कि बस पदार्थमे केवल आगामी पर्याय होनेकी एक ही योग्यता है, अन्य कुछ होता नही तो इसी प्रकार किसी प्रयोगमें सत्कार्यवाद जैसी झलक आ जाती है। लोकमें जो व्यवस्था बनी हुई है, वह इसी आधारपर बनी हुई है कि पदार्थमे कुछ सीमा को लिए हुए, उस जातिको लिए हुए अनेक परिणमन होनेकी योग्यता है। तब वहाँ निमित्त साधन सब जुटते है और उसमे कार्य होता है। तो पर्याययोग्यताके परिचयसे यह विदित होता है कि किस परिणतिमे पदार्थमे किस किस प्रकारके परिणमन करनेकी योग्यता है?

उपादानमें अनेक योग्यतायें होनेपर भी एक साथ सभी परिणमनोंका प्रसंग न आनेका कारण—यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब किसी पदार्थमे अनेक प्रकारके परि-णमन होनेकी योग्यता है तो उनमेसे कोई एक ही खास प्रतिनियत परिणमन क्यो होता है? सभी क्यो नही एक साथ हो जाते? या निमित्त कुछ भी जुटा हो, अन्य प्रकार परि-णमन क्यों नही हो जाता? इसमे अव्यवस्था बन जायगी यदि पदार्थमे केवल एक ही प्रति-नियत भावी परिणमनकी योग्यता न मानी जाय। उत्तर उसका यह है कि यद्यपि पदार्थमे अनेक प्रकारसे परिणमन करनेकी योग्यता है लेकिन शुद्ध पदार्थमे तो उपाधिके अभावके

कारण अपने ही सत्त्वके शीलके अनुरूप शुद्ध परिणमन होता रहेगा। और विभावपरिणमनकी बात यह है कि वह औपाधिक परिणमन है, उस समय जिस प्रकारका उपाधिसयोग होगा, जैसी बाह्यउपाधिका निमित्त पायगा उसके अनुकूल विभाव परिणमन हो जाता है। जैसे कोई कपडेका टुकडा पडा है उसमे गीला होनेका भी काम हो सकता और जलकर खाक होनेका भी काम हो सकता। अब अग्निनका संयोग मिला तो खाक हो जायगा, पानी का सयोग मिला तो गीला हो जायगा। वहा यद्यपि हुआ एक ही परिणमन, लेकिन योग्यता समझनेका आधार तो कोई विवेक है, वितर्क है, कोई कपडा खाक हो गया, कोई कपडा गीला हो गया तो सभी जगह देखकर निर्णय तो हुआ ना कि इतने प्रकारसे परिणमनेकी योग्यतायें है, पर हुआ एक ही परिणमन। सारे परिणमन एक साथ नही हुए। तो निमित्त-नैमित्तिक भाव और पदार्थका स्वातंत्र्य उपादानकी योग्यता— ये सब माननेपर एक भी शका नही रहती। किसी भी प्रकारकी शका किसी एक हठमे ही रहनेके कारण होती है। तो यह जानना कि पदार्थमे अनेक प्रकारसे परिणमनेकी योग्यता होनेपर भी जिसे उपादानने जैसे उपाधि बाह्यको निमित्त पाया उसका उस अनुरूप परिणमन हो गया।

निमित्तनैमित्तिक भाव होनेपर भी निमित्त उपादानमें कर्तृकर्मभावकी अनुपपत्ति—— निमित्तनैमित्तिक भावकी बात सुनकर चित्तमे यह शका न करना चाहिए कि इस तरह तो कर्ताकर्मभावकी बात निमित्त उपादानमे जुट जायगी। देखो ना—जैसा अनुकूल निमित्त मिला वैसा उसमे परिणमन हुआ। फिर तो कर्ता कर्मभाव एकका एक ही मे रहता है, यह व्यवस्था न बनेगी। ऐसी शंका न करे, कारण कि प्रत्येक पदार्थमे किसी भी परका कोई कार्य त्रिकाल भी नही होता। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपको लिए हुए है और अपने ही शीलसे परिणमन करता रहता है और इस प्रसंगमे निमित्तके साथ कर्ता कर्म भावकी बात भी नहीं आयी। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी कुछ चर्चा चली है कि उपादानमे अनेक प्रकारसे परिणमनकी योग्यता होने पर भी जैसा अनुकूल निमित्त प्राप्त किया उस प्रकारसे वह विभावरूप परिणम गया। इसमे निमित्तनैमित्तिक भाव और उपादानकी परिणमन स्वतंत्रता ये दोनो बाते निरखनी चाहिएँ, और ऐसा निरखने पर वस्तुका सम्यक् बोध बनता है। ऐसा होता ही रहता है। हम आप सबके साथ ये ही घटनाये चल रही है। कोई जीव पाप कार्य करता रहता है तो उसके उपादानमे उस उस प्रकारकी योग्यता बन जाती है। जो अपने आपमे समृद्ध रूपसे अनुभव नही कर पाता, जो अपने आपमे उत्कर्ष मार्गको नही निरख पाता, योग्यता बन जाती है ऐसी, जो जीव निष्पाप रहता है अपने आपके ज्ञानके उपयोगमे रहता है उस पुरुषके इतनी योग्यता है कि सर्व विशिष्ट चैतन्यमात्र निज तत्त्वका अनुभव करनेकी उसकी ऐसी योग्यता होती है कि जब उसके जी मे ऐसी बात

आयी, स्वानुभव कर लेता है, अन्यथा बड़े-बड़े यत्न करने पर भी मन नही लगता, स्वका उपयोग नही बन पाता। विशेष उलझनें न होने पर भी अत ऐसी योग्यता नही हो पाती कि वह स्वका अनुभव कर सके और एक ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष बाह्यमे अनेक उलझनें होने पर भी ऐसी योग्यता पा लेता है कि वह क्षणमे कुछ था और क्षणमे स्वानुभवी बन जाता है। जो चक्रवर्ती छह खण्डका धनी होता है, जिसमे उलझनेकी बातें अनेक सामने पडी रहती है, लेकिन जब अपनेको सबसे निराला जान लिया तो उलझनके समग्र उलझनें भी बहुत की और कुछ ही क्षण बाद उन उलझनोको एकदम चित्तसे निकालकर ज्ञानमात्र स्वमे अनुभवमे उसका उपयोग लग जाता है। तो पदार्थकी स्वतत्रताका परिज्ञान होने पर ऐसी ही शक्ति आत्मामे प्रकट होती है और वह बात तब बन पायगी ज्ञानमे कि जब पदार्थोंमें योग्यता स्वीकार करें, निजी समृद्धि सर्वस्व स्वीकार करे। जैसा कि वह अपने-आपमे परिपूर्ण है वैसा दृष्टिमे लें तो मोह दूर होगा और तब सर्व विविक्त निज ज्ञानानन्दस्वरूपका अनुभव प्राप्त होगा। बस आत्माका उत्कर्ष इसी पर्यायमे है, अन्य कुछ भी यत्न किए जायें, उनसे आत्माको कुछ भी सिद्धि नही है।

उपाधिसापेक्ष विशेष पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे पर्यायविशेषयोग्यताका निर्णय— यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि किसी भी पर्यायमे परिणत पदार्थमे कितने प्रकारके परिणमनेकी योग्यता पायी जाती है? इस सम्बन्धमे दो बाते रखी गईं। एक दृष्टिसे तो उसमे जितनी सम्भावनायें हो सकती है या उस उस प्रकारके अनेक पदार्थोमे जो जो परिणमन हुए विदित होते है उतनी ही योग्यतायें हैं। एक दृष्टिसे चूंकि उस पर्यायके बाद कोई एक पर्याय होनी है, जो भी होनी है उसी प्रतिनियत पर्यायकी योग्यता है। इस सिलसिलेमे यह बात मुख्यतया कही गई है कि किसी भी पर्यायपरिणत पदार्थमे यदि वह विकृत है तो उसमे योग्यताये नाना पडी हुई है। जिस प्रकार नवीन निमित्तका सन्निधान पाता है अपनी योग्यताके अनुसार उस प्रकारका परिणमन कर लेता है। तो यहाँ यह जिज्ञासा हुई कि इस बातको बहुत विस्तारपूर्वक कहा गया कि पदार्थोंमे परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है और उसके अनुरूप उपादानमे अपनी अनेक योग्यताओमे से उस योग्यतारूप परिणमन होता है तो क्या किसी अभिप्रायसे भी विविक्षित पर्यायमे किसी एक पर्यायमे एक ही विशेष योग्यता नही है? उत्तरमे कहते है कि हाँ है और वह है उपाधि सापेक्ष विशेष पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अर्थात् ऐसी-ऐसी उपाधिका सन्निधान हो और उसमे विशेष पर्यायपर ही दृष्टि दी जा रही हो तो उस आशयमे उस विविक्षित पर्यायमे केवल एक होने वाली पर्यायरूप ही परिणमनकी योग्यता है। देखिये यह सब स्थिति समर्थ कारणमे हुई। समर्थ कारण अगर है तो वहाँके बाद एक पर्यायरूप ही परिणमेगा

और उसकी ही योग्यता समझिये ।

समर्थकारणका परिचय—समर्थ कारण कहते है उसे कि जहाँ जितने कारण चाहिये कार्यके होनेके लिए वे सब कारण उपस्थित हो तो उस स्थितिको समर्थकारण कहते है । उपादान भी उस योग्यता वाला है और अनेक निमित्तोंका सन्निधान भी बराबर है और साथ ही प्रतिबधक कारणका अभाव है । जहाँ ये तीनो बातें जुट जाती है उस स्थितिको समर्थकारण कहते है । जैसे अग्निका कार्य जला देना है तो योग्य अग्नि भी हो और हवा चल रही हो, कोई ईंधन भी पासमे पडा हो, सभी निमित्त जुट गए और उस अग्नि की शक्तिको रोकने वाली औषधि न हो, प्रतिबधक मणि न हो तो अग्नि जलानेका कार्य करती है । इनमे से यदि एक बातकी भी कमी रह जाय तो वह समर्थकारण नही है । जैसे उपादान भी है, योग्य अग्नि भी पडी है और ईंधन न हो, वायु आदिक न हो, निमित्त सन्निधान न हो तो वह जला नही पाती । किसे जलायेगी ? निमित्त कारण भी सब हो, प्रतिबधकका अभाव भी हो, पर उपादान ही नही है अग्नि ही नही है तो जलानेका कार्य कहाँ होगा ? उपादान भी है, निमित्त सन्निधान भी है, किन्तु प्रतिबधकका अभाव नही है । जैसे अग्नि है, ईंधन है हवा भी चल रही है और वहाँ रखी हो प्रतिबधक मणि, ऐसी औषधि जिसके उपस्थित होने पर अग्निका असर नही चलता, उस समय ज्वलन कार्य न होगा । तो जहाँ ये तीनो बाते हो जायें, योग्य उपादान, अनुकूल निमित्त सन्निधान और प्रतिबधकका अभाव, तो उसे समर्थकारण कहते है । ऐसा समर्थ कारण होने पर वहाँ यह कहा जायगा कि इसमे इस ही पर्यायको उत्पन्न करनेकी योग्यता है ।

समर्थकारणसे कार्य होनेकी बात निश्चित होनेपर भी आत्महितके लिये स्वलक्ष्य रखनेके उपदेशका कारण—समर्थ कारणकी बात सुनकर कुछ लोगोके चित्तमे यह बात आ सकती है कि कार्य होनेके लिए तीनो कारणोका बराबरी का साधन है । यदि इन तीनोमे से कोई एक न हो तो कार्य नही बनता । तो जब तीनोका समुदाय कार्य करता है तब मोक्षमार्गमे चलनेके लिये उपादानके लक्ष्यपर जोर क्यो दिया गया । आत्माकी उपासना करो, योग्यतापर दृष्टि दो, स्वभावको लक्ष्यमें लो, ऐसे ही उपदेश क्यो दिए जाते है ? जब तीनो कारणोसे कार्य होता है तो बाकी दो कारणो पर भी तो दृष्टि रखना चाहिए । याने जैसे उपादान को लक्ष्यमे रखा जाता है इसी प्रकार निमित्तका भी तो ख्याल करना चाहिए । जैसे बज्र वृषभनाराच संहनन बिना मुक्ति नही, मनुष्यभव पाये बिना मुक्ति नही । तो इन संहननोका इस मनुष्यभवका भी तो ध्यान रखना चाहिए । फिर मोक्षमार्गमें केवल स्वके लक्ष्य करनेका ही उपदेश क्यो दिया जाता है ? समाधान उसका यह है कि भाई जीवका परिणमन और अजीवका परिणमन सामान्यतया दोनोमे एक ही अनुरूप

परिणमन होता है और इसका विरोध न करके जीवकी उत्कर्ष परिणतिके लिए अर्थात् यह जीव मुक्त हो जाये, जन्म मरणके संकटोसे छूट जाये, अपने स्वरूपमे रमे, मुक्ति प्राप्त हो, इसके लिए पुरुषार्थ यह करना होता है कि अपने आपके विशुद्ध चैतन्यस्वरूपको लक्ष्य मे लिये रहे। तो यदि किसी जीवकी दृष्टि परपदार्थके संग्रहमे है, निमित्तके संग्रहमे है, जैसे मनुष्यभवके बिना मोक्ष नही होता इसलिए मुझे मनुष्यभव मिले। मैं कब मनुष्य बनूं ? मनुष्य होने से मुक्ति हो जायगी। यो उसका मनुष्यभवपर ध्यान गया तो दृष्टि परकी ओर हुई ना। स्व तो चैतन्यमात्र आत्मा है और यह ध्यान कर रहा है भवका, शरीरका। तो परदृष्टि होने पर मुक्तिकी बात तो दूर रहो, स्वानुभूति तक भी नही हो सकती।

परदृष्टिमें आत्मविकासकी असंभूति----बज्रवृषभनाराच सहननसे मोक्ष होगा, इस कारण यह सहनन मिले। अब जिस चीजको चाहता है उस चीजका पूरा स्वरूप भी तो दृष्टिमे रहेगा। क्या है ? मजबूत हड्डिया होती है जहा उसे वज्रवृषभ नाराच सहनन कहते हैं। बज्रमय शरीर। तो किसी परकी ही तो दृष्टि रही। ऐसी परकी दृष्टि होनेपर स्वानुभव की भी परिणति नही हो पाती, फिर आत्मस्थिरताकी परिणति हो ही कहासे ? हर एक कार्यकी विधि अलग-अलग है। अजीव पदार्थोंमे तो उपयोग नही होता कि मिल करके किस स्थितिमे किस ढगकी चीज बने ? जो हो निमित्त, उसके अनुरूप योग्य उपादानमे कार्य होता रहता है। यहा मुक्तिके लिए यद्यपि किन्ही अशोमे कह सकते हैं कि वज्रवृषभनाराच सहनन निमित्त है, मनुष्यभव निमित्त है लेकिन इसकी दृष्टि रखें, तो ऐसा लक्ष्य करने वालेकी मुक्ति नही होती। तो निर्णयकी बात अलग है कि किन परिस्थतियोमे रहने वाला पुरुष मोक्ष जाता है ? पर स्व हितके लिए कर्तव्य यह है कि परका लक्ष्य हटाये और स्वका लक्ष्य रहे। जितने भी क्लेश हैं वे सब परके लक्ष्यसे हैं। हम समझते है कि यह जीव मेरा है, यह जीव गैर है। तो जिन्हे मेरा समझा उनके लिए हम बडी सेवायें करते हैं और जिन्हे गौण समझा उनकी सेवाका ध्यान नही रहता। इन दोनोसे निराला यह जीव है, बस इस लगावने इस जीवको दुखी कर रखा है। यदि चित्तमे यह बात जम जाय कि मेरा यह मैं मात्र सर्वस्व हू। मुझसे तो सभी निराले हैं, सभी एक समान हैं। यह दृष्टिमे आये तो इसको आकुलता नही हो सक्ती। इस जीवपर जो विडम्बना छायी हुई है वह सब है परके लगावके कारण। तो परका लगाय हितकारी नही है। हितकारी तो अपने अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूपमात्रका ध्यान है। तो स्वकी उपासनामें जो वैभव अपना है वह सर्व प्राप्त होगा, और परपदार्थकी उपासनामे कुछ भी प्राप्त नही होता। केवल विकल्प मचाकर दुखी ही रहता है। तो जिस पर्यायके होनेकी जो पद्धति है उस पद्धतिसे वह पर्याय बनती है।

ज्ञानपरिणमनविधि—ज्ञानका कार्य जानना है। इसका विशुद्ध कार्य जाननमात्र है,

तो विना रागके देखो इस ज्ञानमे स्वयं सर्व पदार्थ प्रसिद्ध हो जाते है। कोई राग करता है और राग करते हुए किसीको जान रहा है तो वहाँ दो बातें हो रही हैं—रागकी जगह राग चल रहे हैं, जाननकी जगह जानन चल रहा है। रागी पुरुष भी जानता है, पर जाननका जिस गुणसे सम्बन्ध है वहाँ उस गुणकी दृष्टिमे केवल स्वयं ही जानन चल रहा है। तो विना रागके स्वय सर्व पदार्थ प्रसिद्ध होते हैं। वहाँपर लक्ष्य पर है भी नही। तो एक स्वका लक्ष्य बनानेमे परका ख्याल नही रहता। और ज्ञानका केवल जाननमात्र कार्य होना रहे उसमे भी परका लक्ष्य नही रहता। स्वका लक्ष्य करना परका लक्ष्य छोड कर होता है तो किसी रूपमे परका लक्ष्य आया स्वलक्ष्य करनेके प्रयत्नमे। पर जाननमे तो किसी भी परका लगाव नही रहता। ज्ञानमे स्वय ऐसा स्वभाव पडा है कि पदार्थ प्रसिद्ध होता है। उसके साथ-साथ चारित्रमोहनीय, दर्शनमोहनीयका उदय होनेसे यह जीव लगाव भी रखता जाता है।

समर्थकारणकी स्थितिमें मोक्षमार्ग होनेपर भी ज्ञानीके स्वलक्ष्यके यत्नसे सफलता की प्राप्ति—यद्यपि समर्थकारणमे ये तीनो बाते आ गई। योग्य उपादान हो, निमित्त-नैमित्तिक सन्निधान हो और प्रतिबधक कारणका अभाव हो तो यह पद्धति तो न मिटेगी। मुक्तिके लिए भी यही पद्धति चलेगी। जैसा योग्य उपादान निष्कषाय जीव है और उसके कर्मोका क्षय भी हो रहा है और प्रतिबधक भी कोई नही है, मुक्ति उसकी होती है। यद्यपि ये तीनो बाते उस स्थलपर भी है लेकिन उस जीवको तो देखिये जो मुक्त हो रहा है। उसकी क्या स्थिति बन रही है? उसकी परिणति स्वध्यानकी है, परके लगावसे हटने की है। तो यही तो विशेष योग्यताकी बात है। यह विशेष योग्यता जो मोक्षमार्गमे लग रहा है जीव, तो मोक्षमार्गमे लगनेके लिए स्वरूपपरिणतिकी विशेषता है। जैसे उपादान योग्य होना चाहिए मुक्तिके लिए तो किस योग्य कि जो अपने लक्ष्यकी परिणतिमे बन रहा है, ऐसा ही जीव मोक्ष प्राप्त करेगा। अब उस समय निमित्त कारण हो रहा है, बन रहा है, कर्मोका क्षय हो रहा है तो ये सब बातें होती रहे किन्तु उनपर अगर जीवने उपयोग किया तो उनकी विशेष योग्यता मिट गयी। अब संसारमे रुलानेकी योग्यता बन जाती है। तो जो पद्धति है कार्य होनेकी उस पद्धतिका अभाव नही है। उस पद्धतिमे यह बात भरी हुई है कि योग्य उपादान होना चाहिए। योग्य उपादान मुक्तिके लिए क्या है? कौन है? जो अपने आपके स्वरूपके लक्ष्यमे रहता है। तो हितका कारण हुआ अपना लक्ष्य करना, परके लक्ष्यसे हटना, अपने उस ज्ञानानन्दमय स्वरूपमे रमना।

जन्ममरणके संकटोंमें पार होनेका उपाय स्वरूपरमण—जो भव्य प्राणी अत. साहस करके सर्वपदार्थोंकी आकुलताओंको त्यागकर अपने स्वरूपमे रमता है वह जन्ममरणके संकटो

परिणमन होता है और इसका विरोध न करके जीवकी उत्कर्ष परिणतिके लिए अर्थात् यह जीव मुक्त हो जाये, जन्म मरणके संकटोसे छूट जाये, अपने स्वरूपमे रमे, मुक्ति प्राप्त हो, इसके लिए पुरुषार्थ यह करना होता है कि अपने आपके विशुद्ध चैतन्यस्वरूपको लक्ष्य मे लिये रहे। तो यदि किसी जीवकी दृष्टि परपदार्थके सग्रहमे है, निमित्तके सग्रहमे है, जैसे मनुष्यभवके बिना मोक्ष नही होता इसलिए मुझे मनुष्यभव मिले। मैं कब मनुष्य बनूं ? मनुष्य होने से मुक्ति हो जायगी। यो उसका मनुष्यभवपर ध्यान गया तो दृष्टि परकी ओर हुई ना। स्व तो चैतन्यमात्र आत्मा है और यह ध्यान कर रहा है भवका, शरीरका। तो परदृष्टि होने पर मुक्तिकी बात तो दूर रहो, स्वानुभूति तक भी नही हो सकती।

परदृष्टिमें आत्मविकासकी असंभूति---बज्रवृषभनाराच सहननसे मोक्ष होगा, इस कारण यह सहनन मिले। अब जिस चीजको चाहता है उस चीजका पूरा स्वरूप भी तो दृष्टिमे रहेगा। क्या है ? मजबूत हड्डिया होती हैं जहा उसे बज्रवृषभ नाराच सहनन कहते हैं। बज्रमय शरीर। तो किसी परकी ही तो दृष्टि रही। ऐसी परकी दृष्टि होनेपर स्वानुभव की भी परिणति नही हो पाती, फिर आत्मस्थिरताकी परिणति हो ही कहासे ? हर एक कार्यकी विधि अलग-अलग है। अजीव पदार्थोमे तो उपयोग नही होता कि मिल करके किस स्थितिमे किस ढगकी चीज बने ? जो हो निमित्त, उसके अनुरूप योग्य उपादानमे कार्य होता रहता है। यहा मुक्तिके लिए यद्यपि किन्ही अशोमे कह सकते है कि बज्रवृषभनाराच सहनन निमित्त है, मनुष्यभव निमित्त है लेकिन इसकी दृष्टि रखें, तो ऐसा लक्ष्य करने वालेकी मुक्ति नही होती। तो निर्णयकी बात अलग है कि किन परिस्थतियोमे रहने वाला पुरुष मोक्ष जाता है ? पर स्व हितके लिए कर्तव्य यह है कि परका लक्ष्य हटाये और स्वका लक्ष्य रहे। जितने भी क्लेश है वे सब परके लक्ष्यसे हैं। हम समझते है कि यह जीव मेरा है, यह जीव गैर है। तो जिन्हे मेरा समझा उनके लिए हम बडी सेवाये करते हैं और जिन्हे गौण समझा उनकी सेवाका ध्यान नही रहता। इन दोनोसे निराला यह जीव है, बस इस लगावने इस जीवको दु खी कर रखा है। यदि चित्तमे यह बात जम जाय कि मेरा यह मैं मात्र सर्वस्व हू। मुझसे तो सभी निराले हैं, सभी एक समान हैं। यह दृष्टिमे आये तो इसको आकुलता नही हो सकती। इस जीवपर जो विडम्बना छायी हुई है वह सब है परके लगावके कारण। तो परका लगाव हितकारी नही है। हितकारी तो अपने अमूर्त ज्ञानानन्द स्वरूपमात्रका ध्यान है। तो स्वकी उपासनामे जो वैभव अपना है वह सर्व प्राप्त होगा, और परपदार्थकी उपासनामे कुछ भी प्राप्त नही होता। केवल विकल्प मचाकर दु खी ही रहता है। तो जिस पर्यायके होनेकी जो पद्धति है उस पद्धतिसे वह पर्याय बनती है।

ज्ञानपरिणमनविधि—ज्ञानका कार्य जानना है। इसका विशुद्ध कार्य जाननमात्र है,

समय आगे निकल जायगा। घटना घट जायगी, किन्तु उसका खोटा फल चिरकाल तक भोगना पडेगा। पुरुषार्थ होना चाहिए ऐसा कि हमारा समाधिमरण बने। और समाधिमरण बने इसके लिए हमे प्रयत्न करना है अभीसे। ज्ञानसाधनामे अधिक रहे, ज्ञानपर उपयोग अधिक लगाये, धर्मात्मा पुरुषोके सत्संगमे रहे, कुछ सयम तपश्चरणका भी आदर करें तो इन प्रयत्नोसे हम वह समय पा लेगे कि जहाँ हमारी समाधि बन सकेगी। समतापरिणाम हो। समतापरिणामका मूल उपाय यह है कि ऐसी भावना बनाये कि मैं अकिञ्चन हू, केवल चैतन्यस्वरूप मात्र हू। किसी भी चेतन अथवा अचेतन पदार्थसे मेरा कुछ सम्बंध नही है। सारा वैभव भी छूट रहा है, बिगड रहा है, तो वह सब भी बिगडकर मेरा कुछ नुक्सान न कर सकेगा। और मेरा परिणाम यदि परके लगावमे पड रहा है तो चाहे ये बाहरी बातें मनके अनुकूल मिलती जावे। धन वैभव, लौकिक इज्जत प्रतिष्ठा आदि मनचाहे मिलते जावें, खानपान भी मनचाहा मिलता जावे, ये सब कुछ मिल जानेपर भी यदि सम्यक्त्व नही जगा, समाधिमरणकी प्रेरणा नही जगी तो ये सब व्यर्थ हो जायेगे। तो अब समझिये कि हम आपने जो आज समागम पाया है वह कितना महत्त्वपूर्ण है, उसका फायदा यही है कि ऐसा उपाय बना ले कि हमारा समाधिमरण हो, पडितमरण हो, समतामे मरण हो। मेरी दृष्टिमे कोई बाहरी पदार्थ कुछ समयको न रहे, ऐसे उपादानमे ऐसी योग्यता बसी हुई होती है कि वह आगे शान्त रह सकेगा। तो स्वलक्ष्यसे जो च्युत है वह मोक्षमे रही लग पाता। मोक्षमार्गके निमित्त यद्यपि हैं लेकिन किसी भी परपदार्थपर दृष्टि रखनेसे मुक्तिका मार्ग नही बन पाता। इस कारण मुक्तिमार्गमे चलनेका कार्य बनानेके लिए स्वका लक्ष्य करनेकी आवश्यकता है और निमित्त आदिक परद्रव्योसे लक्ष्य हटानेकी आवश्यकता है।

स्वलक्ष्यमें लगना व स्वलक्ष्य रहना इन दो स्थितियोंका विश्लेषण—प्रसग यह चल रहा है कि मुक्तिके मार्गमे यद्यपि अनेक साधन ही हुआ करते है तिसपर भी किसी भी बाह्य साधनपर लक्ष्य हो तो मोक्षमार्ग नही चलता। इसलिए कर्तव्य यह है कि प्रत्येक पदार्थका लक्ष्य छोडकर एक निज स्वका लक्ष्य करना चाहिए। ऐसी बात सुनकर एक जिज्ञासुने यह जिज्ञासा की कि जैसे परपदार्थका लक्ष्य करना कषायसहित उपयोगका काम है, ऐसे ही परलक्ष्यसे हटकर स्वलक्ष्यमे लगना यह भी तो कषायका काम है। एक तीव्र कषाय हुई कि परपदार्थमे लक्ष्यमे आया और यह मंदकषायमे हुआ कि परका लक्ष्य छोडकर स्वके लक्ष्य मे प्रयत्न किया, तब स्वलक्ष्य भी हितका कारण कैसे हुआ? जैसे परलक्ष्य करना कषायका कार्य है इसी प्रकार स्वलक्ष्यमे लगना भी तो कषायका कार्य है। मोक्षमार्गमे और और भी अच्छे कार्योमे लगनेकी बात क्या रुचि बिना होती है? रुचि तो चाहिए और रुचि करना

से पार हो जाता है। रहना तो कुछ नही है, केवल एक हाथ मलनेकी बात रह जाती है। सबसे निराला है यह जीव, तो ऐसा ही समझकर ऐसा ही अपना उपयोग क्यो न बनाये ? धन्य है वे जीव जिनका ऐसा ध्यान रहता है। ध्यान ऐसा बना ही रहे तो उस जीवका अवश्यमेव कल्याण है। करने योग्य कार्य यही है, चाहे कभीसे करे। जब तक नही कर रहे तब तक गल्ती ही है। और इस गल्तीका यह भी परिणाम हो सकता कि ऐसे विपरीत भावमे पहुच जाय यह जीव कि यह अवसर आना उसे कठिन होगा। आज जो समागम पाया है उसपर ध्यान दिया जाय तो कितना योग्य अवसर पाया ? हम आज मनुष्य हुए। पशु, पक्षी, कीट, स्थावरोसे तुलना तो कीजिए। आखिर वे भी तो जीव है, हम भी जीव हैं। हम भी कभी वैसे हुए थे जैसे कि ये पशुपक्षी आदि नजर आ रहे हैं। क्या है उनमे योग्यता ? वे बोल सकते नही, अपने दिलकी बात बता सकते नही, मनुष्योके आधीन है। जहाँ बाँध दिया, बँधे रहे, जब खाना दिया खा लिया। कुछ वश नही चलता। यदि ऐसी स्थितिमे होते तो वहाँका ही विकल्प रहता। इस मनुष्यभवमे जो बात पायी है जिसमे इतनी कल्पनायें चलती है वह वहाँ नसीब नही होती। तो उस पर्यायमे रहते हुए मेरेमे यहाँ क्या रहा ? आज इस पर्यायमे हू, कुछ समयके लिए हू। जो समक्ष है वे सब मेरे लिए कुछ नही है। अरे आज यहाँ हू और मरण करके कही चले जायेगे।

समाधिमरणका महत्त्व—भैया ! मरण तो निश्चित है। जो जन्मा है सो मरेगा, किन्तु जो अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि रखता हुआ मरण करेगा उसका तो सुधार हो जायगा और जो किसीमे मोह राग स्नेह रखता हुआ, विकल्प करता हुआ, दुःखी होता हुआ अगर मरेगा तो उसको आगे खोटे जन्म मिलेंगे। तो मरना जब सभीको है तो यह भी तो विचार करे कि किस ढगसे हम मरें तो हमारा कल्याण होगा ? किस ढगसे हम मरे तो हम ससार मे दुःख भोगते रहेगे ? इसका भी तो कुछ निर्णय करियेगा। और जिस मरणपर हमारा भविष्य आधारित है उस मरणका कितना महत्त्व है ? ठीक-ठीक विचारपूर्ण स्थितिमे मरण करनेका कितना बडा भारी महत्त्व है ? जन्मका भी किसीका महत्त्व है तो इसी कारण है कि ऐसा महत्त्ववाला मरण पा सके। जीना उसका ही सफल है, जन्म उसका ही कुछ फायदेमन्द है कि जो समाधिपूर्वक मरण कर सके। जन्मकी सार्थकता समाधिमरणसे है। समाधिमरण होवे तो समझो कि उसकी जिन्दगी सफल है। और यदि यह समाधिमरण न पा सके तो समझो कि जिन्दगी सब बेकार है। समाधिमरणके आधारपर हमारे भविष्य का उत्थान निर्भर है। देखिये—दो मिनटमे शरीरको छोडकर यह जीव चला जायगा, जब कभी भी समय आयगा तो अब उतने समयमे अपने आपको सम्हाल लिया तो भविष्यका सारा काल सम्हाल लिया, और उतने समयको अगर अपने आपकी सम्हाल न कर पाये तो

समय आगे निकल जायगा। घटना घट जायगी, किन्तु उसका खोटा फल चिरकाल तक भोगना पडेगा। पुरुषार्थ होना चाहिए ऐसा कि हमारा समाधिमरण बने। और समाधिमरण बने इसके लिए हमे प्रयत्न करना है अभीसे। ज्ञानसाधनामे अधिक रहे, ज्ञानपर उपयोग अधिक लगाये, धर्मात्मा पुरुषोके सत्संगमे रहे, कुछ संयम तपश्चरणका भी आदर करें तो इन प्रयत्नोसे हम वह समय पा लेगे कि जहाँ हमारी समाधि बन सकेगी। समतापरिणाम हो। समतापरिणामका मूल उपाय यह है कि ऐसी भावना बनाये कि मैं अकिञ्चन हू, केवल चैतन्यस्वरूप मात्र हू। किसी भी चेतन अथवा अचेतन पदार्थसे मेरा कुछ सम्बध नही है। सारा वैभव भी छूट रहा है, बिगड रहा है, तो वह सब भी बिगडकर मेरा कुछ नुक्सान न कर सकेगा। और मेरा परिणाम यदि परके लगावमे पड रहा है तो चाहे ये बाहरी बातें मनके अनुकूल मिलती जावे। धन वैभव, लौकिक इज्जत प्रतिष्ठा आदि मनचाहे मिलते जावें, खानपान भी मनचाहा मिलता जावे, ये सब कुछ मिल जानेपर भी यदि सम्यक्त्व नही जगा, समाधिमरणकी प्रेरणा नही जगी तो ये सब व्यर्थ हो जायेंगे। तो अब समझिये कि हम आपने जो आज समागम पाया है वह कितना महत्त्वपूर्ण है, उसका फायदा यही है कि ऐसा उपाय बना लें कि हमारा समाधिमरण हो, पडितमरण हो, समतामे मरण हो। मेरी दृष्टिमे कोई बाहरी पदार्थ कुछ समयको न रहे, ऐसे उपादानमे ऐसी योग्यता बसी हुई होती है कि वह आगे शान्त रह सकेगा। तो स्वलक्ष्यसे जो च्युत है वह मोक्षमे नही लग पाता। मोक्षमार्गके निमित्त यद्यपि हैं लेकिन किसी भी परपदार्थपर दृष्टि रखनेसे मुक्तिका मार्ग नही बन पाता। इस कारण मुक्तिमार्गमे चलनेका कार्य बनानेके लिए स्वका लक्ष्य करनेकी आवश्यकता है और निमित्त आदिक परद्रव्योसे लक्ष्य हटानेकी आवश्यकता है।

स्वलक्ष्यमें लगना व स्वलक्ष्य रहना इन दो स्थितियोंका विश्लेषण—प्रसग यह चल रहा है कि मुक्तिके मार्गमे यद्यपि अनेक साधन ही हुआ करते है तिसपर भी किसी भी बाह्य साधनपर लक्ष्य हो तो मोक्षमार्ग नही चलता। इसलिए कर्तव्य यह है कि प्रत्येक पदार्थका लक्ष्य छोडकर एक निज स्वका लक्ष्य करना चाहिए। ऐसी बात सुनकर एक जिज्ञासुने यह जिज्ञासा की कि जैसे परपदार्थका लक्ष्य करना कषायसहित उपयोगका काम है, ऐसे ही परलक्ष्यसे हटकर स्वलक्ष्यमे लगना यह भी तो कषायका काम है। एक तीव्र कषाय हुई कि परपदार्थमे लक्ष्यमे आया और यह मंदकषायमे हुआ कि परका लक्ष्य छोडकर स्वके लक्ष्यमे प्रयत्न किया, तब स्वलक्ष्य भी हितका कारण कैसे हुआ ? जैसे परलक्ष्य करना कषायका कार्य है इसी प्रकार स्वलक्ष्यमे लगना भी तो कषायका कार्य है। मोक्षमार्गमे और और भी अच्छे कार्योंमे लगनेकी बात क्या रुचि बिना होती है ? रुचि तो चाहिए और रुचि करना

यह कषायका अश है । फिर रुचिके कारण स्वलक्ष्यमे लगा तो ऐसे स्वलक्ष्यमे लगना कैसे हितका कारण बनेगा ? इस जिज्ञासाका समाधान यह है कि भाई स्वलक्ष्य करना तो अवश्य परलक्ष्यमे लगकर स्वलक्ष्य करनेको कहते है । जैसे—उपदेश हुआ कि भाई स्वलक्ष्यमे लगो, तो अर्थ क्या लगा कि परलक्ष्यसे हटकर स्वके लक्ष्यमे आवो और इस तरह कोई करे कि परपदार्थके लक्ष्यसे हटकर स्व आत्माके लक्ष्यमे लगता है तो यह मदकषायमूलक कार्य है ।

अब समाधानमे आइये, देखिये—इतनी बात तो अवश्य है कि जब किसी जीवकी कषाय मद हो तब ही तो वह परपदार्थके लक्ष्यसे हटकर निजके लक्ष्यमे आयेगा । तो ऐसे स्वलक्ष्यमे लगनेका प्रयत्न मदकषायाश हुआ है, लेकिन उसके बाद स्वलक्ष्यमे रह जाना स्वलक्ष्य ही रह जाना, यह तो कषायका कार्य नही है, परसे हटकर स्वमे लगने के समय जो एकसे हटकर एकमे लगा यहाँ तक तो कषायकी प्रेरणा है । मदकषायकी प्रेरणा सही, लेकिन स्वलक्ष्यमे लगनेके बाद जो उसका स्वलक्ष्य रह जाता है, एक निर्विकल्प ज्ञानस्थिति रह जाती है या स्व ही दृष्टिमे रहता है यह कार्य तो कषायका कार्य नही है । यह तो सहज परिणतिका विकास है । स्वलक्ष्य होनेका तात्पर्य क्या है इसको भी समझ लीजिए । स्व-लक्ष्य होनेका मतलब उस अवस्थासे है जहाँ रागद्वेषकी परिणति न हो । परसे हटकर स्व-लक्ष्यमे लगनेकी प्रवृत्ति तक तो रागकी बात थी और उस परसे प्रयोजन न था तो उससे उपेक्षाकी बात थी । पर जब स्वलक्ष्य रह गया तब परलक्ष्यसे हटनेका काम तो नही कर रहा तो ऐसा जो स्वलक्ष्य रह जाना मात्र है उनके रागद्वेषकी परिणति नही है । रागद्वेष की परिणति न होनेमे ही तो स्वका अनुभव है । स्वके अनुभवमे भी मतलब क्या है कि स्व मायने सामान्य आत्मा, ज्ञायकस्वरूप आत्मा, चैतन्यमात्र अतस्तत्त्व वह है स्व । जो विशुद्ध है, निरपेक्ष है, स्वय है, वह है अतस्तत्त्व । सो अतस्तत्त्वका या सामान्यका लक्ष्य होना उस समय रह ही जाता है जब सब ओरके लक्ष्यका अभाव हुआ ।

जीवके श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र गुणोंकी निरन्तर कार्यशीलतामें स्वलक्ष्य रहनेका सुगम अवसर—जीव चैतन्यस्वरूप है, और इसका कार्य कुछ न कुछ श्रद्धान रहे, ज्ञान रहे और कही रमा रहे, यह कार्य कही भी रुकता नही । इसीको कहते हैं श्रद्धान ज्ञान चारित्रका काम । जब यहाँ ससारमे लग रहा तो परवस्तुको निजरूप माननेका श्रद्धान चल रहा और भेदाभेदस्वरूप कारण आदिकका यथार्थ बोध न होकर कुछसे कुछ रूपमे पदार्थका बोध करना यह ज्ञानका काम हो रहा और ऐसी स्थितिमे इसको जो इष्ट जचा, उसके विकल्पमे रम रहा, यह चारित्रका काम हो रहा । यही जीव जब सम्यक्त्व पाता है, रत्नत्रय विशुद्ध होता है तब उसका श्रद्धान स्वको स्वरूपसे प्रतीत करनेका रहता है । और जैसा जो पदार्थ है अपने

स्वरूपमे परिपूर्ण, परसे विविक्त उस रूपसे पदार्थका ज्ञान करता है। और अब चूंकि परका लगाव नही रहा, यथार्थ प्रकाश जग गया तब स्वमे रमनेका काम करता है। प्रत्येक परिस्थितिमे जीवके श्रद्धान, ज्ञान, चारित्रका कार्य होता ही रहता है। तो इससे भी यह तात्पर्य निकला कि जब जीव परपदार्थकी ओरसे लक्ष्य नही रख रहा, परके लगावसे हट गया है, तो परसे हटने की स्थितिमे वह स्वमे रह गया, स्वलक्ष्य रह गया, यह बात उसके हो ही जाती है। इस जीवके विशुद्ध काम सब सुगम है। उनमे क्लेश नही और सत्य आनन्द ही आनन्द भरा हुआ है।

आत्मसमृद्धिकी टंकोत्कीर्णवत् निश्चलता—देखिये भैया! क्लेश, आकुलता, अधीरता, घबडाहट, ये सब बन कर किये जा रहे है। एक ज्ञानप्रकाश लाये और परसे दृष्टि हटाये, अपने आप शुद्ध ज्ञानानन्दका विकास होता है, क्योकि यह तो अपना स्वरूप ही है और अपने स्वरूपके विकासके लिए कुछ किया नही जाता, केवल परसे हटनेका काम होता है। यहाँ जो स्वरूप है वह निश्चल है, इसी बातको टंकोत्कीर्ण दृष्टान्तसे भी बताया गया है। टंकोत्कीर्णवत् निश्चल, इस दृष्टान्तका मुख्य भाव तो यह लिया जा रहा है कि जैसे टांकीसे उकेरी गई प्रतिमा, पाषाणप्रतिबिम्ब निश्चल है, उसका हाथ उठाकर सरकाकर कही रख दिया जाय ऐसा नही हो सकता। उसका कोई भी अग चलायमान नही किया जा सकता। कदाचित पूरी मूर्ति उठाकर कोई ले जाय तो ले जाय, पर उस मूर्तिमे कोई अंग चलित हो जाय सो नही हो सकता। तो जैसे टाँकीसे उकेरी गई प्रतिमा निश्चल है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थका स्वरूप भी अपने आपमे निश्चल है। तभी तो देखिये—निगोद जैसी अवस्थाओमे यह जीव गया। जहाँ ज्ञानकी ओरसे देखा जाय तो जडसा लग रहा। क्या ज्ञान है? लेकिन वहाँ भी स्वभाव नही मिटा, ज्ञान नही मिटा, स्वरूप निश्चल ही रहा और उसका प्रमाण यह है वहाँसे निकलकर आज मनुष्य पर्यायमे आये है तो हम ही तो है वह जो पहिले थे और आज विकास हो रहा तो स्वरूप ऐसा निश्चल है।

आत्मसमृद्धिकी टङ्कोत्कीर्णवत् सहजसिद्धता—अब इसी टङ्कोत्कीर्णवत् दृष्टान्तमे एक नई बात देखिये जो कि हमे कुछ सीख देती है अपनी प्रगतिके लिए कि जैसे टाँकीसे उकेरी गई प्रतिमा किसी अन्य पदार्थसे नही बनायी गई। उसमे कुछ भी अन्य पदार्थ जोड़ा नही गया, और इतना ही नही, जो मूर्ति बनी उसमे भी कुछ किया नही गया, किन्तु कारीगरने अगल बगलके पाषाणखण्ड हटाये, हटाने-हटानेका तो काम किया, पर वहाँ लगनेका कुछ काम नही किया और वहा वह आवरण, वह पाषाणखण्ड हट हटकर इस मूर्तिमे वह मूल चीज जो थी वह प्रकट हो गई। ऐसे ही आत्माके ज्ञान और आनन्दके विकासके लिए और कुछ नही करना है। कोई बाहरसे चीज नही जोडना है। किसी बाहरसे कोई

चीज ग्रहण करके नही रखा, किन्तु जो विषय कषायके परिणाम पापाणखण्ड आवरण इस पर लगे है उनको हटाना है। वह विभाव हट गया कि यह जो कुछ है वह अपने आप प्रकट हो गया। लेकिन व्यवहारमे अनेक चीजोके प्रसगमे आकर भी ऐसा ही है। चौकीपर यदि बीट गिरा, कूडा जम गया तो उसको साफ करने वाला क्या करता है? कोई काठमे नई चीज लाता है क्या? पानीसे धो धोकर मल अलग करता है। जो दूसरी चीज है उसको दूर करता है। वह दूसरी चीज सब दूर हट जाय तो वहा जो कुछ है स्वय, सो वह अपने आप निकल आता है। तो ऐसे ही अपने आपमे जो अपना स्वरूप है, विकास है, ज्ञानानन्द रूप है उसको उत्पन्न करने के लिए बाहरसे कुछ नही लाना है केवल उन विषय कषाय विभावोको दूर करना है। वे दूर होगे किस उपायसे? भेदविज्ञानकी टाकी, भेदविज्ञानकी ही हथौडी, भेदविज्ञानका ही कारीगर हो, उसके द्वारा यह काम अपने आप हो जायगा कि परका सम्पर्क मिटेगा और निज स्व जैसा सहज है वह अपने आप विकसित हो जायगा। तो यह स्व लक्ष्य रहना, अपना कल्याण कर लेना, जन्म मरणसे छूटनेका उपाय बना लेना यह सब सुगम है, साध्य है, किया जा सकता है, करनेकी ओर चले कोई तो। बस गाडी यही अटकी रहती है कि इस आत्मकल्याणके करनेके लिए हम कटिबद्ध नही हो पाते। इतनी बात अगर हो जाय तो सारी बात आपको सुगम दिखेगी तो स्व ही अपनी दृष्टिमे रहता और ज्ञान सामान्यात्मक अन्तस्तत्त्वका उपयोग रहता, ये सब तो कल्याणरूप हैं।

व्रत तप आदिकी व्यवहारधर्मरूपता—यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि तप व्रत आदिक स्वकल्याण है या नही? ये स्वयं कल्याणरूप है, कल्याणके कारण हैं अथवा नही, यह प्रश्न उत्पन्न होना प्राकृतिक है, क्योकि अन्य कार्योके उपयोगमे लगा हुआ यह प्राणी जब कुछ धर्मकी ओर चलनेको होता है तो व्रत, तप, दर्शन, सत्सग ये सब साधन हुआ ही करते हैं और उपदेश भी ऐसा ही दिया जाता, सयम करो, तप करो, व्रत करो, प्रभुदर्शन करो, तो ये सब भी अपने कल्याण है अथवा नही? इस प्रश्नपर अब विचार कीजिए। बाहरी जो तप व्रत आदिक हैं वे उपचारसे कल्याणके साधक माने गए हैं। इसका कारण यह है कि तप व्रत संयम आदिक बातोमे लगा हुआ प्राणी निश्चय तत्त्वको पा लेता है। पाता है अपने ही सहज विकास द्वारा, मगर पात्रता उसमे होती है जो कुछ सयमी है, तपस्वी है। इसको अगर सक्षिप्त शब्दोमे कहे तो जो अपनी ओर लगा हुआ है और कष्टसहिष्णु है। तपस्वी अपनी जिन्दगीमे अनुभूति करनेके लिए अगर कष्टसहिष्णुता से, समतासे कष्ट सह लेवे, ऐसा अगर ध्यानमे रखे तो कोई प्रतिकूल बात न होगी, क्योकि जो जरा जरासी बातोमे कष्टका अनुभव करता है उसमे यह पात्रता नही जगती है कि वह ऐसे विशुद्ध

सामान्य अंतस्तत्त्वका अनुभव कर ले, उसमे यह पात्रता नही जगती है कि वह ऐसा विशुद्ध सामान्य अंतस्तत्त्वका अनुभव कर सके। अपने रागके प्रतिकूल, इच्छाके प्रतिकूल जरासी बात हुई उसीमे कष्ट माना। ऐसे कष्टसे घबडाने वाले प्राणियोमे स्वके अनुभव करने जैसे बहुत बडे पुरुषार्थकी बात आनेकी पात्रता नही है। इस कारण साधु पुरुषोंको कष्टसहिष्णु होना चाहिए और कष्टसहिष्णुतामे ही ये तपश्चरण हो पाते है। तो जो इन बाह्य तप व्रत आदिकमे लगा हुआ है, उसका उपयोग विषय कषायोमे तो नही है, तब उसमे पात्रता है ऐसी कि वह सामान्य अंतस्तत्त्वका अनुभव कर सकता है।

धर्मयात्राके साधक होनेसे व्रतादिकी व्यवहारसे धर्मरूपता—उक्त वृत्त बात सुनकर चित्तमे ऐसा तर्क उठना एक प्रासगिक है कि तब क्या तप व्रतसे धर्म नही होता ? क्या तप व्रत आदि धर्म नही है ? तप व्रतको उपचारसे साधक कहनेके मायने यह हुए कि यह धर्म नही, है, लेकिन बडे बडे धर्मात्मा जन भी ऐसा ही करते हुए देखे जा रहे है। तब धर्म की बात बताओ, क्या ये तपश्चरण आदिक धर्म नही हैं ? इसका भी शान्तिपूर्वक समाधान ढूढिये—और इस समाधानके लिए यह जानना आवश्यक है कि धर्म नाम है किसका ? धर्म का यथार्थ स्वरूप ज्ञानमे आने पर ये सब समस्याये सुलझ जायेगी। तब देखिये धर्म नाम है आत्माको मोह क्षोभरहित परिणतिका। अब व्रत तपकी बात देखिये—जिसके सम्बन्धमे यह प्रश्न किया जा रहा है बाह्य तप, व्रत क्या है ? तो ये है मन वचन कायकी चेष्टाये। लेकिन ये सब है शुभरूप। और कुछ मदकषायकी ओर रहनेकी बात। तब ये भाव पुण्य के निमित्त है। मन, वचन, कायकी सभी चेष्टायें साक्षात् धर्म नही है। वे पुण्यके कारण है और ऐसे वर्णनमे जितने अशमे मोह क्षोभरहित परिणति चल रही है वह धर्म है। तो ये मन वचन कायकी सभी चेष्टायें जीवको पात्र तो बनाये रखती है कि वह जीव जब स्वके अनुभवके लिए पुरुषार्थ करे तो हो सकेगा। यह बात कैसे समझी कि इन सभी चेष्टाओके खिलाफ अशुभ चेष्टामे कोई जीव हो तो वहा समझमे आयेगा कि उसमे पात्रता नही रहती। जो इन्द्रियके विषयमे या लोकेषणामे किसी ओर विकल्प रमाये हुए है तो उसको स्वकी सुध ही नही है। स्वका अनुभव क्या कर सकेगा ? तो स्वका अनुभव करना, मोह क्षोभ रहित परिणतिका होना यह तो है साक्षात् धर्म और इस कार्यके लिए पात्रता बनाये रखने वाले जो व्रत तप आदिक परिणतिया हैं वे है उस धर्मकी पात्रतामें सहायक, अत इसको व्यवहारसे धर्म कहते हैं।

धर्म और धर्मपालनका विश्लेषण—धर्म शब्दकी व्युत्पत्ति है यह "धत्ते इति धर्म अथवा धरति इति धर्म और इसके विशेष विवरणमे चले तो अर्थ है—पदार्थ. आत्मनि य स्वभावं धत्ते स धर्म। पदार्थ अपने आपमे जिस स्वभावको धारण करता हैं, जिस स्वभाव

को धरे हुए है उस स्वभावका नाम धर्म है, उस धर्मको करना नही है। वह तो स्वभाव है, परिपूर्ण है, सहज सिद्ध है, उस धर्मकी दृष्टि करना है। तो धर्मकी दृष्टि करनेको धर्म कहते हैं। हमने धर्मपालन किया, इसका अर्थ यह है कि आत्माका जो स्वभाव है, धर्म है उसकी इसने दृष्टि की। अब धर्मकी दृष्टि करना साक्षात् धर्मपालन है। फिर अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञानानन्द स्वभावमात्र अन्तस्तत्त्वका दर्शन करना, आश्रय करना, उपयोग रखना सो धर्म है, धर्मका पालन है। अब इस धर्मपालनमे जो जीव लग रहे है वे निरन्तर इस धर्मपालनमे नही लग पाते। तो जब नही लग पाते उस समय वे क्या कार्य करते हैं ? किसी विषयकषायमे, युद्धमे लग जाते है। उनकी प्रवृत्ति होती है व्रत तप आचरण रूप। तो ज्ञानी सतकी जो बाह्य प्रवृत्ति है अथवा उस ज्ञानस्वरूपके उपयोगमे न लगे रहनेकी स्थिति मे जो बाह्य आचरण बनते है वे भी कर्तव्य तो हैं, करने ही तो है ना, करना चाहिये। यदि व्रत तप आदिक न करेंगे और स्वके अनुभवमे भी नही लगे हैं तो उनकी फिर क्या दशा होगी ? तो ये व्रत तप आचरण प्रवृत्ति करना है और इसके किए जानेका इसीलिए उपदेश है, अतएव ये व्रत तप आदिक उस धर्मपालनमे बाह्यसाधन होनेसे अर्थात् धर्मपालनकी पात्रता बनाये रखनेसे इनको उपचारसे धर्म कहा है, और जिनकी दृष्टि ही नही, लक्ष्य ही नही कि हमको उन्नतिके मार्गमे करना क्या है, किन्तु कुल परम्परासे अथवा अपनी समाजके पुरुषोकी देखादेखी जो कार्य किए जाते है उनमें धर्मका सम्बध तो नही, मगर ऐसे लोग भी कभी सत्सग पायें तो उनका भाव बदल सकता है। अतएव ज्ञान न होनेपर भी, लक्ष्य न होनेपर भी ज्ञानी पुरुष जो काम करते आये थे, लक्ष्य रखते हुए वे ही काम इस लक्ष्यहीनके भी हो रहे हो तो पहिचान कौन करे ? वह भी व्यवहारमें धर्म कहलाने लगता है। क्रिया तो बाहर में एक है ना भीतरके निर्णयसे उनमें धर्म और अधर्मका निर्णय हो जायेगा। तो प्रसंगमे यह बात चल रही है कि धर्मपालन तो ज्ञानानन्दस्वभावमात्र निज अन्तस्तत्वका लक्ष्य रह जाना है।

भूतार्थनयसे जीवादि तत्त्वोंके अधिगमकी निश्चयसम्यक्त्वहेतुरूपता—धर्मका स्वरूप यहा परमार्थदृष्टिसे कहा जा रहा है। धर्म नाम है स्वभावका। आत्मधर्म हुआ आत्मस्वभाव। आत्मस्वभावकी दृष्टि करना, उपयोगमे लेना, आत्मस्वभावमें रमना यही है धर्मपालन और अन्य काम व्रत तप आदिक ये सब इस जीवकी ऐसी पात्रता बनाये रखते है कि जब धर्मपालन करें तो कर लेगा और अशरूपसे तब भी कर रहा है, इस कारण उन्हे व्यवहार धर्म कहते हैं। इस बातको सुनकर एक जिज्ञासा होती है कि केवल आत्मस्वभावसे ही सम्बन्ध रखा धर्मपालनका तो क्या जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सवर, निर्जरा, मोक्ष इन ७ तत्त्वोका अथवा पुण्य पाप मिलकर इन ९ पदार्थोका श्रद्धान करना धर्म है। ऐसा जो कहा गया

क्या वह भी सत्य नही है ? इसका उत्तर सुनो । भूतार्थनयसे जाने गए ये ६ पदार्थ निश्चय सम्यक्त्वके कारण हैं । सम्यक्त्व परिणति तो अखण्ड है । उसमे इतने विकल्प कहां होंगे कि जीव अजीव आदिक पदार्थका श्रद्धान् करना, उनकी अलग-अलग प्रतीति रखना ऐसा भेदन सम्यक्त्वमें कहां होता है ? सम्यक्त्व में तो एक समीचीनता है । यह समस्त सहज आत्मतत्त्व जैसा है, वह उसके अनुभवमें और प्रतीतिमें बना हुआ है, इस कारण यह जीवादिक का श्रद्धान जो कि भूतार्थसे जाने गये के ढंगसे हुआ, वह निश्चय सम्यक्त्वका कारण बनता है । विकल्प कोई भी धर्मरूप नही होता । पर कोई विकल्प धर्मका कारण बनता है अर्थात् उन विकल्पोसे गुजरनेके बाद धर्मकी मजिल मिल पाती है । तो वह विकल्प भी धर्मके समीप है अतएव धर्म है । जैसे दूसरी सीढीपर चढना पहिली सीढी गुजरनेके बिना नही होता, इस कारण पहिली सीढीपर चढ़ना दूसरी सीढीपर आनेका कारण है । लेकिन पहिली सीढीपर चढना ही दूसरी सीढीका प्रयोग न कहलायेगा । तो भूतार्थसें जाने गए ६ पदार्थोंका श्रद्धान या जानना यह निश्चयसम्यक्त्वका कारण है, क्योकि जब भूतार्थसे जाने जायेगे ये ६ पदार्थ तो वहाँ एक शुद्ध आत्मतत्त्व ही प्रतिभासमान रहेगा ।

भूतार्थपद्धतिका प्रकाश व प्रभाव—भूतार्थसे जाननेमे सीधा अर्थ यो लगा लें कि किसी एकमे उस एकको ही निरखना, यह भूतार्थ पद्धति कहलाती है । जब हम जीवको भूतार्थ दृष्टिसे देखेगे तो पशु पक्षी मनुष्य ये जीव नही हैं । और कषाय, विकल्प, विचार इज्जत आदिक जो भी भावनाये है वे जीव नही है, और न कोई आन्तरिक तरंग जीव है, किन्तु जीव है एक टंकोत्कीर्णवत् निश्चल चैतन्यस्वरूप । जब भूतार्थसे जाना जीवने तो कहाँ पहुचा ? सारे भव, सारी पर्यायें, सारी बाते छूटकर एक शुद्ध चैतन्यस्वरूपमे आया । तो जब भूतार्थसे जाना जाता है इस तत्त्वको तो वहाँ केवल आत्मतत्त्व ही प्रतिभासमे रहता है । यो जीवतत्त्वको जाना, और उसका प्रभाव समझा । अब अजीवको भूतार्थसे जाने, तब क्या प्रभाव पडता है ? इसे परखिये—भूतार्थसे जाना इस पुद्गलके बारेमे तो भूतार्थसे जाननेपर प्रथम उसकी दृष्टिमे स्कध या जाति भी न रहेगी । यह कार्माण जातिका द्रव्य है, यह आहार वर्गणाका द्रव्य है, यह जातिभेद भी भूतार्थमे नही पडा हुआ है, क्योकि भूतार्थ जानता है केवलको और यह बात है सहेतुक । ये जातियाँ भी बदल सकती है पर लगेगा लम्बा समय । तो जो बदल सके, जो शाश्वत नही रहता, जो एक रूप नही है, जिसमे न्यूनाधिकता चलती हो वह भूतार्थ दृष्टिमे पदार्थ नही है । जब इन स्कधोको निरखने थे तब यह समझमे आया शुद्ध अणुमात्र, जिसमे गुण परिणतिका भी भेद नही डाला । ऐसा कोई नायक यह अजीव पदार्थ जाना गया भूतार्थसे, अब इतना असर क्या होगा कि जब भूतार्थसे इसे जाना तो इसका जानना न जानना जैसा हुआ, क्योकि विकल्प तो यह

मचाया नही। बाह्य वस्तुका विकल्प कर रखा नही, एक जानन चल गया उस ओरसे तो वहाँ टिका नही। प्रभाव यह होगा कि बहुत ही शीघ्र यह अपने शुद्ध आत्मतत्त्वके प्रतिभास मे आ जायगा।

भूतार्थपद्धतिसे आस्रवके जाननेका प्रभाव——जब आस्रवको जाना कृतार्थ पद्धतिसे तो आस्रव चूंकि सयोगी पदार्थ है और आस्रव दोनो जगह हुआ करता है—जीवमे भी और पुद्गल कर्मोंमे भी। तो जब भूतार्थसे आस्रवको जाननेके लिए चलेगे तो किसी एक को जाना जायगा। इस प्रकार भूतार्थ पद्धति बन जायगी। तो जब एक जीवास्रवको जानने चले तो भूतार्थ पद्धतिसे यह देखा कि जीवास्रव——ये मिथ्यात्व, अविरति, कषायके परिणाम यही तो आस्रव कहलाता है। यह जीवसे प्रकट हुआ है, जीवमे प्रकट हुआ है, जीवकी योग्यतासे आया है, जीवके लिए आया है। सब कुछ वहा जीवमे नजर आ रहा है। और ऐसा नजर आनेके बाद अब वहाँ अतरङ्गमे दो भाग हो गए एक तो वह स्रोत और एक वह भरा हुआ तत्त्व। स्रोत तो है वह जीव सामान्य चैतन्यमात्र, परिपूर्ण भाव और वह भरा हुआ तत्त्व है जीवास्रव। यह यहाँसे निकला है। आस्रव शब्दका अर्थ है आना। मगर आना आगमन आदिक शब्दोसे नही कहा है। उसमे आस्रवका भाव न आयगा। आस्रवका अर्थ है—आ मायने चारो ओरसे स्रव मायने चू जाना। आ समन्तात् स्रवण आस्रव। आगमन कई तरहसे होता है—कदम बढकर आना, चलकर आना और एक चूकर आना। जो चारो ओरसे पसेवता हुआ, चूता हुआ है उसे आस्रव कहते है। तो जीवमे जब आस्रव होता है तो यह इसी ढगसे होता है। कही बाहरसे चलकर आस्रव आया नही। कही कदम बढाकर आया नही, किन्तु जीवके समस्त प्रदेशोमे वहीसे पसेवता, चूता हुआ भाव बना। तो ऐसा वह जो जीवास्रव है वह किस स्रोतसे आया है ? भूतार्थसे जाननेपर उस स्रोतकी मुख्यता हो जायगी। उससे आस्रव अश विलीन हो जायेगे, फिर वहाँ प्रतिभासमे रहा क्या ? वह शुद्ध आत्मतत्त्व। जब भूतार्थसे कर्मोंमे भी आस्रव जाना तो वहाँ एक वह ढग चलेगा और रहेगा कर्मोंके आस्रवका स्रोत नजरमे। वह स्रोत सूक्ष्म है, पर है, भिन्न है, वहाँ टिक नही सकता। सो इस शुद्ध भाव क्रियाके प्रसगमे वहाँ भी आखिर शुद्ध आत्म-तत्त्व प्रतिभासमे रहेगा।

भूतार्थपद्धतिसे संवरादिके अवगमका प्रभाव——भूतार्थपद्धतिसे बध सम्वर आदिके अवगमका भी हितमय प्रभाव है। सम्वरमे स्रोतका जानना और भी सुगम है, क्योकि सम्वर-भाव शुद्ध स्वभावके अनुरूप भाव है, इसलिए वहाँ स्रोत जल्दी ग्रहणमे आयगा। तो वहाँ भी यह शुद्ध आत्मतत्त्व प्रतिभासमे रहेगा। इसी प्रकार निर्जरा और मोक्ष ये सब भूतार्थसे जब जाने जाते हैं तो इसका प्रभाव यह होता है कि वहाँ शुद्ध आत्मतत्त्व प्रतिभासमान रहता

है। तो अब निरख लीजिए कि जीवादिक तत्त्वोका भूतार्थपद्धतिसे जाननेका प्रभाव क्या होता है ? जहाँ शुद्ध आत्मतत्त्व प्रतिभासमान रहा, बस वही तो सम्यक्त्व है। तो उस निश्चय सम्यक्त्वका कारण होनेसे यह सम्यक्त्व है। इन तत्त्वोका श्रद्धान ठीक है और करना चाहिए, पर परमार्थस्वरूप इसके बीच भी समझ लेना आवश्यक है। भूतार्थसे जाननेपर इन ९ तत्त्वोका भी लक्ष्य छूट जाता है और एक शुद्ध आत्मतत्त्वपर लक्ष्य रह जाता है। इस कारण यह सिद्ध है कि परसे व रागादिक भावोंसे रहित एक अपने चतुष्टयमे ही स्थित जो सहजभाव है, अतस्तत्त्व है, चिन्मात्र है तद्रूप एकताका अनुभवना सो धर्म है।

धर्मरुचिका ऐश्वर्य---अब जान लीजिए कि धर्म कितना सुगम स्वाधीन सूक्ष्म है, किन्तु विकल्पजाल करने वाले पुरुषोको अति कठिन है। जिस धर्मके प्रसादसे अनगिनते भवो के कर्म भी एक साथ खिर जाते है उस धर्मकी ओर दृष्टि करना है। बाकी तो धर्मके नाम पर कोई कुछ करे तो वह पर्यायमे ही बुद्धि बना रहा है। जिसको तनसे, मनसे, धनसे इतना लगाव लगा है कि वहाँसे विविक्तता हृदयमे स्फुरित नही हो पाती है, तो इस रगमे रगा हुआ पुरुष इस धर्मका पालन क्या करेगा ? जिसकी इस धर्मके स्वरूपपर दृष्टि पहुचती है है तो इस धर्मके उपदेशक गुरुजनोपर, इस धर्मके प्रतिपादक शास्त्रोपर, इस धर्मके मूल स्रोत अरहंतदेवपर जिनेन्द्र प्रभुपर प्रशस्त प्रकृष्ट भावना जगती है और फिर वे ज्ञानी इतना उनपर न्यौछावर होते है कि उसके लिए तन, मन, धन, वचन, सारा वैभव न कुछ चीज है। ऐसा है यह धर्म। अपने आत्मामे, अपने आप अपनी ही परिणतिसे प्राप्त किया जा सकता है।

बन्धपर्यायमें जीव और पुद्गलकी एकताका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन---इस प्रसंगमे एक यह जिज्ञासा बन सकती है कि यहाँ तो यह समझमे आ रहा कि आत्मा और पुद्गल दोनोकी बध पर्यायमें एकता है। जब जीव और पुद्गल आज इस बध दशामे पडे हुए है, शरीरमे जीव बधा, जीवमे शरीर। शरीर चलेगा तो जीवको भी चलना पडेगा। जीव चलेगा तो शरीरको भी चलना पडेगा। हाँ एक मरणकाल ऐसा है कि जीव तो जायगा और शरीर न जायगा, तो यह तो एकदम अलग होनेकी बात है। वहाँ तो बन्धन नही रहा शरीरसे, पर बधपर्यायमे जीवकी और पुद्गलकी एकता नजर आती है। और बतलावो इस जीवका निवास है कहाँ, शरीरके प्रदेशोको छोडकर ? कैसा घना अवगाहरूप होकर जीव रह रहा है कि यदि इस जीवके शरीरकी बनावटके भीतर कही पोल रह गई तो वहाँ आत्मप्रदेश भी नही है। देहके रग-रगमे बस रहा है यह जीव। जैसे कानके बीचमे जो छेद है वहां कोई शरीरका पुद्गल नही है। पेटमें भी जितनी जगह पोल होगी, नासिकामे जहाँ पोल है वहाँ शरीरके अणु भी नही है तो जीवप्रदेश भी नही है, ऐसा जीवका घन अवगाह हो रहा है।

तो इस बधपर्यायमे जीव और पुद्गलकी एकता ही तो है। क्या यह बात भूतार्थ नही है ? क्या यह मिथ्या बात है ? ऐसा प्रश्न होना प्राकृतिक है।

बन्धपर्यायमें दो द्रव्योंकी एकता विदित होनेपर भी परमार्थतः एकताका अभाव— अब उक्त प्रश्नके समाधानमे सुनिये, देखिये—यह बात भी हमने कब जानी जब अपने स्वरूप मात्रसे हटकर इन दो पदार्थोपर उपयोग लगाया, तब ही तो जान पाया कि जीव और पुद्गलकी एकता है बध पर्यायमे। अरे हम जाननेके लिए चले और मूलमे ही भूतार्थ पद्धति को कुचल कर चले तब इसका वहाँ साध्य कैसे नजर आयेगा कि भूतार्थ पद्धतिसे क्या समझ बनती है ? हा बहिर्दृष्टि होने पर, अपने आप स्वभावसे एकत्वके उपयोगसे च्युत होनेपर बाहरमे जब निरखते हैं तो जीव और पुद्गल इन दोनोकी एकता बराबर समझमे आयगी। मगर यह बात तो हमने समझी है स्वरूपसे चिगकर, दो पदार्थोपर दृष्टि देकर। अन्यथा तो हमे इस वक्त भी जीवमे जीव नजर आता और पुद्गलमे पुद्गल दिखता। जैसे—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल ये ५ द्रव्य कहा रह रहे हैं ? आकाशमे, लेकिन जब भूतार्थ पद्धतिसे देखते है तो वहा यह नजर आता है कि आकाशमे आकाश ही रह रहा है। जीव पुदगल आदिक नही। जीवद्रव्यमे जीव ही रह रहा, धर्मद्रव्यमे धर्म ही रह रहा, किसीमे और कोई अन्य पदार्थ नही रह रहे; क्योकि भूतार्थ पद्धति स्वरूप चतुष्टयको ग्रहण करता हुआ बनता है। तो जब बहिर्दृष्टि करके निरखा तो जीव और पुद्गल इनकी एकताका अनुभव हुआ, फिर भी जो नजर आया कि ये दो अलग कुछ नही हैं, इस जीव पुद्गल की एकता ही है तो इस दृष्टिमे रहते हुए ठीक जच रहा है। इस दृष्टिमे रहकर वह भूतार्थ है, किन्तु यह भूतार्थता बनी कब ? जब बहिर्दृष्टि बन रही है तब। तो बहिर्दृष्टि के अनुभवमे अथवा जो बाहरकी ही दृष्टिमे रह रहा है उसे कहते हैं मिथ्यादृष्टि। उसके अनुभवमे यह एकता नजर आ रही है। बधपर्यायमे पर्यायदृष्टिसे तो एकता है, मगर उस एकता को जो सर्वथा मान लेगा, स्वभावका भी उसे परिचय न रहेगा। और स्वभावसे सब पदार्थ अपने आपके एकत्वमे है, यह दृष्टि जब न रही तब कुछ भी जानना समझना किस कामका ?

पर्यायदृष्टिसे बन्धपर्यायमे एकत्व होनेपर भी विवेकी जनोंकी स्वरूपदर्शनमें रुचि— बधपर्यायमे पर्यायदृष्टिसे एकता होनेपर भी उस एकतामात्रका अनुभव जो करेगा उसकी दृष्टि शुद्ध नही है, विवेकी पुरुष सयोग दृष्टि न रखकर पदार्थको केवल उसमे ही निरखनेका यत्न किया करते है। जाननेके लिए जान लिया, पर हेय और उपादेयका विचार भी तो आवश्यक है और कर्तव्य है। बधपर्यायमे जीव पुद्गलकी एकता है, यह पर्यायदृष्टिसे समझमे आयगी, मगर वहा ज्ञान टिकाना नही है क्योकि वहा मिलेगा क्या, उससे उद्धार क्या ? वह हेय

तत्त्व है, और वह हेय तत्त्व यों ही हुआ कि वह पर्यायदृष्टिमें निरखा गया तत्त्व है। भूतार्थ दृष्टिमे या निश्चयदृष्टिमें निरखा हुआ तत्त्व हेय नही है, किन्तु स्वयं छूटता है, हटाये नही छूटता। जानकर तो लगता ही है मगर पर्यायदृष्टिकी बातमें जानकर नही लगता और द्रव्य अथवा परमार्थदृष्टिके विषयमे जानकर लगना, कब तक लगना, जब तक कि अपने आप छूट न जाय। तो भूतार्थ पद्धतिसे जब कुछ जाना जाता है तो वहां कैवल्यस्वरूप प्रतिभासमे रहता है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके अवगमको भूतार्थतामें शामिल न करनेके कारणकी पृच्छना—आजके प्रसगमे यह बात चल रही है कि जीवाजीवादिकका श्रद्धान करना क्या सम्यग्दर्शन नही है ? तो उत्तरमे बताया जा रहा है कि यह सब निश्चय सम्यक्त्वका कारण है जब कि भूतार्थनयसे जाना गया हो। भूतार्थनयसे जाननेपर केवल एक आत्मतत्त्व ही प्रतिभासमे रहता है। तो जब आस्रवतत्त्वको ही जानने चला था भूतार्थपद्धतिसे तो एकको एक मे ही निरखा गया था। तो यहाँ प्रश्न यह हो रहा कि आस्रव आदिक तत्त्व केवल एकमे भी देखा जाय तो यह देखने वालेकी मर्जी है, किन्तु इस तथ्यको तो नही हटाया जा सकता कि कर्मका निमित्त पाकर जीवमे आस्रव हुआ और जीवपरिणामका निमित्त पाकर कर्मके आस्रव हुए, क्या यह बात यथार्थ नही है ? यह एक अलग बात है कि कोई केवल जीवको ही निरखना चाह रहा है, पर वास्तविकता तो यह भी है ना कि जीवपरिणामका निमित्त पाकर कर्मास्रव होता है और कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवास्रव होता है। यह बात भी तो तथ्यकी है, फिर इसे भूतार्थमे क्यो नही शामिल करते ?

बाह्यदृष्टि होनेपर ही निमित्तनैमित्तिकताका अवगम होनेसे भूतार्थपद्धतिका अपलाप—समाधान उक्त शकाका यह है कि इस निर्णयमें कि कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवमें आस्रव होता है। यद्यपि यह बात आयगी कि होता है यह आस्रव एक जीवमे ही और होता है परपदार्थका निमित्त पाकर; तो एक द्रव्यमे भी इस नैमित्तिक पर्यायके अनुभव करनेपर यह बात तो आयगी कि इसमे निमित्तनैमित्तिक भाव है और ऐसा नैमित्तिक भाव होना तथ्यकी बात है, भूतार्थ है, सच है, किन्तु ऐसी भूतार्थता बनी कब ? ऐसा तथ्य जँचा कब ? किस स्थितिमे इसको ये बातें विदित हो रही है कि कर्मका निमित्त पाकर जीवमे आस्रव हो रहा, यह परिचय बना बाह्यदृष्टि करनेपर, दो पदार्थोपर दृष्टि रखनेपर, जीवद्रव्यके स्वभावका उपयोग छोड़नेपर। तो यदि जीवद्रव्यके स्वभाव छोड़कर ऐसी ही पर्यायका अनुभव करने लगे तो यह तो बहिर्दृष्टिका परिणाम हुआ। परमार्थत भूतार्थता कहाँ रही ? तो यो शुद्ध केवल निरपेक्ष सहजभाव दृष्टिमे रहे तब समझिये कि हमने भूतार्थ पद्धतिसे जानना है, तो इस भूतार्थ रीतिसे जाने गये ये ९ पदार्थ (जीव, अजीव, आस्रव, बध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष,

पुण्य पाप) निश्चय सम्यक्त्वके कारण है, अतएव ये भी सम्यक्त्व कहलाते है।

भूतार्थदृष्टि और उसका प्रभाव—भूतार्थदृष्टि किसे कहते है और भूतार्थदृष्टिमे क्या ज्ञात होता है और भूतार्थदृष्टिके फलमे लाभ क्या मिलता है, इन तीन बातोको जान लेना भी बहुत हितकर है। भूतार्थदृष्टि उस दृष्टिको कहते है जो एकको उसी एकताकी ओर ले जाने वाली दृष्टि हो। किसी भी पदार्थमे उसके एकत्वस्वरूपकी ओर जो ले जावे ऐसी दृष्टिको भूतार्थदृष्टि कहते है। व्युत्पत्तिसे अर्थ यह होता है कि स्वय होने वाले भावकी दृष्टि होना उसे कहते हैं-भूतार्थदृष्टि। इस दृष्टिमे केवल स्व-भाव-ज्ञात होता है। अपने आप सहज ही अपने सत्त्वमे जैसा जो कुछ है वह ज्ञात होता है भूतार्थदृष्टिसे और परमार्थत यही स्व भाव धर्म कहलाता है। भूतार्थदृष्टिसे विदित हुए स्वभावका उपयोग रखना यही धर्मपालन है। जगतके जीवोने काम तो निरन्तर किया, श्रद्धान, ज्ञान चारित्रका। मिथ्यादृष्टि रहे और वहाँ भी निगोद आदिक की कठिन कुयोनियोमे रहे तब भी श्रद्धान ज्ञान चारित्रका काम कही भी बन्द नही हुआ। तब पर्यायको आत्मारूप की प्रतीति कर रहा और सहज भावकी सुध न रखकर कुछ भी जानता रहा और कषायोमे विषयोमे यह रमता रहा, यह श्रद्धान ज्ञान चारित्रका काम हुआ। ऐसा अंधकार छाया रहता है इस जीवके जो ससारमे रुल रहा है कि उसे इस परमार्थ स्वरूपका पता ही नही रहता कि मैं क्या हू ? मैं वह हू जिसका कही कुछ नही है, किसीसे सम्बन्ध नही, कोई पदार्थ नही, किसीसे लेनदेन नही। अपने आपमे परिपूर्ण है, चैतन्यस्वभावरूप है और अपनेमे अपना उत्पाद, व्यय करता रहता है। इसका किसीसे क्या सम्बन्ध है ? वस्तु तो विविक्त है पर अज्ञानीने दृष्टि ऐसी बनायी कि दृष्टिमे वह विविक्त न रह सका। बस यही विडम्बना है और ससारकी समस्त कुयोनियोमे भ्रमण करनेका यही उपाय है। भैया ! स्वहितके लिये अन्त बहुत महान साहस बनाना होगा कि मेरा कही कुछ नही है। मात्र मैं ही मेरा स्वरूप ही मेरा है। तब जगतमे कही कुछ भी बिगडे, बने रहे, जो परिणति होती हो, हो, उनकी परिणति उनके लिए है, मेरी परिणति मेरे लिए है।

वस्तुमें अभेदषट्कारकताका परिचय—छहो कारक वस्तुमे अपने आपमे घटित हो जाते हैं। छहो कारक क्यो घटित किये जाते कि इनको भिन्न पदार्थोमे ६ कारक माननेकी आदत पडी है, उससे हटानेके लिए अपने आपमे छहो कारक घटानेकी बात कही जाती है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। सम्बन्ध कोई कारक सस्कृतमे नही माना गया। इसका कारण यही है कि सम्बन्ध होता ही नही है। मानो कहा जाय कि चीजें दो हैं, सो अपने आपमे खुद खुद है, सम्बन्ध क्या हैं ? तो इस प्रक्रियासे यह विदित होता है कि सम्बन्ध तो कल्पनाकी बात है। सम्बन्ध एकका दूसरेके साथ नही होता

है। आधार हो जाता है। भिन्न प्रक्रियामें भी एक पदार्थ आधार है, एक आधेय। जैसे बेंचपर पुस्तक रखी तो आधारआधेय भाव हो गया, ठीक है, लेकिन सम्बन्ध क्या हुआ? पुस्तककी बेंच है कि बेंचकी पुस्तक। लोग ऐसा कहते जरूर है कि बेंचकी पुस्तक लावो याने इस बेंच पर रोज जिस पुस्तकको रखा करते थे उसे लावो। तो अर्थ उसका लम्बा और काल्पनिक भी है। सम्बन्ध कुछ नही। अब एक ही पदार्थमे वे छहों कारक घटित हो तो जीवका अत प्रकाश मिले। कर्ता—मैं करने वाला हू, मैं मेरे ही परिणमनको करता रहता हूँ, अब मेरे परिणमनमे भी एक जाननपरिणमन ले लीजिए। यही मुख्य धर्म है। तो उसपर घटावो। मैं जानता हू, अपने आपको जानता हू, जानने वालेको जानता हू। किसी दूसरे पदार्थके द्वारा मैं नही जानता। केवल अपने द्वारा ही जानता हू और जानने वालेके लिए ही जानता हूँ। जाननेका फल, जाननेका प्रभाव किसी अन्यमें न जायगा। उस जाननेकी क्रियासे जो कुछ मिलता है वह खुदको ही मिलेगा, दूसरेको नही। और जानने वाले से जानता हूँ। याने जानने वाला यह है ध्रुव और उससे जाननपरिणति निकल रही है। यो उस जानने वालेसे जानता हूँ। जैसे भेदकारकमें कहते हैं— वृक्षसे पत्ते गिरते हैं तो वहाँ भी यह ही दृष्टि की गई कि वृक्ष है ध्रुव और उससे पत्ता निकला। ध्रुवसे निकलनेमें उपादान कारकका प्रयोग होता है। मैं जानने वालेसे जानता हू। जाननपर्याय मेरा मेरेसे प्रकट हो जाता है अन्यसे नही। और जानने वालेमें ही जान रहा हू। मैं अपने आपमें ही वह जाननपरिणमन कर रहा हूँ।

जानन और नीति रीति—अब देखिये, जानन एक ऐसा विशुद्ध परिणमन है कि इसका आकार ज्ञेयाकार बनता है। किसी पदार्थका जाननरूप ही तो बन रहा है। तो इसमे विषय होता है परपदार्थ। जब मोह रहा है जीवको तो उस परपदार्थमे लगाव रख लेता है, बस विडम्बना यह है। काम तो चल रहा है सबका अपनी वस्तुके कानूनके माफिक। लेकिन इस चेतनने ऐसी कुदृष्टि की कि यह अपने ईमानपर न रह सका। अजीव पदार्थ तो अपने ईमानपर डटे है; उनमे सही बात हो रही है। उनमे जब जैसा निमित्त मिला तब तैसा होता है। विरोधमे कुछ नही करते। लेकिन यहाँ जीवमे एकका दूसरेके साथ सम्बध नही, फिर भी ये दृष्टिमे सम्बंध मान लेते हैं, तो ये ईमानसे ही तो गिरे। अथवा वस्तुस्वरूपके क्षेत्रमें देखिये और परिणमन क्षेत्रमे देखिये तो यहाँ भी ये ईमानसे नही गिरे। जब मिथ्यात्वका उदय आया तो इस जीवको रुलना चाहिए, मरना चाहिए, कष्ट भोगना चाहिए, यह ईमान की बात है। इसने पाप किया तो उस पापके उदयमे इसको कष्ट मिलना चाहिए अथवा मिथ्यात्वके उदयमे इसकी दृष्टि परमे लगनी चाहिए, अज्ञान अंधकार होना ही चाहिए, ऐसा ही वह निमित्तनैमित्तिक भाव है। तो यो खोटी बात होना भी एक इस परिणमन क्षेत्रमे

न्यायकी बात है। अब विवेक यह करना है कि मैं किस तरहका परिणमन करता रहूं तो मेरा उत्थान है और किस परिणमनमे मेरी बरबादी है ? एक सीधी सी बात यदि कह दी जाय कि भाई तुम्हारी तो अब यह हालत होना है कि मरेगे तो जरूर आप, और मरकर किन्ही पशु पक्षी आदिक योनियोमे जन्म लेना होगा, वहाँ भी जिन्दगी बिताओगे। वहाँ तुम्हे मारा, पीटा, काटा, छेदा, भेदा जायगा। बस आपका यही तो प्रोग्राम है, यही तो काम है। तो न सुहायेगा यह काम। और यह भाव बनेगा कि मुझे ऐसा जन्ममरण न चाहिए। जन्ममरण यदि न चाहिए तो इसका उपाय भी तो करना चाहिए। उसका उपाय यही है कि भूतार्थदृष्टिसे जाने गये इस अत चैतन्यस्वरूपका उपयोग रखना। जैसे व्यापारी लोग मालकी गारटी भी देते है, इसकी १० सालकी गारटी है, यह नियमसे ऐसा ही काम करेगा, ऐसे ही यहा भी यह गारटी है कि यदि उपयोग परपदार्थसे हटकर, परभावसे निवृत्त होकर अपने आपके स्वभावमे रमता है तो नियमसे कर्म खिरेंगे और मुक्ति प्राप्त होगी। यहा भी दूसरी बात नही हो सकती। तो भूतार्थदृष्टिसे जाननेका कितना उच्च फल है ? और स्वभाव की दृष्टि रखना यही धर्मका पालन है।

दान पूजा आदिमें धर्मरूपताकी गवेषणा—इस प्रसगमे एक यह शल्य बनाया जा सकता है कि पूजा, यात्रा, दान आदिक भी तो धर्म हैं, उनकी उपेक्षा यहा क्यो की जा रही है ? तो क्या यह धर्म नही है। नही है तो करते क्यो है ? और कर रहे है बडे-बडे ज्ञानी पुरुष भी। तो इस शल्यकी निवृत्ति इस आशयसे हो जाती है कि पहिले धर्मका अर्थ समझिये। धर्म कहते किसे है ? मोह-क्षोभ रहित निर्विकार परिणाम का नाम धर्म है। अविकारी स्वभाव जिसकी दृष्टि करनेसे भय दूर होता है, सकट मिटते है, शान्ति प्राप्त होती है, जहा क्रोध, मान आदिक कोई विकार नही है, जिस स्वभावको भूलकर यह जीव भव भवमे कष्ट भोगता है और जिस स्वभावकी सुध पाकर यह जीव ससारसे तिर जाता है, ऐसे सहज ज्ञानानन्दघन निज स्वभावका दर्शन करना, आश्रय करना, यह है धर्मपालन।

शुभोपयोगका विलास—अब रही दान, पूजा, यात्राकी बात, सो सुनो। ये दो प्रकार से होते हैं—एक द्रव्यरूप, दूसरा भावरूप। याने द्रव्यपूजा, द्रव्ययात्रा, द्रव्यदान। सामग्री हाथसे चढा रहे, या मुखसे विनती बोल रहे, यह तो द्रव्यपूजा है, पैरोसे जा रहे, यह द्रव्य-यात्रा है और हाथसे दूसरोको दान दे रहे यह द्रव्यदान है। तो ये सब बाते आत्माका परिणाम नही हैं। हाथ, पैर, मुख आदिकका चलना यह आत्मपरिणति नही है। भले ही कोई न कोई आत्मपरिणति इन कार्योंमें निमित्त है लेकिन ये कार्य आत्माके परिणमन नही हैं। अब भावपूजा, भावयात्रा और भावदानकी बात देखिये—भगवानका चरित्र याद होना, भगवानकी भक्ति जगना, अनुराग जगना, भीतरमें आल्हाद होना, उसकी धुन बनाना, यह सब

कहलाती है भावपूजा। ये है आत्माके शुभ परिणाम। इसमें मन, वचन, कायकी शुभ चेष्टा है और शुभ परिणाम है। भावपूजा, भावयात्रा, भावदान, ये निर्विकार परिणाम नही है, इसमे मदकषाय है, आल्हाद है। हर्षके आँसू भी बहे, विषादके आँसू भी बहे, गद्गद् वाणी हो जाय, स्पष्ट शब्द न निकलें, ये सब शुभ परिणाम है, निर्विकार परिणाम नही है, लेकिन निर्विकार परिणाम जिसके हुआ करते है उससे पहिले निर्विकार नही है, विकार है, तो यो ही विकार हुआ करता है। इस कारण यह व्यवहार धर्म है। पाप परिणामके बाद स्वानुभव किसीको नही जगता। जब स्वानुभव जगता है तो पुण्य परिणामके बाद जगता है। इस कारण पुण्यपरिणाम स्वानुभवका एक निगाहसे कारण हुआ, इस कारण वह व्यवहारधर्म है।

निर्विकार पर्यायके कारणके अन्वेषण प्रसंगमें ऋजुसूत्रनयके विषयपर प्रकाश—अब यह विकारपरिणाम, यह शुभभाव निर्विकार स्वानुभव परिणामका कारण होता है या नही? इसपर भी अब निर्णायक दृष्टिसे विचार करो। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे निर्विकार परिणतिका कारण विकारपरिणति नही हो सकती और यह ही क्या, ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे किसी भी पर्यायका कारण पूर्वपर्याय नही है। ये नयके अपने अपने विषय हैं। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है। उसकी निगाहमे ही दूसरी पर्याय नही, फिर कारण कार्य क्या ढूँढें? ऋजुसूत्रनय केवल एक पर्यायको निरखता है। एक भावको देखता है, दूसरेको नही देखता। सो इस नयसे व्यवहार नही बनता। लेकिन जो बात है वह भी तो जानना चाहिए। इस नयकी दृष्टिमे व्यवहारकी कोई बात कही भी नही जा सकती। कोई कहे कि रुई जल रही है। तो जो जल रही है वह रुई न रही, जो रुई है वह जल नही रही। सारी दूकानमे आग लग जाय तो वहाँ विद्वानके ऋजुसूत्रनयसे काम ही न निकलेगा। क्या बुझायें? जो जल रही उसका बुझाना क्या, जो नही जल रही उसका बुझाना क्या? तो ऋजुसूत्रनयसे व्यवहार नही चलता, मगर एक समयवर्ती पर्याय कैसी होती है? क्या ढग है? यह भी तो एक ज्ञेयतत्त्व है, उसकी जानकारी की जा रही है। इस नयमे विशेष्यविशेषण भाव तक भी नही बनता। क्या बोला जायगा? कोई यदि कह दे कि कौवा काला है तो यह नय कहता है कि झूठ बात है। जितना पूरा कौवा है क्या वह काला है? भीतरमे जो लाल, सफेद आदि खून हड्डी है वे भी काले है क्या? वे तो काले नही हैं। जितने जितने काले होते हैं वे सब कौवा होते है क्या? तब तो फिर काले बंदर, गाय, भैस आदि है ये सब भी कौवा हो जायेगे? तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे व्यवहार नही है और उसकी दृष्टिमे व्यवहारका लोप हो जाता है। होता है तो होने दो। व्यवहारकी जगह इस नयसे काम न लिया जायगा, पर नयका जो विषय है उसके समझनेके प्रसगमे यह नय काम

करेगा।

निर्विकार पर्यायके कारणकी चर्चा—अब यहाँ निर्विकार पर्यायका कारण क्या है? इस सम्बन्धमे बात सोची जा रही है। निर्विकार पर्यायका कारण पूर्ववर्ती विकार पर्याय नही हो सकता। एक तो कार्यकारण विधान ऋजुसूत्रनयके आशयसे नही हो सकता, दूसरी बात सुननेमे भी विषम लग रहा कि निर्विकार परिणामका कारण विकार बन जायगा क्या? क्या विकारसे निर्विकारता हुआ करती है? लेकिन यह बात वहाँ पायी जा रही है कि प्रथम बार निर्विकार परिणाम आयगा तो उसके पूर्ववर्ती समयमे ऐसे ही शुभ परिणाम हुआ करते है। और ऐसे शुभभावके गुजरे बिना निर्विकार परिणाम नही आ सकता। जैसे तीसरी सीढी पर चढनेका कारण दूसरी सीढी है, ऐसा सभी लोग कहते है। अब उस पर विचार करें तो क्या वास्तवमे दूसरी सीढी तीसरी सीढी पर चढनेका कारण है? कभी नही। दूसरी सीढी तो अपने आपमे है, उस पर रहने वाला पुरुष वही है, वह तीसरी सीढी की कदमका वैसे कारण है? लेकिन यह भी तो बताये कोई कि दूसरी सीढी से गुजरे बिना कोई तीसरी सीढी पर चढ जायगा? तो इस दृष्टिसे कारण है तीसरी सीढी पर जानेका दूसरी सीढी। यो ही प्रकृत प्रसगमे सोचिये—निर्विकार परिणाम तो कषायरहित अनुभव है और शुभभाव मद कषायका अनुभव है और अशुभ भाव तीव्र कषायका अनुभव है। अब यहाँ तीन बातोमे निर्णय करिये—तीव्र कषायका अनुभव, मद कषायका अनुभव और कषायरहित परिणाम होना। इससे कषायरहित परिणामके होनेसे पहिले मद कषाय का भाव आयगा या तीव्र कषायका भाव आयगा मदकषायका भाव आयगा। चाहे कोई तीव्र परिणाम रखने वाला पुरुष बहुत जल्दी ज्ञानमार्गमे आये तो वहा बडी जल्दी तीव्र कषाय को छोडकर मद कषायमे आया। उसके पश्चात् यह निर्विकार परिणाम रहा। तो निर्विकार अनुभव शुभ भावके अनन्तर होता है, इस कारण निर्विकार अनुभवका कारण शुभभाव बताया गया है।

अध्यात्म कारणकार्यविधान प्रक्रियाकी चर्चासे उपलब्ध शिक्षा—उक्त कारण कार्य प्रकियाकी चर्चासे शिक्षा यह लेना चाहिए कि हम लोग लक्ष्यमे पूर्ण सावधान रहे, रच मात्र गल्ती न करें, और उस लक्ष्यके पानेकी धुन बनायें। उस धुनमे लक्ष्य न मिले तब तक ये सब शुभभावरूप व्यवहार धर्मपालन करना अपना कर्तव्य है। और उन कर्तव्योमे रह कर लक्ष्य रखना है स्वभावका। तो यो स्वभावका उद्देश्य, लक्ष्य, विधान जब सही बनेगा तब समझिये कि कर्मोंकी निर्जरा होगी। जैसे केवल कहने मात्रसे "अष्टकर्म दहनाय धूप", कही कर्मोंका दहन नही हो जाता; लेकिन भाव तो बनाता है और लक्ष्य तो रहता है इसका, तो पात्रता जगाये रखनेका काम शुभ भाव करता है और कर्मनिर्जराका काम शुद्ध भाव

करता है, अथवा यो समझिये – जैसे किसी योद्धावो युद्धमे ढाल और तलवार इन दो की जरूरत है तो मारनेका काम तलवार करती है और बचाने का काम ढाल करती है। यो ही कर्मनिर्जराका काम शुद्ध भाव करते हैं और विषयकषायोसे पचानेका काम शुभभाव कर रहा है। यो कही शुभभाव कर्तव्य है, लेकिन लक्ष्य तो शुद्ध भावका ही होना चाहिए।

पूर्वपरिणामयुक्त द्रव्यकी उपादानकारणरूपता—उपादान कारणके सम्बन्धमे यह वर्णन आया है कि पूर्वपर्याय संयुक्त द्रव्य उपादान कारण कहलाता है, यह लक्षण सर्व दोषो को टालता हुआ लक्षण है। यदि केवल इतना ही कहा जाता कि पूर्व पर्याय उत्तर पर्यायका उपादान कारण है तो यो कहनेसे ये सब बाते भी प्रसंगमे आयगी कि सम्यग्दर्शन होनेसे पहिले मिथ्यात्व पर्याय थी, तो सम्यक्त्वका कारण हुआ। जब मिथ्यात्व सम्यक्त्वका कारण हुआ, उपादान कारण है तो आत्मद्रव्य तो अनादिसे ही है। सदैव क्यों नही सम्यक्त्व हो गया ? और जब यह कहा गया कि पूर्व पर्यायसे सयुक्त द्रव्य उपादान कारण है तो इस कथनमे द्रव्यकी तो मुख्यता हुई, क्योकि यहा विशेष्य जो है वह द्रव्य कहा गया। किन्तु किस प्रकारका द्रव्य उपादान कारण है जो द्रव्य विवक्षित पर्यायसे पहिली पर्यायमे रह रहा हो। तो यो एक दृष्टिसे देखा जाय तो सम्यग्दर्शनका कारण, सम्यक्त्वसे जो पूर्व पर्याय है, पूर्व परिणमन है, होगा, सम्यक्त्वरहित उस परिणतिसे सयुक्त द्रव्य सम्यक्त्वकी उत्पत्ति मे उपादान कारण है, लेकिन वहा यह बात निर्णयमे रखना है कि सम्यग्दर्शनका कारण अनन्तर पूर्ववर्ती मिथ्यात्वपर्याय सयुक्त द्रव्य है, यह एक विवक्षासे बात है। पर वस्तुत मिथ्यात्वमे सम्यक्त्व की साधकतमता नही है, यो विकारभावोमे निर्विकार परिणाम की साधकतमता बनते है।

पर्यायदृष्टिके एकान्तमें अहेतुकवाद व क्षणिकवादकी उत्पत्ति—पर्याय पर्याय पर दृष्टि देंगे तो पहिली पर्याय उत्तर पर्यायका कारण नही है। इस ही दृष्टिमे क्षणिकवादकी उत्पत्ति हुई। क्षणिकवादमे शाश्वत कोई पदार्थ नही माना। जो पर्याय है वही पूर्णद्रव्य है और चूंकि पर्याय अन्य पर्यायका कारण नही है, न उपादान है, न निमित्त, वह तो द्रव्यकी अवस्था है। तो क्षणिकवादमे भी यह माना गया कि असत्का उत्पाद होता है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है, उसका कारण कोई नही है। सब अहेतुक होते हैं। यह बात इस दृष्टिसे ही तो उन्हे मिली कि केवल पर्यायको ही देखा गया और उसे ही सर्वस्व समझा गया। तो किसी पर्यायने किसी पर्यायकी उत्पत्ति नही है। उत्पत्ति तो उपादानमे है, पदार्थमे है। तो यह लक्षण बहुत ही उपयुक्त है कि पूर्वपर्याय संयुक्त द्रव्य, उपादान नवीन पर्यायका उपादान कारण होता है। यह सिद्धान्त सभी घटनाओमे घटित हो जायगा।

धर्मभावके उपादान कारणकी समीक्षा—अब देखिये—धर्मभावका उपादान कारण

क्या है ? धर्मभाव-स्वभाव भाव है, आत्माका स्वभाव चैतन्य है, और चैतन्यका कभी पूरा आवरण हो ही नही सकता। तभी तो कितने ही कर्मोंका आवरण आये, ज्ञानावरण कर्मका बहुत अधिक आवरण हो, तब भी कुछ न कुछ ज्ञान प्रकट ही रहता है, उस ज्ञानका कभी आवरण न हुआ, न होगा। इसे कहते है नित्योद्घाट निरावरण ज्ञान।

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके कमसे कम ज्ञान रहता है, वह हमेशा प्रकट है और आवरणरहित है, अब आगे विकास होता है तो वह चैतन्य विकास अगले विकासका उपादान कारण बन गया। कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ जो भी विकास है उस विकासका कारण पूर्व विकास है। उत्तरपर्यायका कारण पूर्व पर्यायसंयुक्त द्रव्य है। इसी बातको अब गुणोके विकासके क्षेत्रमे देखें तो उत्तर विकासका कारण पूर्व विकास है, क्योकि उस धारामे वह विकास चल रहा है। तो वह विकास विकासका उपादान हुआ। जब कर्मोंका क्षय क्षयोपशम होता है तब होता है विभावोका अभाव और विभावोका अभाव होनेसे जो सहज विकास होता है जीवके ज्ञानादिकका, वह विकास उत्तर विकासका कारण होता हुआ पूर्ण विकास तक ले जाता है। देखिये अब निरन्तरके पूर्ण विकासोमे भी पूर्व पूर्ण विकास उत्तर पूर्णविकासका उपादान है। हाँ यहाँ इतनी बात अवश्य है कि वहाँ हीनाधिकता नही है। पहिले हीनाधिकता थी।

भक्तिभावकी धर्मरूपतापर विचार—जब हम एक भूतार्थपद्धतिसे निरखते हैं तो वहाँ यह ज्ञानमे आया कि यह विकास इस विकास ही से निकला है, और जब एक सर्वेक्षण करते हैं तो वहाँ विदित होता है कि पुद्गल कर्म आदिककी अवस्थाके निमित्तसे जो यह परिणमन हुआ है अथवा कुछ भी विभाव हुआ है उसका कारण पूर्वपर्यायसयुक्त द्रव्य है। और सूक्ष्म दृष्टिसे धर्मभावका उपादान कारण पूर्व धर्मभावका विकास है। विकाससे विकास बढता जाता है। तब यहाँ एक जिज्ञासा यह हो सकती तो प्रभुकी भक्ति करना आदिक क्या धर्म नही है ? तो इसके उत्तर दोनो ही आते है—धर्म है और नही है। भक्त आत्मामे जो एक स्व शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति बनी है और उसमे जो वैराग्यभाव बसा हुआ है वह तो धर्म है और उसके साथ जो अनुराग भाव बन रहा है, वह धर्म नही, किन्तु शुभोपयोग है। देखिये—भक्तिभाव किस स्थितिमे बनता है ? ज्ञान, वैराग्य और अनुराग, ये तीनो बातें जुडती हैं तब भक्तिभाव बनता है। ज्ञान न हो तो किस स्वरूपके ध्यानमे भक्ति जगे ? वैराग्य न हो तो शुद्ध तत्त्वमे या प्रभुमे भक्ति आ ही नही सकती। उसके तो होगा विषयोमे राग ? और जब तक अनुराग न होगा तब तक भक्ति नही बनती। तो भक्तिमे ये तीनो बातें हेतु पडती हैं—ज्ञान, वैराग्य और अनुराग। तो जो ज्ञान और वैराग्य है वह तो धर्म है और जो अनुराग है वह शुभोपयोग है, धर्म नही है।

भक्तिभावकी धर्मभावनिकटता—भक्तिभाव अधर्म है, इस शब्दसे कहना कटुवचन होगा, कारण कि वह ज्ञान और वैराग्यके अति निकटका भाव है, पर स्वरूपको निरख करके कोई ऐसा भी कहे तो उसका अर्थ है—धर्म नही है। तो धर्मभाव तो वास्तवमे ज्ञान और वैराग्य है। और जितना अनुराग है, मन, वचन, कायकी शुभ चेष्टा है, प्रभुका ध्यान है, वह सब एक शुभोपयोग है, धर्म नही है। वह पुण्यका कारण है, पुण्यभाव है। तब परख करके कहा जाय तो यो कह सकते हैं कि भक्तिभाव मिश्र भाव है, इस कारण वह धर्म नही है और अधर्म भी नही है। किन्तु धर्मके निकट वाला भाव है। जिस जीवकी दृष्टि प्रभुके उस शुद्ध ज्ञानविकास और निर्विकार भावपर गई है और इस दृष्टिमे जो आह्लादित होकर प्रभुकी ओर ही आकर्षित है, प्रभुके गुणोमे ही अपनी धुन बनाये हुए है ऐसे पुरुषकी स्थितिको अधर्म तो कह नही सकते। और अनुराग परिणाम वाला बन रहा अतएव धर्म कह नहीं सकते। किन्तु उस परिणतिके मूलमे धर्मभाव पडा हुआ है। शुद्ध ज्ञान और वैराग्यका भाव हुए बिना भक्तिभाव आ नही सकता। इस कारण भक्तिभावमे जितने अंश ज्ञान वैराग्य है वह तो धर्म है और जितने अंशमे अनुराग है वह भाव विभाव है, धर्म नही है।

शुभोपयोगकी वर्तना और कर्मनिर्जराकी साधना—शुभोपयोग परिणाम छठे गुणस्थान तक होता है। तो छठे गुणस्थान तक जो शुभोपयोग बताया, उसका भाव यह है कि देखिये—उपयोग तो एक समयमे एक होता है। चाहे शुभोपयोग हो अथवा अशुभोपयोग हो और चाहे शुद्धोपयोग हो। अब प्रथम तीन गुणस्थानोमे शुभोपयोग होता है और चौथेसे लेकर छठे गुणस्थान तक शुभोपयोग होता है, पर साथ ही साथ इस शुभोपयोगमे उस जीवके अन्त शुद्ध विकास भी चल रहा है। तो शुद्ध विकासका स्पर्श है, उसके साथ यह शुभोपयोग है। उपयोग तो लगनेको कहते है। अपना उपयोग लगाया इस जीवने शुद्ध तत्त्वकी ओर तो चूंकि एक रुचिसे लगाया इसलिए शुभोपयोग कहलाया, पर वहाँ जो झलक हुई, जिसकी झलक हुई और वहाँ स्वत. सहज जो बर्त रहा है एक विकास, वह विकास तो शुद्ध है। उस शुद्धकी दृष्टि होती है। तो आशिक रूपसे शुद्धोपयोग है, पर मुख्यता शुभोपयोगकी है। इन शुभोपयोगोमे जो ज्ञान और वैराग्यका अश है वह तो धर्म नही है और जो रागाश है वह धर्म नही है। निर्जरा किस भावके प्रसादसे हो रही है? वह भाव है सहज। ऐसा सहजभाव, ऐसा वह शुद्ध विकासका अंश कि जिसके कारण ज्ञानी पुरुषके जगते भी निर्जरा हो रही और सोते हुएमे भी निर्जरा हो रही। जब ज्ञानी जीव शुभके उपयोगमे रह रहा तब भी निर्जरा हो रही और विषय कषायोके उपयोगमे भी लग रहा हो तब भी निर्जरा हो रही। इस निर्जराका कारणभूत जो विकास है, जो है सो है, अब उसके उपयोगकी बात है कि इस

समय कहाँ उपयोग लग रहा ? अशुभकी ओर उपयोग होनेमे कुछ थोडा फर्क आये तो आये, लेकिन मूलमे सम्यक्‌भावके कारण जो निर्जरा हुई है वह तो चल ही रही है। शुभके उपयोगके सम्बन्धमे कुछ विशेषता जगे, अशुभोपयोगकी अपेक्षा तो रहे लेकिन निर्जराका मूल कारण जो उस ज्ञानीके था, जो कि अशुभोपयोगमे लग रहा वही विकास, वही कारण इस शुभोपयोगके भी है और कभी एक सेकेण्डके हजारवे हिस्से भाग भी उस शुद्धका अनुभव जगे, जिसे स्वानुभवकी स्थिति कहते हैं तो वहाँ भी कर्मकी निर्जरा उतनी ही है जितनी कि इस शुभोपयोगके समय थी। थोडी विशेषता भर हो जाती है, उसका कारण यह है कि सर्व बात, सर्व निचोड मूलसे चला करता है। अन्त कैसी योग्यता है, उसके आधार पर ये सब बातें चलती है।

धर्मका कारणरूप भाव—धर्मका कारण धर्मकी दृष्टि है। पूर्व धर्मविकास उत्तर धर्मविकासका कारण बन जाता है। बच्चे लोग एक खेल करते है कि खिन्नीकी छोटी छोटी दो लकडियाँ तोड लेते है। वे लकडियाँ पोली होती है। उनके एक एक किनारेपर तिरछा काटकर जोड दिया और उसे मिट्टीमे सान दिया, अब एक लकडी का हिस्सा पानी भरे हुए बर्तनमे डाल दिया और अगिले निकले हुए हिस्सेको थोडा हवासे खीच दिया जाय तो उससे पानी झरने लगता है। और अपने आप इतना पानी झरेगा कि सारा बर्तन खाली हो जायगा। तो वह पानी किसने झराया ? वहाँ कुछ ऊँचाई की भी बात नही है कि जैसे आजकलकी टकी ऊँची रहती है तो नल भी उतने ऊँचे चढकर पानी दे देगा। सर्वस मान भावपर रखा है, लेकिन पहिली बारका जो पानीका खिचाव है उसकी धारा उत्तर धाराको बढाती रहती है। तो यो ही समझिये कि जिस किसी प्रकार पुरुषार्थसे एक बार धर्मका आशिक विकास हो तो वह विकास आगेकी विकासधाराको बढाता रहेगा। तो धर्मविकासका कारण धर्मविकास हुआ। इन सब प्रकरणोसे यह निष्कर्ष निकला कि शुभोपयोगको एकान्तत धर्म कहकर न विश्लेषित करना और धर्म कहकर भी उसे विश्लेषित न करना। धर्मका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनसे होता है। और उस सम्यग्दर्शनके साथ रहने वाला जो शुभोपयोग है वह यद्यपि रत्नत्रयरूप भाव नही है, पर रत्नत्रयका सम्बन्ध बनाने वाला, रत्नत्रयकी पात्रता रखने वाला रत्नत्रयको सुरक्षित बनानेका प्रयोग है, वह शुभोपयोग है, इस कारण उसे अधर्म नही कहा जा सकता।

शुभोपयोग व शुद्धोपयोगमें तथा ज्ञानी व अज्ञानीके भावमें अन्तर—शुभोपयोगका जो खुद स्वरूप है निज वर्तमान, उस स्वरूपकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह धर्म नही है। धर्म तो मोह क्षोभरहित निर्विकार परिणाम होता है, शुभोपयोगमे क्षोभ तो है ही। मद कषाय है, मद क्षोभ है, क्षोभका अत्यन्ताभाव नही है। जब कोई पुरुष भक्तिभावमे गद्‌गद

हो जाता है, रोमाच खडे हो जाते है, अपनेको आल्हादका अनुभव करता है। इतना सब कुछ होने पर भी भीतरमे मरोडा तो गया वह, क्षोभ तो उसमें हुआ। अब वह क्षोभ जो है वह एक हितपथमे ले जाने वाला था इसलिए क्षोभ नही कहते, पर मन, वचन, कायकी चेष्टाये क्षोभ बिना हो भी सकती है क्या ? होता है किन्हीके कि जिनके कभी विकार न होगा या जब तक कषाय नही है, लेकिन जहाँ कषायभाव है और वहाँ कभी प्रभुभक्ति जगे तो उसमे जो मन, वचन, कायकी चेष्टा हुई वह तो क्षोभ बिना नही हो सकती। वैसे तो शुभोपयोग सम्यग्दृष्टिके भी हो सकता, मिथ्यादृष्टिके भी हो सकता, लेकिन मिथ्यादृष्टिके शुभोपयोगका वातावरण और है, सम्यग्दृष्टिके शुभोपयोगका वातावरण और है, और यह अन्तर पडता है भीतर ही भीतर। ऊपरसे तो जैसे मन वचन कायकी चेष्टा अज्ञानीकी है वैसी ही मन, वचन, कायकी चेष्टा ज्ञानीकी है। जैसे कोई पुरुष शौकसे खा रहा है, तो उसके कौर तोडने, खाने, चबाने आदिकी सारी बाहरी क्रियायें उस सम्यग्दृष्टि पुरुषकी भाँति ही दीखती है, पर वस्तुत उन दोनोकी क्रियावोमे बडा फर्क है। सम्यग्दृष्टिके तो ज्ञानमय भाव है और मिथ्यादृष्टिके अज्ञानमय भावका उपयोग है।

सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टिका आशय—मदकषायका उपयोग मिथ्यादृष्टिके भी हो सकता है और सम्यग्दृष्टिके भी। बल्कि बाहरकी प्रवृत्तिसे ऐसा अन्तर हो जाय कभी कभी कि सम्यग्दृष्टिके कषाय तीव्र हो रही है और मिथ्यादृष्टिके कषाय मद हो रही है, इतने पर भी भीतर क्या हो रहा है, कैसा कर्म बन्ध हो रहा है, उसमे यह बात न आयगी कि तीव्र कषाय होनेसे सम्यग्दृष्टिके तीव्र बध हो और मद कषाय होनेसे मिथ्यादृष्टिके सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षासे मद बध हो। बधका कारण प्रबल मिथ्यात्व भाव है। मिथ्यात्व न होनेसे जो बध नही हो सकता वह बध तो हो ही नही सकता, चाहे कितनी ही तीव्र कषाय हो और मिथ्यात्व होने से जो बंध हुआ करता है वह बध रुक ही नही सकता, चाहे कितनी ही मद कषाय हो। कोई दिगम्बर साधु जो अपने व्रत चारित्रके पालन करनेमे बहुत सावधान रहता है, मेरी समितिमे जरा भी फर्क न आये, मेरे व्रतमे रच भी अतिचार न लगे। मेरे सभी व्रत, संयम निर्दोष अच्छी तरहसे पलें, इससे मुक्ति मिलेगी। शत्रुसे विरोध भी न करें, क्रोध भी न करें, समताभावसे धन प्राप्त होता है, ये सब बाते उसके आशयमे हैं कि मैं मुनि हू और मुझे यह काम न करना चाहिए, इस तरह चलना चाहिए, इस बुनियाद पर ऐसे मुनिको कोई मारपीट रहा है अथवा कोल्हूमे भी पेल रहा है तो वहाँ भी इस मुनिके यह आशय है कि मुझे यह मुनिपद मिला है, और मुनिको कभी क्रोध न करना चाहिए, चाहे यह कितना ही कष्ट दे रहा हो, क्षमा करना चाहिए, इतना भाव है मदकषायका, लेकिन मैं मुनि हू, ऐसी पर्यायबुद्धि होनेके कारण उसका बध उस सम्यग्दृष्टिसे कितना ही

अधिक है जो घरमे रहता हुआ विषयोके उपयोगमे भी लग रहा है। भीतर की गुत्थीको सुलझा लेना ही एक वास्तविक ज्योति है। यहाँ जिसका परिणाम शुद्ध ज्ञानमय बन गया उसका ससार कट गया समझ लीजिए। जो संसारमे रहते हैं उनका बिगाड होना अनिवार्य नही, हो भी, न भी हो बिगाड, पर जिस जीवमे ससार रहता है उसका नियमसे बिगाड रहता है। तो यह शुभोपयोगी सम्यग्दृष्टि जीव ससारमे रह रहा, मगर उसमे ससार नही रह रहा और उस कोल्हूमे पिलने वाले मुनिके चित्तमे ससार रह रहा है। ससार मायने पर्याय। इसका क्या विकास है दुनियामे ? सब परिणमन। इसीको कहते हैं संसार। इस परिणमनका आधारभूत जो द्रव्य है उसकी नजर रखने वाला ही यहाँ कौन है ? तो यह शरीर भी पर्याय है और इसीको निरखकर सोच रहा कि मैंने मुनिपद धारण किया, मुझे क्रोध न करना चाहिए। भीतरकी गुत्थी न सुलझ सकनेसे इतने कष्ट करने पर भी उसे सफलता नही मिलती। तब जाने कि धर्मपालनके लिए हमे कहाँ प्रयत्न करना है और क्या अनुभव करना है ?

निश्चयभक्ति व व्यवहारभक्ति—निश्चयपद्धतिसे भक्तिका क्या स्वरूप है और व्यवहारपद्धतिसे भक्तिका क्या स्वरूप है तथा इस भक्तिका प्रयोजन क्या है, उससे फल क्या मिलता है ? इन सब बातोके विषयमे अब विचार करना है। निश्चयभक्ति तो वह है जहाँ अनादि अनन्त एक स्वरूप सदा मुक्त परमपारिणामिक भावमयका कारणसमयसार स्वरूप निज परमात्माकी सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और इस ही स्वरूपसे उपयोगकी स्थिरता रहती है वह है निश्चयत भक्ति। निश्चयभक्तिमे किसकी ओर श्रद्धान, ज्ञान और आचरण किया गया है उस तत्त्वपर ध्यान देवे। वह तत्त्व हम आप सबका अपने आपमे विराजमान है अर्थात् यह ही स्वय केवल स्वरूप अपने सत्त्वसे जो कुछ है उस स्वरूपकी यह उपासना है। अब आप समझ लीजिए कि जहाँ हम वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्माकी भक्ति करते हैं जो कर्मोसे मुक्त हैं और अपने ज्ञानानन्दके पूर्ण विकासमे रहे, उनकी भक्ति तो व्यवहारभक्ति है। कितना पवित्र स्वरूप, किन्तु है वह परपदार्थ, अतएव उसकी उपासना व्यवहारभक्ति है, और निश्चयभक्तिमे अपने आपमे विराजमान भावकी उपासना है। तो इससे यह अदाज लगायें कि आपमे स्वयमे कितना उत्कृष्ट तत्त्व बसा हुआ है ? और वास्तविकता भी यही है कि वह निज सहज परमात्मतत्त्वकी उपासनासे ही सम्वर निर्जरा और मोक्ष होता है। तो यह निज तत्त्व है अनादि अनन्त। इस मुझ सत्को किसने बनाया ? यह मैं सत् कैसे मिट सकूं ? जो हू सो सदासे हू, सदाकाल तक हू। और वह एक स्वरूप है। अब जो नाना स्वरूप हो रहे, अब तक हुए हैं उन स्वरूपोकी दृष्टि न देना, किन्तु इनका जो स्रोत है, आधार है अथवा जिसके सत्त्वपर कुछ साधनोसे ये विडम्बनायें बन रही हैं उस सहज तत्त्वपर दृष्टि

देना है, वह तो एक स्वरूप है। कोई पदार्थ है तो अपने आप है और अपने आप जो कुछ है वह सब विशुद्ध है। वहाँ परकृत कोई भेद नही, भेदकृत कोई भेद नही। वह तो एक स्वरूप है।

सहज परमात्मतत्त्व—इस प्रसंगमे जिसकी उपासनासे निश्चयभक्ति बनती है उस सहज परमात्मतत्त्वकी बात कह रहे हैं कि वह एक स्वरूप है, सदा मुक्त है। कुछ लोग एक ईश्वर ऐसा मानते है कि जो सदा शिव है, कभी बन्धनमे ही न था, वह एक ईश्वर है और उसके अलावा जितने भी भगवान परमात्मा ईश्वर बनते है वे सब कभीसे बनते हैं और कभी तक ही परमात्मा रहेगे, सदा न रहेगे। यह सदाशिव जो कि अन्य दार्शनिकोने माना है जब यह एगडाई लेगा तो उन सब मुक्तोको ढकेल देगा और ससारमे फिर जन्ममरण करेगा। इस तरहका निर्णय कर रखा है कुछ दार्शनिकोने। बात यहाँ यह निरखना है कि दर्शनके नामपर किसीने कुछ भी कल्पना कर रखी हो, आखिर उसका कोई न कोई भीतरमे सूक्ष्म थोडा बहुत आधार होगा। एकदम मूलसे बिल्कुल गलत बातपर कल्पना नही उठती। यह कल्पना उनके क्यो जगी कि है कोई सदाशिव ईश्वर, जो सारे जगतकी सृष्टिका कर्ता हो। तो कल्पनामे बढ-बढ करके उन्होने क्या किया, उसपर तो चर्चा नही करना है, मगर यह निरखिये कि यह आत्मा स्वयं सदाशिव है। अर्थात् जो स्वरूप है अपने सत्त्वके कारण जो कुछ इसका सहजभाव है वह सदा मुक्त है। कोई भी सत् किसीसे बधा हुआ नही है। वह सबसे निराला है। कोई भी सत् स्वयं अपने स्वभावकी ओरसे विकारी नही है, वह अविकारी है। सर्वजीवोमे जो सहज परमात्मतत्त्व है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप है वह तो सदा मुक्त है, सदा शिव है, सदा कल्याणमय है।

सृष्टिका आधारभूत तत्त्व—अब देखिये सर्व चमत्कारोका मूल तो यही है ना! अब उसपर क्या बीती? क्या हो रहा, क्या ढंग बना कि यह सब ससारकी सृष्टि बन रही। इस सृष्टिमे इस सारी सृष्टिको कोई एक सत् करता नही, किन्तु जितने अनन्त जीव हैं वे सभीके सभी अपने आपकी सृष्टिके कर्ता है। और जो कुछ यहाँ दिख रहे है पत्थर, खम्भा, काठ, लोहा आदिक, ये रूप आये कहाँसे? ये रूप इस ही सदाशिवके स्रोतसे आये हैं, इस ही की सृष्टिमे आये हैं। अगर जीवका सम्बध न होता तो ये पत्थर, काठ आदिक रूप बन कैसे पाते? पृथ्वीमे जीव था, पेडमे जीव था तो ये बढे, हरे हुए और इनका यह रूप बना। तो चेतन और अचेतन सभी सृष्टियोका आधार यह जीव रहा ना, और जीवका स्वरूप एक है। यद्यपि जीव नाना है, अनन्त हैं, मगर स्वरूपदृष्टिसे जब देखा तो एक स्वरूप है। जैसे समुद्रमे जल नाना है। एक एक बिन्दु एक एक जल है, लेकिन समस्त बिन्दुओंका स्वरूप ही जब नजरमे रहता है तो वहाँ एक नजर आता है। तो इन सब जीवोंका स्वरूप दृष्टिमे एक

तत्त्व नजर आया। जिसको सदाशिव या सदा मुक्त शब्दसे कह लीजिए। वह सदाशिव, सदा मुक्त अनादि अनन्त एक सहज परमात्मतत्त्व सर्वजीवोमे अन्त' प्रकाशमान है। उसे जो देख लेता है उसका भला हो जाता है। जो उसको नही तक पाता है वह अधेरेमे रहकर विकल्प करता हुआ ससारमे रुलता रहता है।

कारण समयसार—जिसकी उपासनाको यहाँ परमभक्ति कहा जा रहा है उस तत्त्व की चर्चा चल रही है। वह परमपारिणामिक भाव स्वरूप है। पारिणामिक शब्दका अर्थ क्या है कि परिणाम ही है प्रयोजन जिसका, उस भावको पारिणामिक भाव कहते हैं। पर्याय करते रहना ही है प्रयोजन जिसका, उस तत्त्वको पारिणामिक भाव कहते हैं। इस लक्षणसे कितने प्रकाश नजर आ रहे हैं? जो सत् है उसका काम है निरन्तर परिणमन करते रहना और परिणमन करते हुएमे जितने भी परिणमन है उन सब परिणमनोका जो आधार है, उन परिणमनोमे जो ध्रुव तत्त्व है उसको कहते है पारिणामिक भाव। और वही निरपेक्ष रूपसे देखा गया न, अतएव विशेषण साथमे लगा देते है परम। ऐसा पारिणामिक भावमय यह सहज परमात्मतत्त्व है, इसको कारणसमयसार भी कहते है। कारणसमयसार और कार्यसमयसार ये दो शब्द हैं। कार्यसमयसारका अर्थ है परमात्मा जो प्रकट हो गया है। अरहंत और सिद्ध ये कार्यसमयसार हैं। जो वीतराग सर्वज्ञ बन गया है अर्थात् कार्य बन चुका है, पूर्ण समयसार एकदम प्रकट हो गया है उस आत्माको कहते हैं कार्यसमयसार। और कारणसमयसार दो प्रकारसे देखा जायगा, एक तो कार्यसमयसार होनेसे पहिले जो अवस्था है उसको कारणसमयसार कहते है। जैसे १२ वे गुणस्थान की अवस्था। उसके बाद ही तो जिनेन्द्र बनते है। तो कारणसमयसार हुआ क्षीणमोह गुणस्थान। यह तो हुई विशेष योग्यताकी बात। अब दो बातें और समझना है कि ऐसा कार्यसमयसार कौन जीव बनता है, कौन द्रव्य बनता है? इसका जो उत्तर आयगा वह है कारणसमयसार। अरहंत और सिद्ध कौन बनता है? आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल आदिक बनते हैं क्या? नहीं। जीव बनता है, आत्मा बनता है। तो कार्यसमयसार होनेकी कारणता जीवमे है। यो सामान्यतया कारणसमयसार जीव कहलायेगा। एक इस दृष्टिसे जीव कारणसमयसार है। दूसरी बात यह तकना है कि ऐसा वह कौनसा तत्त्व है जिसका आलम्बन लेनेसे कार्यसमयसार प्रकट होता है? वह तत्त्व है यह सहज चैतन्यस्वरूप। जिसका आश्रय करनेसे, उपयोग करनेसे, जिसमे स्थिरता होनेसे जीवका कल्याणलाभ होता है। कार्यसमयसारपना प्रकट होता है। जिसका आलम्बन लेनेसे कार्यसमयसारपना बनता है उस तत्त्वको कहते हैं कारणसमयसार। तो यह सहज परमात्मतत्त्व, जिसकी उपासना करना परमभक्ति है, वह है कारणसमयसार।

निश्चयभक्तिके विषयभूत सहज परमात्मतत्त्वकी अन्तःप्रकाशमानता—यह सहज

परमात्मतत्व अपने आपमे विराजमान है। जैसे घी दूधमे बना हुआ है, अन्त प्रकाशमान है, आँखो नही दिखता और स्वादमे भी न आयगा, उसका व्यवहार भी न बन पायगा, लेकिन उसके पारखी लोग बता देते है कि इस दूधमें तो इतना घी निकलेगा और इस दूध मे इतना। तो देखिये दूधके अन्त ही अन्तः समझा ना कुछ, तभी तो पहिलेसे ही उसका निर्णय दे देते है। तो जैसे दूधका घी अत. है मगर बाहर व्यक्त नही। व्यक्त होनेकी पद्धति है कुछ जिससे वह व्यक्त हो जाता है, क्या पद्धति है? जामनको संस्कृत करके मथ दिया जाय तो घी प्रकट हो जाता है, इसी तरह इस जीवको स्वरूपभावनासे संस्कृत करके इसे मथ दिया जाय अर्थात् अपने उपयोग द्वारा इसको ग्रहण किया जाय, इसको मिला दिया जाय उपयोगमे तो इस पद्धतिसे यहाँ यह परमात्मतत्व प्रकट हो जाता है। तो ऐसे सहज परमात्मतत्वकी भक्ति करना निश्चयभक्ति है।

व्यवहारभक्ति—उपयोगमे अरहत सिद्ध स्वरूपका सोल्लास रहना, अनुराग सहित बसना इसका नाम है व्यवहारभक्ति। व्यवहारभक्तिकी प्रक्रियामे प्रभाव और निश्चयभक्ति की प्रक्रियामे जो प्रभाव होता है उसे स्वय अनुभव करके निरख सकते है। जब ऐसी दृष्टि बनी हो, आकाशमे ऊपर समवशरणमे जिनेन्द्र विराजमान हैं जिनका चारो ओरसे मुख दिखता है, बहुत बडी शोभामे गंध कुटी पर अतरिक्ष विराजमान है, चारो ओरसे देव देवियाँ नृत्य गान करते चले आ रहे है, भक्तिमे झूमते आ रहे है। अरे यह सब किस बातका आकर्षण है? ये किसीके रिश्तेदार नही लगते, किसीसे बात नही करते, सबसे निराले है। इनके उपयोगमे कुछ बसा भी नही है पर यह क्या अंधेर हो रहा कि जिनसे कुछ मतलब ही नही, यह स्वर्ग खाली हो रहा है, सभीके सभी लोग वहाँ पहुंच रहे है, ये मेढक भी उछलते हुए जा रहे है, ये पशु पक्षी भी वहाँ पहुच रहे हैं, क्या गजब हो रहा है? कौनसा आकर्षण है कि जिसकी वजहसे देखो—समवशरणमे इतने जीव अंधाधुन्ध चले आ रहे हैं। थोडी देरको अचरज सा लगे, लेकिन जब मर्म समझमे आयगा तो ये सब अचरज समाप्त हो जायेंगे। अब यह आत्मा सर्व संसारसे निराला हो गया। अब इन को किसीमे रागद्वेष नही है। इतना ज्ञानगुण विकसित है कि जिससे तीन लोक तीन काल के समस्त पदार्थ प्रतिभासित हो रहे हैं पर इनको किसीसे कुछ मतलब नही। ऐसा निराला हुआ है यह आत्मा। ऐसा कुछ भान ही सव जीवोमे आया है अपनी अपनी भाषामे, उसका आकर्षण है यह। तो अब जानिये कि लोगोमे रागका जो आकर्षण है उससे अधिक वीत-रागताका आकर्षण होता है। उस समय जब उस वीतराग स्वरूप सर्वज्ञ स्वरूप उस आत्मतत्वपर दृष्टि पहुचती है तो साथ ही साथ अपने अपराधोपर भी दृष्टि पहुंचती है और प्रभुसे अपनी तुलनाकी भी दृष्टि जगती है। एक साथ हर्ष और विषाद दोनो मिल

करके एक ठडा और गर्म मिश्रित आँसू वह जाते हैं। यह सब आकर्षण एक अपने भावका है, प्रभुका नही। ऐसा प्रभुस्वरूप जिसके हृदयमे बसा है वह स्वयं उस ओर आकर्षित होता चला जाता है।

भक्तिका प्रभाव—व्यवहारभक्तिका प्रभाव विलक्षण है और निश्चयभक्तिका प्रभाव तो उससे भी उत्कृष्ट है। जहाँ अपने आपमे ही गुप्त ही गुप्त स्वयं शान्त हो जाता है, ऐसा निश्चयभक्ति और व्यवहारभक्तिका स्वरूप है। अब व्यवहारभक्तिमे तो नमन, स्तवन, पूजन, ये सब चलते हैं, पर परमभक्तिमे केवल एक भावका ही नाता है। तो जीवका उद्धार है परमभक्तिसे। व्यवहारभक्ति भी इस परमभक्तिको सम्पन्न बनानेके लिए है। जब इस निश्चयभक्तिमे नही रहा जाता तो व्यवहारभक्तिमे यह ज्ञानी चलता है और वहाँ जब एक अत रूपसे नही रहा जाता तो मन, वचन, कायकी ऐसी शुभ चेष्टायें होती हैं। यह व्यवहार-भक्ति है परमभक्तिके लिए और परमभक्ति है शिवस्वरूप पानेके लिए। यो भक्तिका स्वरूप है और इसका प्रयोजन सदाके लिए शुद्ध शाश्वत आनन्द पाना है।

रागादिके कारणोंपर विचार—पूर्वपर्यायसहित पदार्थ उत्तरपर्यायका उपादान है। उपादान कारणके सम्बधमे जो एक सिद्धान्त बना था कि पूर्वपर्यायसयुक्त द्रव्य उपादान कारण होता है तो विकारी भावकी पूर्व पर्याय है विकारी भाव, सो उससे सयुक्त द्रव्य उपादान कारण है। अब यहाँ देखिये कि इस विकृत दशामे स्थिति क्या गुजर रही है? रागद्वेष रूप अध्यवसान चल रहा है। तो इस प्रकारकी जो मलिन पर्याय है उससे सहित द्रव्य उसका उपादान कारण है, क्योकि अध्यवसान भावके कारण ये सब विकारपरिणमन चल रहे हैं और उस अध्यवसान भावका कारण क्या है कि वस्तुके असाधारण और स्थायी भावोका अज्ञान है। जो पदार्थमे असाधारण भाव है, जिससे उस द्रव्यकी पहिचान होती है, जो अन्य द्रव्यमे न पाया जाय उस भावका अज्ञान है, इस कारण रागद्वेष मोह अध्यवसान है। इसको यो भी कह लीजिए कि जो वस्तुका असाधारणभाव है वही वस्तुका स्थायी भाव है, और उन स्थायी भावोका ज्ञान नही है इस कारणसे वह अज्ञान राग, मोह आदिकका कारण बनता है, और इस अज्ञानका भी कारण क्या है? याने एक असाधारण भावका अथवा स्थायी-भावका ज्ञान न होना। इस अज्ञानका कारण क्या है? इस अज्ञानका कारण है पूर्ववर्ती अज्ञानदशा। अज्ञानसे अज्ञान धारामे चला जा रहा है और निमित्त कारण है कर्मका उदय। दर्शन मोहके उदयसे मिथ्याप्रतीति सहित जो परिणाम है वही अज्ञान दशा है। तो यह नैमित्तिक भाव है। दर्शन मोहके उदयसे हुआ है। यह अज्ञान किस रूप है? यह अज्ञान क्या चीज है? स्व और परमे एकत्वका अध्यास रूप है, यही अज्ञान है। यहाँ अज्ञानको ज्ञानका अभाव नही समझना, किन्तु निज और परमे एकत्वका अध्यास है यही अज्ञान है,

जिसके कारण यह निजको निज और परको पर नही समझ सकता।

क्रियामाणैकत्वाध्यास—स्व और परमे जो एकत्वका अध्यास है, जैसे देहको आत्मा मानना, यह स्व और परके एकत्वका अध्यास है तो ऐसे ऐसे एकत्वके अध्यासोको हम तीन रूपोमे देखें – एक तो क्रियमाणैकत्वाध्यास और दूसरा विपच्चमानैकत्वाध्यास, तीसरा ज्ञानमानैकत्वाध्यास। स्व और परमे जो एकताका भ्रम चल रहा है यह तीन रूपोमे है। जैसे क्रियमाण एकत्वाध्यास यह है कि मै मारता हू, खाता हू, बोलता हू, ऐसा जो रागद्वेष गर्भित क्रियाकी ओर अपने आपको एक मान लेना कि मैं कर्ता हू, तो क्रियाके करनेमे एकता जोडी। यह हुआ क्रियमाणोमे एकत्वका अध्यास। आत्मा तो वास्तवमें अहेतुक है और इसकी क्रिया एक जानन क्रियामात्र है, इसका कार्य केवल जानन है। ऐसे अपने परमार्थस्वरूपको न समझकर औपाधिक नाना क्रियावोमे अपनी एकता जोडना यह है क्रियमाणैकत्वाध्यास। इस अध्यासमे इस जीवने परक्रियाके साथ अपनी एकता जोडी, सो एक इस प्रकारका एकत्वाध्यास इस जीवकी अज्ञानदशाका कारण बन रहा है।

विपच्यमानैकत्वाध्यास—दूसरा अध्यास है विपच्यमाननैकत्वाध्यास याने कर्मके विपाकवश जो परिणति दिख रही है-जैसे मैं मनुष्य हूँ, तिर्यञ्च हूँ, पुण्यमय हूँ, पापमय हूँ, सुखी हूँ, दु खी हूँ आदिक जो भाव बन रहे है ये है सब कर्मोके विपाक और इन पर्यायोमे अपने आपका किया है इस जीवने एकत्वकी कल्पना। तो कर्मोदयजनित अवस्थाओंको और अपने आपको एक मान लेना यह है विपच्यमानैकत्वाध्यास। पहिली बातसे इसमे क्या फर्क है कि पहिले तो करनेमे इसने अपनी एकता जोडी कि मैं करता हू। और इस दूसरे अध्यासमे कर्मफलमे, पर्यायोमे एकता जोडी, मैं मनुष्य हू, अमुक हू, सुखी हूँ, दु खी हूँ, यह है विपच्यमानैकत्वाध्यास क्योकि आत्मा तो अहेतुक है और ज्ञायकभाव स्वरूप है, लेकिन इन रूपोमे न मानकर औपाधिक विभावरूप मानने लगना यह है विपच्यमानैकत्वाध्यास।

ज्ञायमानैकत्वाध्यास—तीसरा अध्यास है एकत्वाध्यास। ज्ञायमान पदार्थके साथ अपनी एकता जोडना सो ज्ञायमानैकत्वाध्यास है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, अन्य जीव पुद्गल आदिक जो ज्ञायमान हो रहे है उनको व अपने आपको एक मानना यह ज्ञायमानैकत्वाध्यास है। जो जाननेका विषय है उसमे और अपनेको एकमेक कर देना इसे कहते है ज्ञायमानैकत्वाध्यास, क्योकि यह आत्मा तो अहेतुक और एक ज्ञानस्वरूप है, किन्तु ऐसे परमार्थस्वरूपको न समझकर ज्ञायमान अन्य पदार्थोमय अपनेको मान लेना यह मिथ्या आशय इस अध्यासमे पडा हुआ है। तो यह तीन प्रकारके एकत्वाध्याससे अज्ञानमय दशा बन रही है। करनेमे एकत्व मानना, मै खाता हूं, चलता हू, मारता हू, दु खी करता हू, सुखी करता हू। यह एक क्रियमाणैकत्वाध्यास है। कर्मके फलमे प्राप्त हुई पर्यायमे

एकता करना—मैं मनुष्य हू, सुखी हू, दुखी हू, आदिक, यह है विपच्यमानैकत्वाध्यास और जाननेमे जो पदार्थ आया है उस परद्रव्यमे एकताका अध्यास करना, जैसे यह मेरा पुत्र है, मित्र है आदिक रूप दूसरोको अपनाना, यह सब है ज्ञायमानैकत्वाध्यास।

अज्ञानदशाकी अनादिता—उक्त तीन प्रकारके भावोके कारण यह जीव अज्ञान दशामे चल रहा है। और यह अज्ञानदशा जीवमे अनादिसे है, क्योकि इस समयकी जो अज्ञानदशा है वह पूर्व अज्ञानदशासे है। इसका उपादान पूर्व अज्ञानदशा है। उसका उपादान पूर्व अज्ञानदशा है। इस तरह अज्ञानकी सतति अनादिसे है। ऐसा नही है कि यह आत्मा पहिले तो शुद्ध हो, फिर किसी कारणसे या अकारणक अशुद्ध हुआ हो। तो यह अज्ञानदशा, यह विकारी भाव अनादिसे है अनन्त काल तक रहेगी। रागद्वेषादिक जो भी विकारी भाव है, जो अनुभवनमे आ रहे हैं, जिनके क्षोभ परिणति बीत रही है, अनवच्छिन्न धारासे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तो चलता ही है। कितने समय तक रहा एक जाति का विकारी परिणाम ? अन्तर्मुहूर्त तक। लेकिन उसके बाद दूसरा विकारी भाव हो जाता है। यो प्रवाहरूपमे तब तक यह चलता रहता है, जब तक कि ज्ञानप्रकाश न जगे और ये रागद्वेष दूर न हो।

अन्तर्मुहूर्त धाराबद्ध कषायके उपयोगमें विकारकता—यहाँ रागपरिणमनकी बात बतायी जा रही है, इसके सम्बन्धमे एक अन्तर समझ लेना कि आत्मामे रागद्वेष प्रतिसमय होता रहता है। लेकिन एक समयका रागद्वेष अनुभवमे नही आ पाता, किन्तु अजघन्य अन्तर्मुहूर्त तककी रागधारा बनती है, वह उपयोगमे आती है, वह अनुभवमे आया करती है। तो यो अनुभवमे आनेका कारण यह है कि छद्मस्थ जीवोका उपयोग अन्तर्मुहूर्तमे ग्रहण करता है पदार्थको। केवलज्ञानीका उपयोग एक समयमे ही पदार्थको जान लेता है और छद्मस्थकी जो जाननरूप व्यक्त दशा बनती है वह अन्तर्मुहूर्तके उपयोगसे बनती है। तब ये रागद्वेष अन्तर्मुहूर्त तकके अनुभवमे आ पाते हैं। एक समयका रागपरिणमन अनुभवमे नही आता, अर्थात् क्षोभको उत्पन्न नही करता। क्षोभ होता है तब जब ज्ञानमे वे विकारीभाव आते है। और उपयोगमे विकारीभाव आ पाता है अन्तर्मुहूर्तमे। तो पदार्थका परिणमन प्रतिसमय होता है। यह बात ठीक है, परन्तु विकारी कोई विभाव बद्ध अवस्था की दशा होनेसे उसकी वृत्ति अन्तर्मुहूर्त तक चलती है। जैसे किसी जीवने क्रोध किया तो वह क्रोध करता जा रहा है अन्तर्मुहूर्त तक, तब उस कर्मका क्रोधका क्षोभ आ पाया। एक समयके क्रोधका क्षोभ नही आ पाता। समय मात्रकी रागपरिणति ज्ञेय होती है। उपयोगमे विकारी नही होती। यह सब अपने भीतरकी परिणति की बात चल रही है। जो विकार परिणति बन रही है वह अन्तर्मुहूर्त तक धारारूपमे चलकर अनुभवमे आ पाती है। निर-

देख एक समयकी भावपरिणति क्षोभको लानेमें समर्थ नहीं हो पाती, क्योंकि विकार एक समयकी परिणतिको ग्रहण ही नहीं कर पा रहा और जिसका उपयोग एक समयकी परिणतिको ग्रहण करता है वह शुद्ध परमात्मा है। वहां क्षोभकी गुंजाइश ही नहीं है। तो अपने आपमें जो विकारका अनुभव जगता है वह विकारका अनुभव अन्तर्मुहूर्त तक चलकर ही बन पाता है।

दशा बढती है। उसी भ्रमके आधारपर ये सब दृष्टियाँ चलती रहती है, जो कि भ्रमपूर्ण रहती है। तो सर्वविडम्बनाका आधार है यह कि परमे हम एकता किए हुए हैं अपनी। इसको तो बहुतसे लोग समझते है कि भाई परिवारमे, वैभवमे, धनमे, घरमे, एकता करना कि यह मेरा है, यह मै हू, यह भ्रम है, मिथ्या है, अज्ञान है। इसे प्राय बहुतसे लोग कह देते है और बात ठीक है, पर जो लोग ऐसा कहते हैं वे भी सही रूपमे नही समझ पा रहे हैं। जब शुद्ध पदार्थका ज्ञान हो, परिणतियोका सही परिचय हो तब तो वह समझा समझिये। फिर तो यह कह रहा है सो मानना ठीक है। थोडा-थोडा उसको परिचय है कि जो परपदार्थ हैं, परजीव हैं, परद्रव्य है उनको अपना न मानना चाहिए। और अपना मानना तो वह भ्रम है, किन्तु दो और परमे एकत्वके अध्यास जो अभी बताये गए इस पर दृष्टि कम है। एक विपच्यमान एकत्वाध्यास और दूसरा क्रियमाण एकत्वाध्यास। मैं तो हू एक ज्ञायकभावस्वरूप और मनुष्य होना, सुखी होना, दुखी होना, क्रोधी होना, ये सब हैं पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर हुए विभाव। इन विभावोके साथ ज्ञायकभावस्वरूप अपने आत्मा को जोड देना कि मैं सुखी हू, मैं मनुष्य हू, यह कहलाता है विपच्यमान एकत्वाध्यास। इस भ्रमकी ओर दृष्टि जीवोकी नही है, यह उसका भ्रम था, ऐसा कोई माने तो भ्रम है। ऐसी दृष्टि नही जग पा रही और थोडे रूपमे कोई यह कह भी दे तो क्रियमाण एकत्वाध्यासकी ओर तो दृष्टि ही बिल्कुल नही है। मैं चलता हू, खाता हू, बोलता हू, यो इसमे जो क्रिया है सोचनेकी, खानेकी, पीनेकी, यह क्रिया मेरी नही है। मै हू केवल एक जाननक्रियारूप। मै हू ज्ञानभावमात्र, तो मेरी क्रिया केवल जानन ही होगी। तो जानन क्रियामात्र यह मै हू, यो न समझकर यह अज्ञानी इस क्रियामे एकत्वका अध्यास किये हुए है। यो क्रियामे एकत्व का अध्यास करना यह भ्रम है, इसको बहुत कम लोग समझ पाते है और इसी पर कहते है कि मैने यो किया, मै यो कर सकता हू, यो कर देता हू, तो यो कर्तृत्वका अभिमान जगता है। और विपच्यमान एकत्वाध्याससे सम्पन्नताका अध्यास जगता है। मै इतने धन वाला हूँ, ऐसे रूप वाला हू, इतने परिवार वाला हू आदि। तो ये सब परके साथ जो एकत्वकी कल्पनाके लगाव हैं ये लगाव ही इस जीवको दुखकारी हैं। इसमे आत्माका अकल्याण है और इसीसे इसकी अज्ञानदशा चल रही है और यह ससारमे रुलता है।

इस प्रसगमे यह बात बतायी जा रही है कि रागद्वेषादिक परिणमन इस जीवमे जो चल रहे हैं उनका अनुभव अन्तर्मुहूर्त तक उस पर्यायकी धारा चलती है, तब हो पाता है अर्थात् एक समय मात्र जो जो किसी भी विभावका परिणमन है उतना मात्र अनुभवमे नही आ पाता, अर्थात् रागके फलमे क्षोभ होना, द्वेषके फलमे आकुलता होना, ये परिणाम अन्तर्मुहूर्त तककी रागद्वेषकी धारामे बन पाते हैं। तो इस प्रसगमे यह प्रश्न हो सकता है कि

रागपर्याय तो प्रतिक्षण होती रहती है। प्रतिसमय भिन्न-भिन्न रागपर्याय चलती है और साथ ही वह औपाधिक भी है, कर्मोदयका निमित्त पाकर हुई है, फिर वह पर्याय अध्यवसाय उत्पन्न करने वाली क्यो न हुई ? जीवमे क्रोधादिक विपाकको क्यो नही उत्पन्न कर देती ? इस जिज्ञासाका भी समाधान दिया गया था कि होता तो है जरूर प्रतिसमयमे राग परिणमन, किन्तु उस प्रतिसमयके रागपरिणमनका, एक समयके परिणमनका अनुभव नही होता। विकारी अवश्य है, मगर ऐसी विकृत पर्यायकी कुछ धारा चलनेपर क्षोभका उपयोग मे आरम्भ हो पाता है। यद्यपि वह पर्याय एक समयकी अपने समयमे पूर्ण है, अधूरी नहीं है लेकिन जैसे छद्मस्थका एक उपयोग अन्तर्मुहूर्तकी धारामे बन पाता है, होता है वहाँ भी प्रति समयमे एक-एक परिणमन, मगर किसी चीजकी जानकारी करना है तो उस जानकारी के सिल्सिलेमें इसका ज्ञान एक समयमे नही हो पाता। तो जैसे जानन परिणमन इस विभावपर्याय वाले जीवके प्रति समय होता है लेकिन उपयोग बन पाता है अन्तर्मुहूर्तमे। ऐसे ही रागपरिणमन प्रतिसमयमे पूर्ण-पूर्ण एक-एक होता है, किन्तु निरपेक्ष पूर्वापर असंस्कृत समयमात्रके रागका अनुभवन क्षोभ नही बन पाता। अन्तर्मुहूर्त धारामे वह क्षोभ बन पाता है। ऐसा होनेका कारण यह है कि उपयोग अन्तर्मुहूर्तमे बन पाता है। भले ही लगता हो ऐसा कि जल्दी उपयोग हुआ। किसी पुरुषने पीठ पीछे खडे होकर जरा सा काटा चुभोया, अब उस काटा चुभेकी जानकारीमे उसको अन्तर्मुहूर्त लगा और सोचिये—एक समय कितना होता है ? बहुत ही जल्दी आखकी पलक नीचे दबा ली जाय तो एक बार पलक गिरनेमे जितना समय लगता है, उसमे असख्यात आवली होती है और एक आवलीमे अनगिनते समय होते हैं, उनमेसे एक समयके रागकी बात कही जा रही है, वह क्षोभमे कैसे आयगी ? एक बात और समझना है—स्वतन्त्रतया एक समयका परिणमन इन छद्मस्थ जीवोके अनुभवमे न आयगा। पूर्वापर संस्कारसहित और उस धारामे जो परिणमन अनुभव होगा वह क्षोभका कारण हो सकता है। और ऐसे रागपरिणमन होते भी नही प्राय। होता है तो धारामे अन्तर्मुहूर्त चलता है, अनेक समय चलता है। मान, माया, लोभ, इच्छा आदिक सभी विभावोकी यही बात है। हा कुछ स्थितिया ऐसी अवश्य हैं कि जिन स्थितियोमे कोई कषाय जगे एक समयका परिणमन हो, दूसरे समय न रहे, ऐसी स्थिति कब होती है, सो भी बतायेंगे और साथ ही यह जानना है कि ऐसी स्थितिका कभी कोई बन जाय एक समयकी स्थिति वाला तो उसका अनुभव नही होता याने उपयोगमे आकर क्षोभ विकल्प मचाये यह बात नही बन पाती। ऐसी स्थितिया दो समयमे होती हैं, एक तो कोई मनुष्य जो मान कषायमे ही आनेको था और एकदम कोई गर्जना गर्जी, धमाका हुआ या डरा दिया तो वहा क्रोधकषाय उत्पन्न हो गयी। इसको कहते है व्याघात।

अर्थात् मानकषाय होनेको थी, वह मानकषाय एक समयको हो पायी, उसी समय व्याघात हो गया, प्रतिकूल ऐसा कारण मिले कि उसके क्रोध आ गया तो कषाय तो एक समयमे एक ही होगी। चारो कषायें एक समयमे एक साथ नही भोगी जाती। तो उस समयमे मान एक समयको रहा और क्रोध जग गया तो एक समयके मानका क्षोभ तो नहीं हो पाया, किन्तु जगा क्रोध, उसका क्षोभ अनुभवमे आया तो उस एक समयकी स्थितिके मान कषायका उठता क्या है और उससे लाभ क्या है ? एक स्थिति ऐसी होती है कि जिस जीवको जिस भवमे जन्म लेना होता है उस भवमे जो कषाय जगती है, जिसका प्राय ऐसा नियम है कि नरक भवमे जन्म ले तो पहिले क्रोध कषाय होगी, मनुष्यभवमे जन्म ले तो मानकषाय होगी, देवभवमे जन्म ले तो लोभकषाय होगी और तिर्यञ्चभवमे जन्म ले तो माया कषाय होगी। कोई मनुष्य मरकर नरकमे जानेको था। तो मरणसे पहिले कोई मान या माया आदिक कषाय हुई। और मरण हुआ तब क्रोध जग गया तो ऐसे समयमे भी एक समयकी कषाय हो पाती है, उससे भी कोई लाभ नही। क्षोभ तो उसके बराबर ही चला। सो ऐसी जो एक समयकी स्थितियोमे कषाय रहती है यह अपवाद मात्र है। बहुत कम बात है यह। तब एक समयकी राग पर्याय होती है और एक समयकी रागपर्याय न होने दे, उससे उपयोग हटाये तो राग मिट जायगा। हम कल्याणमे आ जायेंगे; ऐसी बात रटते रहनेमे लाभ क्या है ? कुछ लोग ऐसा कहते है। एक-एक समयका रागपरिणमन है और एक समयका रागपरिणमन न होने दे, फिर कभी न होगा। यद्यपि प्राय यह बात सही है कि एक समयको भी यदि रागद्वेषादिक विभावपरिणमन न हो तो कल्याण सदाको हो जायेगा। लेकिन वर्तमानकालमे अपने आपके बारेमे यह श्रद्धान करना कि हम आप सबके एक एक समयकी रागपरिणति होती है वह क्षोभ मचाती है। उसे न होने दें तो आगे न होगा। सो भैया ! ऐसा हो सकनेकी यहा स्थिति कहा है ? प्रथम तो यह कि एक समयकी रागपर्याय विकार नही करती, क्षोभ नही मचाती, किन्तु धाराप्रवाह अनेक समय तक चले उसके विकार अनुभव जग पाता है। दूसरी बात, एक समयका रागपरिणमन हमारे न हो, इसका उपाय क्या सोचा ? क्या ऐसी चर्चा करते रहना ही उपाय है ? कोई यह सोचे कि चलो मरते समयमे एक समयके लिए कोई कषाय रह भी पाती है ऐसा भी हो जाता है अथवा व्याघातके प्रसंगमे एक समयकी कषायपर्याय रह जाती है, यह हो जाता है, लेकिन उस विकारीभावको सर्वशा एक समयमात्रको मान मानकर अथवा कहकर अपना समय व्यतीत करे यह कोई विवेककी बात नही है। विवेक तो इसमे है कि रागादिक पर्यायोसे, विभावोसे रहित केवल शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निहारे। एक समयकी हो, अन्तर्मुहूर्तकी हो, सभी प्रकारकी पर्यायोसे रहित मैं चैतन्यस्वभाव मात्र हूँ,

इस तरहके निहारने मे, चिन्तनमे तो लाभ है, मगर इन विभावोमे लाभ नही है। देखिये-- जब किसी कषायका प्रारम्भ होते ही विघात हो जाता है तब हुआ क्या? कभी एक समय की अन्य कषायके बाद क्रोध जग गया, विघात हुआ, कभी २-४-१० समय तक, अनेक समय तक अन्य कषाय जग रही थी और व्याघात जग गया, क्रोध जग गया तो यो दो एक आदिक समयकी कषायका विघात होनेपर क्रोध ही तो जगा। अच्छी बात क्या हुई? और, इस समय जो हम आप चर्चा कर रहे है, सुन रहे है या जो भी मनन किया करते है, समझते है उनका कही व्याघात तो नही हो रहा, तो उन चर्चा करने वालोको उस चर्चासे लाभ क्या मिला? एक समयमात्रके परिणामका हम आप उपयोग नही कर पाते, क्योकि उपयोग भी एक समयमे नही बन पाता हम आपका। हाँ भगवानका, केवलीका ज्ञान इतना निर्मल है कि वह स्वतन्त्रतया एक एक समयका परिणमन भी ज्ञान करता है और स्वतंत्र स्वतंत्र अणु-अणु इन सबका भी उनके ज्ञान चलता रहता है।

द्रव्यकी अपेक्षा बद्धता व अबद्धताकी स्थितिपर विचार—इस प्रसंगमे एक यह बात नई समझिये कि बद्ध अवस्था और अबद्ध अवस्थामें बहुतसे अन्तर पाये जाते है। इतना ही नही है कि स्थितिकृत भेद हो। जैसे छद्मस्थ जीवोका ज्ञान अन्तर्मुहूर्तमे उपयुक्त हो पाता है और केवलीका ज्ञानोपयोग एक-एक समयमे बनता है। तो केवल समयकी अपेक्षाका ही फर्क हुआ बद्ध जीवमे और अबद्ध जीवमे, सो बात नही, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव चारो अपेक्षाओमे अन्तर है। जैसे शुद्ध पर्याय अबद्ध एक द्रव्यमे होती है। यहाँ द्रव्यकृत अन्तर बतला रहे है। एक द्रव्यमे ही अबद्ध अवस्था होती है, एक द्रव्यमे ही शुद्ध परिणमन होता है। जहाँ दो द्रव्योका संयोग है, मेल है, वहाँ अबद्धदशा नही, वहाँ बन्धन है, शुद्धपर्याय न होगी। यह तो द्रव्यकृत अन्तर है। उदाहरणमे ले लो—ये नाना स्कध जो दिख रहे हैं ये शुद्ध हैं या अशुद्ध है? अशुद्ध पर्यायमे हैं क्योकि अनेक परमाणुओका बधन है, पिण्ड है। एक परमाणु रहे, केवल एक द्रव्य रहे तो अशुद्ध पर्याय होगी। इस समय ससारी जीवोमे चूंकि यह अनेक द्रव्योका मेल हो रहा इसलिए शुद्ध पर्याय नही कह सकते। जैसे एक जीव है और उसके साथ अनन्त शरीर परमाणु है, और अनन्त कर्म परमाणु है, तैजस परमाणु हैं, मनोवर्गणाये है, यो अनेक द्रव्योका यह बन रहा है एक याने बन्धन दशा। तो यहाँ शुद्ध पर्यायकी आशा न रखें। शुद्ध पर्याय होगी केवल असंपृक्त एक द्रव्यमे।

क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा बद्धता व अबद्धताकी स्थितिपर विचार—अब क्षेत्रकी अपेक्षा बद्धता व अबद्धताका विचार कीजिए। जहाँ दो या अनेक क्षेत्र होगे अर्थात् क्षेत्रावगाह बन गया, क्षेत्र बन्धन बन गया वहाँ शुद्ध पर्याय न बनेगी, अशुद्ध पर्याय है। जैसे क्षेत्रकी अपेक्षा यही देख लो, जीवके क्षेत्रमे शरीर है, शरीरके क्षेत्रके जीव है, स्वक्षेत्रकी बात नही

कह रहे । स्वक्षेत्र निज निजमे है मगर अवगाहकी अपेक्षा वह रहे और वह बन्धनरूप है, इस कारण वहाँ शुद्ध पर्यायकी आशा नही है । कालकी अपेक्षा यह बात है । जितनी अशुद्ध पर्यायें होती है वे पूर्वापर सस्कार रहित स्वतत्रतया एक समयको ही हो, सो नही हो सकता। यदि विभावपर्याय है, अशुद्ध परिणति है तो पूर्वापर संस्कार है और अनेक समयो तक उनकी धारा रहती है । जिस पर्यायके अनुभवनके लिए पूर्वापर सस्कारकी अपेक्षा हुई वह पर्याय शुद्ध नही, अशुद्ध है । केवली भगवानको अपने प्रतिसमयके एक एक परिणमनका अनुभव चलता रहता है, वहाँ पूर्वापर पर्यायकी अपेक्षा नही रहती, सस्कार ही नही । तो इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, कालकी अपेक्षा दो दो अनेकानेकका सम्बध है । अब भावकी अपेक्षा देखिये— एक ही भावमे अर्थात् अखण्ड हुए, सम हुए अथवा जघन्य भाव हुए । जैसे जघन्यगुण वाला परमाणु है उसमे बन्धन नही होता । बताया गया ना कि जघन्य गुण वाले परमाणुमे बन्धन नही होता, वह भावकी अपेक्षा बात है । जहाँ जघन्यभाव है । एक भाव है, अखण्डभाव है, वहाँ बन्धन नही और जहाँ समभाव है, शुद्ध परमात्माके वहाँ बन्धन नही । जहाँ विषम-भाव है वहाँ बन्धन है । तो एक रूपभावमे बन्धन नही, अनेकरूप भावकी स्थितिमे बन्धन है ।

एकत्वनिश्चयगत वस्तुमें बन्धनका अभाव—बद्ध अवस्थाकी पर्यायका नियम है कि बद्ध पर्याय होना अनेक द्रव्योके संयोग होने पर होता है । विभक्त, अलग, पृथक् स्वतत्र एक द्रव्य रह जाय तो विभाव पर्याय, बद्ध पर्याय नही होती । बद्धपर्याय दो क्षेत्रोके बन्धनमे होती है । दो क्षेत्रोका परस्पर अवगाह हो तो बंधन होता है । स्वय स्वयंके अवगाहमे रहे और दूसरे क्षेत्रसे सम्बध न हो वहाँ बंधन नही, विभाव नही । केवल एक द्रव्यके ही प्रदेश रहे उसमें अन्य द्रव्यके प्रदेश समाप्त न हो तो बद्धपर्याय नही बनती । कालकी अपेक्षा देखें तो बद्ध पर्याय सस्काररूपमे अनेक समय तक चलती है । केवल एक ही समय तक रहे और दूसरी विपक्ष जातिकी पर्याय आ जाय, ऐसा कोई बद्ध पर्याय नही है । यहाँ यदि एक समय को मानकषाय रही थी तो क्रोध जग गया, आखिर कषाय ही तो रही । यो ही अनेक डिग्री के भावोमे बद्ध पर्याय होती है । सम हो, अखण्ड हो, उस भावमे बद्धपर्याय नही होती, इसका कारण है कि बन्धन एकत्वका प्राप्त वस्तुमे नही होता । कोई पदार्थ अपने आपके स्वरूपके एकत्वमें हो, उसका बन्धन नही । देखिये—ग्रन्थोमे यह भी वर्णन आता हैं कि बन्ध पर्यायमे एकता हो जाती याने जब दो पदार्थोंका बन्धन होता है तब एकत्व हो जाता, उस एकत्वकी बात नही कह रहे । दो पदार्थोंमे एकत्व आया, उसकी बात नही कह रहे । वहाँ तो बन्धन होता है । पर एक पदार्थ अपने आपके एकत्वमे आ जाय वहाँ बन्धन नही होता । जहाँ अनेक द्रव्योका बन्धन हो रहा है वहाँ वे सभी द्रव्य अपने एकत्वको छोड देते हैं ।

एकत्वमें आनेकी शिक्षा—इस प्रकरणमे हम आपको यह शिक्षा लेना है कि हम यदि अपने एकत्वमे आ जाये कि मैं अकेला हू। कैसा अकेला ? शरीर सहित देखकर समझे कोई कि यह मैं हू और अकेला हूँ तो वह मूढ पुरुषोका व्यवहार है। जब कभी कोई रोने लगता कि हाय मेरा कोई सहाय नही, मैं तो अकेला हू तो वह अपना अकेलापन नही सोच पा रहा। वह तो मात्र व्यवहारमे, मोहमे वैसा कह रहा है। जो खुद मैं हू, जिस सत्त्वमे मै हू, केवल उस ही रूपमे होऊँ, उसकी बात कही जा रही है। तो केवल यहां द्रव्य अपने आपके ही एकत्वमे आये, यो हमे अपने आपका एकत्वस्वरूप दृष्टिमे लेना चाहिए। मै अकेला हू, कुटुम्ब, मित्र भी मेरा कुछ नही, घर वैभव भी कुछ नही, मै अकेला हू, यह शरीर भी मेरा कुछ नही, मै अकेला हू, भीतर जो रागद्वेष विकार विचार उत्पन्न होते हैं, ये भी मेरे नही। मै अकेला हू, और यह भीतर जो भी अबुद्धिपूर्वक तरग उठ रही वह भी मेरी नही। मै तो अकेला हू। जब ये सब मै न रहा तो और मै अकेला क्या हू ? वह मै अकेला हुआ केवल एक शुद्ध चैतन्यमात्र। तो इस एकत्वमे कोई जीव आ जाय तो उसका बन्धन नही है। और इस एकत्वसे च्युत होनेपर जीवमे एकता लगायेगा, उस विकल्पसे इस जीव को हानि है, जन्ममरण है। जन्ममरणसे बढकर अपने आप पर और क्या विपदा ? एक जन्मकी कुछ सुविधाये सोचकर सुखी होना चाहते और जन्ममरण करते है, ये सब बड़े सकट है। तब संकटोके मेटनेका उपाय बनावें। उसका उपाय यही है—जन्ममरण-रहित, शरीररहित, कषायरहित शुद्ध चैतन्यमात्र, जिसका काम मात्र प्रतिभास है, ऐसा मै हू, इस एकत्वकी ओर आयें तो बन्धन मिटेगे और अबधदशा होगी।

सहज स्वभावके लक्ष्यमें निर्विकल्पताका अवसर— इस प्रसंगमे इतनी बात समझना है कि समयवर्ती राग ज्ञेय तो होता है पर विकार करने वाला अर्थात् अनुभवमे क्षोभ मचाने वाला नही बनता। इस कारणसे समयवर्ती राग है, उस रागसे चित्त हटाओ, ऐसा कहकर समय व्यतीत करना उचित नही। यह उपाय रागको हटानेका नही है। वह तो ज्ञेयतत्त्व है, पर रागसे लक्ष्य हटानेका क्या उपाय है ? इसपर अब चिन्तन करियेगा। आत्माके सहज स्वभावका लक्ष्य होना ही रागके अभावका उपाय है। आत्माका सहजस्वभाव जानना है, प्रतिभास है अर्थात् चैतन्यप्रकाश है, क्योकि चैतन्यके अतिरिक्त जो रागद्वेषादिक उत्पन्न होते है वे सब नैमित्तिक भाव हैं। सहजभाव तो वह है जो परकी अपेक्षा न रखकर सयोग बिना स्वय होता है। आत्मामे समय-समयका जो विभावपरिणमन है वह सहज स्वभाव नही है। उस पर किसी भी प्रकारके लक्ष्यसे निर्विकल्पता नही आती, किन्तु विकल्पविकाररहित चैतन्यमात्र जो सहजस्वभाव है उसका लक्ष्य होनेसे निर्विकल्पता जगती है। विशुद्ध समय-मात्रकी परिणतिकी निरखमे परिणति उपयोगमे न रहकर आत्मस्वभाव उपयोगमे हो जाता

है तब निर्विकल्पता जगती है। अपने आपके एकत्व स्वभावकी ओर दृष्टि करना चाहिए। यद्यपि वह बात तथ्यकी है कि कोई पदार्थ किसी भी दूसरे पदार्थका परिणमन नही करता। प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे परिणमता है, कोई भी अन्य द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यमे अपना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नही दे पाता, इस कारण पदार्थ अपने आपके उत्पाद व्यय करनेमे स्वतत्र है।

निमित्तसन्निधानमें भी प्रत्येक पदार्थकी स्वतः एव परिणति—अब जरा ऐसा भी विचार कीजिए कि कोई पदार्थ निमित्त है, ठीक है, मगर निमित्त क्या स्वयंकी परिणतिसे परिणमते हुए पदार्थको करता है या स्वय न परिणमते हुए पदार्थका परिणमन करता है। जो स्वय नही परिणम रहा, जिसमे परिणमन हो नहीं रहा उसको दूसरा करेगा क्या ? जो स्वय परिणम रहा है अपनी परिणतिसे उसमे दूसरा परिणति देगा क्या ? हां निमित्त के सन्निधानमे उपादान अपना कार्य करता है, इसका अर्थ यह है कि निमित्तके सन्निधानमे उपादान अपना प्रभाव प्रकट करता है। बाह्य निमित्तकी उपस्थितिमे भी परिणमने वाले पदार्थ, उपादान अपने चतुष्टयके परिणमनसे ही परिणमते हैं, यह उनकी स्वतन्त्रता है। इसी कारण प्रत्येक पदार्थ स्वाधीन है, कोई किसीके आधीन नही है। जैसे जलती हुई अग्नि पर, चूल्हे पर पानी भरा बर्तन रखा है, अग्नि निमित्तका सन्निधान है, पर पानी जो गर्म हो रहा है वहाँ एक पानी ही गर्म हो रहा है, अपनी परिणतिसे गर्म हो रहा है, अपने ठढे परिणमनको छोड़कर गर्म परिणमनमे आ रहा है, हाँ निमित्त वहाँ अग्नि अवश्य है। सताप करने वाले पदार्थका सन्निधान हुए बिना जल गर्म नही हो सकता। लेकिन जल जो गर्म रूप परिणम रहा है वह अग्निके परिणमनसे नही परिणम रहा, किन्तु अपने परिणमन से परिणम रहा है। कभी हाथसे कोई चीज उठाकर दूसरी जगह धर दी, तो हाथने हाथ मे ही काम किया और हाथके सयोगमे वह पदार्थ था तो क्रियाशील हाथका निमित्त पाकर वह पदार्थ भी दूसरी जगह पहुचा, मगर हाथकी क्रिया हाथमे है और उस चीजकी क्रिया उस चीजमे है।

परिणमन और जाननकी अपनी अपनी स्वतन्त्रता—ऐसा भी कोई सोचते है कि जो कुछ होना है वह सब सर्वज्ञदेवके द्वारा ज्ञात है। तो जो जाना सो ही तो होगा, फिर उसमे निमित्तने क्या किया ? यह सोचना उनका इकतरफा है। जो पदार्थ जिस विधिसे, जिस प्रकारसे परिणमता है, परिणम रहा है, भगवानका ज्ञान स्पष्ट निर्मल है इसलिए उनके ज्ञानमे (जाननेमे) वह पदार्थ आ गया। इतने मात्रसे निमित्तनैमित्तिक भावकी पद्धति हो जाती है। और जानने भरकी बात कहे तो जैसे कुछ भी जाना तो सर्वज्ञदेवने वैसा ही तो जाना। जैसा निमित्त योगसे हो रहा। सब कुछ जाना, सब एव साथ ज्ञात

हुआ, इस कारण यह प्रश्न नही रहता कि यदि निमित्तका सम्बन्ध नही मिला तो कार्य रुक जायगा या सर्वज्ञका ज्ञान झूठा हो जायगा। किसी भी परिणमनको जानता ही है सर्वज्ञ तब जब कि जिस विधिसे जहा जो कार्य होना है। यहाँ इस तरह व्याप्ति न लेना कि सर्वज्ञ देवने जाना इस कारणसे यह बात हुई, इसमे इस तरहसे व्याप्ति बनेगी कि जैसा पदार्थमे जिस तरहसे परिणमन होगा वैसा सर्वज्ञदेवने जाना। इस प्रसंगमे यह भी निरखते जाइये कि आधीनता किसीसे भी किसीकी नही है, किन्तु जैसे पदार्थ अपने चतुष्टयसे परिणमते है वैसे ही सर्वज्ञ भी अपने चतुष्टयसे परिणमता है। जानने मात्रसे वस्तुके कार्यमे पराधीनता नही होती। ऐसा नही है कि सर्वज्ञदेवने जाना इस कारण वस्तुको परिणमन करना पडता है और ऐसा भी नही है कि वस्तु परिणमता है इस कारण सर्वज्ञको जानना पडता है। सर्वज्ञका जानना सर्वज्ञके ज्ञानका काम है, पदार्थका परिणमना पदार्थके परिणमनका काम है।

विषयभूत निमित्तकी अपेक्षासे ज्ञेयकी ज्ञानसे व्याप्ति—विषयभूत निमित्तकी अपेक्षा यह बात विशेष है कि जब जैसा जो पदार्थ है, था, है, होगा, उसे सर्वज्ञ जानता है। विषयभूतकी अपेक्षा यो न लगेगी व्याप्ति कि सर्वज्ञदेवने जिसको जैसा जाना वैसा परिणमना होगा, क्योकि वस्तुके परिणमनके लिए सर्वज्ञका ज्ञान किसी भी प्रकारका निमित्त नही होता, किन्तु सर्वज्ञके ज्ञानके लिए ये पदार्थ विषयभूत निमित्त होते हैं। इस कारण इस तरहसे यह व्याप्ति लगेगी कि जो पदार्थ जैसा परिणमना है, परिणमेगा, वैसा भगवान जानते है, पर ऐसी व्याप्ति न लगेगी कि सर्वज्ञदेवने जाना इस कारण वस्तु इस प्रकार परिणमती है और परिणमेगी। और वस्तुत ज्ञान अपनेमे अपना काम कर रहा है, पदार्थ अपनेमे अपना काम कर रहा है। ज्ञान और ज्ञेयमे भी कार्यकारण भाव नही है कि ज्ञानके कारण पदार्थमे कार्य होता हो या पदार्थके कार्यके कारण भगवानने अपना ज्ञान बनाया हो। बात वहाँ स्पष्ट यह है कि जब जहाँ जैसा होना है, जैसा होगा वह सब स्पष्ट ज्ञानमे आ जाता है।

छद्मस्थके ज्ञानसे प्रभुज्ञानकी गुणितरूपमें भी तुलनाकी अशक्यता—भैया! जैसा हम स्पष्ट समझते हैं यह तो है इन्द्रियकी करतूत। हम पदार्थको स्पष्ट नही जान पा रहे, मगर स्पष्टत जान रहे है। जैसे आखोसे हमने जो पदार्थ देखा उस पदार्थकी सारी बात हमे कहा ज्ञात है? एक तरफका हिस्सा और वह भी एक रूपमे, जैसे चक्षुइन्द्रियसे जाना तो केवल रूपकी पद्धतिसे जाना, उसमे जो गध, स्पर्श आदिक है वे ज्ञानमे नही आये। तो पदार्थ स्पष्ट हमारे ज्ञानमे आ नही पाता, किन्तु स्पष्टसा होता है इस कारण इसे साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जिसे हम स्पष्ट कहते है वह तो इन्द्रियकी करतूत है, इस कारणसे हम सब नही जान पाते। एकदेश समझ पाते है, किन्तु सर्वज्ञदेवके ज्ञानमे तो एक साथ

समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपसे सारे विषय प्रतिभासमे आते है। तो हम अपने ज्ञान से सर्वज्ञके ज्ञानकी तुलना नही कर सकते। ऐसी भी हम बात नही कह सकते कि जैसा हम जानते उससे अनन्तगुना अधिक भगवान जानते। हमारे जाननेकी पद्धति और है और प्रभुके जाननेकी पद्धति और है। जैसे हम आनन्दके सम्बधमे यह नही कह सकते कि जिस प्रकारसे जो सुख हमको है उससे अनन्तगुना अधिक सुख भगवानमे है, क्योकि हमारे सुखकी जाति और है, क्षोभभरी है और भगवानके आनन्दकी जाति और है। यदि हम अपने सुखसे अनन्त-गुना सुख भगवानका कहे तो उस सुखमे जितने क्षोभ मच रहे हैं उससे अनन्तगुना क्षोभ भगवानका सिद्ध हो जायगा, पर हमारा सुख और जातिका है, भगवानका आनन्द स्वाधीन सहज है, उसकी तुलना नही कर सकते। जहाँ ग्रन्थोमे यह बताया कि तीनो कालमे जितने इन्द्र, चक्रवर्ती तथा सभी बडे बडे भाग्यवान पुरुष है, उन सबका सुख जितना हो, उनसे भी कई गुना सुख भगवानका है। यह मोही रागी जीवोके समझानेके लिए कहा है। जो सुखको इष्ट मानते है उनको समझानेके लिए कहा है। वस्तुत यह सुख तो विपदाओसे भरा हुआ है। इस सुखसे गुणितरूपमे भगवानके सुखकी तुलना नही की जा सकती। इसी तरह हमारा जो ज्ञान है वह एक नैमित्तिक ज्ञान है, इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होता है, इस कारण से अपने ज्ञानसे प्रभुके ज्ञानकी तुलना नही कर सकते।

प्रभुज्ञानकी निर्विकल्पता व स्वतन्त्रता—भगवानके ज्ञानमे तो जो पदार्थ है वह प्रति-भासमे आ रहा है, पर उनके यह विकल्प नही होता कि इसके बाद यह है, यह इतना लम्बा है, इतना चौडा है। जो है, जैसा है वैसा ज्ञानमे आता है, पदार्थोंके परिणमनमे प्रभुका ज्ञान निमित्त नही है। बल्कि इस ओरसे लगा सकते हैं कि प्रभुके ज्ञानसे परिणमनमे पदार्थ उदा-सीन विषयभूत निमित्त है, अर्थात् ये पदार्थ अबद्ध होकर निमित्त है, ये पदार्थ असयुक्त होकर निमित्त हैं। अथवा यह कहो कि उनके ज्ञानमे क्या ज्ञेय आया ? कुछ ज्ञेयाकार तो बने तो जिसके अनुरूप ज्ञेयाकार बने वह विषयभूत निमित्त हो गया, पर निमित्तके परिण-मनके लिए प्रभुका ज्ञान किसी भी प्रकारका निमित्त नही बनता। कल्पना करो कि यदि सर्वज्ञ न होता तो क्या पदार्थोंके परिणमन नही होते और कल्पना करो कि यदि ज्ञेय पदार्थ न होते तो क्या ज्ञानका तद्विषयक ज्ञेयाकार रूप परिणमन न होता। यह बात तो बन जायगी, क्योकि जो असत् है वह प्रभुके ज्ञानमे कहाँ ज्ञात है ? किन्तु यह नियम न बनेगा कि यदि सर्वज्ञ न जानते तो पदार्थोका परिणमन न होता। यद्यपि सर्वज्ञ भी जान रहे, पदार्थोंका परिणमन भी हो रहा, मगर कार्य निर्णयमे इस प्रकारकी खोज की जा रही है और स्वय सत् है, उसका परिणमन उसकी स्वतत्रतासे उसकी पर्यायमे हो रहा। यो भग-वानके ज्ञानमे भगवानकी स्वतत्रताका ज्ञानपरिणमन हो रहा और पदार्थके परिणमनमे,

पदार्थोके कारण परिणमन हो रहा।

सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें कार्यकारणभावका अभाव—सूक्ष्मऋजुसूत्र नयसे तो किसी भी अवस्थाका कोई कारण नही। प्रत्येक पदार्थ पर्याय अपने अस्तित्वमें विकसित है, सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयसे परखनेपर कार्यकारणभाव किसीका किसी अन्यमे नही होता, खुदका खुदमे कार्यकारण क्या होगा, क्योकि यह नय एक समयकी पर्यायिको दृष्टिमे लेता है। अब यह जिज्ञासा हो सकती है कि राग पर्यायके लिए पूर्ववर्ती रागपर्याय जो कारण होगा तो भिन्न कारण तो है परन्तु ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे कारण नही, क्योकि पूर्वपर्याय तो नष्ट हो चुकी। जो नष्ट है वह कैसे कारण हो सकता है ? सूक्ष्मऋजुसूत्रनय एक पर्यायको ही ग्रहण करता है। देखिये—इस सम्बन्धमे नष्ट होना और उत्पाद होना ये कोई दो बाते नही हैं, और उसे यो भी नही कह सकते कि पहिले नष्ट होना होता है, पीछे उत्पाद होना होता है, दोनो एक ही समयमे होते हैं। जैसे घडेका फूटना, खपरियोका बनना, ये कोई दो काम नही है कि घडा पहिले फूटा तब खपरियाँ बनी, किन्तु खपरियोका बनना ही घडेका फूटना कहलाता, घडेका फूटना ही खपरियोका बनना कहलाता। लेकिन हमारी समझमे ऐसा आता है कि पहिले नष्ट होता है, पीछे उत्पन्न होता है, पहिले पर्याय नष्ट हो ले तब पर्याय उत्पन्न होगी, यो लगता है, और इसी आधारपर यह चर्चा चला करती है। वस्तुतः उत्पाद उत्पाद ही है, इससे विलीन होना अपने आप सिद्ध हो जाता है।

प्रतिसमय परिणमन व छद्मस्थके उपयोगमें अन्तर्मुहूर्त प्रवाहका ग्रहण—देखिये—प्रत्येक एक पर्याय एक समयमात्रको ही होती हैं। तो जितने (अनन्त) समय है उतनी ही परिणतिया द्रव्यकी होती हैं। हा इतनी बात अवश्य है कि जो रागादिक भाव है वे उपयोग रूपमे अनुभवमे आते है तब, जब अनेक समय तकवी रागपर्यायोकी धारा चले। ऋजुसूत्र नय तो पृथक् स्वतन्त्र एक पर्याय मात्रको जानता ना, एक पर्याय अर्थात् ऐसी पर्याय जिसके कि और भेद न हो सके। एक समयका भेद नही, सो एक समयमे होने वाली परिणति का भी भेद नही, स्वभावपर्याय एक एक ही समय मात्रकी स्थिति रखता है, वह भी ऋजुसूत्रनयका विषय है और विकार रागादिक जो निरवच्छेद अन्तर्मुहूर्त तक धारा बनाये रहता है, यह भी ऋजुसूत्रनयका विषय है। अब जो एक समयवर्ती राग ज्ञानमे आया, उस एक समयकी पर्यायको हमारा ज्ञान जान नही सकता याने उपयोगमे ले नही सकता। उपयोग चूंकि अन्तर्मुहूर्तमे बनता है तो वह भी अन्तर्मुहूर्त विभावपर्याय पर्यायको ग्रहण करके ही अपनेमे प्रभाव ला सकेगा। एक समयकी पर्यायको तो प्रभु केवली जानते है, पर युक्तिसे हम जानते है कि यदि प्रतिसमयमे परिणमन न हो तो मिलकर भी परिणमन नही हो सकता। जैसे कोई बालक एक वर्षमे दो अगुल बढ़ गया तो उससे हम युक्तिपूर्वक

जानते है कि यह रात दिन प्रतिघटे कुछ न कुछ बढता ही रहा। पर आप बता सकते है कि एक घटेमे वह कितना बढा ? या किसी बालकको देखकर वहा निगाह कर सकते है कि एक घटेमे कितना बढ गया ? नही जान सकते, लेकिन एक वर्षमे बढा हुआ देखकर हम युक्तिसे समझ जाते हैं। इस प्रकार इस समयवर्ती पर्यायको हम युक्तिसे समझ जाते हैं, तो वह एक समयका रागपरिणमन हमारेमे विकार याने बिगाड या क्षोभको उत्पन्न नही कर पाता, किन्तु अन्तर्मुहूर्त धारामे होनेका उपयोग इस क्षोभको उत्पन्न करता है। तो ऐसा यह समयवर्ती राग भी विभाव है और यह निमित्त पाकर हुआ है।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें कार्यकारणभाव विशेष्यविशेषणभावकी व्यवस्थाकी असंभूति—यद्यपि एक समयवर्ती परिणतिको निरखनेपर सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे कार्यकारण भाव नही जगता, इसलिए प्रत्येक पर्याय अहेतुक है, लेकिन सर्वथा यह बात न लगा लेना। विभावपर्याय तो सहेतुक ही है, परकी परिणति लेकर नही, किन्तु परका निमित्त पाकर विभावपरिणमन हुआ करता है। यदि ऐसा नही माना जा सकता तो विभावपर्याय सब वस्तुके स्वभाव बन जायेंगे। लेकिन ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे केवल वर्तमान पर्याय ज्ञेय है तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि जब दो समयोकी पर्यायोको ग्रहण नही करता, सूक्ष्मऋजुसूत्रनय जब दो द्रव्योको नही जानता तो सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे पर्याय सहेतुक नही बनती, क्योकि वह अखण्ड एक पर्यायको जानता है, दो द्रव्योको नही जानता, दो कालोको नही जानता, और ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे पर्याय कार्यकारणरहित जचा, इतना ही नही, यह तो है ही, पर विशेष्यविशेषण भाव भी ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे नही है। और दो चीजोको, दो बातोको न ज्ञानसे लेना, वहाँ विशेष्यविशेषण कहा।

किसीने कह दिया कि नीला कमल, तो नील नीलमे है और कमल कमलमे है, जो जो नील हैं वे सब कमल नही और जो कमल हैं वे सब नील नही। तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे विशेष्यविशेषण भाव भी नही बनता और कार्यकारण भाव भी नही बनता। यह तो नयका विषय है। नयोमे क्या क्या ज्ञेय होता है, इसको निरखकर हमे सर्वप्रकारसे निर्णय नही बनाना है। प्रमाणसे निर्णय बना करता है। नय तो अपने-अपने विषयको ही ग्रहण करता है। हमे उक्त सब बातोसे यह शिक्षा ग्रहण करना है कि हममे जो विभाव होते हैं वे कर्मोदयका निमित्त पाकर होते है इस कारणसे वे विकृत हैं, हेय है, दु खरूप हैं। उनसे हमे अपना लक्ष्य हटाना है और अपने आपमे विराजमान अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्यस्वभावको दृष्टिमे लेना है, इस विधिसे हम अपने कल्याणमे प्रगति कर सकते हैं। इसके विरुद्ध परके अपनानेमे या अपनी कषायोमे रमनेमे हम शान्ति नही पा सकते।

रागादिक परिणमनकी प्रतिसमय परिपूर्णता व अहेतुकताकी दृष्टि—जीवमे जो राग-

दिक विभावपरिणमन होते है उसके सम्बधमे अभी तक जो वर्णन किया गया है, निष्कर्ष रूपमे कुछ इन बातोको समझ लेना चाहिए। पहिली बात—रागादिक भाव भी प्रति समय में एक-एक परिपूर्ण परिणमन है और यो ही यथावधि होता रहता है। लेकिन उपयोग चूंकि अन्तर्मुहूर्तकी स्थितिको लिए हुए है। छद्मस्थोके उपयोगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बताया गया है, इस कारणसे प्रतिसमयका रागपरिणमन जीवके अनुभवनमें तो आ रहा है, परन्तु वह उपयोगमे, अन्तर्मुहूर्त न आ पानेसे विकार करने वाला नही हो पाता। अन्तर्मुहूर्त की धारामे आया राग उपयोगमे होगा। दूसरी बात वह प्रतिसमयका रागपरिणमन भी सहेतुक है, अहेतुक नही है, लेकिन एक समयका रागपरिणमन ऋजुसूत्रनयका विषय है और ऋजुसूत्रनय किसी दूसरेको देखता नही है, इस कारण ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे वहाँ हेतु नही मिलता, किन्तु वहाँ यह ही विदित होता कि प्रति समयमे रागपरिणमन अपने परिणमन सत्त्वसे होता रहता है। उसका कोई दूसरा कारण नही। ऋजुसूत्रनयके आशयमे कोई किसी दूसरेकी अपेक्षा नही रखता। फिर भी चूंकि यह औपाधिक परिणमन है अतएव युक्ति से यह सिद्ध होता है कि यह रागपरिणमन अहेतुक नही है, किन्तु समुदायका निमित्त पाकर होता है। अतएव सहेतुक है, औपाधिक है।

रागादिक परिणमनकी अवधिकी दृष्टि—विभावपरिणमनके सम्बन्धमे तीसरी बात यह है कि कोईसा भी विभावपरिणमन केवल एक समयका ही हो और दूसरे समयमे वह न रहे, उसका प्रतिपक्षी दूसरा विभाव आ जाय ऐसा प्राय होता नही है। केवल व्याघात और मरण समय इन दो स्थितियोमे कभी-कभी यह अवसर आता है कि राग कषाय आदिक विभावपरिणमन एक समयकी स्थितिको लिए हुए हो अथवा कुछ और समय स्थितिको लिए हुए हो, उसकी धारा योग्य अन्तर्मुहूर्त तक चले, ऐसा नही भी होता। सो उस सम्बन्धमे भी विचार करिये कि हित क्या है? किसी जीवके मरण समयसे एक समय पहिले समयमात्रको मानकषायका उदय आ पाया और मरण समय नरकभवमे जायगा तो क्रोधकषायका उदय आयगा तो क्रोधका उदय आनेसे देखो मानकषाय अब एक समयको ही हो पाया, तो हो पाये। विभाव धारा तो नही मिटी। विभावमे एक विशिष्ट विभावकी धारा नही चली, तो इस धाराके न चलनेसे जीवका कुछ हित नही हुआ। वह तो मरा और नरकगतिमें गया। हित क्या पाया? अथवा व्याघातकी बात देखिये तो व्याघात क्रोध कषायका कभी नही होता, शेष तीन कषायोका होता है। व्याघात हुआ करता है कोई उपद्रव वाली स्थिति आनेपर तो उपद्रव जैसी स्थिति आनेपर क्रोध कषाय जगा करता है। भले ही कभी व्यक्तरूपमे मानकषाय जग जाय। जैसे किसीने एकदम कोई कठिन आवाज की या कोई चीज एकदम पटक दी, कुछ भी किया तो एकदम उस स्थितिमे क्रोध आया।

मनुष्यमे फिर थोडी देर बाद मान आ जायगा कि यह लडका बडा खराब है। यह हम बुजुर्गोंकी कोई बात नही रखता। मगर व्याघातकी स्थितिके कार्य आया करते है, सो व्याघात हुआ कार्य। ऐसी स्थितिमे पूर्व कोई कषाय एक समयके लिए आयी तो उसमे कल्याण क्या हुआ? विभावधारामे अन्तर नही आया। विशिष्ट विभाव न चल सके, इतनी ही बात हुई। तो व्याघातमे भी कोई जीवका कल्याण नही। तो यह समझना चाहिए कि यह रागपरिणमनधारा उस योग्य अन्तर्मुहूर्त चलकर ही उपयोगमे आकर क्षोभका कारण बनता है।

अविकारभावके अवलम्बनकी श्रेयस्करता—यहाँ प्रासगिक बात यह जानना चाहिए कि जो लोग विकारभावको यह एक समयवर्ती परिणमन है इतना ही मात्र निरखकर और इसही चर्चामे समय बिताकर स्वभावदृष्टिका अवसर नही आने देते, अथवा अन्य तत्त्व विचारकी बात नही आने देते उससे लाभ कुछ नही है। प्रत्येक समयके एक एक परिपूर्ण परिणमन होते हैं, विकारी हो अथवा अविकारी। अविकार परिणमनकी तो यह चर्चा नही, विकारी परिणमन प्रतिसमय परिपूर्ण होता है लेकिन उपयोगमे आये तब वह क्षोभका कारण बनता है। इतनी ही बात बतायी जा रही है। विकारी भावपर उपयोग लगाते हुए कोई विशुद्धि चाहे तो यह ठीक नही। सम्बन्धमात्रकी परिणतिकी दृष्टि रखे कोई तो उसमे रागपर्याय ही नही रही। हम आप एक समयकी रागपर्यायको जान नही सकते। केवल एक हल्ला ही मचाते हैं। उसे जो जान रहे है वे युक्तिसे जान रहे हैं। किन्तु साक्षात् जैसा जानना होता है, ऐसा जानन तो केवली प्रभुके ही हो सकता है। जिसका उपयोग एक समयमे परिपूर्ण होता है और पदार्थका जानकार हो जाता है उसके ही उपयोग मे समय समयमात्रका परिणमन ज्ञात हो पाता है। छद्मस्थके विशिष्टजातीय धाराबद्ध विकारकी जघन्य स्थिति योग्य अन्तर्मुहूर्त है। तब वहा एक समयकी रागपर्यायका प्रत्यक्ष नही हो सकता।

जैसे एक द्रव्यकी दृष्टि कर रहे हो जब तब दूसरा द्रव्य सयुक्त नही विदित होता। जब अखण्ड निज प्रदेशकी दृष्टि रख रहा हो कोई तो अन्य प्रदेश सम्बद्ध नजर नही आता। जैसे इस लोकाकाशमे जीव पुद्गल आदिक सभी द्रव्य प्रत्येक प्रदेशपर मिलेंगे। यहाँ कोई प्रदेश ऐसा नही है जहाँ कोई एक द्रव्य न रहे, बाकी रहे। छहो जातिके द्रव्य प्रत्येक प्रदेशपर रहते है। अब वहाँ रहते तो सब हैं लेकिन हम एक परमाणुमात्र द्रव्यको ही ज्ञान मे ले रहे हैं तो उस समय दूसरा द्रव्य सयुक्त नजर न आयेगा। जिस क्षेत्रमे आकाश है याने लोकाकाश उस ही क्षेत्रमे छहो द्रव्य हैं। तो यो एक निर्णायक दृष्टिसे यह नजर आयेगा कि सभी पदार्थोंका यहाँ एक क्षेत्रावगाह हो रहा है। सभी जब एक प्रदेशपर हैं तो

सबके प्रदेशमे सबकी उपस्थिति बनी हुई है, लेकिन जब किसी एक द्रव्यके प्रदेशको ही दृष्टिमे लिया जा रहा है उस समयमे किसी अन्यके क्षेत्रोंका प्रदेशका अवगाह दृष्टिमे न आयगा। अथवा जैसे किसी एक भावकी दृष्टि की जा रही हो तो वहा विषमपना नजर नही आया। इस ही प्रकार जब एक समयका परिणमन दृष्टिमे लिया जा रहा हो तो वहा किसी प्रकारका विभाव पर्याय बंध पर्याय नही ठहरता है। हम यहा नयवादसे, श्रुतज्ञानसे, युक्तियोसे एक समयके परिणमनको जानते है, हम उसकी चर्चा करते हैं, मगर उपयोगमे ग्रहण करनेकी बात भिन्न है, केवल एक समयकी स्थितिको साक्षात् प्रत्यक्ष जैसे कि आंखो से हम रूपको देखते है, इस तरह एक समयकी स्थितिको हमारा उपयोग ग्रहण नही करता। हम यहा व्यवहारमे रूप- रगोको भी देखते हैं तो उसकी जानकारीमे भी योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपयोग लग लगकर जानकारी करने लगते है। एक समय तो इतना सूक्ष्म काल है, जैसे बताया गया है कि कोई मनुष्य आखकी पलक जल्दी-जल्दी गिराये तो एक पलकके गिरनेमे जितना समय लगता है उसमे होती है असख्यात आवली और एक आवलीमें होते है असख्याते समय। उनमे से एक समयकी परिणति की बात कोई सोच रहा हो तो क्या वह स्पष्ट जान लेता है ? युक्तियोसे समझता है। तो दृष्टि विशुद्ध बनाने के लिए समयवर्ती राग है, बस कोई ज्यादह काम नही करना है मुक्ति पानेके लिए। एक समयको ही तो राग होता है। उस एक समयके रागको हटा दें। सो भैया ! यह केवल चर्चाकी ही बात रह जायगी। मुक्तिमार्गका प्रयत्न न बन पायगा। उसका प्रयत्न है विकार-रहित अखण्ड निज चैतन्यस्वभावका अवलम्बन। निज चैतन्यस्वभावका अवलम्बन ही हमें मोक्षमार्गमे बढायेगा। रागादिकपरिणमनके सम्बन्धमे पाचवी बात यह सोचिये कि रागका क्षय होता है और परमात्मपद प्राप्त होता है, वीतरागपद प्राप्त होता है, तो वहा भी जो रागका क्षय होता है वह एक समयकी स्थितिको लिए हुए ही राग हो, उसका क्षय होता हो, सो बात नही, किन्तु राग तो एक समयका ही होता है। इसमें दूसरी बात नही है, किन्तु धाराबद्ध वह योग्य अन्तर्मुहूर्त तक चला हुआ होता है जिसके क्षयके बाद वीतराग अवस्था प्राप्त होती है। तो यो रागभावके सम्बंधमे कुछ बातो का स्पष्टीकरण किया गया है।

विभावके कर्तृत्वका विचार—अब यह निर्णय करते है कि इस विकारका उपादान कर्ता कौन है ? इस सम्बधमे यद्यपि पहिले चर्चा कर दी गई थी, लेकिन एक बात जब यह उपस्थित होती है कि विकारका अथवा सभी पर्यायोका सामान्यतया आधार यह आत्मा है और आत्मा और स्वभाव ये कोई पृथक् नही हैं, तब क्या रागादिक विकारका उपादान-कर्ता आत्मस्वभाव होता है ? इसका समाधान देते हुए विचार करते है। विकारका उपादान-

कर्ता आत्मस्वभाव नही है। आत्मा तो है, यह बात तो कही जायगी, क्योकि आत्मामे ही वह रागविकार आया है, लेकिन आत्मस्वभावको रागविकारका कर्ता नही कह सकते। यद्यपि वह स्वभाव इस समय इस पर्यायरूपमे व्यक्त आया है। इतना होनेपर भी विकारका कर्ता स्वभावको यो नही कहा जा सकता कि ऐसा कहनेपर वह विकार भी स्वभाव कहलाने लगेगा। सो आत्मस्वभाव तो शाश्वत है और विकार भी जब स्वभाव कहलाने लगे तो विकार भी शाश्वत बन जायगा, और तब यह बात वन बैठेगी कि विकारको यह आत्मस्वभाव तीनो काल करता रहता है। है कोई एक ऐसा दर्शन जिसमे यह माना गया कि जीवमे से विकार कभी भी नष्ट नही हो सकता। अनन्तकाल तक भी दूर न होगा। जब उनसे कोई पूछता है कि फिर इस जीवको क्या कभी मुक्ति नही होती तो उस दर्शनकी ओरसे यह उत्तर दिया जाता है कि मुक्ति तो होती है, पर मुक्तिका अर्थ यह है कि विकार दब गया, और तपश्चरण आदिक करनेसे वे विकार उपशान्त हो जाते है, उन्हे मुक्ति मिल जाती है, लेकिन मुक्त जीव दो प्रकारके माने है उस दर्शनने। एक सदामुक्त और एक उपायमुक्त। सदामुक्त एक ईश्वर वह जगतकी सृष्टिका कर्ता है और उपायमुक्त, यह मुक्त बन तो गया, किन्तु बहुत समयके बाद वह सदामुक्त ईश्वर उन्हे ढकेलेगा और फिर वे संसारमे जन्ममरण फिर करने लगेंगे। है एक दर्शन जो विकारका कभी विनाश नही मानता, लेकिन यह बात युक्तिसगत नही। इसमे वस्तुका और वस्तुस्वभावका लोप हो जाय। वस्तुका स्वय निज स्वभाव क्या है ? वह स्वभाव हो सकेगा स्वयं सिद्ध अहेतुक, लेकिन विकारभाव क्या स्वयंसिद्ध और अहेतुक है ? यह बात प्रकट जाहिर है। यदि अहेतुक होता कोई तो वह एक समान रहता। सहेतुक बातें ही विषम हुआ करती हैं और जो बिना कारणके कुछ हो वह तो एक समान ही रहेगा, लेकिन यहाँ रागादिक विकार एक समान नजर आते ही नही। प्रत्यक्ष बात है कोई विशेष रागी है, कोई मंद रागी है। तो जब यहाँ रागकी विषमतायें देखी जा रही हैं, हीनाधिकता देखी जा रही है तो सिद्ध है कि ये सब सहेतुक हैं। जैसा प्रबल हेतु मिलता है वैसा ही प्रबल राग होता है। जैसा निर्बल हेतु होता है उसका राग मद होता है। तो रागभाव सहेतुक सिद्ध हुआ, फिर वह सदा रहेगा, यह कैसे हो सकेगा ? जो बात जिस हेतुसे होकर होती है वह सदा नही रह सकती। हेतु मिटा कि वह भी मिटा। तो जब कर्मोंका क्षय हो गया तो रागभाव बिल्कुल ही मिट गया। तो विकारका कर्ता आत्मस्वभावको नही कह सकते।

आत्मद्रव्यके विकारकर्तृत्वकी ऐकान्तिकताका प्रतिषेध—अब एक यह जिज्ञासा बन सकती कि जब आत्मस्वभाव नही तो आत्मद्रव्य तो विकारका कर्ता होगा ? देखिये—इसके उत्तरमे इतना समझ लीजिए कि विकारका उपादान आत्मा तो है पर विकारका उपादान-

कर्ता आत्मद्रव्य नही। तो आत्मद्रव्य और आत्मस्वभाव दोनोंकी एक ही स्थिति है। आत्मद्रव्य भी विकारका कर्ता नही, क्योकि आत्मद्रव्य भी ध्रुव है और उसे कर्ता मान लेने पर फिर यह आत्मद्रव्य आत्मविकारका तीन काल कर्ता रहेगा। तब विकारका उपादानकर्ता क्या है ? देखिये—सामान्यपनेसे यह कहा जा सकता कि आत्मा रागादिका उपादानकर्ता है। इसमें अभी कोई विश्लेषण नही किया गया। यहाँ कहे गए वृत्तका विश्लेषण करने पर कहा जायगा कि विकारका कर्ता विकृत उपयोग है, आत्मा नही। है यद्यपि आत्मामे ही राग और सामान्यतया विकृत विकार भी आत्मा है, लेकिन आत्मा, आत्मद्रव्य, आत्मस्वभाव इनको विकारका कर्ता कहा जायगा तो यह तो शाश्वत है, तब विकार भी शाश्वत हो बैठेगा।

विकृतोपयोगकी विभावकर्तृता—अब चलिये निरखने कि विकारका कर्ता कौन है ? विकारका कर्ता है विकृत उपयोग। इसमे भी उपयोगको विकारका कर्ता न समझना, क्योंकि उपयोग भी त्रिकाल रहने वाली बात है, किन्तु विकृत उपयोग विकारका कर्ता है, उपयोगसामान्य विकारका कर्ता नही। यदि उपयोगसामान्यको विकारका कर्ता माना जायगा तो आत्मद्रव्य व आत्मस्वभावकी भाँति उपयोगसामान्य शाश्वत है तब विकार भी शाश्वत बन बैठेगा। तब यह निष्कर्ष समझिये कि विकारको करने वाला विकृत उपयोग है अथवा यो कहो कि आत्माका योग और उपयोग विकारका कारण है, आत्मद्रव्य नही। यहा उपयोगमें विकारका आना यह उपयोगकी अशक्तिसे हुआ है। उपयोग सबल नही है, इस कारण से उपयोग विकृत होता है और उससे फिर रागादिक विकार बनते है।

उपयोगकी अशक्तिका कारण—यह उपयोगकी अशक्ति कैसे हुई ? इसको यदि स्थूलतया इन शब्दोमे कह दिया जाय तो बात जरा शीघ्र समझमे आयगी कि जब उपयोग अनेक समयोकी अशुद्ध अवस्थाके अनुभवमे रहता है तब उपयोगकी अशक्ति होती है। देखिये—इस ससारी जीवका उपयोग अनादिकालसे लेकर अब तक यही करता आया है कि अनेक समयोका विभाव उपयोगमे लेकर क्षुब्ध होता आया, बस यह इसकी करतूत उपयोगकी अशक्तिका कारण बन जाता है। यह बात अनादि संततिसे चली आ रही है कि उपयोगकी अशक्तिसे रागादिक विकार और विकारभाव होनेसे उपयोगकी अशक्ति और उससे यह विकार और उससे अशक्ति आती चली जा रही है। यही अनादिकालसे होता चला आ रहा है। देखिये—यहाँ भी तथ्य तो यही है जिसको मना नही किया जा सकता कि प्रत्येक पदार्थमे समय-समयमे एक एक परिणमन होता है। चाहे अशुद्ध परिणमन हो रहा हो, चाहे शुद्ध परिणमन हो रहा हो, बात सब जगह एक है कि प्रति समयमे एक-एक

परिणमन होता है, लेकिन उपयोगमे जो क्षोभ मचता है, आकुलता मचती है वह किस प्रकार मच रही है ? वह बात यहाँ दिखायी जा रही। सर्वथा एक समयका राग मानकर बधमोक्षकी व्यवस्था मिटा देना इससे कोई सिद्धि नही है । होता है प्रतिसमयमे परिणमन, मगर सम्बध दिखता है । कितनी धारामे यह जीव उन्मत्त बन पाता है ।

तत्त्वावगमसे उपलभ्य व कृत्य शिक्षण—निमित्त, उपादान, विकारीभाव, विकारीभावकी उत्पत्तिका साधन आदिक बातो पर विचार करके अब अन्तमे यह समझना है कि हमको क्या करना चाहिए जिससे भला हो ? सब तरफसे समझ लो कि इस नयसे यह बात है इस नयसे यह बात है, निश्चयसे यो है, व्यवहारसे यो है । अब हमारा कर्तव्य क्या है सो सुनो ! व्यवहारका विरोध न करके मध्यस्थ बनिये । विरोधसे मध्यस्थता खतम हो जाती है, और व्यवहारनयकी दृष्टिमे वह बात सत्य भी तो है । फिर उससे द्वेष क्यो ? अत व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ बनना और फिर निश्चयनयका आलम्बन लेकर निश्चयनयके विषयभूत चैतन्यस्वभावपर उपयोग देना, इन उपायोसे मोहादिक अशुद्ध भाव दूर होगे । और मोहादिक अशुद्ध भाव दूर हुए कि आत्माका कल्याण है । इस स्थिति मे जब कि व्यवहारनयसे पास होकर निश्चयनयमे आये, तब निश्चयनयसे जो लाभ उठाया गया उस स्थितिमे निश्चयनयका विकल्प भी टूट जायगा और वहा शुद्ध सहज स्वरस अनुभवमे आयगा । बस ऐसे ही आत्माका सहज अनुभव सर्व कर्मोके क्षयका कारण बनता है । जन्ममरण की सतति मिटा देने का कारण होता है । तब हमारा कर्तव्य यह है कि व्यवहारका विरोध न करके मध्यस्थ होकर निश्चयनयके आलम्बनसे मोहादिक भावोको दूर करें और अपनेको निर्विकल्प अनुभव करें ।

सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें रागपर्यायकी स्वयंनिष्पन्नता—आत्मामे उपाधिका निमित्त पाकर जो विभावपर्याय उत्पन्न होती है उसको नैगम आदिक नयोसे भिन्न-भिन्न रूपमें विदित किया जाता है । अब इस नवम परिच्छेदके प्रसगमे सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे रागपर्यायका क्या स्वरूप है, यह वर्णन किया जायगा । सबसे पहिले यह जानना कि जहाँ एक इस दृष्टिसे देख रहे हैं, जहाँ केवल एक ही नजर आता है तथा वह भी कई समयो तक चलने वाली बात नही । तात्पर्य यह है कि एक समय तक रहने वाली एक बात को ही ऋजुसूत्रनय देखता है । ऐसी दृष्टिमे जो रागपर्याय विदित हुई है—बतायें—वह कहाँ उत्पन्न हुई है ? किसमे उत्पन्न हुई है ? इसके उत्तरमे यदि कोई अन्य पदार्थ कह दिया जाय निमित्तसे हुई है अथवा यो भी कह दिया जाय कि पूर्वपर्याय जो कि विकृत थी, इससे हुई है, तो इतना भी सहन इस दृष्टिमे नही है । ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे रागपर्याय अपनी सत्तासे है । कुछ सुगम जाननेके लिए क्षणिकवादके सिद्धान्तका भी ध्यान करते जाये

तो उससे सुगमता मिलेगी ऋजुसूत्रनयके आशयको समझनेमे। क्षणिकवादमे प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होता है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है। कोई भी पदार्थ अपने ही कारणसे होता है और अपने ही आप विलीन हो जाता है। क्षणिकवादकी उत्पत्ति भी इस सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयके आग्रहमे हुई है, फिर तो यहाँ कोई ऐसा प्रश्न कर सकता है कि फिर ऐसे ऋजुसूत्रनयकी क्या जरूरत है जिससे हठकी उत्पत्ति हो जाय ? तो उत्तर यह है इसका कि कोई नय हठ उत्पन्न नही कराता किन्तु जहाँ मिथ्या भावना है वह नयका सहारा लेकर हठ कर बैठता है। नय हठ करनेके लिए नहीं बना क्योकि नयका स्वरूप ही ऐसा है कि अन्य बातोका विरोध न करके एक अपने विषयको बताये। यदि अन्य आशयका विरोध करके कोई नय अपने विषयपर दृष्टि डलवाना चाहता हो तो वह कुनय होगा, सुनय नहीं कहलाता। यह उपयोग देने वालेकी बात है कि वह हठ करके जानता है या बिना हठ किए नयके विषयमात्रको जानता है।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें सामयिक पर्यायके अतिरिक्त अन्य अवलोकनका अभाव—यहाँ यह समझिये कि सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे रागपर्याय अपनी सत्तासे है और स्वयं निष्पन्न है, क्योकि इस निगाहमे दूसरा कुछ दिखता ही नही। जैसे एक पौराणिक कथा सुनी है कि द्रोणाचार्यने अपने कौरव पाण्डव शिष्योकी धनुर्विद्याकी परीक्षामे एक वृक्षपर कोई कागजकी चिडिया बनाकर रख दिया और उन शिष्योको बारी बारीसे बुलाकर उस कागजकी चिडियाकी आँखमे तीर मारनेको कहा और उनसे पूछा कि तुम्हे क्या दिखता है ? तो वे बोले कि हमे पेड भी दीखता, चिडिया भी दीखती, बाण भी दीखता आदि, तो उन्हे अनुत्तीर्ण कर दिया और जब अर्जुनकी बारी आयी तो पूछा कि तुम्हे क्या दीखता है ? तो अर्जुन ने कहा कि मुझे तो बाणकी नोक के सामने दीखती है सिर्फ इस कागजकी चिडियाकी आँख। तब अर्जुनको उत्तीर्ण कर दिया। तो यहाँ यह बताया है कि जो जिस दृष्टिमे रहता है उसे केवल वह ही प्रतीत होता है। तो ऐसे ही इन नयोंकी बात है। जिस नयके आशयमें जो विषय है वहाँ वही उसे प्रतीत होता है। तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे केवल एक समयका पर्याय वही सर्वस्व है क्योकि उसे और कुछ नजर नही आता। तो वह रागपर्याय स्वयं निष्पन्न है। जो एक समयका राग है वह पूर्व समयमें नहीं और उत्तर समयमे भी नही होता और सिद्धान्त भी यह बताता है कि एक समयकी परिणति पहिले और आगे नही रहती। पूर्व पर्याय अपने समयमें हुई, दूसरे समयमे दूसरी परिणति हुई, इसीके मायने है पूर्व पर्यायका विलय हो गया तो यो रागपर्याय अपनी सत्तासे है, स्वयं निष्पन्न है, न पहिले है, न आगे होगा।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें ऋजुसूत्रनयके विषयके साथ कार्यकारण आधारआधेय भाव

तथा विशेष्यविशेषण भाव आदि सम्बन्धोंकी अनुपपत्ति---इस रागपरिणतिकी रचना किसी अन्य पदार्थसे नही है, उस पर्यायके सम्बधमे पर्यायके अशोसे ही उस पर्यायकी रचना होती है, अन्य कोई कारण नही, और न कोई आधार है । इस नयकी दृष्टिसे यह भी नही दिख रहा कि आत्मामे यह रागपर्याय हो रही है । आधारआधेय भाव, विशेष्यविशेषण भाव, कार्य कारण भाव, कोई भी सम्बध जिसमे दो का सम्बध होता है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नही । जो सरल वर्तमानको देखे उसे ऋजुसूत्रनय कहते है । इसकी निगाहमे वह पर्याय पर्याय क्या है ? है जो कुछ सो है पूरा पदार्थ है, पूरी बात है, जो कुछ भी दीखा, वह अपने समयमे है, वह किसीसे उत्पन्न नही होता और न उसका कोई आधार है, ऐसा यह राग पर्याय इस ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे प्रतीत होता है ।

कोई यहाँ यह प्रश्न कर बैठे कि आखिर रागपर्याय आती कहाँसे ? ऋजुसूत्रनयके आशयमे इस प्रश्न की गुजाइश नही । राग रागमे है, राग आया कहाँसे ? रागसे ही राग हुआ है । रागका तो जो स्वरूप है, रागका जो अपना निजी काल है वैसा ही राग है । राग बस एक तत्त्व है, वह परिपूर्ण है, अपनेसे निष्पन्न है, यह ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे विदित हुआ । यह उपादानसे नही होता, पूर्वपर्यायसे नही होता । ऋजुसूत्रनयमे जो दिख रहा है वह कहा जा रहा है, सर्वथा ऐसा नही है । राग पूर्वपर्यायसे क्यो नही होता ? राग उत्तर-पर्यायको क्यो नही उत्पन्न करता ? यो नही कि जब वह रागपर्याय है उस समय पूर्वपर्याय नही और न उत्तरपर्याय है । जब उत्तर पर्याय होगा तब यह प्रथम पर्याय रहती नही । तो जो है ही नही वह दूसरेका कारण कैसे बन सकेगा, कारण तो वह बनेगा कि जो है । पितासे पुत्र हुआ । पिता भी है, पुत्र भी है, हो गया । मथानीसे दही मथा गया, हो गया । मथानी भी उस समय है, दही भी । पर जो बात उस समय है नही, वह दूसरेका कारण कैसे बने ? पूर्वपर्यायके समय उत्तरपर्याय नही, तो उत्तरपर्यायका कारण पूर्वपर्याय कैसे बनेगा ? देखिये---ऐसी भी बातें कुछ लोग आजकलके कहते है । कहना गलत नहीं है, किन्तु साथ ही दृष्टिको भी खुलासा कर दें कि यह ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे विषय आ रहा है तो वह गलत न होगा । नयका जिक्र न करके यह बात कही जाय तो वह बात निर्णयकी नही बनती ।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें व्यवहारकी अनुपपत्ति---ऋजुसूत्रनयका तो ऐसा विषय है कि जिस विषयसे कोई व्यवहार भी नही बनता । बल्कि कोई ऋजुसुत्रनयका ही हठवादी हो जाय तो व्यवहारका लोप हो जायगा । कोई कहे तो फिर ऐसे नयको बताते ही क्यो है कि जिससे व्यवहार भी लुप्त हो, बात भी कुछ नही बनी, तो बात यह है कि ऋजुसूत्रनयमे व्यवहारका लोप होता हो तो होओ । जिस नयमे जो विषय आता है वह विषय तो बताया ही जायगा । हाँ व्यवहार इस नयसे न चलेगा । व्यवहारका कारण नैगमनय है और अन्य

नय है। ऋजुसूत्रनय एक पर्यायार्थिकनय है और इससे सूक्ष्म सूक्ष्म है—शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवभूतनय। देखनेमे ऐसा सीधा लगता है कि ऋजुसूत्रनयसे व्यवहार नही बनता, मगर समभिरूढ़नयसे व्यवहार बनता है। गो कहा तो गायका ग्रहण हो गया। एवभूतनयसे तो व्यवहार बन जायगा। एवंभूतनय उसे कहते है कि शब्दका जो अर्थ है उस कार्यमे जब वह पदार्थ लग रहा हो उस समय उस शब्दसे कहना। जैसे पूजा करते हुएमे उसको पुजारी कहे यह तो आसान बात है, व्यवहार बन जायगा, लेकिन नही, इससे भी व्यवहार नही बनता। यह तो विषय बताया जा रहा है, क्योकि शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय, ये तो ऋजुसूत्रनयसे और सूक्ष्म विषय वाले नय है। पर नैगमनय जैसी जो दृष्टि बनाये है और समभिरूढनय, एवभूतनयकी बात जोड रहे है तब ऐसा लगता है कि इससे व्यवहार बन जायगा। तो ऋजुसूत्रनय एक समयकी पर्यायको निरखता है, उसमे न कोई कारण है, न उसका कोई कार्य है।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें निमित्तनैमित्तिक भावकी व विशेष्यविशेषणभावकी अनुपपत्ति— ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे राग नैमित्तिक भी नही होगे। राग नैमित्तिक तो है, इसको मना तो नही किया जा सकता। जीवोमे जो राग होता है वह क्या कुछ निमित्त पाये बिना ही हो जाता है? अगर निमित्त पाये बिना हो तो राग आत्माका स्वभाव बन बैठेगा और फिर उसकी व्यवस्था भी न बनेगी। कब तक हो? कब तक नष्ट हो? कब नष्ट हो, कम हो, ज्यादह हो, यह कोई व्यवस्था न बनेगी। इस कारण मानना तो होगा कि राग नैमित्तिक है। कर्मोदयका निमित्त पाकर रागपरिणति उत्पन्न होती है। लेकिन जब ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे यह द्रष्टा उस राग परिणमनको निरख रहा है, उसकी दृष्टिमे न कोई दूसरा पदार्थ है, न पूर्व उत्तर पर्याय है; तब वहाँ नैमित्तिक कहा कैसे जा सकेगा? क्योकि जो नैमित्तिक है वह सब राग नही, और जो रागशक्ति है वह नैमित्तिक नही। देखिये विशेषणविशेष्य भाव लगाया तो जाता है, मगर ऋजुसूत्रनयमे नही लगा सकते, क्योकि ऋजुसूत्रनय जरा भी हेरफेरको सहन नही कर सकता। अगर कह दिया जाय कि कौवा काला है, लोग कहते ही हैं, व्यवहार भी ऐसा चलता है लेकिन ऋजुसूत्रनयके आशयमे यह व्याप्ति बनेगी तो यह बात ठीक कहलायेगी। ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे विशेष्यविशेषण भावकी व्याप्ति नही। ऐसा नियम नही कि जितना सारा कौवा हो वह नियमसे काला हो, और जितनी दुनियाकी काली चीजे है वे सब कौवा हो? तब इस दृष्टिमे कौवा काला है, यह कहा जा सकता है। तो जिस नयका कोई ऐसा सूक्ष्म विषय है कि विशेष्यविशेषण भाव भी नही वनता, वहाँ कारण-कार्य भाव बनेगा ही क्या?

रागको नैमित्तिक न कहा जा सकनेका एक अन्य कारण—अब और तीसरी बात

सोचिये। जब यह कहा गया कि राग नैमित्तिक भाव है तो इसमे राग तो बन गया विशेष्य और नैमित्तिक बन गया विशेषण। जैसे काला मनुष्य है तो मनुष्य है विशेष्य और काला हुआ विशेषण। यो ही यहाँ राग तो हुआ विशेष्य और नैमित्तिक विशेषण हुआ। अब यहाँ यह बतलावो कि ये दो चीजे जो सामने रखी है—विशेष्य और विशेषण, ये परस्परमे एकमेक है या जुदी जुदी ? यो दो विकल्प रखे। कोई सा भी विशेष्य विशेषण ले लो। नीला कमल, ऐसा कहा तो बतलावो ये दो बाते हुई ना ? नीला विशेषण है और कमल विशेष्य है। तो नीला और कमल ये दो क्या एक चीज हैं या पृथक् पृथक् । यदि कहो कि पृथक् पृथक् बाते है तो पृथक्मे सम्बन्ध हो ही नही सकता। यह तो बिल्कुल अलग है। जैसे बेन्च अलग है, चटाई अलग। जब ये दोनो भिन्न-भिन्न हैं तो इनमे क्या सम्बन्ध है ? विशेष्यविशेषण भाव क्या ? यो ही नैमित्तिक और राग ये दोनो भिन्न हैं तो इनका सम्बन्ध नही बन सकता, और न यह कहा जा सकता कि राग नैमित्तिक है। अगर भिन्न भिन्न दो चीजोको भी विशेष्यविशेषण भावमे लगा दें तो कोई किसीका भी विशेषण बन जायगी। जैसे काला कौवा, अब काला भी जुदा है और कौवा भी जुदा है। यदि ये भिन्न है तो सम्बन्ध नही बनता और यदि ये अभिन्न हैं तो एक बात रही, एक ही पदार्थ रहा। एकमे विशेष्य विशेषण क्या ? मनुष्य मनुष्य है। इसमे विशेष्य विशेषण क्या ? हाँ कोई ऐसा सोचे कि बन तो जाता है ऐसा कि यह मनुष्य तो मनुष्य है, इसमे इसानियत है तो यहाँ दो अर्थ हो गए। यह मनुष्य विशेष्य है—इसका अर्थ है कि जो ५-५ फिटका मनुष्य बैठा है पासमे वह मनुष्य। और मनुष्य है, इसका अर्थ है कि अच्छे विचार वाला है। अच्छे कर्तव्यो वाला है, तो अर्थ दो हो गए। मगर अर्थ भी दो नही, ऐसा भिन्न हो कोई तो वहाँ विशेषणविशेष्य क्या बनेगा ? इस कारण राग नैमित्तिक है, यह विशेष्य विशेषण हो ही नही सकता। जिस निमित्तसे हमने मान लिया राग, उस निमित्तमे राग तो है नही। कहते है ना कि निमित्तसे राग होता, निमित्तमे खुदमे राग नही बसा हुआ है। वहाँ से राग आयगा कैसे ? कर्ममे विभाव राग नही है, आश्रयभूत निमित्तमे पुत्र मित्रादिकमे इस जीवका रागभाव नही है। आयेंगे वे कैसे राग ? इस कारण राग नैमित्तिक है, यह बात नही कही जा सकती। तीसरी बात यह है कि किसीके गुण दोष किसीमे लादे नही जा सकते। अगर कर्ममे राग बसा है तो वह कर्म खराब है। वह अपने दोषमे है। उसका दोष आत्मामे नही लादा जाना चाहिए। यो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे राग राग है, स्वय निष्पन्न है, उसका कोई कारण नही, वह नैमित्तिक नही। इस तरहसे एक रागपरिणति नजरमे आती है।

सामायिक रागपरिणमनकी वचनागोचरता—बात चल रही है यहाँ बहुत सूक्ष्मदृष्टि

की। उससे केवल अपने बोधके लिए समझ लीजिए कि हम आपमें जो रागपरिणति है, प्रीति जगती है या अन्य कोई विभावभाव जगता है तो उसके जगनेमे बहुत समय लग जाता है। एक ही समयमे नही जगता। मगर रागपरिणमन प्रत्येक समयमे होता है। प्रत्येक समयका अगिला अगिला रागपरिणमन होकर भी जो हममे राग जगता है, जिससे क्षोभ और आकुलता मचती है वह एक समयके रागके अनुभवकी बात नही, किन्तु धाराबद्ध अनेक समयो के रागकी बात है। एक समयकी रागपरिणति तो इतनी सूक्ष्म है कि जिसके बारेमें यह भी नही कहा जा सकता कि यह कारणसे हुआ है, यह नैमित्तिक है, अथवा इसके बारेमे हम दूसरेको भी समझायें। जब हमने कोई चीज देखी तब हम समझा नही रहे, जब हम समझा रहे हैं तब वह चीज नही। तो समझाना भी नही बन सकता है इस नयमे। हम जानकर ही तो कुछ समझा करते है। जो भी समझाना है वह जानकर ही तो समझाना है। जाननेका समय पहले था, समझानेका समय अब है। अथवा तुरन्त जानते हुये भी समझा रहे है तो वहाँ भी समय भेद है। जिसके बारेमे समझा रहे हैं उसकी जानकारी समझानेसे बहुत हो चुका। तो इसमे न समझने वाला, न समझाने वाला, न नैमित्तिक, न कारण, न कार्य, न विशेष्य, न विशेषण, ऐसा एक समयका रागपरिणमन है। यह सब ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे आया। केवल इस ही आधारपर पराधीन न बन जायगा। बात तथ्य की कही गई है। प्रतिसमयका रागपरिणमन है और इस नयकी दृष्टिमे वह स्वतत्र है। जो लोग कहते हैं कि पर्यायें स्वतत्र है, अपने समयमे होती है और मिट जाती है, ये स्वतंत्र स्वतत्र पर्यायें है, वह इस नयका आशय है, सर्वथा स्वतंत्र है, ऐसा न कहा जा सकेगा। अथवा कार्यकारण भाव है, निमित्तनैमित्तिक भाव है तभी बध मोक्षकी व्यवस्था है।

सामयिक रागपरिणमनकी वाच्यतापर विचार—इस एक समयके रागको हम किन शब्दोमे बतायें ? कोई क्रिया होती है तो हो रही, हो चुकी, दो ही बाते तो कही जायेगी। जैसे कोई जा रहा है, तो पहिचान गए, चूंकि आ रहा है, आ चुका, आ गया, कुछ तो कहा जायगा ना, पर ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे क्या कहा जाय ? हो रहा है, हो चुका है, होवेगा। इनमेसे एक भी बात नही कही जा सकती। जैसे कोई मनुष्य चावल पका रहा है, उसे भोजन करना था, तो जब वह लकडियाँ ही चूल्हेमे डाल रहा था, उस समय उससे कोई आकर पूछता है कि भाई क्या कर रहे हो ? तो वह कहता है—खिचड़ी पका रहे है। अब आप देखिये—डाल तो रहा है वह लकडियाँ, वहाँ अभी न चावलका पता है, न दाल का, पर वह कहता है कि खिचडी पका रहे हैं, तो क्या उसने गलत कहा ?.. गलत नही कहा। और सुनने वालेने भी झूठ नही समझा, क्योकि उस सुनने वालेकी दृष्टि नैगमनयकी है। अगर उससे कोई कह बैठे कि साहब आप तो चूल्हेके पास लकडियाँ डाल रहे हैं और

कहते हैं कि खिचडी पका रहे हैं, तो यह तो आप गलत कहते है ? सो उसके उत्तरमे कहते है कि वह भी गलत नही कह रहा, क्योकि उसकी सूक्ष्मतापर जब दृष्टि देंगे तो यही बात दिखेगी कि हाँ वह खिचडी पका रहा है। अब देखो—वहाँ खिचडी पक गई क्या ? तो पक तो नही गई। तो क्या पच रही है ? जो पच रही है वह खिचडी नही। खिचडी तो उसे कहते है जो पक चुके। तो पच रही है यह भी नही बनता, पक गई यह भी नही बनता। तब उसे कहते हैं कि यह पच्यमान पक्व है। कहाँ ले जायें उसे समझानेके लिए ? तो इस प्रकार प्रतिसमयमे होने वाला जो रागपरिणाम है उसे रक्त नही कह सकते याने राग कर चुके यो न कहेगे, किन्तु उसको बोला जायगा रज्यमान रक्त। भला बतलावो—जिस विषयको समझानेके लिए कोई शब्द ही नही है, जोड जोडकर समझाना पड रहा है वह कोई बात भी है क्या ? उसको समझानेके लिए कोई सिद्धान्त या कर्तव्य न बनाया जायगा। ऋजुसूत्रनयके विषयमे बताया गया है कि ऐसे परमार्थमात्र समयके परिणमनको ऋजुसूत्रनय कहते हैं।

नैगम और ऋजुसूत्र दोनों नयोंके विषयकी अखण्डताकी दृष्टि–यद्यपि राग प्रतिसमय नवीन-नवीन परिणमन करता हुआ होता है तब भी समयमात्र रागकी दृष्टिमे राग भोगनेमे नही आता। केवल एक समयकी परिणति निरखनेपर अनन्तर चैतन्यस्वभाव अनुभवमे हो जाता है। नैगमनय और ऋजुसूत्रनय इन दोनोका विषय अखण्ड है। नैगमनय तो इतने विशालको देखता है कि जो अनादि अनन्त है और ऋजुसूत्रनय उतने एक अशको देखता है जो अविभाज्य अश है, जिसके फिर कभी अश नही हो सकते। तो ऋजुसूत्रनयने भी अखण्ड को विषय किया और नैगमनय जैसे विशाल विषय वाले नयने भी अखण्डको विषय किया। दोनो नयोके उत्कृष्ट विचारमे विषय अखण्ड होता है।

स्वभावानुभवमें ही निर्विकल्पानुभूतिकी साक्षात्कारणरूपता—नैगम व ऋजुसूत्र दोनो का विषय अखण्ड हैं, ऐसा जानकर एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि तब फिर अखण्ड स्वभावमे पहुचनेके लिए साधन नैगमनयका उपयोग है, तो ऋजुसूत्रनयका भी उपयोग हो सकता है। ऐसी जिज्ञासा उनकी ठीक है और बात भी ऐसी ही है कि अखण्ड विषयके जाननेपर विकल्प छूटकर स्वभावमे पहुचा होता है। नैगमनयने तो ऐसे अखण्डको देखा कि जो अनाद्यनन्त विशाल है, जिस दृष्टिमे भेद है ही नही। और ऋजुसूत्रनयने भी अखण्डको देखा। देखिये पदार्थका कालापेक्षया खण्ड होता है, पर ऐसा आखिरी खण्ड ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे दीखा कि पदार्थका परिणतिरूपमे खण्ड हो होकर ऐसा आखिरी खण्ड हुआ जिसका खण्ड किया ही नही जा सकता। एक समयके परिणमनका और खण्ड क्या हो सकता है ? तो जिस नैगमनयके प्रयोगमे अनादि अनन्त द्रव्यको निरखकर, अनन्त गुण पर्यायोका अभेद

पिण्ड देखकर उसके चिंतनके मार्गसे जिस उपयोगसे रागका अवकाश न होनेसे अखण्ड निर्विकल्प स्वके अनुभवमे पहिचानकी विधि बनती है। इसी प्रकार एक समयकी रागपरिणति अथवा कुछ भी परिणति यदि मननमे आये तो वह भी एक ज्ञेय ऐसा बन जाता है कि उस माध्यमसे एक चैतन्यस्वभावके अनुभवमें जानेका अवसर मिलता है।

प्रतिसमय रागपरिणमन होनेपर भी धाराबद्ध रागके उपयोगसे क्षोभकी व्यक्ति—यहाँ यह प्रश्न हो सकेगा कि पहिले तो समयमात्र रागपरिणतिका निषेध किया, सो समाधान सुनिये कि पहिले भी समयमात्र परिणतिका निषेध नही किया, किन्तु यह बताया गया था कि समयमात्र रागपरिणति क्षोभका कारण नही बनती अर्थात् उसका उपयोग नहीं हो पाता। जो वेदन कराये, किन्तु धाराबद्ध अन्तर्मुहूर्तका रागसमूह यह उपयोगमे रहता है। तो यहाँ भी क्रमश ही चला उपयोग। उपयोगने भी उस समयके रागको जाना। दूसरे समयके रागको जाना, पर यह ज्ञान जब योग्य अन्तर्मुहूर्त तक लगातार होता है। तब ऐसा उपयोग बनता है कि वह विकारको महसूस करनेका कारण बन सकता है। यह बात समझानेके लिए कि विकारक अथवा आकुलताको उत्पन्न कर रहा हुआ इस प्रकारका राग निरपेक्ष एक समयका राग नही है। वहा भी इतनी बात जानना है कि समयमात्र रागकी जानकारी मे रागका क्षोभ व्यक्त नही हो पाता, अनुभव नही हो पाता।

परपदार्थमें अपनी एकताका उपयोग बने बिना रागव्यक्तिकी असंभूति—अनुभवका मतलब है वेदनका। वेदन होता है ज्ञान और ज्ञेयकी एकता होने पर। जैसे ज्ञान जो हो रहा है उसका ज्ञेय बन रहा है रागपर्याय। तो जब रागपर्यायमे इस ज्ञानकी एकता हुई तो अशुद्ध वेदन हुआ। प्रभु भी जानता है समस्त लोकालोकको तो वह ज्ञानका विषयमात्र रह जाता है और वहा एकता होती है सर्व पदार्थोके आकाररूप परिणमे हुए इस अन्तः ज्ञेयाकारके साथ ज्ञानकी। अर्थात् ज्ञान और अन्तर्ज्ञेय इनकी एकतामे शुद्ध वेदन होता है और ज्ञान और परपदार्थ ज्ञेय इनकी एकता होने पर अशुद्ध वेदन होता है। यद्यपि ज्ञान की परपदार्थसे एकता कभी नही हो सकती, लेकिन विकल्प जो स्वीकार करते हैं, वे तो इस ढगसे चलते है कि मानो परपदार्थसे ये एकमेक हो गए। तो विकल्पमे परपदार्थके साथ ज्ञानकी एकता होनेपर अशुद्ध वेदन होता है और ज्ञानका अन्त ज्ञेयाकारके साथ शुद्ध वेदन होता है। तो परविषयक ज्ञान और परपदार्थ जब इनमे कल्पनासे एकता होती है। उस कल्पनाके प्रसंगमे जो वेदन होता है वह तो अशुद्ध वेदन है और ज्ञानाकार ज्ञान और ज्ञानाकाररूप स्वज्ञेय जब इसकी एकता होती है तो वहा शुद्ध वेदन होता है। जैसे दर्पणके सामने कोई चीज रखी है। दो बालक खडे हैं तो दोनो बालकोका प्रतिबिम्ब दर्पणमे आया। अब वहाँ देखने वाला कोई पुरुष उस छायाको और दर्पणको एकमेकरूपसे देखता है, अथवा

परपदार्थपर दृष्टि देकर कहते भी है कि यह बालककी छाया है तो उसने इस निगाहमे दर्पणको और परपदार्थको एकमेक करता हुआ जाना और कोई पुरुष वहाँ यह समझ रहा है कि इस दर्पणकी एकता तो इस दर्पणके निजके जो स्वच्छ प्रदेश है उनके साथ है, बच्चे के साथ नही है। अथवा कुछ और मध्यरूपमे चलें तो यह जो छायारूप परिणमन द्रव्य का हो रहा है इस दर्पणकी एकता इस दर्पणकी परिणतिके साथ है, परके साथ नही है। यो भी कोई निरख सकता है। ऐसे ही कोई जीव परपदार्थके साथ अपनी एकता समझ रहा है, यह मैं हू, यह ही मेरा शरण है, इससे ही मेरा जीवन है, आनन्द है। इस प्रकार परके साथ अपनी एकता करते हैं तो उसका वह अशुद्ध वेदन है। वहाँ क्षोभ उत्पन्न होता है। और जहाँ अन्तर्ज्ञेयाकारका ज्ञानाकार ज्ञानका जो ज्ञानाकार है उस ज्ञेयके साथ इस ज्ञानकी एकता है। तब शुद्ध वेदन है अथवा वहा जो अन्तर्ज्ञेयाकार हुआ है, ज्ञेयोका जानन-रूप परिणमन हुआ है उस परिणमनके साथ ही ज्ञानकी एकता है, किन्तु विषयभूत पर-पदार्थके साथ नही है, अत वहाँ शुद्ध वेदन है। यहाँ रागके सम्बन्धमे क्या स्थिति होती है कि रागके विषयके साथ एकता होती है और रागकी जो क्रिया है उस क्रियाके साथ एकता विकल्पमे होती है अतएव अशुद्ध वेदन होता है। तो अशुद्ध वेदनको, विकारस्वरूपको लिए हुए राग यह एक समयवर्ती नही हो सकता। एक धाराबद्ध अनेक समयका राग उपयोगमे ग्रहणमे आये वहाँ विकार जगता है।

पूर्वापरनिरपेक्ष परिणतिके ज्ञेय होनेपर रागके सूख जानेका अवसर—यद्यपि राग प्रतिसमय होता है, किन्तु मात्र एक समयका राग ज्ञानमे आये, पूर्वापर सस्कार छोडकर ज्ञानमे केवल समयमात्र परिणति ज्ञेय हो तो वहाँ रागका अनुभव नही होता, किन्तु एक शुद्ध विषय हो जाता। ज्ञानमे सापेक्षता न रही। दो द्रव्योका, दो क्षेत्रोका, दो कालोका, दो भावोका सम्बन्ध लेते हुए जो जानन होता है वह सापेक्ष है। ऐसे निरपेक्ष सम्बन्धमात्र की परिणति ज्ञेय होने पर इस जीवको विकार नही उत्पन्न होते। तब अपनेको अविकार स्वरूप अनुभव करनेके लिए यह भी मार्ग है कि किसी भी पर्यायके सूक्ष्म अश करके एक एक समयमात्रकी पर्यायको ज्ञेय करके ऐसा अपना ज्ञानात्मक प्रयत्न करें कि वह ज्ञेय बन जाय तो यह भी एक पद्धति है स्वानुभव की। अनेक समयोकी रागपरम्पराको समूह रूपसे उपयोग ग्रहण न करे तो यह भी एक कल्याणकी दिशा है, क्योकि अविकारानुभूति होनेसे पहिले किस किस प्रकारके ज्ञान हुआ करते है उनको यदि सक्षेपमे कहा जाय तो यह कहना चाहिए कि एक द्रव्य, एक क्षेत्र, एक काल, एक अखण्ड भाव, इनका विचार बने, विचारसे बढकर भावना बने, भावनासे बढकर ध्यान बने और ऐसा ही उपयोग हो तो उसके बाद अविकार तत्त्वकी अनुभूति होती है। जैसे किसी वृक्षकी जडको पानी न

मिले तो उसका काम है सूख जाना। इसी प्रकार रागानुभूतिके लिए है अन्य साधन अन्य का आश्रय वह आश्रय जब न मिले तो यहाँ रागवृक्ष भी सूख जायगा। यो नैगमनयका विषय भी अखण्ड है और सूक्ष्मनयका विषय भी अखण्ड है। अखण्ड विषय ज्ञेय होने पर अखण्ड स्वभावकी अनुभूतिका अवकाश मिलता है। जब अकेला ही कोई द्रव्य, अकेला ही स्वक्षेत्र, अकेला ही स्वकाल ज्ञेय होता है तो उस ज्ञानका ज्ञेय ज्ञानस्वरूप हो जाता है।

दर्शनोपयोगसे यथासंभव तुलना करके समयमात्र परिणतिके ज्ञेय होनेपर कल्याण लाभके अवसरका संकेत—जैसे दर्शनके स्वरूपमे बताया है कि पदार्थका आकार न ग्रहण करके पदार्थोंको विशेष रूपसे न निरखकर जो सामान्य ग्रहण होता है वह दर्शन है, तो अब जरा प्रयोग करके तो देखो। किसी भी पदार्थका हम दर्शन करें, उस पदार्थकी विशेषता प्रतिभासमे आये तो दर्शन न रहा। उस पदार्थका कोई आकार प्रकार रूप रग ज्ञानमें आये तो दर्शन नही होता। कोई समान्य भी प्रतिभासमे आये तो वह सामान्य प्रतिभास कैसा कि पदार्थोंका नाम भी न आये, पदार्थोका क्षेत्र भी न आये, परिणति भी न आये, आकार प्रकार भी प्रतिभासमे न आये और सामान्य प्रतिभास हो। और सामान्य प्रतिभास भी किया, और उसमे यदि यह लगाव रहा कि इन परपदार्थोंका सामान्य प्रतिभास है तब फिर सामान्य ही क्या रहा? जब इस पदार्थका यह सामान्य प्रतिभास इस पदार्थका यह सामान्यतत्त्व ऐसा भी अगर सम्बंध लगा दिया गया तो वहाँ सामान्य प्रतिभास भी कुछ न रहा। तो अब देखिये—दर्शन विधिमे यह जीव कैसे कैसे धीरे धीरे उतरता हुआ कैसा अविकारानुभूति मे पहुंचता है और चलो यही प्रतिभास रहा कि इन पदार्थोंका सर्वपदार्थोंका सामान्य प्रति-भासमे आया, लेकिन वह सामान्य एक जो सर्वपदार्थोंमे है, उस सामान्य स्वरूपपर दृष्टि जाय तो उस प्रतिभासके समय परपदार्थका लगाव हट जाता है।

अब किसका यह सामान्य? किसका कहनेपर जो उत्तर आता वह पदार्थ ओझल हो जाता। अब जब वह परपदार्थ भी ओझल हो गया तो सामान्य प्रतिभासमे प्रतिभास क्या रहा? प्रतिभास निराधार तो नही होता। उसके लिए तो कुछ विषय बनाना ही पडेगा। जहाँ परतत्त्व खिसक गया, तब आत्मा तो आधार है, पहिले भी था, अब भी है। कोई अज्ञानी पुरुष यदि परपदार्थके सम्बधमे कुछ जानकारी कर रहा तो उस जानकारीका आश्रय परमार्थत यह ज्ञाता आत्मा ही है। परपदार्थ तो विषयरूपसे आश्रय है। आश्रय तो परमार्थत आत्मा ही है, वह कही भी हटाया नही जा सकता। फिर यहाँ तो परपदार्थ उपयोगसे हट ही गया, तब रह जाता है यह निज स्व। उस समयमे इस अविकार स्वकी अनुभूति जगती है। तो समयमात्रकी परिणति यदि ज्ञेय बन जाय तो यह तो कल्याणलाभकी बात है।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें आत्माके रागकर्तृत्वका निषेध—अब एक दूसरा विषय ले लीजिए। इस रागपर्यायका कर्ता क्या आत्मा है ? विचार करो इस बातका। ऋजुसूत्रनय की दृष्टिमें यह प्रश्न किया जा रहा। तो भाई प्रश्नकर्ताने अगर ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि की होती तो यह प्रश्न ही नही उठ सकता था। प्रश्नकर्ता कुछ भी प्रश्न करे उसके प्रश्नको मना तो नही किया जा सकता। समझा जा सकता है कि प्रश्नकर्ताका यहा आशय क्या है ? रागपरिणति किसकी है ऐसी दो जगह दृष्टि होने पर प्रश्नकर्ताका आश्रय ऋजुसूत्रनयका नही रहता। ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे रागपर्यायका कर्ता आत्मा नही है, क्योकि रागसे पहिले जो पर्याय हुई है, द्वेष हुआ है मानो उस समय भी यह आत्मा था। आत्मा तो शाश्वत है, त्रैकालिक है। तो त्रैकालिक स्वभावी आत्माका काम एक समयका रागपरिणमन कैसे हो सकता है ? यह सब ऋजुसूत्रनयके आश्रयमे चर्चा चल रही है। जिस समय जिस नयके आशयमे चर्चा चलती हो उस समयमे उस नयका ही पूर्ण रूपसे आश्रय रखा जाय तो बात सुगम स्पष्ट हो जाती है।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें रागकी नैमित्तिकताकी असंभूति—यदि कोई ऐसा सोचने लगे कि राग तो नैमित्तिक है, यह आत्मा तो कर्ता नही है रागका, आत्मा तो आधारमात्र है। उसमे परिणमन होता है, पर निमित्त कर्ता है क्योकि राग नैमित्तिक है। चर्चा रखे कोई नवीन कैसी ही। यहा यह परख लीजिए कि इस ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे राग नैमित्तिक है यह कहना युक्त नही। रागका कर्ता निमित्तभूत पदार्थ है, यह कथन भी सगत नही, क्यो कि रागका निमित्तके साथ समानाधिकरण नही। राग तो वर्तमान पर्यायमात्र है और आत्मा त्रैकालिक है निमित्त अलग है और आत्मा अलग है। तो रागका सामानाधिकरण्य आत्मामे नही हो सका और निमित्तमे भी न हो सका। तो रागपर्यायका कर्ता कोई भी नही है।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें रागभावकी स्वयं निष्पन्नता व अहेतुकता—ऋजुसूत्रनयके आशयमे रागपर्याय स्वय निष्पन्न है, स्वय सत् है, अपने समयमे अपने आप उत्पन्न हुआ है। यह आशय तो अनन्तर पूर्ववर्ती समयके परिणमनको भी नही निरखता। तब रागका आधार ये निमित्त और आत्मद्रव्य दोनो ही न रहे। तब क्या रहा ? आधार ही कुछ नही। सब परिपूर्ण हैं, निष्पन्न हैं, स्वसहाय हैं। ऋजुसूत्रनयके आशयमे कोई दूसरी बात दृष्टिगत नही होती। इस कारण यह भी कहा जा सकता कि रागकी उत्पत्ति अहेतुक है। किसी कारणसे नही होती। यह बात कह रहे है ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे। इस दृष्टिमे कार्यकारण भाव नही है। मुझे यह बात बरावर कहनी पड रही है इसलिए कि कही यह दृष्टि छोडकर सर्वथा इसका अर्थ न लगा लेना, अन्यथा कुछ विषय समझमे भी न आयगा। और उसके

प्रति शल्य और शंका रह सकेगी। रागपर्याय अहेतुक है। वह किसी भी हेतुमे उत्पन्न नही होता। यह बात कैसे समझी जाय ? तो देख लीजिए—जो उत्पन्न हो रहा है एक समयमे रागपर्याय जो हो रहा ना, उसको दृष्टिमे लेकर चिन्तन करिये। वह उत्पन्न हो रहा है या उत्पन्न हो चुका है। एक समयमे एक रागपरिणमन यदि उत्पन्न हो रहा वह किसीको उत्पन्न नही कर सकता। वह पहिले उत्पन्न तो हो ले। उत्पन्न हो चुके तब वह उत्पन्न करेगा दूसरेको। यदि कहो कि जो उत्पन्न हो चुका राग, वह करेगा उत्पन्न दूसरे रागको, तो सुनिये इस विधिसे रागको दो समय रहना पडेगा। एक तो उत्पन्न होनेके लिए समय लगेगा, फिर दूसरे रागको उत्पन्न करनेके लिए अन्य समय होगा। और दो समयमे कोई परिणति रहती नही। प्रत्येक परिणति अपनी-अपनी एक-एक समयमे होती है, और साथ ही यह भी विचारिये कि जो रागपरिणमन उत्पन्न हो रहा है। यदि वह आगेकी रागपर्यायको उत्पन्न करने लगे तो जब उसमे दूसरे परिणमनको उत्पन्न करनेकी शक्ति है तो ऐसी आगेकी अन्य और पर्यायोको उस ही क्षणमे क्यो नही उत्पन्न कर देता ? कर देना चाहिए। फल क्या होगा कि भविष्यकी अनन्तपर्यायोको यह एक समयका पर्याय उत्पन्न कर देगा। जब एक समयका राग पहिले समयके रागको उत्पन्न करता है याने अगले समयके रागका सद्भाव नही है, और जिसका सद्भाव नही है उसे जब उत्पन्न करने लगा यह समयवर्ती राग, तो भविष्यकी असद्भावमे अनन्त पर्यायें भी हैं ना, उन्हे भी उत्पन्न कर दे, तब एक ही समयमे सब पर्यायें हो जानेसे फिर पर्यायोका आगे अभाव हो जायगा। कुछ रहेगा ही नही। तो यो द्रव्यका भी अभाव हो जायगा। इस कारण यह नही कह सकते कि जो उत्पन्न हो रहा है वह अगिली रागपर्यायको उत्पन्न कर देगा। यदि कोई सोचे कि नही, उत्पन्न हो चुका है वह राग पहिले समयमे, वह करेगा दूसरे समयके रागको उत्पन्न, तो, जो उत्पन्न हो चुका वह उत्पन्न नही कर सकता। क्योकि उत्पन्न हो चुका। एक समय उसका पूरा हो गया। अब उत्पन्न करेगा तो दूसरे समयमे करेगा। तो वह रागपर्याय अब दो समयमे आ गया। जब कोई एक परिणति दूसरे समयमे आ गई तो तीसरे चौथे आदिक अनन्त समयोमे भी बनी रहे, इसे कौन रोक सकेगा ? और जब कोई न रोक सका, समय-मात्रका परिणमन भविष्यके सर्व समयोमे रह गया तो इसके मायने यह है कि वही रह गया, कूटस्थ अपरिणामी हो गया। तो यो रागपर्यायका कोई हेतु नही बनता, अतएव रागपर्याय अहेतुक है।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें पूर्वपर्यायके अभावमें उत्तरपर्यायके उत्पादके कारणत्वका अभाव—कोई यह सोचे कि यह हेतु बना ले कि पूर्वपर्यायका अभाव उत्तरपर्यायका कारण बनता है तो पूर्व समवर्ती रागका अभाव होते ही अब रागपर्यायका कारण हो जायगा,

सो भी बात नही, क्योकि अभाव भावका कारण नही हो सकता। असत् सत्का कारण न होगा। पूर्वपर्याय न रहे, वह उत्तरपर्यायका कारण कैसे होगा? इन बातोसे यह समझ लीजिए कि यदि कोई ऐसी चर्चाये करता है कि अभाव भावका कारण नही। पूर्व समयवर्ती परिणति उत्तर समयका साधन नही, तो ये सब बाते ऋजुसूत्रनयके विषयमें है। यदि इस नयका बल दे करके नही कहा है तो ऐसी चर्चा एक स्वरूपके विरुद्ध भी बन सकती है और कल्याणकी दिशासे दूर हटा सकती है।

प्रतिसमय प्रतिसमयकी परिणतिकी परिपूर्णता—इस समय सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे रागपरिणतिका निरखन कर रहे हैं अर्थात् एक समयमें जो विभावपरिणमन होता है उसकी स्थिति क्या है? इस नयसे यह बतलाया कि वह राग किसीसे उत्पन्न नही होता और किसी अन्यसे नष्ट नही होता। अपने आप ही उत्पन्न होता है और स्वयं ही नष्ट होता है। राग कहो, कषाय कहो, कोई सा भी विभाव परिणाम कहो, सबका उपलक्षक है यहाँ राग। तो एक समयमे जो हम आपमे रागपरिणति बनती है, देखिये उसे हम इन्द्रियसे नही जान सकते, युक्तिसे ही समझ सकते हैं कि जब दो मिनट तक बराबर राग करते है तब समझमें आता है कि हाँ यह राग है। तो आखिर एक मिनटमे भी तो कुछ राग हुआ। एक सेकेण्डमें तो कुछ राग हुआ, एक सेकेण्डके असख्यातवें हिस्सेमें कुछ राग हुआ, और जिस समय जो परिणमन होता है वह परिपूर्ण होता है। लोग कहा करते हैं कि हमारा यह काम अधूरा पडा है लेकिन अधूरा तो कोई होता ही नही है। कौनसी चीज ऐसी है जो अधूरी हो? एक भी चीज ऐसी नही जो अधूरी हो। अधूरापन तो कल्पनामे है। चीज मे अधूरापन नही। मान लो आप मकान बनवा रहे, उसकी भीत अभी आधी ही बन पायी तो लोग कहते हैं कि अभी यह काम तो अधूरा ही हुआ है। पर ऐसी बात नही है, उसमे जो ईंटें, मिट्टी आदिक चीजें हैं वे तो एक एक पूरी पूरी चीजें हैं। उनमे अधूरापन रहा कहाँ? अधूरापन तो इस कल्पनामें है कि जो यह सोच डाला था कि हमे यह काम अभी करना है, किन्तु ऐसा हुआ नही, सो यह कल्पना ही तो है। अधूरा तो कोई पदार्थ होता ही नही।

प्रतिसमय प्रत्येककी परिपूर्णताका रहस्य—प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय परिपूर्ण है। इस बातको अन्य दार्शनिकोने इन शब्दोमे कहा है—पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णात्पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। उनका है यह अद्वैतवादका सिद्धान्त। यह पूर्ण है, यह पूर्ण है। संस्कृतमे "यह" इस शब्दके वाचक दो शब्द प्रधान हैं। एक अदस् शब्द और एक इदं शब्द। इद मायने यह और अद मायने यह। लेकिन ये भेद हिन्दीमे तो नही आ पाते। सस्कृतमे ये भेद आ जाते हैं। एक बहुत निकटवर्ती 'यह' का नाम है और एक यह

अन्य जगहके 'यह' का नाम है। जैसे कोई कहता है कि यह बन्धु मेरा है और कोई कहे कि मेरा तो 'यह' आत्मा है, तो 'यह' शब्दका प्रयोग दोनो जगह हुआ, फिर भी अन्तर है। इसका विश्लेषण करने वाला शब्द हिन्दीमें नही है, लेकिन संस्कृतमे है। अदः और इदं। तो इस ही दृष्टाने जब भेददृष्टिसे देखा तो यह ब्रह्म दीखा, उसे भी 'यह' शब्दसे बोला। जब अभेददृष्टिसे देखा तब यह स्वयं ब्रह्म दीखा, उसे भी 'यह' शब्दसे बोला। यह ब्रह्म यह पूर्ण है, परिपूर्ण है, अधूरा नहीं है। मोटे रूपमें कहा कि यह ब्रह्म परिपूर्ण है और पूर्णसे पूर्ण निकालता गया है, पूर्ण ही निकलता है और पूर्णसे पूर्ण निकल करके भी रह क्या जाता है? पूर्ण ही रह जाता है। ऐसा ही कोई विलक्षण हिसाब है कि पूर्ण है उससे जो भी निकला सो पूर्ण और जो शेष बचा सो भी पूर्ण। यह बात कही है उन्होंने अपनी भक्ति मे श्रद्धामे, जिसका कि प्रेक्टिकल उपयोग न कर सकेंगे, लेकिन यह अपने आपमे घटायें तो प्रेक्टिकल घटेगा, व्यावहारिक समझ बनाता हुआ घटेगा। यह मैं आत्मा पूर्ण हूँ। पूर्ण नही हूँ क्या? मेरा अभी सत्त्व बन नही पाया क्या? उस सत्का किसीने निर्माण किया है क्या? कई समयोमे निर्माण होता है क्या? नही। मैं पूर्ण हूँ क्योकि सत् हूँ। जो सत् होता है वह परिपूर्ण होता है। कोई भी चीज है और हो अधूरी, यह बात बन ही नही सकती। है तो अधूरी क्या? अधूरा तो कुछ होता ही नही। चाहे असत् कहलो। असत् भी कुछ होता नही, मगर समझमे बात आती है। खरगोश, मनुष्य, गधा आदिकके सींग असत् हैं, ऐसा लोग कहते भी हैं। प्रयोगानुसार ही समझ लीजिए, पर अधूरेके लिए तो बताओ कुछ कि फलानी चीज अधूरी है? अधूरा कुछ नही होता। तो यह मैं आत्मा पूर्ण हूँ। और पूर्णसे पूर्ण निकलता है। अब निकलने वाला क्या? निकलेगा कौन? मेरे इस पूर्णमे से मेरी ही तरह क्या कोई दूसरा पूर्ण निकलेगा? यह मैं दो तो नही हू कि पूर्णमें से पूर्ण निकल बैठे। पूर्णमे से निकलेगा तो पर्याय निकलेगी। द्रव्य नही, पदार्थ नही, कोई सत् नही। पूर्णसे जो निकलेगा वह क्या? पर्याय। और जो पर्याय निकली वह पूर्ण है। कोई पर्याय अधूरी नहीं होती। कोई काम कर रहे हैं, मान लो कि एक कौर उठाया खाने के लिए और उस कौरके उठानेमे, मुंह तक ले जानेमे मान लो आधा सेकेण्ड लगा। तो उस आधे सेकेण्डके हजारो भाग लगे तो थालीसे हाथ एक अंगुल उठा, तो जो हाथकी परिणति बनी वह पूरी है कि अधूरी? पूरी। एक अंगुल उठी तो वह भी पूरी पर्याय है। कल्पनामे इस जीवने अधूरा मान लिया है। समझो उसने यहाँसे कौर उठाया मुखमे रखकर चबानेके लिए और जरा सी देर लग गयी तो बीचकी जो हालत है उसको कल्पनासे इसने अधूरा कहा, पर अधूरा तो कुछ होता ही नही। तो प्रतिसमयमे जो मेरे आत्मामे परिणमन होता है वह परिणमन भी पूरा है। तो पूरासे पूरा निकला। इस पूरे मेरे आत्मासे यह

पूरा पर्याय निकला तो वहाँ क्या बचा ? पूरा ही बचा । शून्यसे शून्य निकला तो क्या बचा ? शून्य । पूरासे पूरा निकला तो क्या बचा ? पूरा ही बचा । कुछ भी स्थिति हो, मगर यह हालत जरूर है कि पूर्णमे से कुछ भी अंश निकल जावे मगर वह पूर्ण पूर्ण ही बैठा हुआ है । वाह रे गजबका हिसाब, कितना गहरा तथ्य है ।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें प्रतिसमयकी परिणतियोंके विनाशकी अहेतुकता—यह सूक्ष्मनयकी दृष्टिसे एक समयके रागपरिणमनकी बात चल रही है कि वह रागपरिणमन पूर्ण है । तो यह ऋजुसूत्रनयकी दृष्टि है ना ? वह तो एक समयवर्ती पर्यायको देख रहा है । वह कैसे बना ? अपने आप बना । किसी लडके से नहीं निकला । जैसे किसी लडकेसे प्रेम हुआ तो क्या वह प्रेम उस लडकेसे निकला ? नहीं । कर्मोदयसे नहीं निकला । पहिले राग कर रहे थे उससे भी नही निकला किन्तु वह राग अपने आप बना, अहेतुक है, उसका कोई कारण नही । सारी बातें सुनते हुए ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिको न हटाना, नही तो समझमे न आयगा । इसी प्रकार रागके नाशके सम्बन्धमे अगर पूछा जाय कि कैसे राग नष्ट होगा, तो उसका उत्तर है कि विनाश भी अहेतुक है, कोई अन्य किसी कारणसे नष्ट नही होता । हुआ और नष्ट हो गया, बस यह उसीका ही काम है । किस समय हुआ और किस समय नष्ट हुआ ? दो समय तो ठहरता ही नही, समय क्या बतावें ? वही समय है रागके उत्पन्न होनेका और वही समय है नष्ट होनेका । वह राग किसी को उत्पन्न नही करता, किसीसे नष्ट नही होता, ऐसा यह रागपरिणमनका विनाश अहेतुक है, मिटेगा कैसे ? एक समयको हुआ और अपने आप मिट गया । मिटाने वाला कोई नहीं है ।

ऋजुसूत्रनयमें कारण द्वारा रागका अभाव किये जानेकी अनुपपत्ति—अगर कोई दूसरा हेतु हो रागको मिटाने वाला तो यह बतलाओ कि उस कारणने क्या किया ? यही तो कहेंगे—रागका अभाव किया, तो रागका अभाव, इसका क्या अर्थ है ? निषेधके दो अर्थ हुआ करते हैं । एक तो यह कि नहीं, बस, केवल अभाव खतम । दूसरा यह कि उसके एवजमे और कुछ । निषेधके दो अर्थ हर जगह होते है, जैसे कोई कहे कि अव्रतीको भोजन करावो तो अव्रतीके मायने क्या ? इसके दो अर्थ हुए । एक तो अव्रतीको भोजन कराओ, इसका अर्थ है व्रतीको भोजन न कराओ । दूसरा अर्थ है कि जो व्रत रहित है उसे भोजन कराओ । किसी कारणने अराग बनाया, तो अराग किया, इसका अर्थ क्या कि कुछ नही किया । दूसरा करनेके लिए कुछ न बताया जा सकेगा । इसे कहते हैं प्रसज्यप्रतिषेध, मायने बस रागका अभाव, रागका निषेध । किया क्या ? अन्य कुछ नही । शून्य किया । करने को कुछ नहीं । निषेधका दूसरा अर्थ होता है पर्युदास । मायने रागका अभाव किया, मायने कुछ किया । क्या किया ? कुछ । तो इन दोनों अर्थोंमें से अगर यह अर्थ लगाते हैं कि कारणने

रागका अभाव किया, मायने शून्य किया तो राग प्रसज्य था, उसका प्रतिषेध किया, मायने राग नही किया, तो इसका अर्थ है कि रागको नही करता। तो हेतु ने क्या किया ? वहाँ तो हेतुमे निषेधमात्र ध्यानमें रहा। निषेध ही करने वाला तो रहा, अभावका कर्ता तो न रहा, निषेध किया। यदि कहो कि रागाभाव करनेका यहाँ पर्युदास अर्थ है, मायने रागका अभाव किया, याने करनेमें अभाव आया तो वह अभाव उस रागसे भिन्न है कि अभिन्न ?—कारणने रागका अभाव किया। क्या किया ? रागका अभाव। यह अभाव रागसे जुदा है या एकमेक चीज है ? अगर कहो कि जुदा है तो अभाव क्या ? राग तो ज्योका त्यो रहा, क्योकि राग जुदा है, अभाव जुदा है, अभाव किया तो कर दिया, मगर उससे रागपर कोई आँच नही आई। अगर कहो कि राग और अभाव दोनों एक हैं तो अभाव किया, तो राग किया। जब इनमे एक बन गया तो अभाव किया, इसका अर्थ है कि राग किया। सो अनर्थ हो गया। तो रागका अभाव करना किसी हेतुसे संभव नही। वाक्य ही नही बनता। उसका अर्थ ही नही बैठता, इसलिए रागका विनाश किसी कारणसे नही होता। वह तो अपनी कलासे उत्पन्न हुआ है और अपनी कलाके अन्तसे आप नष्ट होता है। तो रागका अभाव किया, इसका अर्थ अगर निषेधमात्र है तो करनेकी बात नहीं आयी। और अगर कुछ करने वाली बात है तो भिन्न है तो रागपर आँच नहीं, अभिन्न है तो अभाव कियाका अर्थ है राग किया, तो राग तो पहिले समयमे ही उत्पन्न होगा। उत्पन्न होनेसे क्या किया ? जो उत्पन्न हो चुका उसका करना क्या ? निषेधकी बात, अभावकी बात, विनाशकी बात तो बादमे की जायगी। तो जो उत्पन्न हो गया उसकी उत्पत्ति क्या ? इस कारण यह समझो कि रागका विनाश भी अहेतुक है।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे बात यह है कि नाशका कारण जन्म हुआ, जन्म हुआ तो वह नष्ट हो गया। नाशका कारण जन्म है, और जन्म जिस समयमे हुआ उसी समय उसका नाश हो गया। वह ठहर नहीं सकता दूसरे समयमें। तो पदार्थके विनाशका कारण पदार्थोंकी उत्पत्ति है। इसका लम्बा अर्थ नहीं लगाना कि हाँ बात तो ठीक रहो, मनुष्यके मरनेके कारण मनुष्यका जन्म है, इतना लम्बा अर्थ नहीं है इस दृष्टिमें, क्योकि जन्म हुआ ५० साल पहिले और मरण हो रहा ५० साल बाद तो क्या ५० वर्ष तक जन्म होता रहा ? ५० साल तक तो उसका जीवन चला, जन्म न चला, जन्म तो किसी सेकेण्डमे हुआ था, इसका संक्षिप्त अर्थ लेना है। जन्म होना वही मरणका कारण है, वही विनाशका कारण है। अर्थात् जिस समय जन्म हुआ उसी समय नष्ट हुआ, ऐसा यह सगपरिणमन है। अगर उसी समय नष्ट न माना जाय, जो उत्पन्न हुआ वह दूसरे समय रह गया तो, दूसरे समय रह गया उसमे जब कोई अड़चन न आयी तो तीसरे समय क्यों अड़चन आयगी ?

तीसरे समयको राग आया, फिर उसके बादके समयोमे क्यो अड़चन आयी ? पर ऐसा नही दिखता, इससे विदित होता है कि रागका जन्म ही रागके नाशका कारण बन जाता है। यह बात चल रही है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयके आशय की। इसमे बहुत अधिक समझमे आप लोगोको न आता होगा तो इतना तो समझमे आता ही होगा कि कितनी कठिन बात कही जा रही है ? (हसी)। और उससे यह अंदाज लगाया जा रहा होगा कि जिन ऋषि सतोने तत्त्वके विवेचनमे इतना श्रम किया उनकी कितनी हम आपपर करुणा बुद्धि थी ? देखिये—उन्होने कितने सूक्ष्म तत्त्वका किस किस ढगसे दिग्दर्शन कराया ? तो इस दृष्टिमे जन्म ही पदार्थोंके विनाशका कारण है क्योकि जो पदार्थ उत्पन्न हुआ और एकान्तर समयमें नष्ट हुआ हो तो बादमे भी किसीसे नष्ट नही हो सकता। रागपरिणतिके सम्बंधमे सूक्ष्म ऋजुनय की अपेक्षासे वर्णन आपने बहुत समयसे सुना, कई दिनोसे सुना। सुनकर ऐसा लगता होगा कि ऐसे रागपरिणमनका क्या करें ? न हाथ आता है, न कहनेमे आता है और ऐसा राग-परिणमन जो होते ही नष्ट हो जाता है पर पूर्ण है, किसी कारणमे नही हुआ। तो उस रागसे कर्मबन्ध तो होता न होगा ? अच्छी सुनाई बात और ऐसा ही रहे तो विजय ही विजय है, न बंध होगा, न कर्मबन्ध। बात है, चल रही, मौज आ रहा, कोई खानेमे मौज मानता है, यहाँ तत्त्वचर्चामे आनन्द आ रहा है, ज्ञानके आनन्दकी तुलना विषयका आनन्द नही प्राप्त कर सकता। विषयोके आनन्दमे क्षोभ भरा हुआ है। आप कितना ही आनन्द भोग लें, कितना ही सुख भोग लें, पर कोई भी विषयसुख ऐसा नही जो शान्तिपूर्वक लूटा जाता हो, पर ज्ञान किया जानेका आनन्द शान्तिपूर्वक मिलता है।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें बन्ध्यबन्धकभावकी व बध्यघातकभावकी असंभूति—समयमात्र रागपरिणमनकी बात है तो इसमे बंध्यबधक भाव न बनेगा और फिर इसमे बध्यघातक भाव भी न बनेगा। कोई किसी की हिंसा करने वाला है ही नही। कोई किसी को मार नही सकता, कोई किसीका कुछ कर नही सकता। चीज है, एक-एक समयमे है, वह स्वयं नष्ट हो जाती है, वह दूसरे का क्या करे ? तो फिर किसीको कभी हिंसा भी न लगेगी, पाप भी न लगेगा, कर्मबन्ध भी न होगा। यह तो बडा आसान तरीका मिल गया। ऐसी अगर जिज्ञासा है तो इस सम्बन्धमे यही कहना है कि हाँ, सूक्ष्मऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे ऐसा है जैसी कि जिज्ञासा हो और उसमे सोच डालना कि न उसमे कर्मबन्ध है, न उसमे हिंसाका दोष है, न उसमें पापकी बात है। हाँ बात तो ऐसी ही है। सूक्ष्मऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे कि न कोई बधने वाला है और न बाँधने वाला, न कोई मरने वाला है, न मारने वाला। क्योकि इस नयकी दृष्टिमे पदार्थ एक है और वह पदार्थ भी द्रव्यसे एक, क्षेत्रसे एक। राग एक समय मे जो कुछ है उतना मात्र है। उसमे जब दूसरी बात ही नही है तो बन्ध्यबन्धकभाव कैसे

हो ? बध्यबंधक भाव होता है दो मे। एक बंधने वाला और एक बाधने वाला। इस नय की दृष्टिमे बन्धन नही। इस नयकी दृष्टिमें मरना मारना नही, क्योकि इसका विषय एक है, और इस तरह दोनोका सम्बन्धभी नही। सब पदार्थ अपने अपने स्वरूपमे है, पुद्गल-कर्म अपने स्वरूपमे है, आत्मा अपने स्वरूपमें है, और एक दूसरेके स्वरूपसे बिल्कुल बाहर है। मानो दो भाई अगर बहुत प्रेम करनेके कारण एक दूसरेके गले मिलते है, दोनो एक दूसरेसे चिपक कर हृदयसे वात्सल्यता प्रकट करते है तो क्या वे दोनो एकमेक हो गए ? अरे वे दोनो ही अपने अपने विकल्पोके क्षोभ अपने-अपनेमें मचा रहे हैं। यो ही प्रत्येक पदार्थकी बात है। एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे रंच मात्र भी सम्बन्ध नही है, एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे प्रवेश नही है। अब आपने जाना होगा कि यह रागपरिणति जो बतायी जा रही है वह वर्णनमे नही आ सकती। ऐसा सूक्ष्म विषय है। उसको कहने वाला दुनियामे कोई शब्द ही नही है।

आत्मतत्त्वभावनाकी कल्याणसाधनरूपता—जितना चिंतन मनन अपने आत्मासे सम्बधित होगा वह कल्याणमे अवश्य साधनभूत है। अपने आत्माका जो आजकल मलिन रूप चल रहा है, उसका भी विचार हो, वह भी कल्याणके लिए है। हा उस मलिनरूपमे एकता हो जाय तो वहा तो आत्माके सम्बन्धमे कुछ विचार ही नही रहा। अपने आपके सम्बन्धमे जितने चिन्तन, मनन, विचार होगे वे कल्याणके साधन है। यो तो सभी लोग मै मैं कह कर अपनी ही बात सोचते हैं लेकिन आत्माकी दृष्टिसे अपनी बात नही सोचते। अन्दरसे आवाज आती है, एक लगाव रहता है उसमे मैं का प्रयोग करता तो है, मगर आत्मा है उस आत्माके रूपसे मैं का विचार नही है। एक कुछ है, उसमे किसी तरहका विचार होता है—अज्ञानियोंका, किन्तु आत्माके ढंगसे उस रूप विचार चले, वह किसी न किसी अशमे लाभकारी है। मैं मलिन हूँ, मेरी अवस्था इस रूप नही है, जन्म मरण ये तो विडम्बना हैं, जन्म मरणसे हमे छूटना है, किस प्रकार छुटकारा मिले ? इत्यादि रूपसे विचार होना चाहिये। जीवनमे जैसे लोग अनेक प्रकार सोचते है कि मुझे यह करना है, यह करना है, तो वैसे ही उन्हे यह सोचना चाहिए कि मुझे तो इस जन्म मरणसे छूटना है। जन्म मरणसे छुटकारा मिले, देह कर्म आदिकसे सम्बन्ध न रहे, मैं केवल रह जाऊँ, यह बात उद्देश्यमे आ जाय, फिर उसका कल्याण बन बैठेगा। उद्देश्य ही अभी नही बनाया बहुतसे जीवोने, इस कारण वे क्या प्रगति कर सकेंगे ? जिनका उद्देश्य बन जाता है वे चक्र-वर्ती भी हो और छहो खण्डके राज्यमे भी पल रहे हो, लेकिन उनकी जल्दी-जल्दी अपने उस आत्मतत्त्व पर दृष्टि पहुंचती रहती है। इसी कारण बताया है कि ज्ञानी चक्री इतनी सम्पन्नता होनेपर भी उससे विरक्त रहते है। अब अपने आपके सम्बन्धमे जरा विचार

कीजिए कि कैसे मेरा जन्ममरण छूटे ? जन्ममरणका सम्बन्ध है देहसे। नया देह मिले उसका नाम है जन्म। यह जीव देहसे अलग हो रहा उसका नाम है मरण। तो जन्म और मरणसे छूटना हो तो क्या किया जाना चाहिये ? मैं देहसे निराला हूँ ऐसा निरख लेना चाहिये। जिस देहसे निराला होने की बात मनमे ठानी है उस देहसे निराला मैं अपने आपको अभी देख लूं, बस यही जन्ममरणसे छूटनेका उपाय है। किसी कुमित्रसे अगर दोस्ती छुटाना है तो दोस्ती छुटानेपर होता क्या है ? पार्थक्य। जैसे पार्थक्य पहिले हुआ करता हो चित्तमे, भावमे तब जाकर मित्रता छूटती है। इसी तरह देहकी मित्रता अगर छोडना है तो देहसे निराला यह मैं अब भी हू इस तरह स्वरूपदर्शन करें तो देहसे निराला बन सकता हू।

निजको देहविविक्त समझनेके लिये भेदविज्ञानपूर्वक सहज स्वतत्त्वकी भावनाकी कर्तव्यता—अब देहसे निराला स्वभावत मैं हू, स्वरूपसे हू, इस बातके समझनेके लिए बडा पुरुषार्थ चाहिए, सयम चाहिए। अपने आपको केन्द्रित करना है, सब ओरसे हटकर अपने आपके स्वरूपमे लगना है, इसके लिए सर्वप्रथम भेदविज्ञानकी आवश्यकता होती है। मिली हुई चीजोमे पार्थक्य करके किसी एकमे ही भक्ति रह जाय, इसका उपाय तो यह है कि पहिले भेद तो समझे कि मैं देहसे निराला एक चैतन्यतत्त्व हू, केवल ज्ञानानन्द हू, भावात्मक हू, जिसको डलेकी तरह पकडा नही जा सकता। जो रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है, जिसका अपने आपका कोई आकार नही। अनादिसे लेकर जिस जिस देहमे यह जीव पहुचा वही उस देहके आकार प्रमाण ही गया। कभी कदाचित् समुद्घातकी बातें आयी तो फैल गया आकार कुछ समयके लिए, किन्तु थोडे समय बाद ही देहप्रमाण हो गया। देहसे जब मुक्त होगा तो जिस देहमे जो आकार था वह रह गया, गत्त्वके ही कारण केवल अपने आपमे उसका क्या आकार है, यह नही बताया जा सकता। इसलिए आकारपर दृष्टि रख करके अनुभव नही किया जाता, किन्तु भावपर, स्वरूपपर, स्वभावपर दृष्टि रखकर अनुभव किया जाता है, तो वह ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस ज्ञान और आनन्दमें भी आनन्दको मुख्यता नही देना है। मैं आनन्द हू, यह अनुभव स्वानुभवका साक्षात् उपाय नही बन पाता, क्योकि ज्ञानरूप हू, ऐसे मनन अनुभवनमे उपाय बनेगा, क्योकि अनुभव करना है ज्ञानका और वह ज्ञान जब ज्ञेय बन गया तो वहाँ एकता हो जायगी। तब वहा अनुभव बन सकता है। मैं ज्ञानमात्र हू बस यही बात चित्तमे आनी है। इसमे ही सर्वकल्याण निहित है।

ज्ञानमात्र अनुभवनके यत्नमें परम्परया साधन—मैं ज्ञानमात्र हूँ, केवल ज्ञानस्वरूप हू, ऐसा अनुभव जगाना है और उसके लिए ये सब उपाय है। भेदविज्ञान, स्वाध्याय, मदकषाय, सेवाभाव, उदारता आदिक ये सब उसीके साधन हैं। जैसे एक मोटी बात

परोपकारकी लें तो प्रथम बात यह है कि जीवकी तीन स्थितियाँ होती है—एक स्वका उपकार करना—आत्महित कर लेना, समाधिभाव लाना, समतामे रहना, अपने आपमें मग्न रहना, यह है स्वोपकार। दूसरा होता है परोपकार। दूसरोंकी सेवामे रहना, यह है परोपकार और तीसरी चीज होती है खुदगर्जी। मायने पर्याय जिस तरहसे आराममे रहे उस प्रकारके भाव रखना, यह खुदगर्जी है। किसी भी मनुष्यको देख लो—या तो वह खुदगर्जीमे होगा या परोपकारमे होगा या समताभावमे होगा। इन तीन बातोके अतिरिक्त चौथी बात नही है। मित्र भी हो सकता है, वहाँ यह अंश बना लीजिए कि यह इतने अंश खुदगर्ज है। मगर इन तीन बातोके सिवाय और चौथी बात क्या हो सकती है? बात यह देखना है कि आत्महितके लिए साक्षात् साधन स्वोपकार है, और स्वोपकारमे न रह सके तो उसकी सहजवृत्ति होगी परोपकारकी, खुदगर्जीकी वृत्ति न होगी। तो समझिये कि आत्महितकी दृष्टिमे परोपकार परम्परया साधन होता है, स्वोपकार साक्षात् साधन है। तो ये सब बातें जितनी व्यवहारमे है वे सब हमारे कल्याणके साधन है। आत्महितसे सम्बंध रखने वाले ये जितने चिंतन मनन आदिक हैं वे अपने आपको लाभकारी हैं। तो जीवनमे इस बातकी ओर अधिक दृष्टि होनी चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हू। अब जिसका दर्शन ज्ञान है, जिसका दर्शनगुण है उस अपने आत्माके सम्बधमे ध्यान करना है। जैसे आजकल प्रसंग चल रहा है, समयमात्र रागपरिणतिकी बाते किस तरह होती है? एक समयका राग कैसे हुआ? कैसे नष्ट हुआ? कारण उसका क्या है? सभी बातोंपर विचार चल रहा है। तो इसका भी गहरा चिंतन होनेपर आत्मासे सम्बंधित जितना चिन्तन है वह सब हमारे लाभके लिए है।

प्रभुभक्तिकी आत्मसम्बन्धितता—प्रभुभक्ति यह भी आत्मासे सम्बधित है। वह प्रभु क्या है? शुद्ध आत्मा। शुद्ध आत्माका लगाव होता नही अलगसे। जैसे कि रिश्तेदारो मे, मित्रोमे अलगसे कुछ लगाव सा होता है, शुद्ध आत्मामे अलगसे लगाव नही है, किन्तु शुद्ध आत्माका जो अनुराग है वह खुदको छूता हुआ सा रहता है। इसलिए प्रभुकी जो भक्ति है वह आत्मासे सम्बधित बात है। कही ऐसा तो है नही कि प्रभु भी परपदार्थ हैं और घरके बच्चे भी परपदार्थ है, तो जैसे प्रभुके दर्शन करें तो घरके बच्चोके भी दर्शन करे। अथवा जैसे घरके बच्चोकी भक्ति कोई नही करता वैसे ही प्रभुकी भक्ति भी न करना चाहिए। लेकिन जरा सोचो तो सही कि प्रभुकी भक्तिमे और घरके बच्चोकी भक्तिमे कितना अन्तर है? प्रभुका लगाव अपने लगावको करता हुआ सा रहता है और बच्चोका लगाव अपने आत्माका लगाव करता हुआ नहीं रहता। तो गृहस्थीमे रहते हुए गृहस्थीमे किए जाने वाले वे समस्त कर्तव्य परम्परया इस आत्मलाभसे सम्वधित हैं। तो हमे अपने

आत्मतत्त्वका चिन्तन करनेका ज्यादह ध्यान रखना चाहिए। जो इसी उद्देश्यसे चलेगा वह भूलमे न रहेगा। वह हर जगह अपने आपका ध्यान रखेगा और अपने आपको सावधान रखेगा।

ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें वाच्यवाचक सम्बन्ध न हो सकनेके वर्णनका उपक्रम—प्रत्येक पदार्थ है, वह निरन्तर परिणमता रहता है। वस्तुमे समझनेको तत्त्व इतना है। अब उन परिणमनोमे यह निरखा जा रहा है कि एक परिणमन कितना होता है? तो एक समयमे जो परिणमन है वह एक परिणमन है। एक परिणमन एक समयसे ज्यादह नही चलता और एक समयमे एकसे अधिक परिणमन नही होता। तो एक समयका परिणमन इतना एक सूक्ष्म ज्ञेयतत्त्व है कि जहाँ इन्द्रियाँ काम नही देती, बुद्धि काम नही देती, हाँ युक्ति काम देती है, जिसके अनुसार उस एक समयके परिणमनके सम्बन्धमे बहुत कुछ वर्णन किया गया है। आत्मतत्त्व को उदाहरणमे लिया। आत्मामे एक समयका जो रागपरिणमन है उससे बध्यबधक भाव तक भी नही बनता, विशेष्यविशेषण भाव भी नही बनता, बध्यघातक भाव भी नही बनता, क्योकि ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे केवल समयवर्ती तत्त्व ज्ञेय है, इसके आगे इस नयका काम नही है। तो जैसे समयवर्ती परिणतिके साथ अन्य सम्बन्ध नही बन पाते, इसी प्रकार उसमे वाच्यवाचक सम्बन्ध भी नही बनता, अर्थात् एक समयके रागपरिणमनका वाचक कोई शब्द हो, जो इसको सही रूपमे बता दे, ऐसा कोई शब्द नही है। जैसे यहाँ बोलते रहते है बहुतसे शब्द खम्भा, चौकी आदिक तो मालूम होता ना कि चौकी शब्द तो वाचक है और यह जो पडी हुई चौकी है वह वाच्य है। तो जैसे व्यवहारमे वाच्यवचक भावकी बात आती है ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे वाच्यवाचक सम्बन्ध नही है।

ऋजुसूत्रनयके आशयमें वाच्यवाचक सम्बन्ध न हो सकनेका कारण वाच्यवाचककी एक कालमें अनुपस्थिति तथा विभिन्नता—ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे वाच्यवाचक सम्बन्ध बन क्यो नही पाता, इसका कारण यह है कि उस परिणमनसे पहिले किस शब्दसे कहना चाहिए? पहिले कहेगे राग शब्दसे। तो इस राग शब्दसे जो आपने अभी बोला, किस रागको जानना चाहिए? जब राग हुआ था उस समय तो राग शब्द बोला नही गया। जब राग शब्द बोला जा रहा है उस समय वह राग परिणमन नही रहा, क्योकि यह रागपरिणमन तो समयमात्रका हुआ ना। तो जिस समय हुआ वह रागपरिणमन, उसी समय क्या राग शब्द बोला गया? कोई बोलता है क्या? शब्दके बोलनेमे कितना समय लग जाता है? जिस पदार्थका लक्ष्य करके हम कुछ शब्द बोलते है तो लक्ष्य करने के बाद बोलना इसके बीचमे कितना समय गुजर जाता है? जिस रागपरिणमनको हम राग शब्द

से बोलेंगे वह रागपरिणमन न रहा अब जिस समय कि राग शब्द बोला जा रहा है। तो जब वर्तमानमे दो एक साथ न रह सके राग शब्दका प्रयोग और रागपरिणमन जिस राग के बताने लिए राग शब्दका प्रयोग किया गया। तो जब दोनो है नही आमने सामने तब दोनोका सम्बन्ध क्या? समयवर्ती रागपरिणमनका इस राग शब्दके साथ सम्बन्ध कुछ न रहा। क्योकि रागपरिणमनका भिन्न समयमे जीवन था। इस राग शब्दका भिन्न समयमे जीवन था। इस राग शब्दका भिन्न समयमे जीवन है। तो जब इन दोनोका सम्बन्ध नही बन सकता तो वाच्यवाचक भाव कैसे आया? यदि यह हठ करो कि नही है आमने-सामने रागपरिणमन और राग शब्द एक साथ नही है, सम्बन्ध नही है फिर भी राग शब्द वाचक है और राग परिणति वाच्य है। अगर सम्बन्ध रहित पदार्थोमे वाच्यवाचक भाव मान लिया जाय तो कोई सा भी शब्द सारे विश्वका वाचक बन जाय, क्योकि अब तो सम्बन्धके बिना वाच्यवाचक भाव मानने लगे तब तो कोई वाचक ही न रहेगा। कोई वाच्य ही न रह सकेगा। तो यह समयवर्ती रागपरिणमन इतना सूक्ष्म है कि इसके साथ वाच्यवाचक सम्बन्ध भी न बन पायगा। फिर दूसरी बात यह है कि राग है भिन्न पदार्थ और राग शब्द है भिन्न पदार्थ। भिन्न-भिन्न पदार्थोका सम्बन्ध क्या?

ऋजुसूत्रनयमें तीन निक्षेपोंकी योजना—यद्यपि सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे वाच्य-वाचक सम्बध नही है, तथापि यह न समझना सर्वथा कि वह बात किसी प्रकार वर्णनमे ही नही आ सकती। उसका स्थूलरूप बनाकर, व्यवहाररूप बनाकर वर्णन हो सकता है। तभी वर्तमान मात्र रागपरिणमनके बतानेके लिए तीन निक्षेप काम आते हैं—नामनिक्षेप, द्रव्य-निक्षेप, और भावनिक्षेप। निक्षेप कहते है किसी निर्णयमे पहुचनेको, किसी निर्णयमे पहुंचाने को। निश्चयमे पहुंचा देवे उसका नाम निक्षेप है जिससे कि व्यवहार चलता है। निक्षेपके द्वारा व्यवहार चलता है। तो रागपरिणमनके हम तीन निक्षेपोको जान सकते हैं। नाम-निक्षेप—उसका नाम रख दिया राग। नामनिक्षेप तो लोगोकी कल्पनाकी बात है, जिसका जो नाम धर दे। नाम धरे बिना तो व्यवहार चल ही नही सकता। किसके बारेमे बात करेंगे? किसका निर्णय करना है? नाम तो लेना ही पड़ेगा। नाम बिना कुछ बात नही चलती। तो नाम एक ऐसा मूल है। जब किसी प्रसंगमे, समारोहमे, विवाह आदिक अवसर मे स्त्रिया बैठती है गीत गानेके लिए और कोई गीत शुरू नही हो पाता, कोई स्त्री कहती कि तुम गाओ, कोई कहती तुम गाओ। तो कोई स्त्री कहती कि तुम नाम तो धरो, उठा हम लेंगी याने तुम किसी गीतके दो अक्षर तो बोलो, फिर हम उसे सम्हाल लेंगी। तो चाहे आगे उसका विश्लेषण न कर सकें कुछ, लेकिन बात यह पायी गई कि किसी चीजका प्रवेश करनेके लिए, व्यवहार चलानेके लिए पहिले नामकी बात आती है। अरे तो उस उस गीत

का कोई नाम तो धरे, फिर उसको बढा लेगे, सम्हाल लेगे, साथ बोल लेगे। किसी पुरुष का कोई नाम ही न हो तो उससे क्या व्यवहार चलेगा ? क्या लेनदेन होगा, क्या आज्ञा होगी ? कुछ बात ही नही बन सकती। किसी भी चीजका कोई नाम न हो तो वह चीज व्यवहारमे नही आ पाती। विकार यो नही रहता कि परिणमन न हो। वह तो परिणमन उसका व्यवहार है, होगा ही, मगर मनुष्य उसका उपयोग करें कराये; इसमे बाधा आती है। तो समयवर्ती रागपरिणमनमे एक तो नामनिक्षेपसे बोधकी बात चलती है। ऋजुसूत्रनय के आशयमे स्थापनानिक्षेपसे रागपरिणमनकी जानकारी नही बनती, क्योकि स्थापनानिक्षेप मे चाहिए दो चीजे सामने। किसीमे किसीकी स्थापना करना, जैसे मूर्तिमे भगवानकी स्थापना करना। तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे दूसरा कुछ रहता ही नही है। तो स्थापनानिक्षेप न बन सकेगा। द्रव्यनिक्षेप स्थूल दृष्टिमे बनेगा, क्योकि द्रव्यनिक्षेपमे काल लम्बा होता है, लेकिन ऋजुसूत्रनयमे लम्बा समय है नही। एक समयकी परिणतिको ग्रहण करता है। अर्थात् ऋजुसूत्रनय जो कि परिणमनरूपसे कहा जा रहा इसलिए तो ऋजुसूत्रनयका विषय है, लेकिन अनेक परिणमनोकी बात है वहा, इस कारण स्थूल कहलाता है। वहा द्रव्यनिक्षेप बनता है। और भावनिक्षेप तो वर्तमान समयकी बातको वर्तमानमे कह सकना सो भावनिक्षेप है। ऋजुसूत्रनयमे निक्षेपोका प्रयोजन स्थूलरूपसे है। अगर सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो समयमात्र के रागपरिणमनको कह सकने वाला दुनियामें कोई शब्द ही नही हो सकता। क्योकि जब शब्द बोला गया तो वह राग न रहा जिस रागको हमे बताना था। तो वाचक और वाच्य आमने सामने जिस समय हो उनकी तब तो बात बनती। अब वाचक शब्द तो उत्पन्न होगा बहुत बादमे और पर्याय हो चुकी पहिले तो कैसे वाच्य वाचक बने ? तो सूक्ष्मऋजुसूत्रनय की दृष्टिमें वाच्य वाचक सम्बध भी नही होता।

आगमगम्य स्वप्रतिष्ठामूलक सूक्ष्म अर्थपर्याय—इस प्रसगमें जरा पर्यायोका विशेष ज्ञान करना है। तो पर्यायोके बारेमें बतला रहे है और इस ढगसे बतलावेंगे कि उसमे यह जानकारी आ जायगी, इस क्रमसे बतावेंगे जिससे यह विदित हो जाय कि इसके बादकी यह पर्याय स्थूल है, इसके बादकी यह पर्याय मोटी बात है। जो पहिले कहा वह अत्यन्त सूक्ष्म होगा, जो उसके बाद कहा जायगा वह उससे कोई मोटी बात होगी। ऐसी पद्धतिसे सिलसिलेवार कुछ पर्यायोका नाम ले रहे हैं, सो नाम लेते समय भी ध्यानसे सुनो और उनका क्रमसे विश्लेषण भी किया जायगा, जिससे विशेष बोध होगा। इन पर्यायोको हम १२-१३ रूपोमे बाँट रहे हैं। पहिला अर्थपर्याय—अर्थपर्याय बहुत सूक्ष्म पर्याय है, और यो समझिये कि वस्तुकी सत्ताके लिए वस्तुमे जो निरन्तर षड्गुण वृद्धि हानिरूपसे परिणमन चलता रहता है वह अर्थपर्याय है। एक अवस्थामे जब दूसरी अवस्था बनती है उस बीचमे

वहाँ इतना महान् परिवर्तन हो जाता है यह बात इस निगाहसे समझमे न आयगी, लेकिन आचार्य बतलाते है कि वहाँ षड्गुण हानि वृद्धि हुई, उतना परिणमन हुआ। जैसे कभी देखा होगा कि बिजली जल रही है; लगातार जल रही है; उसमे कोई बहुत सूक्ष्म खोजी होगा तो वह जान लेगा कि प्रतिसमय अथवा व्यवहारमे ले लो तो प्रति सेकेण्डके १०० वें हिस्से मे जो बिजलीका प्रकाश है उससे अगले क्षणमे बिजलीका प्रकाश कुछ और भाति हो गया, कम या तेज। और उस कमी तेजीके बीचमे उसमे कितने अशका परिवर्तन हुआ है, यह खोजने वाला जान सकता है। या तो उस एक वोल्टमे भीतरमे भी बहुतसे बोल्टके अश है और एक क्षणके उजेलेके बाद दूसरे क्षणका जो उजेला होने लग रहा है उसका भी बराबर वहीका वही उजेला है, लेकिन उसमे परिवर्तन कितना अधिक हो गया, यह युक्तिसे समझमें आ जाता है। और कभी-कभी तो स्पष्ट आखोसे भी समझमे आता है कि कोई अंगुली बैंचमे मारकर तुरन्त उठाया तो बैन्चके छुवे जानेमे जितना समय लगे, उतने समयमे कभी बिजलीमे भी यह बात देखनेको मिल जाती है कि लो थोडा उजेला कम हुआ, फिर ज्योका त्यो, इतनी देरमे कितनी हानिवृद्धि हुई ? बहुत बडी संख्यामें हानिवृद्धि हुई। तो यो ही समझिये कि प्रत्येक पदार्थमे एक अवस्थाके बाद दूसरी अवस्था जो बनती है वह स्वभावत बहुत बडी हानिवृद्धिको लेकर बनती है।

स्वभावपर्यायमें अर्थपर्यायका निरीक्षण—यहाँ उदाहरण दिए जा रहे है विभावपर्यायोके, मगर स्वभावपर्याय केवल ज्ञानपर्यायमे भी प्रतिसमय षड्गुणहानिवृद्धिसहित केवल ज्ञानपर्याय होता रहता है। एक समयकी केवल ज्ञानपर्यायके बाद दूसरे समयका केवल ज्ञानपर्याय होता है, उस बीच भी षड्गुणहानिवृद्धि है, और इतने पर भी वहाँ यह अन्तर नहीं आ पाता कि केवल ज्ञानने जितना सारे विश्वको जाना उससे जरा भी कम दूसरे ज्ञानमे आया हो सो नही, या कुछ अधिक आया हो सो नही। और फिर भी षड्गुणहानिवृद्धि उस बीचमे आ गई। यह सब कुछ युक्ति और अंदाजकी बात है और आगमकी बात है। एक मोटा दृष्टान्त ले लो। कोई मान लो ४०-५० करोडका धनिक पुरुष है, करोडपति कहलाता है, उसके यदि एक नया पैसा कम हो गया तो क्या करोड़पति मिट गया ? बढते जावो, हजार पैसे कम हो गए या बढ गए तो क्या उस करोडपतिमे कोई आँच आयी ? हजार रुपये कम हो गए या बढ गए तो करोडपति कहलानेमे कोई बाधा है क्या ? लाखो भी कम हो गए तो करोडपतिको कुछ बाधा नही। तो यह समझ लीजिये कि वे अविभाग प्रतिच्छेद इतने सूक्ष्मरूपको लिए हुए है कि उनसे अनन्त गुने भी वृद्धि हानि हो जाय तो भी ज्ञानमे जो व्यक्त रूप होता है उसमे अन्तर नही आ पाता। तो यो एक समयका परिणमन जो वस्तुमे वस्तुके सत्त्वकी प्रतिष्ठाके लिए है, सत्ता रह पाती जब तक अगुरुलघुत्व [illegible]

कहलाता है पदार्थमे । तो वह अर्थपर्याय है । आपने अदाज किया होगा कि ऐसी अर्थ पर्याय कितनी सूक्ष्म परिणति है ?

स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय—दूसरे नम्बरपर निरखियेगा, स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय । उदाहरणमे मान लीजिए । जैसे केवलज्ञान है, प्रभुका आनन्द है, प्रभुके गुणोका विकास है वह पर्याय स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय है । यहाँ व्यञ्जनपर्यायिका अर्थ है व्यक्त पर्याय । आकारसे मतलब नही । व्यञ्जनका अर्थ है जो व्यक्त हो गया हो । हम आपको पदार्थका आकार बहुत स्पष्ट रहता है । खम्भा खडा है तो इसकी लम्बाई चौडाई हमारे ज्ञानमे बहुत स्पष्ट है । उतना स्पष्ट हम इस खम्भेके गुणोकी पर्यायको नही जान पाये । तो सहसा स्पष्ट बोध होनेके कारण हम आकारको द्रव्यकी व्यञ्जन पर्याय कह सकते हैं और व्यक्त होनेके कारण गुणोकी पर्यायको भी व्यञ्जनपर्याय कह सकते है । प्रसगके अनुसार दोनोका जुदा जुदा अर्थ समझना है । तो स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय केवल ज्ञानानन्द प्रभुकी परिणति यह अर्थपर्यायकी अपेक्षा कुछ स्थूल बात है, फिर भी आगे जो और १०–११ पर्यायें बतायी जायेंगी उनकी अपेक्षा सूक्ष्म है । भगवानका केवलज्ञान परिणमन किस प्रकार चल रहा है ? एक अवस्थासे दूसरी अवस्था होती है । उस बीच कितना परिवर्तन हो गया है, और इतना परिवर्तन होनेपर भी ज्ञानकी व्यञ्जनामे कोई अन्तर नही आया । तो आप समझिये कि भीतर कितना बडा स्वभाव भरा है, वह करोडपतिका वैभव कितना बडा है कि लाख रुपये भी घट जायें तो करोडपतिको आच नही आती । यह जानियेगा कि करोडपतिकी निधि कितनी बडी होती है ? केवलज्ञानकी निधि कितनी बडी होती है कि वहाँ अनन्त गुण वृद्धि हानि होनेपर भी ज्ञानमे सारा विश्व जैसा पहिले आया वैसा ही अब आया, हीनाधिकता नही है । जैसे लाखकी अधिकता होनेपर भी करोडपतिसे बढकर नही हो गया, लाखका विनाश होनेपर भी करोडपति मिट नही गया, इससे वैभवकी विशालताका अदाज होता है । तो यह स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याय है । भगवानका केवलज्ञान और अन्य अन्य परिणमन भी किस किस प्रकार होते रहते हैं, उनको अब समझनेमे भी एक सूक्ष्मतया बुद्धि लगानी पडती है और यह स्वभावगुणपर्याय अर्थपर्यायकी अपेक्षासे स्थूल है । अर्थपर्यायमे यदि सत्ता कायम रखने मात्रके लिए जो परिणति हो उसे बतलाया और स्वभाव गुण पर्यायने वस्तुमे पर्यायका व्यक्त रूप बताया । वह व्यक्त रूप चूंकि स्वभावके अनुरूप है इस कारण स्वभाव की तरह सूक्ष्म है; फिर भी अर्थपर्यायकी अपेक्षासे ये स्वभावगुणपर्याय कुछ विशेष अथवा व्यक्त होनेसे स्थूलरूप है ।

स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायकी परिस्थिति—स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायसे स्थूलरूप होता है स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय । जैसे सिद्ध भगवन्तोमे उनके प्रदेशका आकार सोचा जाता

तो वह जो आकारपरिणमन है, आकारका होना रहना है यह पर्याय उन केवल ज्ञानादिक भाव पर्यायोसे स्थूलरूपसे है, सुगम स्पष्ट जरा समझमे भी आता है। तो ये तीन पर्यायें कह गईं—अर्थपर्याय, स्वभावगुण पर्याय और स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्याय। ये क्रमश पहिले से स्थूल हैं और अर्थपर्याय तो इतनी सूक्ष्म है कि जिनकी पकड यहाँ होती ही नहीं, अतएव उसे केवली गम्य और आगमगम्य बताया है। हम आप भी जो बात करते है वह आगमके अनुसार करते है और युक्ति अदाज भी जितना बन सकता है उतना बनाकर करते है, मगर उन युक्ति अदाजोमे भी अर्थपर्यायका स्वरूप पूर्णतया ग्रहणमें आ नही सकता। तो यहाँ यह बतानेके लिए कहा जा रहा है कि इन पर्यायोकी जो समयवर्ती पर्यायें है इनका वाचक कोई शब्द हो नही सकता। पर्यायें सूक्ष्म हैं अर्थपर्यायें, याने पदार्थमे अपने आपकी सत्ताकी प्रतिष्ठा रखनेके लिए जो स्वय सहज सद्गुण हानिवृद्धिरूपमें परिणमन चलता ही रहता है, वह अर्थपर्याय कहलाती है। इस अर्थका कोई रूप व्यक्त नही है किन्तु है सब पर्यायोंका आधार। यदि अर्थपर्याय वस्तुमे अन्त न चले तो कोई भी व्यक्तपर्याय बन नही सकती। इससे स्थूल है स्वभावगुण पर्याय। जैसे केवलज्ञानका परिणमन। यह स्वाभाविक परिणमन है। यह अन्य कही जाने वाली पर्यायोसे सूक्ष्म है। उससे स्थूल है स्वभावद्रव्य व्यञ्जनपर्याय मायने सिद्ध भगवानका आकार या परमाणुका आकार, जो स्वभावका आकार है द्रव्योकी वह पर्याय।

विभावसम्यग्ज्ञानपर्याय व विभावमिथ्याज्ञान पर्यायकी परिस्थिति—स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायसे स्थूल है विभावसम्यग्ज्ञान पर्याय। अथवा ज्ञानके सम्बधमे मूल प्रकार समझना हो तो दो प्रकार समझना चाहिये—एक शक्तिरूप ज्ञान, दूसरा व्यक्तिरूप ज्ञान। शक्तिरूप ज्ञानकी यहाँ चर्चा नही की जा रही, व्यक्तिरूप जो ज्ञान है, जो ज्ञान प्रकट होता है वह ज्ञान दो प्रकारोमे विभक्त है। विभावज्ञानपर्याय और स्वभावज्ञानपर्याय। स्वभावज्ञानपर्याय तो केवल एक ही है—केवलज्ञान और वह सम्यग्ज्ञान रूप ही है, पर विभावज्ञानपर्याय दो प्रकारकी है—सम्यग्ज्ञानरूप और मिथ्याज्ञानरूप। सम्यग्दृष्टिके होने वाले मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान ये विभावसम्यग्ज्ञान पर्याय हैं, इस तरहके ज्ञानोमे परिणमना जीव का स्वभाव नही है, ये तो विभाव कहलाते है, और मिथ्याज्ञान है नही सम्यग्दृष्टिके, इस कारण सम्यज्ञान है, तो विभाव सम्यग्ज्ञान पर्याय इससे स्थूल है, इसके स्थूलपरिणमन है विभाव मिथ्याज्ञान पर्याय। कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, इनकी बाते बहुत ढगसे लोगोको विदित हो जाती हैं।

अव्यक्त विकारपर्यायकी परिस्थिति—विभावमिथ्याज्ञानपर्यायसे स्थूल है अव्यक्त विकारपर्याय। यहा यह बात जानना है कि ज्ञानका जो परिणमन होता है वह जाननरूप

परिणमन है। उस जाननमे ही विभाव और स्वभावकी बात है। जो जाननेकी जो पर्यायें है उनसे स्थूल पर्यायें विकारकी होती हैं। जाननेमे तो जानना ही है। यह अपनी जातिमे कैसे ही विभाव रूप हो, पर जाननेकी पर्यायसे रागद्वेषकी पर्याय स्थूल होती है। जाननेमे तो चेतनाकी बात है, प्रतिभासकी बात है। विकार तो जड है, अचेतन है, उसमे समझ नही है, अतएव "जानना" चाहे कितने ही विभावरूप हो, उससे भी स्थूल माना जाता है। विकार पर्याय चाहे वह विकार पर्याय अव्यक्त हो, श्रेणियोमें चढने वाले साधुओंके भी कही-कही रागद्वेप पर्याय है। ८वें ६वें गुणस्थानमे रागद्वेप पर्याय है और वहां राग द्वेपका परिणमन भी चलता है किन्तु अव्यक्त है। उन ऋषियो तककी भी वेदनामे नही आता। इतनी सूक्ष्म अव्यक्त विकारपर्याय मिथ्याज्ञानकी पर्यायसे भी स्थूल है।

सुखानुभव, व्यक्तविकारपर्याय, व्यक्त मिश्रश्रद्धापर्याय, अगृहीत मिथ्यात्व व अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जनपर्यायकी परिस्थिति—अव्यक्त विकारपर्यायसे स्थूल है सुखानुभव पर्याय। राग-द्वेषका अनुभव होता है, एक तो ऐसा परिणमन, अनुभव नही, किन्तु हो रहा है रागद्वेप अव्यक्त रूपसे। अब उसके बाद जब विकारका व्यक्तरूप आयगा, विकारका अनुभव बनने लगेगा तो उन विकारके सर्व अनुभवोमे प्रथम बात कह रहे है सुखके अनुभवकी। अव्यक्त विकारपर्यायसे स्थूल है सुखकी अनुभव पर्याय याने उससे स्थूल है सुखका अनुभव वाली पर्याय। तभी तो लोग कहते है कि सुखके दिन तो बडी जल्दी व्यतीत हो जाते है, उनका कुछ पता ही नही पडता और दु खके दिन बिताये नही बीतते, दुखका एक घंटा भी महीनो जैसा दीखता है। उससे स्थूल है व्यक्तविकार पर्याय। जो नाचते हुए क्रोध, मान, माया, लोभादिक हैं वे सब व्यक्त हैं, ऐसे विकार पर्याय स्थूल है, उससे स्थूल है मिश्रश्रद्धा पर्याय। श्रद्धानमे जो मिश्रण होता है न मिथ्यारूप रहा, न सम्यक्रूप। मिश्रश्रद्धा पर्यायसे स्थूल है अज्ञानी जीवका गृहीत मिथ्यात्व पर्याय। जैसे कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र इनको हितरूप मानना ये सब पर्यायें उन पर्यायोसे कुछ विशेष स्थूल हैं, व्यक्त है, यो स्थूल कही जा रही हैं कि इनका परिणाम बुरा होता है। और उससे भी बुरी पर्याय है अज्ञानी जीवके अगृहीत मिथ्यादर्शनकी पर्याय। सारा ससार देहको आत्मा मानकर रुल रहा है। अपने सुख दु ख कषायोको यही मैं सब कुछ हू ऐसा भीतरमे श्रद्धान करते हुए रुल रहा है। यह बहुत खोटी पर्याय है और फिर सबसे अधिक व्यक्त है, स्थूल है, इन्द्रियसे भी गोचर है, ऐसी पर्याय है तो अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जनपर्याय। मनुष्य पेड कीडा मकोडा पशु पक्षी आदिक ये सब जो आकार बने हैं, ये सब अशुद्ध द्रव्यव्यञ्जन पर्याय है।

अर्थपर्यायकी सूक्ष्मताका कथन—उक्त पर्यायोका वर्णन इसलिए किया जा रहा है कि इसमे पहिले यह समझा जायगा कि सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जिस अर्थपर्यायको ग्रहण करना

है, वह अर्थपर्याय कितना सूक्ष्म है जिसको कि ऋजुसूत्रनय ग्रहण करता है। ऋजुसूत्रनयका विषय ऐसा निर्विकल्प है। इन सब पर्यायोमे अर्थपर्याय तो एक ही है, उसका भेद नही है और व्यञ्जनपर्याये ये सभी कहलाती है। गुणपर्याय भी व्यक्त है इस दृष्टिसे व्यञ्जन-पर्याय है। पर प्रदेशका आकार बनाना वह भी व्यञ्जनपर्याय कहलाता है। अर्थपर्याय और समस्त गुणव्यञ्जन पर्याय इनका प्रतिवोध करनेके लिए स्थूल दृष्टान्त बताये—जैसे कोई यंत्र चल रहा है शुद्ध रूपसे जिसका चक्र चल रहा है और उस चक्र पर यदि कोई कपडा वगैरह गिर जाय तो जिस प्रकार वह चक्र घूम रहा है उस प्रकारसे वह कपडा भी घूमने लगता है। जब कपडा घूमने लगता है तो लोगोंको दिखता है कि यह चक्र चल रहा है और कुछ न दीखें तो उस चक्रका पता ही नही पडता कि यह चल रहा है। और उस पर विकार आ जाय, कपडा वगैरह उपाधिका सम्बन्ध आ जाय तो उसका घूमना व्यक्त दिखने लगता है। तो जो व्यक्त दीखा उसका कारण वह शुद्ध घूमना है। अगर शुद्ध घूमना न बन रहा होता तो यह विकार और कपडा घूमनेकी बात कैसे आ सकती ? पदार्थ मे जितनी भी परिणतियाँ होती हैं उन सब परिणतियोका आश्रय अर्थ पर्याय है, ऐसी अन्तर्गत अर्थपर्यायको सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय ग्रहण करता है। अर्थपर्यायके भेद इस कारण नही है कि अगुरुलघुत्व गुणकी षड्गुणहानि वृद्धिमे उसका परिणमन बताया है, जिसका काम है अपने स्वभावकी प्रतिष्ठा करना। अर्थपर्याय न हो तो सत्ता नही रह सकती। यह अर्थपर्याय समस्त द्रव्योमे अनादि अनन्त समान है। अर्थपर्यायके कोई भी भेद नही है।

व्यञ्जनपर्यायोंमें प्रभुज्ञानकी प्रमुखता—जितनी पर्यायें हम सबको विदित होती है उन सब पर्यायोका नाम व्यञ्जनपर्याय है। यद्यपि रूढिवश व्यञ्जनपर्यायका अर्थ है आकारपर्याय, लेकिन जो व्यक्त हुआ है, जो व्यक्त हो सकता है ऐसे परिणमनोका नाम व्यञ्जनपर्याय है। तो गुणपर्याय भी व्यक्त होता है और आकारपरिणमन भी व्यक्त होता है, इन सब पर्यायोंमे प्रतिसमयका परिणमन तो होता ही है, पर हम आप उसको ग्रहण नही कर पाते। हमारा उपयोग अन्तर्मुहूर्त तक चले तो उसे हम ग्रहण कर सकते है, पर परिणमन होता है हम आपमें प्रत्येक समय नवीन नवीन ही, ऐसा एक एक समयका परि-णमन केवली भगवानके केवलज्ञानमे हाथ पर रखे हुए आवले की तरह स्पष्ट रहता है। ग्रन्थोमे आवलेका दृष्टान्त दिया है। जैसे हाथ रखा हुआ आवला। सभी चीजोका दृष्टान्त दे सकते थे पर अन्य चीजोको छोडकर आवलेका दृष्टान्त क्यो आचार्योको पसंद आया ? क्या ऐसा नही कह सकते थे कि हाथ पर रखे हुए आमकी तरह, हाथ पर रखे हुए डेला पत्थर या मणिकी तरह। इन सबको दृष्टान्तमे न लेकर जो हाथ पर रखे हुए आवले

की तरह ऐसा जो दृष्टान्त दिया है उसका कारण यह है कि आवला करीब ६ कलियोका होता है, उन छहों कलियोंका पृथक्-पृथक् स्पष्ट बोध होता है, और आकार भी करीब-करीब उनका एक समान होता है। अन्य फल तो कुछ भिन्न-भिन्न आकारके भी होते हैं, जैसे आमके फल कितने ही प्रकारके होते है। हाथ पर रखा हुआ आवला समस्त कलियो सहित ज्ञात हो जाता है। इसी प्रकार समस्त पदार्थ, समस्त पर्यायें सत् ज्ञात होती हैं केवलज्ञान मे। यह समझानेके लिए दृष्टान्त दिया जाता है। एक समयका परिणमन केवली गम्य है। होता है सर्व पदार्थोमे। वह भी किसी तरह ज्ञात हो तो क्षोभसे रहित है।

एकत्वनिश्चयकी महिमा--एकत्वका कितना माहात्म्य है ? केवल एक द्रव्य। जिसमे दूसरे द्रव्यका सम्बध नही, ऐसा एक द्रव्य ज्ञात हो जाता है तब मोहका प्रक्षय हो जाता है। यह सम्यग्ज्ञान अपनी महती प्रतिष्ठामे होता है। केवल एक क्षेत्र मायने किसी भी पदार्थके प्रदेश ही मात्र। अन्य पदार्थोका प्रवेश नही। इन प्रकार अद्वैत क्षेत्र सम्यग्ज्ञानकी महाप्रतिष्ठा मे है। इसी प्रकार एक समयकी पर्याय परिपूर्ण पूर्व और उत्तर पर्यायके सम्वधको न रखकर निरपेक्ष रूपसे जाने हुएकी वात केवलज्ञानमे होती है और युक्तियोसे हम आप भी जानते है। तो त्रिकालवर्ती द्रव्यको निरखनेपर जैसे एक अखण्ड पदार्थ ज्ञेय होता है इसी प्रकार एक समयवर्ती परिणति मात्रको निरखनेपर भी एक अखण्ड तत्त्व ज्ञात होता है। यही कारण है कि जब हम द्रव्यको विशाल करके निरखते है तो विकल्पोके टूट जानेका मौका मिलता है, इसी प्रकार जब हम एक समयमात्रकी परिणतिको निरखने चलते है तो वहाँ भी विकल्प टूट जाते है। विकल्पोके चलनेके लिए होना चाहिए लगाव। लगावकी बात अखण्ड पदार्थके ज्ञानमे नही है। इससे मोह तोडनेका उपाय अद्वैत द्रव्यस्वरूपका ज्ञान है। और समयमात्र परिणतिके ज्ञान करनेपर वह चूंकि ज्ञान द्रव्यका ही रह जाता है इसलिए इस प्रसगमें भी निर्विकल्प होनेका उपाय एकत्वनिश्चयगत द्रव्यस्वरूपका ज्ञान है।

स्वभावदर्शनका पौरुष--हम अपने आपके स्वभावपर दृष्टि दे तो इस दृष्टिके प्रसादसे हमें आत्मस्वरूपका भान होगा। स्वभाव कैसे ज्ञात होता ? जल है, गर्म है, पर हम गर्म जलके स्वभावका ज्ञान कैसे कर लेते है ? भले ही गर्म है यह जल, मगर जलका स्वभाव गर्म नही है, ठडा है। जैसे हम जलके गर्म रहते हुए भी गर्म जलमें जलके स्वभावका ज्ञान कर लेते है इसी प्रकार पारखी लोग ऐसी विकारपर्यायमें चलते हुएकी स्थितिमें भी स्वभाव का बोध कर लेते हैं। जैसे एक्सराका यत्र मनुष्यके चाम, खून आदिकको न ग्रहण करके एक हड्डीको ही ग्रहण करता है, फोटो ले लेता है, इसी प्रकार पारखी जीव देहको, कषायो को, कर्मोंको इन सबको ग्रहण न करके केवल एक स्वभावको ग्रहण कर लेता है। उसके लिए चाहिए भेदविज्ञान। उस भेदविज्ञानके बलसे इन सब पर्यायोंसे पार होकर एक स्वभाव

का ग्रहण करे, यही आत्माके आनन्दकी प्राप्तिका उपाय होगा। इस प्रकार मोह राग द्वेष दूर हो, ज्ञानकी समृद्धि बने, बस यही उपाय करने योग्य है और उससे ही हम आपका कल्याण है। आज यह ६वाँ परिच्छेद पूर्ण हो रहा है। इसमें कुछ नयोके ज्ञानसे ऐसा लगता होगा कि कभी कुछ कथन आया, कभी कुछ। कुछ विरुद्ध जचता होगा, पर विरुद्ध नही है। यहाँ किस नयकी दृष्टिमे निरखनेपर क्या नजर आता है, वह विषय बताया गया। प्रयोजन सबका यह है कि जिस किसी भी उपायसे शुद्ध ज्ञेयतत्त्व ज्ञानमे आये और मोह राग द्वेषादिक विकारपरिणमन दूर हो, जिससे आत्माके शुद्ध आनन्दकी प्राप्ति हो। हम आप संसारके सभी जीवोकी एक वाञ्छा है कि शान्ति प्राप्त हो। अत सत्य सहज स्वाधीन शान्तिकी उपलब्धिके अर्थ हमारा क्या कर्तव्य है इसके विचारमे अभी चल रहे थे। सर्व प्रथम यह बोध करना आवश्यक है कि वास्तविक शान्ति क्या होती है? फिर दूसरी बात यह जानना है कि ऐसी शान्ति जिसे चाहिये वह परमार्थतः क्या है? इन्ही दो तत्त्वोको स्पष्ट करनेके लिये लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप, निर्देशादि उपायोका कथन किया। फिर शान्ति परिणति कैसे होती है, उसके अन्त व बाह्य साधन क्या है, इन उपयोगी तत्त्वोके जाननेके लिये निमित्त, उपादान, निमित्तनैमित्तिक भाव, परिणमनस्वातन्त्र्य आदिका वर्णन किया है। इस समस्त वर्णनके निष्कर्षमें यह बात निचोड़ की आयी कि अविकार अन्त स्वभावकी ओर हमारा उपयोग हो, ऐसा प्रयत्न करे। इससे ही समस्त सकट मिटेंगे, शाश्वत आनन्द होगा, सदा शुद्ध पवित्र रहेगे।

॥ अध्यात्मसहस्री प्रवचन तृतीय भाग समाप्त ॥
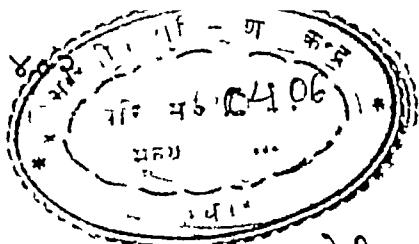
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

❀ शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ❀

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमन्त्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतन्त्रम्।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्ध चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम्।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम्।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम्।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम्।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमिं, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम्।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गं, शुद्धं चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥

Bhartiya Shruti-Darshan Kendra
JAIPUR